पूज्यपाद श्रीश्रील-रघुनाथदास गोस्वामिपाद-विरचितः

श्रीश्रीविलापकुसुमाञ्जलिः

(प्रार्थना-स्तोत्रम्)

बंगला टीकाकार एवं सम्पादक :

श्रीमत् अनन्तदास बाबाजी महाराज

हिन्दी रूपान्तरकार :

व्रजगोपाल दास अग्रवाल

तृतीय संस्करण

श्रीकृष्णचैतन्य-शास्त्रमन्दिर, व्रजानन्द घेरा

श्रीराधाकुण्ड द्वारा प्रकाशित

श्रीचैतन्याब्द-५३७ (ई० २०२२)

बसन्त पंचमी

सर्वसत्त्वसंरक्षित।

प्रचारानुकूल्य रु.

२५०/-

प्रकाशक –

श्रीहरेकृष्णदास और श्रीकेशवदास

श्रीकृष्णचैतन्य-शास्त्र मन्दिर

व्रजानन्द घेरा, पो० राधाकुण्ड

जिला-मथुरा (उ० प्र०), पिन-२८१५०४

प्राप्ति स्थान –

❖ **श्रीअनन्तदास**

श्रीकृष्णचैतन्य-शास्त्र मन्दिर

व्रजानन्द घेरा, पो० राधाकुण्ड

जिला-मथुरा (उ० प्र०), पिन-२८१५०४

❖ **श्रीअपु श्याम**

''पूजारिणी'' ११६/०ए/४

शरत्घोष गार्डेन रोड, कोलकाता-७०००३१

❖ **श्रीशंकर लाहा**

१०/१ वि, संतोष राय रोड

वड़िशा, कलकत्ता – ७००००८

कम्पोज व सैटिंग –

यश ग्राफिक्स

अनाज मण्डी, वृन्दावन, पिन-२८११२१

मो. 9259271371

समर्पण

कलियुग-पावनावतार श्रीश्रीगौरांग महाप्रभु के

पञ्चशत वर्ष - आविर्भाव-जयन्ती-महोत्सव

के उपचार-रूप में प्रस्तुत यह ग्रन्थरत्न

निर्माल्य-स्वरूप अपने परमाराध्य

श्रीश्रीगुरुदेव निकुंज प्रविष्ट

१०८ श्रीमत् कुञ्जविहारीदास

बाबाजी महाराज के

श्रीकर-कमलों में परम

भक्तिपूर्वक समर्पित

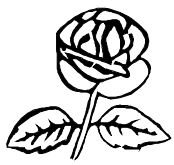

❊ श्रीश्रीगौरविधुर्जयति ❊

नम्र निवेदन

श्रीश्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु के परमप्रिय पार्षद श्रील रघुनाथदास गोस्वामिपाद अतुल राजवैभव और विषय-सुख आदि तुच्छ तृणवत् त्यागकर प्रबल अनुराग से भरे नीलाचल पहुँचे थे। वहाँ मधुप की तरह श्रीचैतन्यचरणकमलों के महामत्तता जनक दिव्यप्रेम-मकरन्द का पान करने में मग्न हुए। इतना ही नहीं, लगातार सोलह वर्षों तक महाप्रभु का मधुमय संग और असाधारण करुणा प्राप्त कर वे धन्य हुए। श्रीमन्महाप्रभु के अन्तर्धान के पश्चात् उनके प्रगाढ़ विरह में अत्यन्त कातर होकर अपने विरह-तापित प्राण त्यागने का संकल्प ले वे श्रीव्रजधाम आये। यहाँ श्रीश्रीरूप-सनातन के कृपादेश से अपना संकल्प छोड़ वे श्रीराधाकुण्ड-तट पर रहते हुए **आहार-निद्रा त्यागकर** शरीर पर मात्र एक छिन्न कंथा धारण कर प्रगाढ़ भजनरस में डूब गये। अन्त में श्रीराधारानी का रहोदास्य **(एकान्त निगूढ़ सेवा)** प्राप्त करने के लिये उन्होंने स्वामिनी-विरहिणी सेविका की तरह कातर प्राणों से अहर्निश जो रोदन-विलाप किया, वह विरह-विलाप ही ''विलापकुसुमाञ्जलि'' स्तव के नाम से प्रसिद्ध है। गहन इष्ट-विरह, प्रबल सेवाकांक्षा, भजन-गाम्भीर्य, भावोद्वेलित लेखनी का मधुर काव्य-कला-लालित्य-सर्वोपरि, गहन लीला-रस बोध! इन्हीं कारणों से श्रीपाद का यह स्तव विश्व में अतुलनीय है।

श्रीराधाकुण्डवासी वैष्णव-महात्माओं के कृपादेश से चैतन्याब्द ४९९ (१९८६ ई०) में मुझ-जैसे दीनजन द्वारा इस ग्रन्थ की 'परिमलकणा' नामक टीका बंगभाषा में प्रकाशित हुई थी, जिसे पढ़कर वैष्णवों ने अत्यन्त आनन्द व्यक्त किया। हिन्दी-भाषी भक्तजन भी इसका माधुर्य आस्वादन कर सकें, इसके लिए हिन्दी अनुवाद की इच्छा भी प्राणों में जगी।

परम भागवत प्राचार्य श्रीव्रजगोपाल दास अग्रवाल मेरे द्वारा सम्पादित सुवृहत् ग्रन्थ श्रीश्री-राधारससुधानिधि की 'रसवर्षिणी' टीका का अति सहज-सरस हिन्दी अनुवाद कर हिन्दीभाषी भक्तजनों के अत्यन्त प्रशंसा-पात्र बन गये थे। यह सोचकर कि ऐसे रसग्रन्थ के वे ही योग्य अनुवादक हैं मैंने उनके आगे इसका प्रस्ताव रखा, जिसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार किया।

श्रीअग्रवाल जैसे हिन्दी के अच्छे लेखक हैं, वैसे ही बंगला का भी उन्हें अच्छा ज्ञान है। सबसे बड़ी बात, वे एक सरल उदारप्राण दैन्य-विनय आदि गुणों से भूषित अनुभवी रसिक भक्त हैं। इन दिनों वे उच्चपद की आकांक्षा, गृहसुख, आत्मीय-स्वजन आदि का संग-सब एक ओर रख निष्ठापूर्वक सपत्नीक वृन्दावन वास कर रहे हैं। उन्हीं ने निःस्वार्थ भाव से बड़े परिश्रम से विलापकुसुमाञ्जलि स्तव का अति सरस हृदयग्राही हिन्दी अनुवाद किया है। इन दो ग्रन्थों के अनुवाद में उन्होंने जिस अटूट धैर्य, कठोर परिश्रम, विपुल प्रतिभा और असाधारण कृतित्व का परिचय दिया है, उसे मैं भाषा में व्यक्त नहीं कर सकता। श्रीकुण्डेश्वरी के श्रीचरणों में मेरी यही कातर प्रार्थना कि वे करुणा कर अनुवादक को अपनी पादपद्म-रसमाधुरी का आस्वादन देकर धन्य करें। हिन्दीभाषी भक्तवृन्द इस टीका का माधुर्य आस्वादन करेंगे और अनुवादक का यह विपुल परिश्रम पूरी तरह सार्थक होगा, ऐसा मेरा विश्वास है। इत्यलम्।

- टीकाकार

हिन्दी रूपान्तरकार का निवेदन

प्राय: डेढ़ साल पहले। पूज्य बाबा अनन्तदास जी श्रीराधारमण-मन्दिर में 'श्रीराधारस-सुधानिधि' के पाठ प्रवचन हेतु पधारे थे। एक दिन मैं उनके दर्शनार्थ उनके आवास पर गया, तो वे बोले-''आपने मुझे परेशानी में डाल दिया।'' मैं चौंका और कुछ भय-आश्चर्य के साथ बोला-''किस प्रकार बाबा?''

उन्होंने थोड़ा हँसकर कहा-''लोग आते हैं और कहते हैं कि जिन्होंने श्रीराधारससुधानिधि का अनुवाद किया है, उनसे आप अपने सभी ग्रन्थों का अनुवाद कराइये।'' बाबा की परेशानी का स्वरूप जानकर हमने राहत की साँस ली! हमारे अनुवाद से पाठक राधारानी के रूप-गुण-लीलादि का रसास्वादन कर सुख पायें, यह सन्तोष की बात है।

बाबा की इच्छा जानकर हमने कहा-''इस बार कोई ऐसा ग्रन्थ दीजिये, जो अपेक्षाकृत छोटा हो।'' हमने प्रस्ताव भी रखा-''प्रेमभक्तिचन्द्रिका दें तो कैसा?'' बाबा बोले-''उस पर तो अन्यत्र काम चल रहा है। आप श्रीदासगोस्वामिपाद की श्रीविलापकुसुमाञ्जलि ले लीजिये।

'विलापकुसुमाञ्जलि'! नाम सुनते ही हमारे सर्वाङ्ग में बिजली-सी कौंध गई। इस वार्ता ने प्राय: महीने भर पहले श्रीदासगोस्वामिचरण ने इस जीवाधम पर अपनी कृपा-करुणा का एक संकेत दिया था, जिसे हम तब नहीं समझे थे। आज ग्रन्थ का नाम सुनते ही संकेत स्पष्ट हुआ। अहैतुकी करुणा की बात सोच मैं सिहर उठा।

ग्रन्थ का अनुवाद प्रस्तुत है। बंगला मातृभाषा नहीं, उसे सीखने स्कूल कालेज भी नहीं गया-ऐसे व्यक्ति का अनुवाद भक्त-पाठकों को सुखी करे, यह अनुवादक की सामर्थ्य का नहीं, एक आश्चर्य का परिचायक है। वह आश्चर्य है : श्रीगुरु-वैष्णव की शक्ति और राधारानी की अनुकम्पा इसका रसास्वादन कर सुहृदय पाठकों को परितोष हुआ, तो हम स्वयं को धन्य समझेंगे।

ब्रज की निकुञ्ज-लीला में युगल सरकार की प्रिय सखी नित्यसिद्ध श्रीरति (तुलसी) मञ्जरी! युगल सरकार की नवीनतम लीला - (महाभाव रसराज दुइ एकरूप) - श्रीमन्महाप्रभु की लीला में वे ही प्रकटी हैं श्रीदासगोस्वामिपाद के रूप में! स्वयं आचरण कर मञ्जरीभाव-साधना की शिक्षा देने के लिये। अपनी स्फूर्ति में (सिद्धस्वरूप के आवेश में) राधा-ठाकुरानी के रूप-गुण-लीलादि का माधुर्य चखते हैं, उनकी प्रेमसेवा का अवसर पाकर अपने को धन्य मानते हैं। स्फूर्ति में विराम आता है, तो विलाप करते हैं-उस प्रेमसेवा को पुन: पाने के लिये, उस माधुरी को पुन: पाने के लिये, उस माधुरी को पुन: भोगने के लिये श्रीजी से प्रार्थना करते हैं। प्रार्थना भरी है दैन्य-आर्ति-उत्कण्ठा से! यह प्रार्थना परिचय देती है उनकी आदर्श साधक-अवस्था का।

स्फूर्ति, स्फुरण-भंग, पुन: स्फुरण-यही धारा अबाध रूप से प्रवाहित है श्रीपाद के मञ्जरी-भावराज्य में। उन्होंने करुणा कर अपना आस्वादन, अपना अनुभव हमारे-जैसे अपात्र-अयोग्य जनों के आगे खोलकर रख दिया है। अब वे इतनी कृपा और करें कि हम लोग उसका स्पर्श कर सकें। गौर दयामय!!

- ब्रजगोपाल दास अग्रवाल
अवकाश प्राप्त प्राचार्य,
कृपा कना,
गौरानगर, वृन्दावन-२८११२१

श्रीराधाष्टमी
२०-९-९६

❋ श्रीश्रीगौर-विधुर्जयति ❋

भूमिका

''चैतन्यचन्द्र मम हृत्कुमुदं विकाश्य हृद्यं विधेहि निज-चिन्तन भृङ्गरङ्गैः।
किञ्च "पराध-तिमिरं निविड़ विधूय, पादामृत सदय पायय दुर्गतं माम्॥''

''गिरिवरतट-कुञ्जे मञ्जु-वृन्दावनेशा, -सरसि च रचयन् श्रीराधिका-कृष्ण-कीर्तिम्।
धृतरति रमणीयं स्तत्पादाब्जं, व्रज दधिफलमश्नन् सर्वकालं वसामि॥''

प्रतिपाद्य विषय :

कलियुग-पावनावतार श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु के प्रियपार्षद विश्ववरेण्य षड़गोस्वामिचरणों में अन्यतम श्रीमत् रघुनाथ दासगोस्वामिपाद का नाम विश्वविख्यात है। उनका त्याग, वैराग्य, भजननिष्ठा, आर्ति, उत्कण्ठा आदि-उनकी ये सभी बातें प्रेमभक्ति के सुमहान् आदर्श के रूप में राग-मार्गीय साधकों की पराश्रद्धा निरन्तर आकर्षित हो रही हैं। यह ''विलापकुसुमाञ्जलि'' उनके रचे स्तवावली नामक स्तव-संग्रहस्थ का एक स्तवविशेष है। श्रीपाद दास गोस्वामी ने अपने विप्रलम्भरस-पूर्ण हृदय-निकुञ्ज से विलाप-कुसुम चयन कर उन्हें अश्रुजल से सिक्त कर अपनी परम अभीष्ट श्रीराधारानी के श्रीचरणों में समर्पित किया है - (यही इस स्तवविशेष की विषयवस्तु है)। सिद्धदेह के प्रगाढ़ अभिनिवेश (आवेश) को लेकर श्रीपाद ने विरहातुर तरुणी सेविका की तरह अपनी प्राणेश्वरी श्रीराधा के साक्षात् दर्शन और सेवा के लिये जो आर्तिभरा विलाप किया है-वही है ''विलापकुसुमाञ्जलि''। ऐसी प्रार्थना-प्रगाढ़ लालसा से भरी और विरह के उद्दाम उच्छ्वास से पूर्ण दैन्यात्मिका प्रार्थना संस्कृतसाहित्य में अत्यन्त दुर्लभ है। उनकी हृदयतटिनी में लालसा की नव-नव तरंगे मानो उद्वेलित हो उठी थीं। क्षणभर के लिये भी वे श्रीराधा का विरह दुःख सहने में असमर्थ थे और उनका अप्रकट-काल (नित्यलीला में प्रविष्ट होने का समय) जितना निकट आ रहा था, वे उत्तरोत्तर उतने ही व्याकुल हो रहे थे-महा प्रेमवती सेविका की तरह श्रीराधा के साक्षात् दर्शन-सेवन के लिये व्याकुल! उनका हृदय श्रीराधा के विशाल विरह-दावानल में दिन पर दिन हो रहा था दग्ध! ज्वालामुखी के समान विरह की वही सुतीव्र अनलराशि विलाप के माध्यम से ''विलापकुसुमाञ्जलि'' में फूट निकली है!! श्रीपाद के चित्त में सेविकारूप में श्रीराधा की प्रेमसेवा के जो सब संकल्प जग रहे थे-वैचित्री, चमत्कारित्व, परिपाटी और व्याकुलतामयी प्रार्थना, श्रीराधा का सौन्दर्य-माधुर्य-प्रेम-अनुराग, श्रीकृष्ण-प्राप्ति और श्रीकृष्ण-सेवा की व्याकुलता-वे ही इस स्तव के प्रतिपाद्य विषय हैं। इसके श्रवण-कीर्तन और चिन्तन से भावुक भक्तमात्र के मन-प्राण श्रीराधा-दास्य के भाव में आविष्ट होंगे तथा श्रीराधा की पादपद्म सेवा पाने के लिये व्याकुल या उत्कण्ठित होंगे-इसमें सन्देह नहीं।

रागानुगा भक्ति :

गौड़ीय वैष्णव रागानुगाभक्ति के अवलम्बन से ही भजन करते है। व्रज की रागात्मिका भक्ति की अनुगत भक्ति को ही रागानुगाभक्ति कहा जाता है।

(७)

''विराजन्तीमभिव्यक्तं व्रजवासिजनादिषु।
रागात्मिकामनुसृता या सा रागानुगोच्यते॥'' (भ० र० सि०-१।२।२७१)

रागात्मिका या रागानुगा भक्ति को समझने के लिये पहले 'राग' को जानना आवश्यक है। जिस (तृष्णा) से इष्ट के लिये परम आविष्टता (आवेश) उत्पन्न होती है, उसी स्वाभाविक प्रेममयी प्रगाढ़ तृष्णा को 'राग' कहते हैं।

''इष्टे स्वारसिकी रागः परमाविष्टता भवेत्।
तन्मयी या भवेद्भक्तिः सात्र रागात्मिकोदिता॥'' (वही-१।२।२७२)

''इष्टे गाढ़ तृष्णा राग-स्वरूपलक्षण।
इष्टे आविष्टता तटस्थ-लक्षण कथन॥'' (चै० च०)

राग और रागानुगा के लक्षण बताते हुए श्रीमत् जीवगोस्वामिपाद ने लिखा है-''तत्र विषयिणः स्वाभाविको विषयसंसर्गेच्छातिशयमयः प्रेमा रागः, यथा चक्षुरादीनां सौन्दर्यादौ; तादृश एवात्र भक्तस्य श्रीभगवत्यपि राग इत्युच्यते।....यस्य पूर्वोक्ते रागविशेषे रुचिरेव जातास्ति न तु रागविशेष एव स्वयं, तस्य तादृशरागसुधाकर-कराभाससमुल्लसितहृदय-स्फटिकमणेः शास्त्रादिश्रुतासु तादृश्या रागात्मिकाया भक्तेः परिपाटीष्वपि रुचिर्जायते। ततस्तदीयं रागं रुच्यानुगच्छन्ती सा रागानुगा तस्यैव प्रवर्तते।'' (भक्तिसन्दर्भ-३१०)

अर्थात् विषयी व्यक्ति की विषय-संसर्ग प्राप्त करने के लिये जो स्वाभाविक अतिशय इच्छामय प्रीति है, उसी का नाम 'राग' है। (जैसे) चक्षु आदि इन्द्रियों का सौन्दर्य आदि विषयों के प्रति स्वाभाविक आकर्षण देखा जाता है-उसमें किसी की प्रेरणा की अपेक्षा नहीं रहती। उसी प्रकार भगवान् के प्रति भक्त की चित्तवृत्ति स्वाभाविकरूप से आकृष्ट होती है, तब उसी अकुण्ठ (प्रबल) पिपासामय चित्तवृत्ति को कहा जाता है 'राग'। जिस (भक्त) की रागविशेष में रुचिमात्र जन्मी है, किन्तु स्वयं रागविशेष का उदय नहीं हुआ, उस भक्त के स्फटिकमणि-जैसे स्वच्छ चित्त में पूर्वोक्त (नित्य पार्षदों का) राग-सुधाकर का किरणाभास पड़ने से चित्त उल्लसित होता है और शास्त्रादि सुनने के फलस्वरूप तादृश रागात्मिका भक्त की सेवा परिपाटी में रुचि उत्पन्न होती है। तात्पर्य यह है कि जिस भक्त का हृदय निर्मल है-काम, क्रोध मात्सर्य आदि भावों से दूषित नहीं है-वह यदि शास्त्र और साधुओं से रागात्मिका व्रजभक्तों की प्रेममयी सेवा-परिपाटी की बात सुनता है, तो उसमें उसकी रुचि उत्पन्न होती है। इस रुचि के साथ रागात्मिका व्रजभक्तों के राग का अनुगमन करने पर उसकी भक्ति को कहा जाता है 'रागानुगा भक्ति'।

यह रुचि प्रथम अवस्था में प्राय किसी में नहीं होती। शास्त्रविधि के आनुगत्य में भजन करते-करते जिनका चित्त व्रज के निर्मल राग में आविष्ट हो गया है-उनके मुँह से व्रजवासियों की रागयुक्त चेष्टा आदि की बात सुनकर वैसे ही भाव को पाने के लिये मन में लोभ जगता है। तब श्रीकृष्ण के नित्यपरिकरों (दास, सखा, माता-पिता, कान्तायें) में से जिसके भाव पर साधक लुब्ध हो, उसी (अनुगम्यमान) परिकर के राग के निकट पहुँचने के लिये साधक जो साधन अपनाता है उसी को 'रागानुगा भजन' कहते हैं। श्रीमन्महाप्रभु और उनके प्रिय

(८)

पार्षद श्रील गोस्वामिपादगण ने व्रज की कान्ताओं के मधुर प्रेम को सर्वोत्कृष्ट माना हैं - उस प्रेम में भी चरम उत्कर्ष है राधारानी की प्रिय किंकरी श्रीरूपमञ्जरी आदि मञ्जरियों के प्रेमभाव का - इसलिये श्रीमन्महाप्रभु और उनके पार्षदों ने इन मञ्जरियों के आनुगत्य में ही भजन करने का उपदेश दिया है। श्रीमत् दासगोस्वामिपाद की यह विलापकुसुमाञ्जलि इसी मञ्जरीभाव के रस-माधुर्य से भरपूर है।

मञ्जरीभाव-साधना :

मञ्जरीभाव-साधना ही श्रीमन्महाप्रभु की अनर्पितचरी करुणा (ऐसी कृपा जो पहले कभी नहीं की गई) का अवदान है। उनके प्रिय पार्षद श्रीश्रीरूप-रघुनाथ आदि गोस्वामिपादगण द्वारा इसका विशेष रूप से प्रचार-प्रसार हुआ है। व्रज की मधुरा रति दो प्रकार की है- (१) सम्भोगेच्छात्मिका (नायिका भाव), (२) तद्भावेच्छात्मिका (सखी भाव)। ''तद्भावेच्छात्मिका तासां भावमाधुर्यकामिता'' (भ० र० सि० - १।२।२९९)- श्रीराधा आदि यूथेश्वरी नायिकाओं के श्रीकृष्ण के साथ मिलन और विलास आदि में सहायता एवं अनुमोदन करने को ही अपना अतिशय सुख मानना और नायक-नायिका को आकर्षित करने वाले भावविशेष की माधुरी की अभिलाषा रखना। इस अभिलाषा से युक्त भक्ति को ही 'तद्भावेच्छात्मिका' या 'सखीभाव' कहा जाता है। इसमें यूथेश्वरी या नायिका के प्रति असीम, अकपट, निरुपाधि प्रीति का उदय होता है। नायिका अपने प्राणों से भी अधिक, यहाँ तक कि आत्मा से भी अधिक प्रेमास्पद लगती है। श्रीराधा की सखियाँ पाँच प्रकार की हैं -

''अस्याः वृन्दावनेश्वर्याः सख्य पञ्चविधाः मताः।
सख्यश्च नित्यसखश्च प्राणसख्यश्च काश्चन।
प्रियसख्यश्च परमप्रेष्ठसख्यश्च विश्रुताः॥'' (उ० नी०)

सखी-धनिष्ठा, विन्ध्या आदि; ये श्रीकृष्ण-स्नेहाधिका हैं। प्रियसखी एवं परमश्रेष्ठ सखी-कुरंगाक्षी आदि तथा ललिता आदि अष्ट सखियाँ; ये समस्नेहा (श्रीराधाकृष्ण में समान प्रेम रखने वाली) हैं। प्राणसखी एवं नित्यसखी-कस्तूरी, मणिमञ्जरी आदि; ये श्रीराधास्नेहाधिका हैं-ये ही 'मञ्जरी' नाम से जानी जाती हैं। ये सेवाप्राण सेवामय विग्रह होने के कारण सखी-कक्षा में रहकर भी सेवा में ही निष्ठा रखने के कारण श्रीश्रीराधामाधव की रहस्यमय निकुञ्ज-सेवा में ही समधिक प्रीतिपरायण हैं। इन्हीं के आनुगत्य में गौड़ीय वैष्णवों के सरस-मधुर रागानुगा भजन की रीति बताई गई है।

''श्रीरूपमञ्जरी सार, श्रीरतिमञ्जरी आर, लवंगमञ्जरी मञ्जुलाली।
श्रीरसमञ्जरी संगे, कस्तूरिका आदि रंगे, प्रेमसेवा करि कुतूहली॥
ए सवा अनुगा हैया, प्रेमसेवा निबो चाइया, इंगिते बुझिबो सब काज।
रूपे गुणे डगमगि, सदा हबो अनुरागी, बसति करिबो सखीमाझ॥
वृन्दावने दुइजन, चतुर्दिके सखीगण, समय बुझिया रससुखे।
सखीर इंगित हबे, चामर ढुलाबो कबे, ताम्बूल जोगाबो चाँदमुखे॥
युगल-चरण सेबि, निरन्तर एइ भाबि, अनुरागी रहिबो सदाय।
साधने भाबिबो जाहा, सिद्धदेहे पाबो ताहा, रागपथेर एइ से उपाय॥'' (प्रे० भ० च०)

(९)

गौड़ीय वैष्णव-साधक श्रीगुरु-चरणाश्रय के पश्चात् श्रीगुरुसिद्धप्रणाली में अपने मञ्जरी स्वरूप या सिद्धदेह का परिचय प्राप्त करता है। श्रीमत् जीवगोस्वामिपाद के मत में वह सिद्धदेह भगवद्धाम में भगवत् सेवा के योग्य भगवान् की ज्योति की अंशभूत अनन्त चिन्मयी मूर्तियों में से एक होती है। श्रीगुरुदेव अपने ध्यान से यह जानकर कि भगवान् भगवल्लोक में स्थित उन अनन्त मूर्तियों में से किस मूर्ति के रूप में साधक को अङ्गीकार करेंगे उसी मूर्ति को साधक की सिद्धदेह निर्दिष्ट करते हैं। इसमें किसी का कल्पित कुछ नहीं। गुरुदेव भगवान् की करुणाघन मूर्ति हैं। उनके भागवती-शक्ति-परिभावित (भरे, आविष्ट) चित्त में, ध्यान या स्मरण में स्वत: समुदित (स्फूर्त) साधक की सिद्धदेह को मिथ्या या काल्पनिक समझना नास्तिकता है, भक्ति-मार्ग में प्रचण्ड हानिकर अपराध विशेष है। साधक को उसी सिद्धदेह में अभिमान स्थापित कर सेवा-चिन्तन करना होता है।

''बाह्ये अन्तर इहार दुइ तो साधन।
बाह्य-साधकदेहे करे श्रवण-कीर्तन॥
मने-निज सिद्धदेह करिया भावन।
रात्रिदिन करे व्रजे कृष्णेर सेवन॥'' (चै० च०)

परम अंतरंग मञ्जरीभाव की साधना में साक्षात् श्रीश्रीराधाकृष्ण की प्रेम सेवा प्राप्त करने का साधन-भाव-आनुगत्यपूर्ण निर्मल रागानुगा साधन-दो प्रकार का है। बाहरी तौर पर अर्थात् यथावस्थित साधकदेह से श्रवण-कीर्तन (उपलक्षण से अर्चना, वन्दना) आदि अपने भाव के अनुरूप किया जाता है। आंतरिक (भीतरी) साधन के रूप में श्रीगुरुदेव द्वारा उपदिष्ट (निर्दिष्ट) सिद्धदेह में अभिमान रखते हुए मन से श्रीश्रीराधामाधव की अष्टकालीन प्रेमसेवा का चिन्तन किया जाता है। साधक की योग्यता के अनुसार ससखी (सखियों-सहित) श्रीश्रीराधामाधव के रूप-गुण-लीला आदि के आस्वादन के साथ-साथ मानसिक सेवा का स्मरण-यह आंतरिक साधन में मुख्यतम है। साधक को इस बात की ओर विशेष दृष्टि रखनी है कि स्मरण मात्र नियम रक्षा के लिये यंत्रवत् न हो-इस बात की ओर लक्ष्य रखना आवश्यक है कि आंतरिक साधना में स्मरण के समय स्मरणीय श्रीश्रीराधामाधव के रूप-गुण-लीला आदि के माधुर्य का आस्वादन अन्तरात्मा को प्राप्त हो। स्मरणीय भगवान् की साक्षात् सेवा प्राप्ति के लिये उत्कण्ठा या आर्ति क्रमश: बढ़े-इस ओर भी दृष्टि रहनी चाहिये।

जातरति साधक के अन्त:करण में सिद्धदेह की स्फूर्ति स्वत: हुआ करती है। उधर अजातरति साधक को सिद्धदेह का चिन्तन करके ही मानस-सेवा करनी होती है। बाह्यसाधन श्रवण-कीर्तन आदि द्वारा साधक के चित्त से कामना-वासना आदि मल जैसे-जैसे दूर होते हैं, उसी के अनुरूप अस्पष्ट, ईषत् स्पष्ट, सुस्पष्ट रूप से सिद्धदेह की स्फूर्ति और मानस सेवा की सुचारुता आती है। प्रयत्नशील साधक नश्वर देह-दैहिक आदि का अभिमान त्यागकर सिद्धस्वरूप में दृढ़ अभिमान पोषण करने की चेष्टा किया करते हैं। ऋषि-प्रवर्तित शास्त्रों से भी अनुरूप प्रेरणा मिलती है।

''आत्मानं चिन्तयेत्तत्र तासां मध्ये मनोरमाम्।
रूप-यौवन - सम्पन्नां किशोरीं प्रमदाकृतिम्॥
सखीनां सङ्गिनीरूपामात्मानं वासनामयीम्।
आज्ञासेवापरां तद्वत् रत्नालंकार-भूषिताम्॥'' (सनत्कुमार संहिता)

(१०)

रागानुगीय साधक वृन्दावन में श्रीकृष्णकान्ता गोपिकाओं में स्वयं को एक रूप-यौवन-सम्पन्न किशोरी प्रमदा के रूप में चिन्तन करें! श्रीललिता, विशाखा, श्रीरूपमञ्जरी आदि सखियों की संगिनी, उन लोगों की आज्ञानुरूप श्रीश्रीराधामाधव की सेवा में परायण, श्रीराधा के प्रसादी वस्त्राभूषणों से भूषित-इस रूप में अपनी वासनामयी (भावनामयी) मूर्ति का चिन्तन करें। यहाँ 'चिन्तयेत्' शब्द का तात्पर्य यही है कि साधक नित्यसिद्ध सखियों के समान भाव-रूप आदि से युक्त स्वरूप में अपने आत्मा का ईक्षण करें (ऐसा बोध हो कि साधक अपने मजंरीस्वरूप को देख रहा है और वह मञ्जरीस्वरूप नित्यसिद्ध सखी-जैसे भाव-रूपादि से सम्पन्न है)। अर्थात् इन भाव-रूप आदि से युक्त जो देह है-वह देह ही मैं हूँ, ऐसा दृढ़ अभिमान बनाये रखें। यह साधक का साधन-प्रयास है; वस्तुतः भगवान् की कृपा से स्वप्रकाश सिद्धदेह ही उस प्रकार के भगवत्सेवोन्मुख साधक के हृदय में स्वयं ही समुदित होती हैं और साधक को स्फूर्ति प्रदान करती है। ''यद् यद्धिया त उरुगाय विभावयन्ति तत्तद्वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय'' (भा०-३/९/१)-ब्रह्माजी ने भगवानृ से कहा-''हे भगवान! भक्तजन आपकी सेवा के लिये उत्सुक होकर भक्ति के अनुकूल जैसी-जैसी देह का चिन्तन करते हैं, उन उन साधुओं पर अनुग्रह करने के लिये और उनकी चाही गई देहों द्वारा नित्य सेवा ग्रहण करने के लिये उन्हें प्रकृष्ट रूप से वैसे-वैसे शरीर दिया करते हो।'' साधक साधना की सिद्धि पर योगमाया की सहायता से अन्तश्चिन्तित सिद्धदेह से लीलाराज्य में अपनी चाही गई श्रीश्रीयुगलकिशोर की साक्षात् प्रेमसेवा पाकर धन्य होते हैं।

श्रीपाद रघुनाथ और मञ्जरीभाव :

श्रीमद रघुनाथ दास गोस्वामिपाद व्रज की नित्यसिद्ध 'रतिमञ्जरी' या 'तुलसीमञ्जरी' हैं। श्रीश्रीगौर-गोविन्दार्चन-पद्धति में श्रीमन्महाप्रभु के प्रिय पार्षद श्रील गोपालगुरु गोस्वामिपाद ने लिखा है-

''रत्यम्बुजाख्यः कुञ्जोऽस्तीन्दुलेखा-कुञ्ज-दक्षिणे।
तत्रैव तिष्ठति सदा सुरूपा रतिमञ्जरी॥
तारावली दुकूलेयं तड़ित्तुल्य - तनुच्छविः।
दक्षिणा मृद्विका ख्याता तुलसीति वदन्ती याम्॥
अस्यो वयो द्विमासाढ्यहायनस्तु त्रयोदश।
पितास्या वृषभः कान्तो दिव्याख्यः शारदा प्रसूः॥
श्वश्रूश्च सन्निका प्रोक्ता चामरसेवनान्विता।
इयं हि रघुनाथाख्यं प्राप्ता गौररसे कलौ॥'' (पद्धतित्रयम्)

''इन्दुलेखा के कुञ्ज के दक्षिण में 'रत्यम्बुज' नामक कुञ्ज विद्यमान है। वहाँ सुरूपा रतिमञ्जरी सर्वदा निवास करती हैं। उनकी विद्युत-तुल्य अङ्गकान्ति है और तारावली युक्त वस्त्र। दक्षिणा (अनुकूल) मृद्वी (मृदु) स्वभाव। पुकार या, बुलाने का नाम 'तुलसीमञ्जरी'। वयस १३ वर्ष २ माह। पिता का नाम 'वृषभ',

---

✦ हमने विलापकुसुमाञ्जलि में 'तुलसीमञ्जरी' नाम का प्रयोग किया है, कारण-राधारानी और सखी मञ्जरियों के बीच उनका यही नाम प्रिय है।

स्वामी का नाम 'दिव्य', माता 'शारदा', सास 'सन्निका'। सेवा चँवर-वीजन। ये ही श्रीगौर अवतार में 'रघुनाथदास' नाम से अवतीर्ण हैं। '' स्वयं भजन कर मञ्जरी-भाव-साधना का आदर्श विश्व में प्रचार करने के लिये श्रीमन्महाप्रभु के साथ उतर कर आये हैं। उन्होंने एक ओर यथावस्थित देह से जैसे प्रेमभक्ति, त्याग, वैराग्य, भजननिष्ठा का आदर्श विश्व में स्थापित किया है, दूसरी ओर उसी प्रकार अव्यभिचारी सिद्धस्वरूप या मञ्जरीस्वरूप के अभिमान में सतत आविष्ट रहकर प्रकाशित किया है-श्रीराधा की साक्षात् सेवा पाने के लिये उपयोगी सुविपुल आर्ति-उत्कण्ठा का आदर्श। अनन्त गुणों की खान श्रीरघुनाथ का असामान्य वैराग्य, अलौकिक प्रेमभक्ति का आचरण और अटूट सिद्धस्वरूपावेश आध्यात्म्य जगत् के भजन-इतिहास में एक अभिनव व्यापार है। नीलाचल-वास के समय श्रीमन्महाप्रभु ने उनका प्रेमभरा अलौकिक वैराग्य देखकर प्रसन्न-सन्तुष्ट होकर उन्हें अपना अतिप्रिय गुञ्जाहार और गोवर्धन-शिला दी। उन्हें प्राप्त करते ही श्रीरघुनाथ प्रभु का निगूढ़ अभिप्राय समझ गये-''शिला दिया गोंसाइ मोरे समर्पिला गोवर्धने। गुञ्जामाला दिया दिला राधिका-चरणे।'' श्रीमन्महाप्रभु के अप्रकट होने के पश्चात् जब श्रीपाद अपने प्रभुदत्त स्थान श्रीगिरिराज-तटवर्ती श्रीराधाकुण्ड पर वास कर रहे थे, तब श्रीमन्महाप्रभु की कृपा से दिव्यलीला की स्मृति ने उनके चित्त में समुदित होकर उन्हें अत्यन्त भावाकुल कर डाला था। उन्होंने 'स्तवावली' ग्रन्थ का प्रणयन श्रीराधाकुण्ड तट पर ही किया। इसके स्तव-समूह में श्रीपाद का भावोच्छ्वास निर्मल निर्झर की तरह प्रवाहित हो मानो अनन्त रससिन्धु की ओर अविराम दौड़ रहा है!! साहित्य की दृष्टि से भी ऐसा प्रसादगुम्फित, माधुर्यमण्डित, भावगम्भीर, कमनीय काव्यकला-लालित्य विश्व-साहित्य में अत्यन्त दुर्लभ है। श्रीपाद की काव्यरस-तटिनी (नदी) नव-नव सौन्दर्यमाधुर्य के तरंग-भंग से आकुल, नित्य-नूतन भाव-चन्द्रमा के कोमल किरणस्पर्श से आलोकित-उच्छ्वसित होकर एक साथ प्रेमी और भावुक कवि दोनों ही के लिये आस्वाद्य बनी है। किन्तु उनके स्वत:प्रणोदित (प्रेरित) हृदयावेग से समुच्छ्वसित काव्य-मन्दाकिनी (आकाश गंगा) में विरह-मिलन का जो अपूर्व ज्वार-भाटा है, वह केवल रागमार्गीय रसिकभक्तों द्वारा ही दृश्य और आस्वाद्य है। विलापकुसुमाञ्जलि में इस भाव की ही प्रचुरता देखने को मिलती है। इसमें श्रीपाद के मञ्जरीभाव का अटूट आवेश सत्य ही अत्यन्त चमत्कारपूर्ण है। मञ्जरीभाव-साधना का एक ऐसा उच्च आदर्श है कि इसके श्रवण-कीर्तन-चिन्तन से शत-शत मञ्जरीभाव-साधक इस सुमेरु-जैसे सुमहान् आदर्श से अनुप्राणित होकर अपनी साधना में धन्य होंगे, सन्देह नहीं।

ग्रन्थ-सम्पादन का हेतु :

श्रीराधाकुण्ड और श्रीवृन्दावन-वासी वैष्णवों के कृपादेश से मैंने, अति अयोग्य-अपात्र होते हुए भी, उन्हें 'विलापकुसुमाञ्जलि' स्तव का पाठ और व्याख्या कर कई बार सुनाया था। इससे वैष्णवों के हृदय में यह वासना जगी कि इस स्तव के अनुरूप एक विस्तृत व्याख्यायुक्त संस्करण प्रकाशित हो। उन सबका कृपादेश पालन करने के लिये मैंने पंगु के गिरिलंघन-प्रयास की तरह इस दुरूह कार्य में हाथ डाला और उनकी कृपा-प्रेरणा से परमपूज्य श्रीपद्म रघुनाथदास गोस्वामिपाद के श्रीपादपद्म स्मरण कर उनकी भजनस्थली एवं विलापकुसुमाञ्जलि की रचनास्थली श्रीश्रीराधाकुण्ड-तट पर इसके अन्वय-अनुवाद और 'परिमलकणा' नामक तात्पर्य-व्याख्या की पांडुलिपि प्रस्तुत की। श्रीपाद रघुनाथ के प्राणसर्वस्व कलियुग-पावनावतार श्रीश्रीगौरांग

(१२)

महाप्रभु के आविर्भाव-पञ्चशतवर्ष पूर्ति-उत्सव के उपचार के रूप में समर्पण हेतु उन्हीं की करुणा का प्रकाश-श्रीश्रीदास गोस्वामिपाद की भजनसम्पदा यह 'विलापकुसुमाञ्जलि'' ग्रन्थाकार में प्रकाशित हुआ। इससे पूर्व श्रीश्रील प्रबोधानन्द सरस्वतिपाद-प्रणीत श्रीश्रीराधारससुधानिधि की 'रसवर्षिणी' नामक तात्पर्यव्याख्या मुझ जैसे अयोग्याधम द्वारा सम्पादित होकर श्रीमन्महाप्रभु के आविर्भाव-पञ्चशतवर्ष-पूर्ति उत्सव के नैवेद्यरूप में उनके श्रीचरणों में समर्पित हुई थी। उसे पढ़कर कृपामय वैष्णववृन्द और सुधी भक्तवृन्द ने परमानन्द प्राप्तकर इस दीन को कृपाशीर्वाद दिया है। उनके कृपाशीर्वाद के सम्बल से और उन्हीं की प्रेरणा से विलापकुसुमाञ्जलि की 'परिमलकणा' नामक तात्पर्य व्याख्या प्रकाशित हुई। जैसे श्रीराधारससुधानिधि में श्रीराधा की महिमा का पक्ष मुख्यरूप से प्रदर्शित हुआ है, वैसे ही श्रीविलापकुसुमाञ्जलि में प्रेमिक के प्राणों की आर्ति, विरहोत्कण्ठा और श्रीराधा की सेवा-परिपाटी-ये पक्ष मुख्य रूप से वर्णित हैं। इन दोनों ग्रन्थों का आस्वादन कर भक्तसाधक श्रीश्रीयुगल-उपासना के बहुत मूल्यवान् तथ्यों से अवगत हो सकेंगे, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं।

कृतज्ञता ज्ञापन :

परमपूज्य नित्यधामगत श्रील आनन्दगोपाल गोस्वामी महोदय जब श्रीवृन्दावन में विलापकुसुमाञ्जलिस्तव का पाठ और व्याख्या कर रहे थे, तो किन्हीं भक्त ने पाठ के नोट संक्षिप्त-रूप से लिपिबद्ध कर लिये थे। उनकी एक प्रति मलयालम में लिखी श्रील कृष्णदास बाबाजी महाराज (मद्रासीबाबा) के पास श्रीराधाकुण्ड में थी। उनसे वह प्रति प्राप्तकर मैंने इस तात्पर्य-व्याख्या में यथासम्भव उसी व्याख्या-धारा का अनुसरण किया है। प्रत्येक श्लोक की परिमलकणा व्याख्या के अन्त में उस श्लोक का जो पद्यानुवाद दिया गया है, वह बहुत पहले श्रीयुक्त रसिकचन्द्र दास महाशय द्वारा किया गया था और भक्तिप्रभा-कार्यालय हुगली से प्रकाशित हुआ था। बंगाब्द १३७९ में श्रीकुण्डाश्रयी नित्यधामगत श्रील तुलसीदास अधिकारीजी द्वारा वह वृन्दावन से पुनः प्रकाशित कराया गया। उन लोगों की कृपा से वह मुझे प्राप्त हुआ है। उन सभी के प्रति हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। परम स्नेहपात्र श्रीमान् हरेकृष्णदास ने बहुत दिन श्रीवृन्दावन में रहकर श्रीग्रन्थ के प्रूफ-संशोधन आदि कार्य सुचारुरूप से सम्पन्न किये हैं। श्रीश्रीकुण्डेश्वरी और श्रीपाद दास गोस्वामी के चरणों में कामना करता हूँ कि उनका भजन सफल हो। पूरी सावधानी बरतने पर भी श्रीग्रन्थ में कुछ भूल-त्रुटियाँ रह गईं, दयालु पाठक-पाठिकायें उनका संशोधन कर ग्रन्थ की विषयवस्तु का आस्वादन करेंगे, तो इस दीन का क्षुद्र प्रयास सार्थक होगा। इत्यलम्।

-दीन सम्पादक

श्रीश्रीविलापकुसुमाञ्जलि

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
मंगलाचरण	१	नूपूर, बिछुए और काञ्ची	११४
श्रीगुरु का कृपाशीष	९	हरिरंगद अङ्गद	११७
बाह्यावेश में श्रीगुरु-वन्दना	१३	कण्ठाभरण	१२१
इष्ट-वन्दना	१६	कौस्तुभ-मित्र स्यमन्तक	१२४
शिक्षागुरु की वन्दना	२१	स्वर्णडोर से कटिबन्धन	१२८
उत्कट विरहानल	२४	स्वर्णतारयुक्त मुक्ता-लोलक	१३१
विरह-दु:ख का दुस्तर सिन्धु	३२	नवरत्न-माला का परिणय	१३४
विरह-विष की ज्वाला	३६	चक्रशलाका धारण	१३५
विरह-दावानल	३९	चिबुक पर कस्तूरीबिन्दु	१४०
उत्तमांग की सार्थकता	४२	दशनरञ्जन-सेवा	१४३
अमृतसिन्धु का रस	४६	उत्कृष्ट खदिर-राग	१४६
ज्योत्स्नाभिसारिका श्रीराधा	५०	कज्जल से नेत्र-पूजा	१४९
श्रीराधानिष्ठा का हेतु	५४	अलता-रञ्जन	१५३
श्रीराधाकुण्ड की महिमा	५९	मधुर मल्लिकामाला	१५७
श्रीराधा का वरदास्य	६३	सूर्यदेव को अर्घ्य	१६१
सौभाग्य-मुद्रा	६८	नन्दीश्वर को प्रेषण	१६४
बाह्यागार-सेवा	७३	श्रीराधा का कुशल प्रश्न	१६६
मिट्टी और जलसेवा	७४	श्रीकृष्णाधरामृत लाना	१६९
दन्तधावन और तैलाभ्यंग-सेवा	७७	सखियों सहित श्रीराधा का भोजन	१७२
श्रीराधा का स्नान	८१	मधुर जल-सेवा	१७५
श्रीअङ्ग पौंछना और वस्त्र पहनाना	८४	धूपदान और बीजन-सेवा	१७८
वेणी-बन्धन	८७	श्रेष्ठ ताम्बूल-अर्पण	१८१
तिलक-रचना और कुंकुम-चर्चा	९१	श्रीराधा की आरति	१८३
माँग में सिन्दूर रेखा	९४	मनोहर केलितल्प	१८७
अरुणरस के बिन्दु	९७	श्रीपादपद्म-संवाहन	१९०
श्रेष्ठ कर्णभूषण	१०१	श्रीराधा की भक्तिलता	१९३
कञ्चुकी पहनाना	१०४	अभिलषित सुधा	१९६
सुचारु मुक्तामाला	१०७	नन्दालय गमन	१९९
नीली चूड़ियाँ और रत्न अङ्गूठियाँ	११०	नन्दालय-गमन-प्रकार	२०१

(१४)

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
नन्दीश्वर-शोभा	२०४	मुखरा के रोषवाक्य	२७४
धनिष्ठा के प्रणय का आस्वादन	२०७	स्मितकर्पूरवासित वाक्यामृत	२७६
पाकशाला में रसास्वादन	२१०	कुसुम चयन लीला	२७८
रस सञ्चय-अर्पण	२१३	श्रीराधा का मानभञ्जन	२८१
मधुररसवती का मुखकमल	२१५	श्रीराधा का राज्याभिषेक	२८३
श्रीकृष्ण की वनगमन की तैयारी	२१८	माता-पिता का लालन	२८८
श्रीराधा के भोजन-दर्शन का आनन्द	२२१	दिव्य गायन-शिक्षा	२९०
नववधू की तरह लालित	२२४	दिव्य रसकाव्य-कदम्ब	२९३
श्रीराधा का अभिसार	२२७	वीणा वादन-शिक्षा	२९६
पुष्पालंकारों से सज्जित	२३२	प्रियहार-गुम्फन	२९८
अभिसार-सज्जा	२३५	चर्वित ताम्बूल प्रदान	३००
मदनानन्दद कुञ्ज	२३८	प्रिय मधुर काञ्ची	३०२
श्रीपादपद्म-संवाहन	२४१	श्रीराधा की भर्त्सना	३०४
दानलीला में दर्पितनेत्रा	२४४	पूर्णतम शरणागति	३०७
राधादासी का दर्प	२४८	श्रीराधाकुण्ड पर संस्थिति	३१०
श्रीराधाकुण्ड में जलक्रीड़ा	२५१	श्रीकुण्ड से प्रार्थना	३१२
सुखसागर का उच्छ्वास	२५५	श्रीविशाखा से प्रार्थना	३१४
वेश-रचना	२५७	श्रीकृष्ण से प्रार्थना	३१६
गूढ़ हास्य-वंदना	२६०	नेत्रदान	३१९
मधुर मदनगान	२६२	आशाबन्ध	३२०
मुरली संगोपन	२६६	श्रीकुण्ड-सेवन का फल	३२३
मधुरादपि मधुर इष्टगोष्ठी	२६८	विलापकुसुमाञ्जलि-समर्पण	३२५
लीलाभिसार-सेवा	२७१		

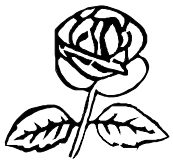

श्रीश्रीविलापकुसुमाञ्जलि-श्लोक-सूची

श्लोक	श्लोकांक	पृष्ठांक	श्लोक	श्लोकांक	पृष्ठांक
अङ्गदेन तव	३७	१३४	दत्तः प्रलम्बरिपुणा	३४	१२४
अत्युत्कटेन	७	२४	दशनांस्ते	४०	१४३
अति सुललितलाक्षा	१७	६८	देवि ते चरण-	१०	३९
अपि वत रसवत्याः	५८	१९९	देवि दुःखकूल	८	३२
अपि सुमुखि कदाहं	८१	२६८	देवि भाषितपीयूषं	८४	२७६
अमृताब्धि-रसप्रायै	१२	४६	नाना पुष्पैः	७१	२३८
अयि प्रणयशालिनि	१०४	३२४	नानाविधैरमृतसार-	४९	१७२
अयि विपिनमटन्तं	६५	२१८	नानाविधैः पृथुल-	८६	२८१
अयि विमलजलानां	२१	८१	नानामणिप्रकर-	२९	१०७
आयातोद्यत् कमल-	८२	२७१	निज कुण्डतटीकुञ्जे	९१	२९६
आरात्रिकेण भवतीं	५३	१८३	निविड़ मदनयुद्धे	९४	३०२
आलिकुलेन	५४	१८७	नीतान्न-मद्विधललाट-	४७	१६६
आलिंगनेन	६७	२२४	पादाब्जयोस्तव	१६	६३
आशाभरैरमृतसिन्धु	१०२	३२०	पादाम्भोजे	३१	११४
उत्खादिरेण	४१	१४६	पानाय वारि	५०	१७५
कदा ते मृग-	३९	१४०	पानीयां चीनवस्त्रैः	२२	८४
कनकगुणितमुच्चैः	३६	१३१	पार्श्वद्वये ललितयाथ	५९	२०१
कर्णयोरुपरिशला-	३८	१३६	प्रक्षाल्य पदकमलंकृतः	२०	७७
कर्पूरपूरपरि-	५२	१८१	प्रक्षाल्य पादकमलं तद्-	२३	८७
कलावति नतांशयोः	४४	१५७	प्रक्षाल्य पदकमले	६२	२१०
कुसुमचयन-खेलां	८५	२७८	प्रणालीं किलालैः	१८	७३
कृष्णवक्त्राम्बुजो-	४८	१६९	प्रभुरपि यदुनन्दनः	४	१३
केनापि दोषलवमात्र-	९५	३०४	प्रातः शुधांशुमिलितां	१९	७४
क्षणमपि तव संगं	९९	३१४	प्रान्तद्वये परिविराजित	३५	१२८
गोवर्द्धनाद्रि-निकटे	७३	२४४	प्राप्तां निजप्रणयिनी	६१	२०७
गोष्ठेन्द्रपुत्र-	२७	१०१	प्रीत्या मंगलगीतनृत्य	८७	२८३
गोष्ठेशयाथ	६६	२२१	विहारैस्त्रुटितं	९२	२९८
जित्वा पाशकखेलायां	८०	२६५	वैराग्ययुग् भक्तिरसं	६	२१
त्वञ्चेत् कृपामयि	१०३	३३२	व्रजपुरपतिराज्ञा	४६	१६४
त्वं रूपमञ्जरि	१	१	व्रजेन्द्रवसतिस्थले	३	९
त्वदलोकन कालाहि	९	३६	भोजनस्य समये	५१	१७८
तव तनुवरगन्धा-	७४	२४८	भोजनावसरे देवि	५७	१९६
तवैवास्मि तवैवास्मि	९६	३०७	भोजने गुरुसभासु	६४	१९६
तवोदगीर्णं भोज्यं	५६	१९३	भ्रात्रा गोऽयुतमत्र	८८	२८८

श्लोक	श्लोकांक	पृष्ठांक	श्लोक	श्लोकांक	पृष्ठांक
मणिचयखचिताभि-	३०	११०	सम्बाहयिष्यति पदौ	५५	१९०
माधवं मदनकेलि	७८	२६०	सरोवरलसत्तटे	७६	२५५
माधवाय नतवक्त्रं	६३	२१३	साक तया सखि	६९	२३२
यत् प्रान्तदेश	४२	१४९	सिन्दूररेखा सीमन्ते	२५	९४
यदवधि मम	१५	५४	सुभगमृगमदेन	२४	९१
यदा तव सरोवरं	१४	५९	सुललित निजवाह्वा	७९	२६२
यस्यांक-रंजितशिरा	४३	१५३	सूर्याय सूर्यमणिनिर्मित	४५	१६१
याचिता ललितया	९०	२६३	स्वकुण्डं तव लोलाक्षि	९७	३०९
या ते कञ्चुलिरस्त्र	२८	१०४	स्वप्नेऽपि किं सुमुखि	११	४२
यो मां दुस्तरगेह-	५	१६	स्वमुखान्मन्मुखे देवि	९३	३००
रासोत्सवे य इह	३३	२१	स्थलकमलिनियुक्तं	२	६
ललिततर मृणाली	३२	११७	स्फीत स्वान्तं कयाचित्	७७	२५७
लक्ष्मीर्यदङ्घ्रि	१०१	३१९	हन्त देवि तिलकस्य	२६	९७
लज्जयालिपुरतः	८९	२९०	हम्बारवैरिह	६०	२०४
शशकभृदभिसारे	१३	५०	हा नप्त्रि	८३	२७४
श्रीरूपमञ्जरि-करार्चिते	७२	२४१	हा नाथ गोकुल	१००	३१६
श्रुत्वा विचक्षणमुखात्	७०	२३५	हा रूपमञ्जरि	६८	२२७
समन्तादुन्मत्तभ्रमर	७५	२५१	हे श्रीसरोवर	९८	३१२

यस्याः कान्ततनूल्लसत्-परिमलेनाकृष्ट उच्चैः स्फुरद्-
गोपीवृन्द - मुखारविन्दमधु तत्प्रीत्या धयन्नप्यदः।
मुञ्चन् वर्त्मनि वंभ्रमीति मदतो गोविन्दभृंगः स तां
वृन्दारण्य-वरेण्य-कल्पलतिकां राधां कदाहं भजे॥

श्रीमत्कुण्ड-तटीकुडुंग भवने क्रीड़ाकलानां गुरुं
तल्पे मञ्जुल-मल्लि कोमल-दलैः क्लप्ते मूहुर्माधवम्।
जित्वा मानिनमक्षसंगरविधौ स्मित्वा दृगन्तोत्सवै-
युञ्जानां हसितुं सखीः परमहो राधां कदाहं भजे॥

प्राणेभ्योऽप्यधिकप्रिया मुररिपोर्या हन्त यस्या अपि
स्वीय प्राण-परार्द्धतोऽपि दयितास्तत्पादरेणोः कणाः।
धन्यां तां जगतीत्रये परिलसज्जङ्घाल कीर्तिं हरेः
प्रेष्ठावर्ग शिरोऽग्र-भूषणमणिं राधां कदाहं भजे॥

❋ श्रीश्रीगौरविधुर्जयति ❋

श्रीश्रील रघुनाथदास गोस्वामिपाद-विरचितः

श्रीश्रीविलापकुसुमाञ्जलिः

(प्रार्थना स्तोत्रम्)

त्वं रूपमञ्जरि सखि प्रथिता पुरेऽस्मिन्, पुंसः परस्य वदनं नहि पश्यसीति।
विम्बाधरे क्षतमनागत-भर्तृकाया, यत्ते व्यधायि किमुतच्छुकपुङ्गवेन?१॥

अन्वय-सखि! रूपमञ्जरि! त्वं अस्मिन् पुरे (व्रजे) प्रथिता (सर्वजनानुभूता सती) परस्य पुंसः (पुरुषस्य) वदनं हि (यतो) न पश्यसि इति (हेतोः) अनागत भर्तृकायाः ते (तव) बिम्बाधरे यत् क्षतं (व्रणं) तत् किम् उ (भोः) शुकपुङ्गवेन (शुकश्रेष्ठेन) व्यधायि (अक्रियत) ?१॥

अनुवाद-हे सखि! रूपमञ्जरि! तुम इस व्रजमण्डल में सती के रूप में विख्यात हो। तुम कभी परपुरुष का मुख नहीं देखतीं। इधर भर्ता की अनुपस्थिति में भी तुम्हारे बिम्बाधरों पर क्षत देख रही हूँ; यह क्या किसी शुकश्रेष्ठ का काम है?१॥

मंगलाचरण

परिमलकणा व्याख्या - यह 'विलापकुसुमाञ्जलि' श्रीमत् रघुनाथदास गोस्वामिपाद की अन्तिम रचना है, ऐसा वैष्णवगवेषकों का मत है। नित्यलीला-प्रवेश से पूर्व श्रीराधारानी के विरह में श्रीपाद की कैसी अलौकिक मानसिक अवस्था हो गई थी, इस बात का किंचित् अनुमान इस स्तव को पढ़कर होता है। श्रीकुण्ड-तट पर लीलारससिन्धु में निमग्न श्रीपाद ने प्रगाढ़ स्वरूपावेश में देह-दैहिकादि भूलकर श्रीमती की प्रेमसेवा का अधिकार प्राप्त न कर पाने के कारण दिन-रात स्वामिनी की विरहिणी सेविका की तरह जो कातर क्रन्दन किया था-वही 'विलापकुसुमाञ्जलि' है। इसका प्रत्येक श्लोक श्रीपाद के विरह-तप्त अश्रुजल से गठित है। आर्ति के मकरन्द से भरपूर है प्रत्येक विलाप-कुसुम। श्रीपाद ने अपनी मानसिक अवस्था व्यक्त करते हुए स्वयं अपने श्रीराधा-शतनाम-स्तोत्र के प्रारम्भ में लिखा है-

''अवीक्ष्यात्मेश्वरीं काचिद्वृन्दावनमहेश्वरीम्।
तत्पदाम्भोजमात्रैकगतिर्दास्यति कातरा॥
पतिता तत्-सरस्तीरे रुदत्यार्त्तरवाकुलम्।
तच्छ्रीवक्त्रेक्षणावाप्त्यै नामान्येतानि सञ्जगौ॥''

अर्थात् ''श्रीराधा के चरण ही जिसका एकमात्र आश्रय है-ऐसी कोई एक दासी अपनी प्राणेश्वरी को न देख पाकर उन्हीं के कुण्ड-तीर पर पड़कर उनके श्रीमुखचन्द्र-दर्शन की लालसा में अत्यन्त कातर हुई थी और उसने आर्तस्वर में प्रचुर क्रन्दन करते हुए यह सब नामावलियाँ गाई थीं।'' भजन-सम्पति शून्य जीव के

लिये इस निदारुण विरह की बात की कल्पना करना भी सम्भव नहीं। अपनी अभीष्ट सेवा की अप्राप्ति के लिये दु:ख या आर्ति तो है ही, ऊपर से श्रीरूप-सनातन की विरह-ज्वाला ने श्रीपाद के हृदय को क्षत-विक्षत कर डाला है! ''कृष्णभक्त विरह बिना दु:ख नाहि आर'' (चै०चै०)। श्रीपाद के स्वनियमदशक के एक श्लोक में इस विषय का कुछ आभास मिलता है।

''परित्यक्त: प्रेयोजन-समुदयैर्वाढ़मसुधीर्दुरन्धो नीरन्ध्रं कदनभरवाद्धौ निपतित:।
तृणं दन्तैर्दष्ट्वा चटुभिरभियाचेऽद्य कृपया स्वयं श्रीगान्धर्वा स्वपदनलिनान्त नयतु माम्॥''

अर्थात् ''अति निर्बुद्धि मैं श्रीस्वरूप गोस्वामी, श्रीरूपसनातनादि प्रियजनों द्वारा परित्यक्त होकर अत्यन्त ज्ञान शून्य हो गया हूँ। उन सबके अप्रकट होने पर भी जीवन-धारण कर महादु:ख सागर में मग्न हूँ; दाँतों में तृण रखकर अत्यन्त दैन्य के साथ कातर प्राणों से निरन्तर प्रार्थना करता हूँ कि अब श्रीराधिका मुझे अपने श्रीचरणकमल-प्रान्त में ले जायें।'' उनके श्रीचरणकमलों में स्थान प्राप्त करने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं, जिससे हृदय का यह निदारुण दु:ख शान्त हो सके। क्रमश: श्रीपाद की अवस्था बड़ी भयंकर हो जाती है। महाजन (पद-रचयिता) ने श्रीपाद की तात्कालिक अवस्था का वर्णन इस प्रकार किया है -

''राधाकृष्ण-वियोगे छाड़िल सकल भोगे
शुखरुख अन्न मात्र सार।
गौराङ्गेर वियोगे अन्न छाड़ि दिल आगे
फल गव्य करिल आहार॥
सनातनेर अदर्शने ताहा छाड़ि सेइ दिने
केवल करये जलपान।
रूपेर विच्छेद जबे जल छाड़ि दिल तबे
राधाकृष्ण बलि राखे प्राण॥
श्रीरूपेर अदर्शने ना देखि ताँहार गणे
विरहे व्याकुल हैया काँदे।
कृष्णकथा आलापन ना शुनिया श्रवण
उच्चस्वरे डाके आर्तनादे॥
'हा हा राधाकृष्ण कोथा कोथा विशाखा ललिता
कृपा करि देहो दरशन।
हा चैतन्य महाप्रभु हा स्वरूप मोर प्रभु
हा हा प्रभु रूप-सनातन॥'
काँदे गोसाइ रात्रिदिने पुड़ि जाय तनु-मने
क्षणे अङ्ग धूलाय धुसर।
चक्षु अन्ध अनाहार आपनार देहभार
विरहे हइल जर जर॥
राधाकुण्ड-तटे पड़ि सघने निश्वास छाड़ि
मुखे वाक्य ना हय स्फुरण।

मन्द मन्द जिह्वा नड़े प्रेम-अश्रु नेत्रे पड़े
मने कृष्ण करये स्मरण॥'' (पदकल्पतरु)

ऐसी विरहाकुल दशा में श्रीपाद का मर्मान्तिक क्रन्दन ही 'विलापकुसुमाञ्जलि' है। तभी यह रागानुगीय साधक की अतुलनीय आस्वाद्य सम्पदा है। अनुरागी साधक स्वयं भी श्रीराधापादपद्म-विरही है, अतएव इस स्तव के श्रवण-कीर्तन से समान वासना वाले सहृदय भक्त को विप्रलम्भरस का अति चमत्कारपूर्ण आस्वादन मिलेगा। किन्तु अपने स्वरूप का पूर्ण अभिमान लेकर ही इसके आस्वादन का प्रयत्न करना होगा। देह-कारागार में बैठकर इसकी रस-माधुरी के आस्वादन का प्रयास करना बिड़म्बना मात्र होगी।

''आत्मानं चिन्तयेत्तत्र तासां मध्ये मनोरमाम्।
रूप-यौवन-सम्पन्नां किशोरीं प्रमदाकृतिम्॥
सखिनां संगिनीरूपामात्मानं वासनामयीम्।
आज्ञासेवा परां तद्वत् रत्नालंकारभूषिताम्॥'' (श्रीसनत् कुमार संहिता)

रागानुगीय साधक उन लोगों अर्थात् कृष्णकान्ता गोपियों के बीच स्वयं का चिन्तन इस प्रकार करेगा कि मैं रूप-यौवन सम्पन्ना मनोरम किशोरी प्रमदा हूँ। साधक श्रीललिता विशाखा श्रीरूपमञ्जरी आदि सखियों की संगिनी, उन लोगों के आदेशानुरूप श्रीश्रीराधामाधव की सेवापरायणा एवं श्रीराधा के प्रसादी वस्त्राभूषणों से भूषिता अपनी वासनामयी मूर्ति का चिन्तन करेगा।

इस श्लोक में श्रीपाद अपने सिद्ध स्वरूप के आवेश में अपने गुरु श्रीरूपमञ्जरी की सरस स्तुति कर रहे हैं। 'सरस' कहने का तात्पर्य यही है कि श्रीगुरुदेव वहाँ प्रिय सखी हैं। प्रथम तीन श्लोक एक ही लीला के अन्तर्गत हैं। जब साधकदेह की अवस्थिति में स्वरूपावेश सुतीव्र होता है, तब स्मरण स्वप्न और स्फुरण आदि में पूर्ववत् आनन्द या तृप्ति प्राप्त नहीं होती। साक्षात् प्राप्ति के अभाव से उत्पन्न ज्वाला का भोग सदा ही बना रहता है। इतना ही नहीं, स्फुरण आदि में विराम आ जाता है, तो वह ज्वाला अत्यन्त भीषण आकार धारण कर लेती है। तब लगता है कि अब प्राण धारण करना किसी प्रकार से भी सम्भव नहीं। उस अवस्था में स्वयं अभीष्टदेव अथवा उनके परिकर स्फूर्ति में साधक के निकट आकर उसे सान्त्वना प्रदान करते हैं। इस श्लोक में स्वरूपाविष्ट श्रीपाद स्वयं को श्रीराधाकिंकरी के रूप में ही अनुभव कर रहे हैं। किन्तु स्फुरण आदि का अनुभव न रहने से असह्य यंत्रणा भोग रहे हैं। कुण्डतीर पर पड़कर लोट-पोट करते हुए फुत्कार के साथ उच्च स्वर में अपनी स्वामिनी को पुकार रहे हैं।

उस समय श्रीरूपमञ्जरी गोवर्धन की निभृत कंदरा में श्याम-स्वामिनी को मिलाकर गवाक्ष-रन्ध्रों से श्रीयुगल की निभृत विलासमाधुरी देख रही थीं। दोनों के सान्निध्य ने दोनों को उन्मत्त कर दिया है। कैसी अपूर्व विलास परिपाटी है! विलास-अवकाश में श्यामसुन्दर ने श्रीमती के अधरों पर दशनक्षत अंकित कर दिये हैं। राधाकिंकरी श्रीरूप का स्वामिनी के साथ भाव इतना निर्मल है कि दर्शन करते-करते श्रीमती के प्रत्येक अङ्ग का आस्वादन श्रीरूप के उस-उस अङ्ग में अनुभूत हो रहा है! श्यामसुन्दर द्वारा अंकित स्वामिनी के अधर का क्षत भावशुद्धि के कारण श्रीरूपमञ्जरी के अधर पर प्रतिफलित हो गया है। आत्महारा रूप को तो कोई खबर ही

नहीं, वे पूरी तरह विभोर हैं। अपने अधर के क्षत की बात जानते ही नहीं। इसी समय स्वरूपाविष्ट श्रीरघुनाथ के आर्तनाद ने-स्वामिनी के लिये हृदय चीरता आर्तनाद श्रीरूपमञ्जरी के अन्तर में तुलसी की स्मृति जगा दी। (श्रीरघुनाथ दास गोस्वामिपाद के सिद्ध स्वरूप का नाम 'तुलसीमञ्जरी' है)। आत्महारा श्रीरूप को हठात् ध्यान आया-'आहा! ऐसा मधुर युगलविलास है! तुलसी ने नहीं देखा। हाय, कहाँ है वह? उसे लाकर दिखाना होगा।' श्रीरूप गवाक्ष छोड़कर तुलसी की खोज में चल पड़ीं। तभी श्रीरघुनाथ को तुलसी की खोज में लगी श्रीरूपमञ्जरी का स्फुरण हुआ। स्वरूपावेश में श्रीरूपमञ्जरी के साथ मिलन हो गया। हठात् दृष्टि पड़ी श्रीरूप के अधर पर। परिहास के बहाने बोलीं-''हे सखि! रूपमञ्जरि! तुम इस व्रजमण्डल में सती के रूप में विख्यात हो। कभी पर पुरुष का मुख नहीं देखतीं। भर्ता की अनुपस्थिति में भी तुम्हारे बिम्बाधरों पर क्षत पड़ा हुआ है, यह क्या किसी शुक श्रेष्ठ का काम है?'' यहाँ यदि कोई 'शुकपुङ्गवेन' शब्द का अर्थ लगाये कि श्रीरूपमञ्जरी श्रीकृष्ण द्वारा उपभुक्ता हैं, तो वह आचार्यपादों द्वारा अपने ग्रन्थों में निरूपित मञ्जरी-स्वभाव के विरुद्ध होगा।

''अनन्य श्रीराधा-पदकमल-दास्यैक-रसधीहैरैः संगे रंगं स्वपन-समयेनाऽपि दधती।
बलात् कृष्णे कूर्पासकभिदि किमप्याचरति काप्यदश्रु में वेति प्रलपति ममात्मा च हसति॥''

(वृन्दावनमहिमामृतम्-१६/९४)

''जो श्रीराधापद-कमलों के दास्यरस में ही अनन्यचित्त है, जो (जाग्रत दशा में तो नहीं ही) स्वप्न में भी श्रीकृष्ण के साथ रंग (रेली) स्वीकार नहीं करती, ऐसी ही कोई एक मञ्जरी श्रीकृष्ण द्वारा बलात् उसकी कञ्चुक छिन्न-भिन्न कर (उसकी भावनिष्ठा परीक्षार्थ अथवा प्रकाशार्थ) कुछ अग्रसर होने पर अश्रुयुक्त होकर 'ना, ना' 'ना, ना' कर रही है-और यह दृश्य देखकर मेरी आत्मा (प्राणस्वरूपिनी) श्रीराधा हँस रही हैं।'' यहाँ किंकरी की सेवानिष्ठा ही श्रीमती के हास्य का कारण है। कुसुम के साथ ही भ्रमर का विलास होता है, मञ्जरी के साथ वह विलास नहीं करता। मञ्जरी तो प्रफुल्लित पुष्प के प्रति भ्रमर की लिप्सा बढ़ाती है। ये नाम में मञ्जरी हैं, आकार में मञ्जरी, स्वभाव में भी मञ्जरी हैं। श्रीरूप श्रीराधा के रूप की मञ्जरी हैं, श्रीरतिमञ्जरी श्रीमती की रति की ही मञ्जरी हैं, और श्रीविलासमञ्जरी श्रीमती के विलास की मञ्जरी हैं, इन लोगों की भावनिष्ठा के आगे श्रीकृष्ण का पराभव होता है, यथा-

''राधारंगलसत्तदुज्ज्वल - कलासञ्चारण - प्रक्रिया,
चातुर्योत्तरमेव सेवनमहं गोविन्द ! संप्रार्थये।
येनाशेषवधूजनोद्भटमनोराज्य - प्रपञ्चावधौ,
नौत्सुक्यं भवदंगसंगमरसेऽप्यालम्बते मन्मनः॥''

(उज्ज्वलनीलमणि-सखी प्र० ८८)

''कोई सखी वनमाला के लिये कुसुम चयन कर रही थी। उसे देखकर श्रीकृष्ण बोले-'हे शोभनांगि! इस कुञ्ज में क्षणभर मेरे साथ मिलकर अपना जन्म सफल करो।' यह सुनकर वह सखी (मञ्जरी) बोली-'हे गोविन्द! राधारूप सुरतलास्य की भूमि पर तुम्हारी समस्त उज्ज्वल रसकला, अर्थात् शृंगार वैदग्धी आदि के विभिन्न प्रयोग-प्रकारों से सम्बद्ध चातुर्य जिस सेवा का प्रधान अङ्ग है, मैं बस उसी की अभिलाषा करती हूँ, कारण-उस सेवा के प्रभाव से ही अनन्त रमणियों के मनोरथ चरमसीमा प्राप्त कर गये हैं। अतएव हे गोकुलेन्द्र! तुम्हारे अङ्ग-संगम-रस के आस्वादन के लिये मेरे मन में कभी उत्सुकता नहीं होती। अनुग्रह कर मुझे

चिरवाञ्छनीय उसी सेवा में नियुक्त रखो।'' उक्त श्लोक की आनन्दचन्द्रिका टीका में लिखा है-''त्वया सह सांगसंगसुखादपि जालरन्ध्रादौ श्रीराधांग-संगदर्शनोत्थं सुखमधिकमनुभूत मन्मनसा। न हि लब्धाधिक सुखा जना अल्पे सुखे प्रवर्तन्ते इति भावः॥'' अर्थात् 'तुम्हारे साथ स्वयं का अङ्ग-संग कर जो सुख मिलता है, उससे कहीं अधिक आनन्द मेरे मन में तब होता है जब मैं कुञ्ज के लताजाल-रन्ध्रों से श्रीराधा के साथ तुम्हारा अङ्ग-संग होते देखती हूँ। इसलिये जिसने अधिक सुख पा लिया है, उसकी प्रवृत्ति अपेक्षाकृत अल्प सुख की कभी नहीं होती।' स्वयं श्रीराधा की भी इन लोगों का श्रीकृष्ण के साथ मिलन कराने की चेष्टा विफल हो जाती है, यथा-

''त्वया यदुपभुज्यते मुरजिदंगसंगे सुखं तदेव बहु जानती स्वयमवाप्तितः शुद्धधीः।
मया कृतविलोभनाप्यधिकचातुरीचर्यया कदापि मणिमञ्जरी न कुरुतेऽभिसारस्पृहाम्॥''
(उ० सखी प्र०-८९)

एकबार श्रीराधा ने मणिमञ्जरी को अभिसार कराने के लिये किसी सखी को नियुक्त किया। सखी युक्ति पूर्वक मणिमञ्जरी को अभिसार न करा पाई, तो उसने लौटकर श्रीराधा से कहा-''हे श्रीराधे! तुम्हारी आज्ञा पाकर मैंने मणिमञ्जरी के पास जाकर बहुत प्रकार से प्रलोभन वाक्यों का सहारा लेकर उससे कहा-'हे सखि! त्रिभुवन में श्रीकृष्ण के अङ्ग-संग जनित सुख से बढ़कर और कोई सुख नहीं, अतएव एकबार उसका अनुभव करो। ललिता आदि सखियों में बीच-बीच में सखीत्व और नायिकात्व दोनों भाव आ जाते हैं, तुम भी वही भाव अङ्गीकार करो। तुम इतना संकोच क्यों कर रही हो।' हे राधे! यह सुनकर मणिमञ्जरी बोली-'सखि! जो सुख श्रीराधा श्रीकृष्ण के अङ्ग-संग में अनुभव करती हैं, मेरे लिये वही सुख आत्ममिलन की तुलना में कहीं अधिक है।' हे प्रिय सखि! समझ गई, मणिमञ्जरी का चित्त विशुद्ध हो गया है। इतने प्रलोभन और चाल-चातुर्य से भी उसका चित्त नहीं डगमगाया।'' मञ्जरियाँ ऐसी अभिनव भावशुद्धि के लिये ऐसा कुछ विशेष पुरस्कार प्राप्त कर लेती है, जो परम श्रेष्ठ सखियों ललितादि के लिये भी अलभ्य है। श्रीपाद ने अपने व्रजविलासस्तव (३८) में लिखा है-

''ताम्बूलार्पण - पादमर्दन-पयोदानाभिसारादिभि-
र्वृन्दारण्यमहेश्वरीं प्रियतया यास्तोषयन्ति प्रियाः।
प्राणप्रेष्ठसखीकुलादपि किलासंकोचिता भूमिकाः
केलीभूमिषु रूपमञ्जरीमुखास्ता दासिकाः संश्रये॥''

''ताम्बूलदान, पादमर्दन, जलदान, अभिसार आदि द्वारा जो सदा श्रीवृन्दावनेश्वरी की प्रिय सेवा सम्पादित कर रही हैं, जो प्राणश्रेष्ठ ललितादि सखियों से भी अधिक श्रीमती की प्रीतिपात्र हैं, श्रीश्रीराधाकृष्ण की रहस्यमयी विलास-भूमि पर जिनका निःसंकोच आवागमन है, उन्हीं श्रीरूपमञ्जरी आदि प्रमुख राधादासियों का मैं आश्रय लेता हूँ।''

''रतिरणे श्रमयुत, नागरी-नागर, मुखभरि ताम्बूल जोगाय।
मलयज कुंकुम, मृगमद कर्पूर, मिलितहिं गात लागाय॥
अपरूप प्रियसखी प्रेम।
निज प्राणकोटि, देइ निरमञ्छइ, नह तुल लाखवान हेम॥
मनोहर माल्य, दुहुँ गले अर्पइ, बीजइ शीत मृदु बात।

स्थलकमलिनि युक्तं गर्विता काननेऽस्मिन्, प्रणयसि वरहास्यं पुष्पगुच्छच्छलेन।
अपि निखिल-लतास्ताः सौरभाक्ताः स मुञ्चन्, मृगयति तव मार्ग कृष्णभृङ्गो यदद्य॥२॥

अन्वय-स्थलकमलिनि! अस्मिन् कानने गर्विता (सती) पुष्पगुच्छच्छलेन युक्तं (उचितं) वरहास्यं प्रणयसि (विदधासि)। यत् (यस्मात्) अद्य ताः प्रसिद्धाः सौरभाक्ताः (सुगन्धियुता) अपि निखिल-लताः मुञ्चन (व्यञ्जन्) स कृष्णभृंगः तब मार्गं मृगयति (अन्वेषयति)॥२॥

सुगन्धि शीतल, करु जल अर्पण, जैछे होत दुहुँ शाँत॥
दुहुंक चरण पुन, मृदु सम्वाहन, करि श्रम करलहिं दूर।
इंगिते शयन, करल दुहूँ, सखीगण, सबहु मनोरथ-पूर॥
कुमुम शेजे दुँहु, निद्रित हेरइ, सेवन परायण सुख।
राधामोहन दास, किसे हेरब, मेटब सब मनोदुख॥''

श्रीश्रीयुगलकिशोर की रहस्यमय विलासमाधुरी के आस्वादन के साथ-साथ इस प्रकार की सेवा ही मञ्जरियों की चिर आकांक्षणीय सम्पदा है। अतएव उनमें श्रीकृष्ण के साथ आत्म मिलन की आकांक्षा कभी नहीं जगती। किन्तु वे उस रस से वंचित रहती हों, सो नहीं। श्रीराधा के साथ उनका भावतादात्म्य ऐसा अद्‌भुत है कि श्रीराधारानी के श्रीअङ्ग के सभी आस्वादन उन्हें विलक्षणरूप से अनुभूत होते हैं।

''स्पृशति यदि मुकुन्दो राधिका तत्सखीनां
भवति वपुषि कम्प-स्वेद-रोमाञ्च-वाष्पम्।
अधरमधु - मुदास्याश्चेत् पिवत्येष यत्ना-
द्‌भवति वत तदासां मत्तता चित्रमेतत्॥''

(गोविन्दालीलामृतम्-११/१३७)

''यदि श्रीकृष्ण श्रीराधा को स्पर्श करते हैं, तो उनकी सखियों (मञ्जरियों) की देह में कम्प, स्वेद, रोमाञ्च, वाष्प आदि सात्त्विक भावों का उदय होता है। श्रीकृष्ण सहर्ष श्रीराधा का अधर-मधुपान करते हैं, तो उन सबमें मत्तता आ जाती है-यह बड़ा आश्चर्य है।'' यही कारण है कि श्रीराधा के अधरों का क्षत अभिन्नप्राण श्रीरूपमञ्जरी के अधरों पर प्रतिफलित हुआ है और श्रीरघुनाथदास गोस्वामिपाद स्वरूपावेश में परिहास के माध्यम से उनका यह महासौभाग्य अथवा महिमा प्रकाशित करते हुए इस श्लोक में सरस गुरु वन्दना कर रहे हैं।

''हे सखि रूपमञ्जरि तुमि एइ व्रजपुरी
माझे सती बलिया प्रथित।
पर पुरुषेर मुख हेरिते ना बासो सुख
तबे केनो देखि विपरीत॥
पति तव नाहि घरे तबुओ जे बिम्बाधरे
हइयाछे क्षत-चिन्ह सब।
बुझि शुक-पक्षिराज करियाछे एइ काज
नतुवा एरूप असम्भव॥''१॥

अनुवाद–हे स्थलकमलिनि! तुम इस कानन में गर्वित होकर पुष्पगुच्छ के विकास के बहाने जो मनोहर हास्य कर रही हो, वह युक्तिसंगत ही है, कारण–कृष्णभृंग समस्त सौरभपूर्ण लताओं का परित्याग कर तुम्हारा ही पथ खोज रहा है॥२

मंगलाचरण

परिमलकणा व्याख्या–स्वरूपाविष्ट श्रीपाद श्रीरूपमञ्जरी के साथ श्रीयुगल की विलासमाधुरी आस्वादन करने की लालसा से निभृत गिरिकन्दरा के गवाक्ष रन्ध्रों पर नेत्र रखकर देखने लगे। विलास की चरम परिणति में आनन्द ने नागर को विवश कर दिया है। श्रीराधा के मादनरस के अद्भुत उपचार से अप्राकृत नवीन मदन आत्महारा हैं। स्वामिनी भी मदीयता भरे भाव की चरम उन्मादना में आनन्द–विवश नागर के पास से बड़े गर्व से भरकर पास के एक कुञ्ज में सखियों के बीच जा पहुँची। वहाँ वे सखियों के साथ परिहासरस–आस्वादन में 'सुन्दर मेरे ही हैं' ऐसे मदीयता भरे भाव के उच्छलन में बरहास्य कर रही थीं।

इधर कुञ्ज में आनन्द–वैवश्य दूर हुआ, तो श्याम प्रियाजी को वहाँ न देखकर विह्वल होकर सन्धानी दृष्टि निक्षेप करने लगे। स्वामिनी के अदर्शन से श्यामसुन्दर की जो सब अद्भुत अवस्थायें प्रकट हो रही थीं,रूप और तुलसी गवाक्ष–रन्ध्रों से उनका आस्वादन कर रही थीं। राधादासियों के लिये कृष्ण तभी सर्वाधिक सुन्दर होते हैं, जब वे श्रीराधा के लिये व्याकुल होते हैं। वे (दासियाँ) इस व्याकुलता की छवि अपनी प्रेम–तूलिका से हृदयपटल पर अंकित कर रखती हैं और श्रीमती की विरहावस्था में इसका वर्णन कर प्रसंगानुरूप सेवा का अपूर्व सौभाग्य पाकर धन्य होती हैं। कहती हैं–'राधे! तुम्हारे विरह में श्याम भी परम व्याकुल हैं!''

''वसति विपिन विताने त्यजति झटिति धाम।
लुठति धरणीशयने बहू विलपति तव नाम॥'' (गीतगोविन्दम्)

''वे तुम्हारे लिये अपना ललित धाम अथवा व्रजराज का मनोहर भवन परित्याग कर वृन्दावन के निकुञ्ज–गृह में वास कर रहे हैं और भूमि–शय्या पर लोट–पोट करते 'हा राधे! हा प्राणेश्वरि तुम कहाँ हो!' कहकर बार–बार विलाप कर रहे हैं।''

''तुया पथ चाइ, 'राई' 'राइ' बलि,
गदगद विकल पराण!
क्षण एक कोटि, कोटियुग मानत,
हरिवल्लभ परमाण॥''

इधर जब चारों ओर दृष्टिपात करने पर भी प्रियाजी दिखाई न दीं, तो श्याम सुन्दर लीला–शयन से उठकर कन्दरा में अच्छी तरह खोजने के पश्चात् बाहर आये। तब श्रीवृन्दावन के पवन ने वृन्दावन–चन्द्र की नासिका में अधीश्वरी के अङ्ग का गंध–भार लाकर बता दिया कि 'अहो, कृष्णभृंग! कातर मत हो, स्थलकमलिनी अब दूर नहीं।' जिस गंध को वहन कर पवन ने अपने 'गंधवह' नाम की सार्थकता सम्पादित की, उस गंध से मधुसूदन की नासिका विशेष रूप से परिचित है। प्रिया की श्रीअङ्ग–गंध की घ्राण पाकर नागर व्याकुल प्राणों से उनके मिलने की आकांक्षा से उसी ओर चले, तो पद्मा शैव्या आदि (चन्द्रावली) सखियों ने आकर उनका मार्ग

रोक लिया। नागर स्पष्टत: उन लोगों की उपेक्षा कर गंध की दिशा में चलते-चलते इधर-उधर चञ्चल दृष्टिपात करने लगे। रूप और तुलसी गुप्तरूप से नागर के पीछे-पीछे चल रही हैं और अधीश्वरी के लिये सुन्दर की ऐसी आकुल-व्याकुलता देखकर स्वामिनी के गौरव में गौरव अनुभव कर रही हैं। इसी समय हठात् नागर की सन्धानी दृष्टि ने उन्हें जा पकड़ा। दोनों को देखते ही कातर नागर उनके पास आकर हाथ जोड़कर बोले-''अरी रूप! अरी तुलसि! तुम्हारी स्वामिनी मुझे धोखा देकर कुञ्ज छोड़कर जाने कहाँ छिप गई हैं। मैं उनकी अङ्ग-गंध पाकर भी उन्हें नहीं खोज पा रहा। तुम दोनों निश्चय ही जानती हो कि मेरी प्रिया कहाँ हैं, मुझे तुरन्त उनके पास ले चलो।'' यही राधा-किंकरियों की विशिष्टता है। वे श्रुतियों के लिये भी अन्वेषणीय परम पुरुष को हाथ जोड़े देखती हैं। वे विनती-मिश्रित स्वर में कहते हैं-'अपनी स्वामिनी के साथ मिलन करा दो, तुम लोगों को छोड़ मेरी और गति नहीं।' अखिल विश्व की चरमगति मधुसूदन! उनकी भी एकमात्र गति है राधा-किंकरी! धन्य है यह पदवी!

नागर की कातरता देखकर रूप और तुलसी ने उन्हें वहीं खड़ा कर उस कुञ्ज में प्रवेश किया, जिसमें स्वामिनी सखियों के साथ हास्य-परिहास में मग्न थीं। देखा कि कुञ्जक्रीड़ा में स्वामिनी की जो जय और नागर की जो हार हुई थी, वही जय-पराभव-लीला स्वामिनी के बाहर भीतर प्रकट है, उसी को लेकर सखियों के साथ परिहास चल रहा है और स्वामिनी के वदन पर हँसी छिटक रही है। स्वामिनी के आगे पहुँचकर इस श्लोक में तुलसी इष्टदेव की सरस वन्दना के रूप में मंगलाचरण कर रही हैं। ''ग्रन्थेर प्रारम्भे करि मंगलाचरण। गुरु-वैष्णव-भगवान् तिनेर स्मरण॥ तिनेर स्मरणे हय विघ्नविनाशन। अनायासे हय निज वांछित पूरण॥'' (चै०च०)। जैसे प्रथम श्लोक में स्वरूपाविष्ट श्रीपाद ने परिहास के माध्यम से श्रीगुरु की चरम उत्कर्षमय वन्दना की है, वैसे ही वे इस श्लोक में भी परिहास के माध्यम से ही परमाभीष्ट श्रीराधा की चरमोत्कर्षमय (इष्ट) वन्दना कर रही हैं। ''हे स्थलकमलिनि! तुम इस कानन में गर्वित होकर पुष्पगुच्छ के विकास के बहाने मनोहर हास्य कर रही हो, सो युक्तियुक्त ही है, कारण-कृष्णभृंग समस्त सुरभित लताओं को छोड़ तुम्हारा ही पथ खोज रहा है।'' सामने एक स्थलकमलिनी को देखकर उसे लक्ष्य करके ही तुलसी स्वामिनी से ऐसा परिहास कर रही हैं। वहाँ सभी कुछ परिहास-रसमय है। शृंगार रसराज्य जो है! जहाँ ''कथा गानं नाट्यं गमनम्'' (ब्रह्मसंहिता), अर्थात् स्वाभाविक वार्ता गायन की तरह मधुर और स्वाभाविक गमन नृत्य की तरह सुन्दर है। वहाँ के शृंगाररस-सिन्धु में नित्य सन्तरणशील (सदा तैरने वाली) श्रीयुगल की अभिन्नप्राण सखी-मञ्जरियों की स्वाभाविक वार्ता और चेष्टा शृंगार-परिहास रस से भरी होगी, इसमें सन्देह क्या? मञ्जरीभाव के साधक को भी यह उपयोगिता प्राप्त करनी होगी। इन लोगों के भावमाधुर्य के श्रवण-कीर्तन से साधक का चित्त भी क्रमश: उसी भाव से विभावित होगा और उसे इस परिहास रस-माधुरी के आस्वादन की योग्यता प्राप्त होगी।

जो भी हो, ''स्थलकमलिनि!'' ऐसे सम्बोधन का तात्पर्य यही है कि इस समय स्वामिनी जी रस-सरोवर श्यामसुन्दर के निकट नहीं हैं। जब कमल सरोवर में रहता है, तो उसे 'कमल' ही कहते हैं, उसका नाम 'स्थलकमल' नहीं होता। रसमयी किंकरी तुलसी इस सम्बोधन से जैसे स्वामिनी के अन्तर में कृष्ण-मिलन की लालसा जगा रही हैं, वैसे ही उस मिलन-माधुरी के दर्शन की अपनी लालसा भी व्यक्त कर रही हैं। ''गर्विता काननेऽस्मिन्''-यह वाक्य बताता है कि श्रीवृन्दावन में श्यामसुन्दर के प्रेम-सुहाग-सौभाग्य से श्रीराधा सार्थक रूप से गर्वित हैं, कारण-उन्हीं में अनन्य साधारण मादनाख्य महाभाव विराजित है। ''अपि निखित लतास्ता:

व्रजेन्द्रवसतिस्थले विविध-वल्लवीसंकुले त्वमेव रतिमञ्जरि प्रचुर-पुण्यपुञ्जोदया।
विलासभरविस्मृत प्रणयि-मेखला भार्गणे यदद्य निजनाथया व्रजसि नाथिता कन्दरम्॥ ३ ॥

अन्वय-रतिमञ्जरि! विविध-वल्लवी-संकुले व्रजेन्द्रवसतिस्थले (व्रजे) त्वमेव प्रचुरपुण्य-पुञ्जोदया (प्रचुरो महान् पुण्य-पुञ्जस्य राशेरुदयो यस्याः सा)। यत् (यतो) अद्य विलासभरविस्मृत (स्मरक्रीड़ातिशयेन विस्मृता या) प्रणयिमेखला (तस्या) भार्गणे (अन्वेषणे) निजनाथया (श्रीराधया) नाथिता (प्रार्थिता सती) कन्दरं व्रजसि॥३॥

सौरभाक्ताः स मुञ्चन्, मृगयति तव मार्ग कृष्णभृंगो यदद्य''- यह वाक्य स्पष्ट करता है कि श्रीकृष्ण ने मार्ग में चन्द्रावलीजी की पद्मा-शैव्या आदि सखियों का प्रत्यक्षतः त्याग दिया है। चन्द्रावली आदि यूथेश्वरियाँ महाभाव के परिमल से सुवासित हैं, फिर भी श्रीकृष्ण-भृंग श्रीमती के मादनाख्य भाव के असामान्य परिमल से ही सर्वाधिक वशीभूत हैं। यहाँ यही तथ्य प्रकाशित हुआ है।

कोई-कोई तो ऐसा मानते हैं कि यह श्लोक भी स्वरूपाविष्ट श्रीपाद की श्रीरूपमञ्जरी के प्रति उक्ति है। यह व्याख्या भी महत्जनों द्वारा अनुमोदित है। प्रथम श्लोक की उक्ति सुनकर जब श्रीरूपमञ्जरी के श्रीमुख पर हँसी फूट उठती है, तो उसे देखकर सामने एक पुष्पित स्थलकमलिनी को लक्ष्य कर परिहास के माध्यम से ही इस श्लोक में भी तुलसी श्रीरूपमञ्जरी के सौन्दर्य-सौभाग्य आदि की महिमा प्रकट करती हुई श्रीगुरु-वन्दना करती हैं। श्रीराधा-किंकरियों के सौन्दर्य आदि के वर्णन में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्तीपाद ने लिखा है-

''ता विद्युदुद्द्युति-जयि प्रपदैकरेखा वैदग्ध्य एव किल मूर्त्तिभूतस्तथापि।
यूथेश्वरोत्वमपि सम्यगरोचयित्वा दास्यामृताब्धिमनुसस्नुरजस्रमस्याः॥''

अर्थात् ''श्रीराधा-किंकरियों का असीम शोभा-सौन्दर्य जगत में सत्य ही अतुलनीय है। उन लोगों के पैरों के अग्रभाग की एक-एक रेखा ने विद्युत की उत्कृष्ट द्युति को भी पराजित कर दिया है। वे सब मूर्तिमती वैदग्ध्य-स्वरूपिणी हैं। यद्यपि उनमें से प्रत्येक यूथेश्वरी होने योग्य है, तथापि वे यूथेश्वरीत्व में पूरी अरुचि प्रकट कर श्रीराधा के दास्यामृत-सागर में निरन्तर अवगाहन कर रही हैं।'' तात्पर्य यह है कि वे सर्वदा सेवा के लिये उत्सुक होकर सख्य-अभिमान तक को तुच्छ कर श्रीराधा का किंकरीत्व प्राप्त कर धन्य हो गई हैं। श्रीरूप गुरु हैं, पर स्वरूपाविष्ट श्रीपाद उन्हें समभावापन्न सखी मानकर निःसंकोच परिहास कर रहे हैं और परिहास के माध्यम से उनकी अपार महिमा प्रकट कर रहे हैं।

''अयि स्थलकमलिनि वृन्दारण्य-पुष्पमणि
पुष्पगुच्छ विकासेर छले।
हास्यकर अतिशय युक्तियुक्त ताहा हय
ताइ सबे गरविनी बले॥
जेहेतु से कृष्णभृंग त्यजि अन्य लता-संग
यदिओ सुगन्धियुता सब।
तव पथ अन्वेषण करितेछे अनुक्षण
इहातेइ साजिछे गौरव॥''२॥

अनुवाद-हे रतिमञ्जरि! इस नन्दव्रज में बहुत गोपियाँ हैं, उनमें तुम ही प्रचुर भाग्यशालिनी हो, कारण-कन्दर्प क्रीड़ा की अतिशयता से स्वामिनी अपनी अति प्रिय मेखला विलासकुञ्ज में भूल आईं, उसे लाने के लिये उन्होंने तुम्हें ही इंगित किया। उसी कार्य से तुम गिरिकन्दरा जा रही हो॥३॥

श्रीगुरु का कृपाशीष

परिमलकणा व्याख्या-श्रीरघुनाथ के स्वरूपावेश की स्फुरणधारा अविच्छिन्नभाव से प्रवाहित है। प्रथम श्लोक में श्रीयुगलविलास दर्शन के समय श्रीरूप के अधरों पर प्रतिफलित श्रीमती का विलास चिन्ह देखकर सरस परिहास के माध्यम से श्रीगुरु-वन्दना की। द्वितीय श्लोक में विलास का विराम होने पर मदीयभाव की अपूर्व उन्मादना में स्वामिनी का आनन्द विवश नागर के पास से अन्य कुञ्ज में गमन और सखियों के साथ मिलकर हास्य-परिहास दिखाया। परिहास के माध्यम से ही श्रीतुलसी ने स्वामिनी की स्तुति की। अब प्रिया-विरह-विधुर श्यामसुन्दर की कातर अवस्था बताकर स्वामिनीजी के आदेश से व्याकुल नागर को सान्त्वना देकर उन्हें सखी समाज में बैठी स्वामिनी के पास धीरे-धीरे लाना और उन्हें श्रीमती के पास बिठाकर युगलमाधुरी का आस्वादन करना!

''कनकेर लता जेनो तमाले बेड़िल।
नवघन-माझे जेनो बिजुरी पशिल॥
राइ-कानु रूपेर नाहिक उपाम।
कुवलय-चाँद मिललो एक ठाम॥'' (महाजन)

युगलमिलन-माधुरी के रस में श्रीपाद का चित्त तन्मय है। प्राणेश्वरी ने एक अभिनव लीला द्वारा श्यामसुन्दर को सुखी करने के लिये सखियों को नृत्य करने का इंगित किया। श्यामसुन्दर का आनन्द-विधान ही उनका चरम लक्ष्य है।

''कृष्णके आह्लादे-ताते नाम ह्लादिनी।
सेइ शक्तिद्वारे सुख आस्वादे आपनि॥'' (चै०च०)

श्रीमती राधा अपनी अंशकलाओं से अनन्त भगवत् कान्तारूपों में अनन्त भगवत् स्वरूपों की शृंगाररसमय सेवा कर रही हैं।

''तार मध्ये व्रजे नाना भाव-रसभेदे।
कृष्णके कराय रासादिक-लीलास्वादे॥
गोविन्दानन्दिनी राधा - गोविन्द-मोहिनी।
गोविन्द-सर्वस्व - सर्वकान्ता-शिरोमणि॥'' (वही)

''अन्यत्र स्वांश लक्ष्म्यादिरूपेण श्रीकृष्णांशविष्ण्वादीनां क्रीड़ासहायं करोति, व्रजेतु कायव्यूह प्रकाशैः सह स्वयंरूपा श्रीराधा स्वयं रूपं श्रीकृष्णं बहुतरप्रकारेण रसमास्वादयतीत्यर्थः॥'' (श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती)। व्रज के अतिरिक्त अन्यत्र, अर्थात् अनन्त वैकुण्ठों में और मथुरा द्वारकादि धामों में लक्ष्मी-महिषी आदि रूपों में श्रीकृष्ण के अंश विष्णु आदि की और वासुदेव श्रीकृष्ण की लीलाओं में सहायता करती हैं। व्रज में कायव्यूह प्रकाश व्रजसुन्दरियों के साथ स्वयंरूपा श्रीराधा स्वयंरूप श्रीनन्दनन्दन को बहुत प्रकार से शृंगार-रसमाधुरी

आस्वादन करा रही हैं। इसका कारण यह है कि महाभावाख्य-प्रीतिरस से सुवासित व्रजदेवियों के रूप-रस आदि के आस्वादन-उल्लास से भरी लीला में ही रसास्वादन-लोलुप रसिकशेखर व्रजेन्द्रनन्दन के आनन्द-आस्वादन की पराकाष्ठा है।

श्रीमती के इंगित पर सखियों ने कुञ्ज प्रांगण में नृत्य आरम्भ किया। कैसी अपूर्व है वह नृत्यकला माधुरी! वे सब प्रेममयी श्रीमती की ही अभिन्न प्राणा है, प्रेमरसमय नृत्य से श्रीयुगल को अपूर्व आनन्द प्रदान कर रही हैं। अपने क्षिप्र और लघु पदक्षेप द्वारा वे अशेष नृत्यकला का विस्तार कर रही हैं। कटिदेश स्वाभाविक रूप से ही क्षीण है, नृत्यभंगिमा में पार्श्व परिवर्तन का कलाकौशल देखकर लगता है मानो देहलताओं का मध्यभाग भग्नप्राय हो गया है और करपल्लव समीर से सिहरे लतापल्लवों की तरह विचित्र भंगिमाओं के साथ आन्दोलित हो रहे हैं। नृत्य-आन्दोलन में शिथिल हो गये हैं उत्तरीय! दोलायमान मणिकुण्डलों की प्रभा से गण्डदेश झिलमिला रहे हैं। केशपाश कटि-भूषण आदि के ईषत् शिथिल हो जाने से अपूर्व शोभा का विकास हो रहा है।

''रंगिणीगण रसरंगहि नटइ। रणरणि कंकण किंकिणी रटइ॥
रहि रहि राग रचये रसवन्त। रतिरत रागिनी रमण बसन्त॥
रटति रबाब महति कपिनास। राधारमण करु मुरलीविलास॥''

बसन्त आदि मधुमय शृंगाररस-उद्दीपक राग के आलाप हैं। श्रीयुगल-माधुरी ही गीत का प्रतिपाद्य विषय है। श्याम अति मधुर मुरली-वादन कर रहे हैं। नृत्यपरायण सखियों के नूपुर, कंकण, किंकिणी उसके साथ ताल मिलाकर झंकृत हो रहे हैं। बीच-बीच में श्याम मुरली रखकर उसकी प्रशंसा करते हैं। इसी समय श्याम के बायीं ओर रत्नासन पर बैठी श्रीमती को ध्यान आया कि उनकी कटि में मेखला नहीं है। विलास की अतिशयता के वश वे अपनी मेखला गिरिकन्दरा में छोड़ आईं। अब सखियाँ देखेंगी तो परिहास करेंगी। तभी श्रीमती सभी से बचकर तुलसी को इंगित कर रही हैं कि वह गिरिकन्दरा से मेखला लाकर गुप्तरूप से उन्हें पहना दे। ईश्वरी के इंगितमात्र से तुलसी कुसुमचयन के बहाने मेखला लाने चल पड़ी हैं। अन्य किसी को इस मर्म का पता भले ही न चला हो, रूपमञ्जरी सब समझ गईं। वे सोचने लगीं, तुलसी ने परिहास के माध्यम से उनकी महिमा प्रकट करते हुए वन्दना की थी, अब वे भी परिहास पूर्वक उसकी महिमा व्यक्त करते हुए उसे कृपाशीष देंगी। वे निर्जन में तुलसी से मिलकर बोलीं-''हे सखि! रतिमञ्जरि! ⁂ इस व्रज में अनेक गोपिकायें हैं, उनमें तुम ही प्रचुर भाग्यशालिनी हो, कारण-स्वामिनी कन्दर्प-क्रीड़ा की अतिशयता से अपनी जिस प्रिय मेखला को विलासकन्दरा में भूल आई हैं, उसे लाने के लिये उन्होंने तुम्हें ही इंगित किया। स्वामिनी की यह रहस्यमय प्रिय सेवा पाकर तुम धन्य हो।'' मेखला स्वामिनी की 'प्रणयी-मेखला' अर्थात् अत्यन्त प्रिय मेखला है, कारण-चलने के समय, नृत्य के समय और विलास काल में वह नागर के मन को मत्त कर डालती है। ऐसी

⁂ श्रीपाद रघुनाथदास गोस्वामी के सिद्ध स्वरूप का नाम 'रतिमञ्जरी' है और बोलचाल का नाम 'तुलसी मञ्जरी'। श्रील गोपालगुरु गोस्वामिपाद कृत 'पद्धतित्रयम्' ग्रन्थ में लिखा है-''रत्यम्बुजाख्यः कुञ्जोऽस्तीन्दुलेखा कुञ्ज दक्षिणे। तत्रैव तिष्ठति सदा सुरूपा 'रतिमञ्जरी'॥ तारावलीदुकूलेयं तड़ित्तुल्य-तनुच्छविः। दक्षिणा मृद्विका ख्याता 'तुलसीति' वदन्ती याम्॥ अस्या वयो द्विमासाढ्यहायनास्तु त्रयोदशः (१३/२)। पितास्या वृषभः कान्तो दिवाख्यः शारदा प्रसूः॥'' (पद्धतित्रयम्-४६९-४७२। हरिबोल कुटीर)

प्रिय वस्तु कभी भुलाई नहीं जाती, पर आज 'विलासभरविस्मृत'- विलास की चरम अवस्था में विस्मृति रही। परस्पर के सुखसाधन की परस्पर की उत्कट इच्छा! तभी विलास का इतना महत्व।

''प्रीतिविषयानन्दे तदाश्रयानन्द। ताँहा नाहि निजसुख-वाञ्छार सम्बन्ध॥
निरुपाधि प्रेम जाँहा-ताँहा एइ रीति। प्रीतिविषयसुखे आश्रयेर प्रीति॥'' (चै०च०)

इस निरुपाधि प्रीति के स्वभाव के कारण ही विलास का इतना महत्व है। श्रीमन्महाप्रभु ने श्रील रामानन्द राय से श्रीराधाकृष्ण-तत्त्व श्रवणकर प्रश्न किया था -

''प्रभु कहे-जानिल! कृष्णराधा-प्रेमतत्त्व।
शुनिते चाहिये दोंहार विलास-महत्व॥''

श्रील रामानन्द राय ने इस प्रश्न के उत्तर में कहा था-

''राय कहे - कृष्ण हये धीरललित।
निरन्तर कामक्रीड़ा जाँहार चरित॥
रात्रि दिन कुञ्जक्रीड़ा करे राधासंगे।
कैशोर वयस सफल कैल क्रीड़ारंगे॥'' (चै०च० मध्य, परि० ८)

विलास का कैसा अद्‌भुत महत्व है! जिस विलास ने परब्रह्म अखण्ड आनन्दघन तत्त्व स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण के हृदय में दुर्दमनीय रसलोलुपता जगाकर उन्हें दिन-रात निभृत निकुञ्ज में प्रेयसीसंग-सुख में लुब्ध कर रखा है, उसकी शक्ति कितनी महीयसी है, कौन बतायेगा? उपशान्तिविहीन (अविराम) विलास-वासना की प्रेरणा से वे दोनों लीलाप्रवाह में असीम की ओर तैरते जाते हैं। पारस्परिक सुखसाधन की उद्दामता और तृप्तिहीनता में उन्हें अपनी खोज-खबर भी नहीं रहती। इसलिये अतिप्रिय होते हुए भी इस मेखला की विस्मृति विचित्र नहीं। श्रीमती यह बात सखियों के आगे नहीं बता सकतीं, कारण - वे परिहास करेंगी। किंकरी अभिन्नदेह है, अभिन्नप्राण और परम अन्तरंग है, अतएव इन किंकरियों से छिपाने को स्वामिनी के पास कुछ नहीं। ऐसी किंकरियाँ वहाँ अनेक विद्यमान हैं, पर आज की रहस्यमय सेवा का अधिकार मिला है तुलसी को। तुलसी के इस सौभाग्य और अभ्युदय से श्रीरूपमञ्जरी उसके प्रति परम स्नेहसिक्त हो उठी हैं, उनके आनन्द की सीमा नहीं रही। रूपमञ्जरी के कृपाशीष से धन्य तुलसी कन्दरा से मेखला लाकर स्वामिनी के निकट उपस्थित हुईं। तब सखियों के नृत्य का अवसान हो गया है। किंकरियाँ नृत्यश्रान्त स्वेदाक्त-कलेवर सखियों को वीजन-सेवा से आनन्दित कर रही हैं। सभी नाना प्रकार के रसालाप में मग्न हैं। इसी समय सभी की दृष्टि से बचकर तुलसी ने स्वामिनी के कटिदेश में मेखला पहना दी। तुलसी की सेवा से स्वामिनी आनन्दित हैं। यह सब श्रीरूपमञ्जरी की करुणा मानकर स्वरूपाविष्ट श्रीपाद ने अपने प्रति उनकी उक्ति को श्रीगुरु-कृपाशीर्वाद समझ तृतीय श्लोक के रूप में प्रस्तुत किया है।

''हे सखि रतिमञ्जरि तुमि एइ व्रजपुरी
माझे महासुकृतिशालिनी।
ब्रजेन्द्र वसति स्थाने तव सम नाहि आने
तुमि गोपीकुल-शिरोमणि॥
रस विलासेर भरे विस्मृत मेखला-तरे
निजेश्वरी-आज्ञामते तुमि।

प्रभुरपि यदुनन्दनो य एष, प्रिय-यदुनन्दन उन्नत प्रभावः।
स्वयमतुल - कृपामृताभिषेकं, मम कृतवांस्तमहं गुरूं प्रपद्ये॥४॥

अन्वय-यः एषः यदुनन्दनः (प्रेमास्पदं यदुनन्दनः श्रीकृष्णो यस्य) उन्नत प्रभावः (उत्कृष्ट प्रभावो यस्य) प्रभुः अपि स्वयम् अतुलकृपामृताभिषेकं कृतवान्, अहं तं गुरुं प्रपद्ये (आश्रये)॥४॥

अनुवाद-जो यदुनन्दन आचार्य नाम से प्रसिद्ध हैं, श्रीकृष्ण जिनके प्रेमास्पद हैं और जिन्होंने उत्कृष्ट प्रभाव सम्पन्न प्रभु होकर भी मुझे अतुलनीय कृपामृत से अभिषिक्त किया है, मैं अपने उन्हीं श्रीगुरुदेव का आश्रय ग्रहण करता हूँ॥४॥

बाह्यावेश में श्रीगुरु-वन्दना

परिमलकणा व्याख्या-श्रीपाद के स्फुरण में विराम आ गया है। अपने को श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी ही मान रहे हैं। उनका यह बाह्यावेश भी प्राकृत नहीं, कारण-वे श्रीमन्महाप्रभु के साक्षात् परिकर हैं। तभी तो बाह्यावेश में भी अतुलनीय दैन्य, आर्ति, उत्कण्ठा और भजनरस का आस्वादन है। श्रीपाद बाह्यावेश में इस श्लोक में परम आर्ति से भरकर दीक्षागुरु श्रीश्रील यदुनन्दनाचार्य की वन्दना कर रहे हैं। ''श्रीगुरुचरणे रति, एइ से उत्तम गति, जे प्रसादे पूरे सर्व आशा'' (प्रेमभक्ति चन्द्रिका)। श्रीगुरु-चरणों में शरण लेते समय श्रीगुरुकृपा से श्रीपाद के हृदय में कितनी ही मधुर स्मृतियाँ उदित हो रही हैं। गौर प्रेम के पागल रघुनाथ ने बार-बार नीलाचल पलायन करने की चेष्टा की, तो पिता द्वारा पकड़वा कर बन्दी बना लिये गये थे। दिन-रात पाँच रक्षक, चार भृत्य और दो ब्राह्मण घर में उनकी रक्षा करने के लिये नियुक्त किये गये थे। एक ओर श्रीमन्महाप्रभु का प्रबल कृपाकर्षण, दूसरी ओर दुःखमय घर में कारागार-जैसी बन्दी-अवस्था! श्रीपाद के चित्त में कैसा विपुल दुःख हो रहा था, भाषा में व्यक्त करना सम्भव नहीं। इसी समय एक दिन निशान्त में कार्य के बहाने श्रीयदुनन्दन आचार्य ने श्रीरघुनाथ के पास आकर उनका बन्धन छिन्न किया। आचार्य का एक ब्राह्मण शिष्य उनकी ठाकुर-सेवा करता है, उसने सेवा छोड़ दी है, अब उसे सेवा में नियुक्त करने की बात करते-करते आचार्य उन्हें अपने साथ ले जा रहे हैं।

''अर्धपथे रघुनाथ कहे गुरुर चरणे।
आमि सेइ विप्रे साधि पाठाइबो तोमा स्थाने॥
तुमि सुखे घर जाहो, मोर आज्ञा हय।
एइ छले आज्ञा मागि करिलो निश्चय॥'' (चै०चै०)

रात्रि के अन्तिम भाग में सभी प्रहरी सो रहे हैं। श्रीरघुनाथ ने सुयोग समझकर नीलाचल जाकर ऐकान्तिक भाव से श्रीचैतन्य-चरणाश्रय लिया। श्रीगुरुदेव ने स्वयं आकर रघुनाथ का दुर्निवार संसार-बन्धन तोड़कर उन्हें अतुलनीय कृपामृत से अभिषिक्त किया। कोई-कोई प्रश्न करते हैं-रघुनाथ ने श्रीगुरुदेव से कही बात का पालन नहीं किया, फिर उनकी गुरुभक्ति की रक्षा कैसे हुई? उत्तर में कहा जा सकता है-क्षुद्रतम

अन्वेषिते हाराधने चलितेछ सजतने
गिरिराज कन्दराख्य भूमि॥''३॥

आज्ञापालन के बदले श्रीरघुनाथ ने इस वैराग्य और भक्तिनिष्ठा द्वारा श्रीगुरु का वृहत्तम आदेश पालन कर गुरुभक्ति की पराकाष्ठा ही प्रकट की। प्रिय शिष्य राजकुमार रघुनाथ ने दुश्छेद्य बन्धन से मुक्ति पाकर सदा-सदा के लिये श्रीचैतन्य चरणों में आत्मनियोग किया और विश्व में त्याग, वैराग्य, भजननिष्ठा का आदर्श स्थापित किया; और ऐसे परम अनुरागी भक्त के विघ्नमय संसार-बन्धन के मोचन में आचार्य स्वयं हेतु बन सके, इससे उन्हें कितना आनन्द हुआ अथवा कैसा आज्ञापालन हुआ-यह बात भक्तिप्राण भक्त अनायास ही समझ सकते हैं। गुरुनिष्ठ रघुनाथ ने यथार्थ गुरुसेवा ही की। इस गुरुसेवा के फलस्वरूप ही श्रीरघुनाथ ने उस समय श्रीचैतन्य-परिकरों में परम ख्याति अर्जित की थी। उस वर्ष नीलाचल में चातुर्मास्य यापन कर गौड़ के भक्तजन लौटकर आये, तो रघुनाथ के पिता ने पुत्र के समाचार लेने के लिये शिवानन्द सेन के पास अपना आदमी भेजा था। उन्होंने कहा था-

''शिवानन्द कहे-तेंहो हय प्रभुर स्थाने। परम विख्यात तेंहो, केबा नाहि जाने॥
स्वरूपेर स्थाने ताँरे करियाछेन समर्पण। प्रभुर भक्तगणेर तेंहो हय प्राणसम॥
रात्रिदिन करे तेंहो नाम-संकीर्तन। क्षणमात्र नाहि छाड़े प्रभुर चरण॥
परम वैराग्य-नाहि भक्ष्य परिधान। जैछे तैछे आहार करि राखये पराण॥''

(चै०च०)

यह अतुलनीय श्रीगुरुकरुणा का ही मूर्तफल है! तभी श्रीपाद ने कहा है-''स्वयम् अतुलकृपामृताभिषेकं कृतवान्।''

''प्रभुरपि यदुनन्दनो य एष प्रिय-यदुनन्दन उन्नतप्रभावः'' - अर्थात् प्रभु श्रीयदुनन्दन आचार्य श्रीकृष्ण के प्रियभक्त और उन्नत प्रभावशाली हैं-इस वाक्य में गुरुतत्त्व की ओर इंगित किया गया है। श्रीगुरु श्रीभगवत्-तत्त्व की अपूर्व मिलनभूमि हैं-श्रीभगवदाविर्भाव-विशिष्ट भक्तविग्रह ही श्रीगुरु हैं।

''यद्यपि आमार गुरु चैतन्येर दास।
तथापि जानिये ताँरे ताँहारि प्रकाश॥'' (चै० चै०)

''साक्षाद्धरित्वेन समस्तशास्त्रै-रुक्तस्तथा भाव्यत एव सद्भिः।
किन्तु प्रभोर्यः प्रिय एव तस्य वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्॥''

(श्रीगुरुदेवाष्टकम्-विश्वनाथ)

अर्थात् 'समस्त शास्त्रों ने जिन्हें साक्षात् भगवान् कहकर कीर्तन किया है और साधुजन भी जिनका उसी रूप में चिन्तन करते हैं, फिर भी जो श्रीहरि के प्रिय हैं, उन्हीं श्रीगुरु के श्रीचरणारविन्द की मैं वन्दना करता हूँ।' इससे यह पता चला कि भगवान् से अभिन्न भगवद्भक्ति धर्मयुक्त भगवत् प्रिय रूप ही श्रीगुरु का स्वरूप है। यही श्रीगुरु का उन्नत प्रभाव अथवा उत्कृष्ट महिमा है। श्रीमत् जीवगोस्वामिपाद ने लिखा है-''शुद्धभक्तास्त्वेके श्रीगुरोः श्रीशिवस्य च भगवता सहाभेद-दृष्टिं तत्प्रियतमत्वेनैव मन्यन्ते'' (भक्तिसन्दर्भ-अनु० २१३।) अर्थात् 'शुद्ध वैष्णव सम्प्रदाय के विशिष्ट भक्तजन श्रीगुरु और श्रीमहादेव को भगवान् का प्रियतम समझकर ही अभेद बुद्धि रखते है।' साधक सद्गुरु का शुद्ध भक्तिमय व्यवहार देखकर उन्हें भगवान् का प्रियतम भक्त मानकर भगवत् प्रसादी निर्माल्य और महाप्रसाद आदि से उनकी सेवा किया करते हैं। भगवद् बुद्धि से उनके चरणों में न

तो कभी तुलसी अर्पण करते हैं, न अप्रसादी द्रव्य से सेवा करते हैं। हाँ, उन्हें अन्यान्य भक्तों की तरह केवल भक्ततत्त्व ही न मानकर, भगवान् का कारुण्यघन अवतार जानकर अपने इष्टदेव के साथ अभिन्न ही समझते हैं। श्रीमत् जीवगोस्वामिपाद के इस वाक्य का मर्म यही है।

श्रीपाद ने कहा-''अहं तं गुरुं प्रपद्ये''-'मैं उन्हीं श्रीगुरुचरणारविन्दों में आश्रय लेता हूँ।' श्रीगुरुपादपद्मों में ऐकान्तिक शरणागति के फलस्वरूप साधक के दुर्जय अनर्थ नष्ट हो जाते हैं और भगवत् पादपद्मों में प्रेमसिद्धि सुलभ हो जाती है। ''तत्प्रसादी हि स्व-स्व नानाप्रतीकारदुस्त्यजानर्थहानौ परमभगवत् प्रसादसिद्धौ च मूलम्'' (भक्तिसन्दर्भः-अनु० २३७) अर्थात् नाना प्रतिकारों (उपायों, उपचारों) द्वारा दुस्त्यज साधक के अनर्थों के नाश के विषय में और भगवान् की परम प्रसन्नता की सिद्धि के विषय में श्रीगुरु की प्रसन्नता ही मूल कारण है।' तात्पर्य यही है कि भजनमार्ग में प्रविष्ट साधक की भजनावस्था में नाना प्रकार के गुरुतर अनर्थों का उदय हुआ करता है, जो सधक के अपने नाना प्रतीकारों या चेष्टाओं से भी नहीं मिटते; उन अनर्थों के विनाश में और भगवान् की परम प्रसन्नता की सिद्धि में भी श्रीगुरु की प्रसन्नता ही एकमात्र मूल कारण है। इससे यह समझ में आता है कि भगवद्भक्ति के साधन और उसके फल अथवा सभी अनर्थों की निवृत्ति के साथ सप्रेम भगवत्प्राप्ति का मूल ही है श्रीगुरु का प्रसाद! वह प्रसाद भी तब प्राप्त होता है, जब साधक एकान्त भाव से श्रीगुरु-सेवन करता है-'हि' का यही तात्पर्य है। इससे ठीक पहले ही आया है-''तत्र यद्यपि शरणापत्यैव सर्वं सिद्धति...तथापि वैशिष्ट्यलिप्सुः शक्तश्चेत् ततः भगवच्छास्त्रोपदेष्टृणां भगवन्मंत्रोपदेष्ट्रणां वा श्रीगुरुचरणानां नित्यमेव विशेषतः सेवां कुर्यात्'' (वही)। अर्थात् 'यद्यपि भगवत् शरणगति से ही सर्वसिद्धि हो जाती है, तथापि भगवत्भक्ति या भजन में विशिष्टता प्राप्त करने का इच्छुक व्यक्ति यदि समर्थ हो, तो भगवत् शास्त्र-उपदेष्टा शिक्षागुरु या भगवत् मन्त्र-उपदेष्टा दीक्षागुरु की विशेषरूप से नित्य ही सेवा करेगा। यहाँ 'विशेषतः सेवा' से एक प्रकार से सामान्य सेवा का भी स्मरण होता है। भगवान् के श्रवण, कीर्तन, अर्चन, वन्दनादि भक्ति-अङ्गों में अन्तर्भुक्त रूप से श्रीगुरु के ध्यान, अर्चन, प्रणाम आदि की बात शास्त्रों में है। इस प्रकार भगवत् भजनांगों के अन्तर्गत की गई श्रीगुरु-सेवा ही 'सामान्यतः सेवा' है; इसके द्वारा भी साधक क्रमशः प्रेमसिद्धि के सोपान पर पहुँच जाता है। किन्तु जो लोग श्रीगुरु-सेवा में ही भगवान् की विशेष प्रसन्नता जानकर भगवान् की कृपा विशेष प्राप्त करने के इच्छुक हैं, वे यदि गुरुसेवा को मुख्यरूप से लेकर उसके अन्तर्गत भगवत् श्रवण-कीर्तनादि करते हैं, तो इस विशेष गुरुसेवा द्वारा वे लोग ही भगवान् की समधिक करुणा प्राप्त कर धन्य होते हैं। इसलिये पद्मपुराण में देवहुति-स्तव में देखने को मिलता है-

''भक्तिर्यथा हरौ मेऽस्ति तद्वरिष्ठा गुरौ यदि।
ममास्ति तेन सत्येन सन्दर्शयतु मे हरिः॥

अर्थात् 'मेरी श्रीहरि में जैसी भक्ति है, उसकी अपेक्षा अधिक भक्ति यदि श्रीगुरु में हो, तो उसी सत्य के बल पर श्रीहरि मुझे दर्शन दें।' तभी श्रील ठाकुर महाशय ने लिखा है-

''श्रीगुरुचरणपद्म केवल भकतिसद्म
वन्दो मुँइ सावधान सने।
जाँहार प्रसादे भाइ, ए भव तरिया जाइ,
कृष्णप्राप्ति हय जाहा हने॥''

(प्रेमभक्तिचन्द्रिका)

यो मां दुस्तर-गेह-निर्जल - महाकूपादपारक्लमात्,
सद्यः सान्द्रदयाम्बुधिः प्रकृतितः स्वैरी कृपारज्जुभिः।
उद्धृत्यात्म - सरोजनिन्दिचरणप्रान्तं प्रपाद्य स्वयं,
श्रीदामोदरसाच्चकार तमहं चैतन्यचन्द्रं भजे॥५॥

अन्वय-प्रकृतितः (स्वभावतः) सान्द्रदयाम्बुधि यः (श्रीचैतन्यचन्द्रः) अपारक्लमात् (पारशून्य क्लम क्लेशो यत्र तस्मात्) दुस्तर गेह निर्जल-महाकूपात् सद्यः (तत्क्षणादेव) स्वैरी-कृपारज्जुभिः मां उद्धृत्य सरोजनिन्दि-आत्मचरणप्रान्तं प्रपाद्य (प्रापय्य) स्वयं श्रीदामोदर साच्चकार (श्रीस्वरूप गोस्वामिनि समर्पितवान्) तं चैतन्यचन्द्रं अह भजे॥५॥

अनुवाद-जिन्होंने अशेष क्लेशपूर्ण दुस्तर गृहरूपी निर्जल महाकूप से स्वतन्त्र कृपारज्जु द्वारा तत्क्षणात् मेरा उद्धार कर अपने सरोजनिन्दि (कमल को भी लज्जित करने वाले शोभासम्पन्न और सुशीतल श्रीचरणप्रान्त प्रदान कर स्वयं श्रीस्वरूप दामोदर के हाथों मुझे समर्पित किया था, उन्हीं स्वभाव से ही सान्द्र दया के सिन्धु श्रीचैतन्यचन्द्र का मैं भजन करता हूँ॥५॥

इष्ट-वन्दना

परिमलकणा व्याख्या-श्रीपाद इस श्लोक में बाह्यावेश में परम दयाल श्रीमन्महाप्रभु की अपार करुणा की बात याद कर उनकी वन्दना कर रहे हैं। श्रीचैतन्यदेव की कृपा होने पर समस्त विश्व के स्पृहणीय (वाञ्छनीय) विषय वैभव राज्य-सम्पद् आदि किस प्रकार घृणित और ज्वालामय लगने लगते हैं, यह तथ्य श्रीपाद की उक्ति से प्रकट हुआ है। वस्तुतः वैराग्य समन्वित भक्तिरस के आस्वादन से ब्रह्मानन्द अथवा मुक्तिपद भी तुच्छ फुत्कृत हो जाता है, राज्य सम्पदा की तो बात ही क्या? और फिर ''महाप्रभुर भक्तगणेर वैराग्य प्रधान। जाहा देखि प्रीत हय गौर भगवान्॥'' (चै०चै०)। प्रभु ने वाराणसी में श्रीमत् सनातन गोस्वामिपाद को भक्ति तत्त्व शिक्षा प्रदान कर श्रीवृन्दावन भेजा, तो अपने श्रीमुख से कहा-''काँथा-करंगिया मोर कांगाल भक्तगण। वृन्दावने आइले तार करिह पालन॥'' (वही)। श्रीचैतन्यचन्द्रोदय नाटक में देखने को मिलता है कि सन्यास लेने के पश्चात् प्रभु ने स्वयं श्रीअद्वैत आचार्य से कहा था-''बिना सर्वत्यागं भवति भजनं नह्यसुपतेः'', अर्थात् 'सर्वत्यागी हुए बिना प्राणनाथ श्रीकृष्ण का भजन नहीं होता।' वस्तुतः प्रभु का यह सिद्धान्त उनकी अपनी परिकल्पना नहीं है, सर्वत्यागी शरणागत को श्रीभगवान् के आत्मदान की बात सर्ववेदान्तसार श्रीमद्भागवत में भी देखने को मिलती है-

---

''कृपामय दीक्षागुरु प्रेमभक्ति कल्पतरु
श्रीयदुनन्दन नाम जाँर।
श्रीकृष्णेर प्रिय अति ताँर पदे रहु मति
जन्मे जन्मे प्रभु जे आमार॥
उन्नत प्रभावयुत कृपामय अद्भुत
प्रेमभक्ति-दाता शिरोमणि।
मो'हेन अधम जने कृपामृत वरिषणे
अभिषिक्ता करिला आपनि॥''४॥

''ये दारागारपुत्राप्त-प्राणान् वित्तमिमं परम्।
हित्वा मां शरणं याताः कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे॥'' (भा०-९/४/६५)

भगवान् ने महर्षि दुर्वासा से कहा-'हे ब्राह्मण! जो लोग पुत्र, दारा, गृह, स्वजन, धन, प्राण, इहलोक-परलोक सभी कुछ परित्याग कर मेरे शरणापन्न होते हैं, मैं उनका परित्याग करने के लिये उत्साही कैसे हो सकता हूँ?'

श्रीमत् रघुनाथ दास गोस्वामिपाद श्रीमन्महाप्रभु के नित्य परिकर हैं, फिर भी उन्होंने स्वयं साधना कर त्याग-वैराग्य की कठोरता और प्रेमभक्ति की मृदुलता के श्रेष्ठतम आदर्श की प्राण-प्रतिष्ठा की है, जिसके आलोक में विश्व के साधक त्याग-वैराग्य एवं प्रेम-साधना का पथ देख पाये हैं।

श्रीराधारानी के श्रीचरणों में विलाप-कुसुम अर्पित करने से पूर्व श्रीपाद का चित्त श्रीमन्महाप्रभु की कृपा के आलोक से उद्दीप्त हो उठा है। उन्हीं परम दयालु प्रभु की श्रीचरण-वन्दना करते हुए बोले-जो 'प्रकृतितः सान्द्र-दयाम्बुधिः' अर्थात् स्वभाव से ही निविड़ करुणा के सिन्धु हैं। प्रभु ने निरवधि करुणा के आकर्षण से श्रीपाद का चित्त-मन अधीर कर दिया! श्रीचैतन्य की कृपा से उन्हें इन्द्रसम वैभव, अप्सरासम स्त्री भयावह सर्प-वृश्चिक आदि से भरे ज्वालामय निर्जल दुस्तर महाकूप की तरह लगने लगे। प्रभु ने प्रेरणा देकर रघुनाथ को अपने अभिन्न-कलेवर करुणारस में विगलित-मूर्ति प्रभु निताइ चाँद का और भक्तवृन्द का करुणाभाजन बनाया। अन्त में श्रीगुरुरूप में स्वयं ने कार्य के बहाने निशान्त में उनके पास जाकर बन्धन-मोचन किया। इस प्रकार निविड़ करुणा के सागर प्रभु ने स्वतन्त्र कृपा-रज्जु से अशेष क्लेश से भरे दुस्तर संसाररूपी अन्धकूप से रघुनाथ का उद्धार किया। प्रभु की कृपा-रज्जु के आकर्षण से रघु बिना खाये, बिना सोये बारह दिनों में श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्र में प्रभु के श्रीचरणप्रान्त में जा पहुँचे। प्रभु के शोभामय, सुशीतल और कमल को भी लज्जित करने वाले श्रीचरणों की छाया में रघुनाथ के तप्त प्राण शीतल हो गये!

''स्वरूपादिसह गोसाँइ आछेन बसिया।
हेनकाले रघुनाथ मिलिला आसिया॥
अङ्गने दूरे रहि करेन प्रणिपात।
मुकुन्द दत्त कहे-एइ आइला रघुनाथ॥
प्रभु कहे-'आइस' तेंहो धरिल चरण।
उठि प्रभु कृपाय ताँरे कैल आलिंगन॥
स्वरूपादि सब भक्तेर चरण वन्दिल।
प्रभु-कृपा देखि सबे आलिंगन कैल॥
प्रभु कहे-कृष्णकृपा बलिष्ठ सभा हैते।
तोमाके काढ़िल विषय-विष्ठागर्त हैते॥
रघुनाथ मने कहे - कृष्ण नाहि जानि।
तोमार कृपाय काढ़िल आमा, एइ आमि मानि॥''

(चै०चै० - अन्त्य०, परि० ६)

श्रीपाद ने कहा-''स्वयं श्रीदामोदरसाच्चकार''-प्रभु ने स्वयं श्रीस्वरूप दामोदर के हाथों मुझे समर्पित किया था। राजकुमार रघुनाथ अनाहार-अनिद्रा और पथश्रम से क्लान्त हैं। उनकी सुकोमल देह रौद्र से जलकर मानो राख हो गई है। प्रभु ने उनकी क्षीणता और मलिनता देखकर कृपार्द्रचित्त हो स्वयं उनका हाथ पकड़कर स्वरूप के हाथों सौंप दिया।

''रघुनाथेर क्षीणता मालिन्य देखिया।
स्वरूपेरे कहे कृपा-आर्द्र-चित्त हइया-॥
एइ रघुनाथे आमि सोंपिलो तोमारे।
पुत्र - भृत्यरूपे तुमि करो अङ्गीकारे॥
तिन 'रघुनाथ' नाम हय आमार गणे।
'स्वरूपेर रघु' आजि हैते इहार नामे॥
एतो कहि रघुनाथेर हस्त धरिलो।
स्वरूपेर हस्ते ताँरे समर्पण कैलो॥'' (वही)

श्रीस्वरूप ने प्रभु का आदेश शिरोधार्य कर स्नेह-पूर्वक रघुनाथ को पुनः आलिंगन किया। श्रीरघुनाथ श्रीमन्महाप्रभु के दर्शन की तीव्र उत्कण्ठा लेकर देहगेहादि भूलकर प्रणय-आवेग से भरकर बिना खाये बिना सोये नीलाचल प्रभु के निकट आये हैं। उनकी मुखकान्ति मलिन पड़ गई है, यह देखकर भक्तवत्सल श्रीमन्महाप्रभु ने इस बात की ओर विशेष लक्ष्य रखने के लिये गोविन्द को आदेश दिया कि रघुनाथ के प्रसाद-सेवन आदि की व्यवस्था कुछ दिन भलीभाँति हो। फिर रघुनाथ को समुद्र-स्नान कर जगन्नाथ-दर्शन के पश्चात् प्रसाद-सेवन का आदेश देकर वे मध्याह्न करने चले गये। भक्तजन रघुनाथ के प्रति प्रभु की कृपा और मधुर व्यवहार देखकर विस्मय के साथ उनके भाग्य की भूयसी प्रशंसा करने लगे। रघुनाथ ने गोविन्द के पास पाँच दिन प्रसाद ग्रहण किया, तत्पश्चात् वे भिक्षावृत्ति को ही भजन के अनुकूल मानकर निष्किञ्चन भक्त की तरह मन्दिर के सिंहद्वार पर भिक्षा के लिये बैठने लगे। गोविन्द से यह संवाद प्राप्त कर रघुनाथ के वैराग्य को देखकर प्रभु के आनन्द की सीमा न रही।

''शुनि तुष्ट हइया प्रभु कहिते लागिला-।
भालो कैलो वैरागीर धर्म आचरिला॥
वैरागी करिबे सदा नामसंकीर्तन।
मागिया खाइया करे जीवन-रक्षण॥
वैरागी हइया जेबा करे परापेक्षा।
कार्यसिद्धि नहे, कृष्ण करेन उपेक्षा॥
वैरागी हइया करे जिह्वार लालस।
परमार्थ जाय तार, हय रसेर वश॥'' (वही)

एक दिन दैन्य की खान श्रीरघुनाथ ने स्वरूप दामोदर के माध्यम से अपने कर्तव्य के विषय में श्रीमन्महाप्रभु के साक्षात् उपदेश की भिक्षा माँगी, तो प्रभु ने हँसकर कहा-''स्वरूप की तरह साध्य-साधनतत्त्व मैं भी नहीं जानता। ये तुम्हारे उपदेष्टा हैं, इन्हीं से साध्य-साधनतत्त्व सीखना। फिर भी, यदि मेरी बात पर तुम्हारी श्रद्धा हो, तो संक्षेप में बताता हूँ-

''ग्राम्यकथा ना शुनिबे, ग्राम्यवार्ता ना कहिबे।
भालो ना खाइबे, आर भालो ना परिबे॥
अमानी मानद कृष्णनाम सदा लबे।
व्रजे राधाकृष्ण - सेवा मानसे करिबे॥ (वही)

यही श्रीमन्महाप्रभु का श्रीमुख-नि:सृत उपदेशामृत है, श्रीपाद स्वरूप ने इसी तत्त्व को विशेषरूप से निरूपित किया था। यह उपदेशामृत प्राप्त कर श्रीरघुनाथ प्रभु के पादपद्मों में प्रणत हुए, तो प्रभु ने उन्हें कृपालिंगन दानकर पुन: स्वरूप के हाथों सौंप दिया। सान्द्र-दया के सागर प्रभु की करुणा धारा में स्नान कर असीम गुणों की खान श्रीपाद रघुनाथ के भीतर क्रमश: असामान्य वैराग्य और अलौकिक प्रेमभक्ति के आचरण प्रकट होने लगे, जो अध्यात्म जगत् के भजन-इतिहास में एक अद्‌भुत और अभिनव घटना है।

श्रीरघुनाथ सिंहद्वार पर भिक्षा त्यागकर भजन की अनुकूलता के लिये अब छत्र में भिक्षा करने लगे। उनके ऐसे आचरण पर सन्तुष्ट होकर श्रीमन्महाप्रभु ने उन्हें श्रीगोवर्धन-शिला और गुञ्जामाला प्रदान की तथा जल-तुलसी द्वारा विशुद्ध सात्त्विक सेवा करने का उपदेश किया। ये दोनों वस्तुएँ श्रीशंकरानन्द सरस्वती ने वृन्दावन से लाकर प्रभु को उपहार में दी थीं। श्रीगौरसुन्दर ने तीन वर्ष इस शिला-माला की अपूर्व सेवा की थी।

''दुइ अपूर्व वस्तु पाइया प्रभु तुष्ट हैला।
स्मरणेर काले गले परे गुञ्जामाला॥
गोवर्धनेर शिला कभु हृदये नेत्रे धरे।
कभु नासाय घ्राण लय, कभु लय शिरे॥
नेत्रजले सेइ शिला भिजे निरन्तर।
शिलाके कहेन प्रभु 'कृष्ण-कलेवर'॥
एइ मत तिन वत्सर शिला-माला धरिलो।
तुष्ट हइया शिला माला रघुनाथे दिलो॥
प्रभु कहे-सेइ शिला 'कृष्णेर विग्रह'।
इहार सेवा करो तुम करिया आग्रह॥
एइ शिलार करो तुमि सात्त्विक पूजन।
अचिराते पावे तुमि कृष्ण-प्रेमधन॥
× × ×
रघुनाथ सेइ शिला-माला जबे पाइलो।
गोसाइँर अभिप्राय एइ भावना करिलो-॥
शिला दिया गोसाइँ मोरे समर्पिला गोवर्धने।
गुञ्जामाला दिया दिला राधिका-चरणे॥
आनन्दे रघुनाथेर बाह्य विस्मरण।
कायमने सेविलेन गौरांगचरण॥'' (वही)

श्रील रघुनाथ का वैराग्य क्रमशः चरम सीमा पर पहुँच गया था। उन्होंने छत्र में प्रसाद ग्रहण करना भी त्याग दिया। जो प्रसाद बिकता नहीं था, दो-तीन दिन पश्चात् सड़ा हुआ देखकर जिस प्रसाद को दुकानदार सिंहद्वार पर गायों के आगे फेंक देते थे जिस पर्युषित प्रसाद (चावल) से दुर्गन्ध आती थी और जिसे गायें भी नहीं खा पाती थीं, उसी प्रसाद को रघुनाथ उठा लाते। वे उसे बहुत-से जल से धोते, फिर उसमें जो कड़ा-कड़ा मिलता, उसी को भक्तिपूर्वक ग्रहण कर वे प्राण-रक्षा करते। एक दिन श्रीस्वरूप ने रघुनाथ को ऐसा करते देख लिया, तो उन्होंने किंचित् प्रसाद की प्रार्थना की और प्रसाद प्राप्त कर कहा-

''स्वरूप कहे - ऐछे अमृत खाओ निति निति।
आमा सभाय नाहि दाओ कि तोमार प्रकृति?'' (वही)

गोविन्द से यह संवाद प्राप्त कर श्रीमन्महाप्रभु एक दिन स्वयं वहाँ पहुँच गये। उस प्रसाद में से किंचित् भक्षण कर वे पुनः उसे लेने को उद्यत हुए, तो स्वरूप ने उन्हें यह कहकर रोका कि यह तुम्हारे योग्य नहीं है। श्रीरघुनाथ को वैराग्य-निष्ठा और भजन-निष्ठा का माधुर्य प्रसाद के साथ मिल गया था, परिणामस्वरूप प्रभु को ऐसा चमत्कारपूर्ण लगा कि -

''प्रभु कहे - निति निति नाना प्रसाद खाइ।
ऐछे स्वाद आर कोनो प्रसादे ना पाइ॥
एइमत रघुनाथे बारबार कृपा करे।
रघुनाथेर वैराग्य देखि सन्तोष अन्तरे॥'' (वही)

प्रभु के इस कृपामृत-रस में डूबे रघुनाथ देह की सुधबुध भूलकर नित्य साढ़े-बाईस घण्टे भजन में मग्न रहते! आहार-निद्रा में डेढ़ घण्टे बीतते। किसी-किसी दिन भजनावेश के कारण वह भी नहीं। निद्रावेश में भी श्रीराधाकृष्ण की स्फूर्ति होती। उन्होंने श्रीमन्महाप्रभु की आज्ञा का अक्षरशः प्रतिपालन कर विश्व में भजन-परिपाटी का एक अपूर्व आदर्श प्रकट किया है। तभी तो जगज्जीव आज भी उन्हें गहन श्रद्धा-भक्ति के साथ स्मरण करते हैं।

''मोर गेह महाकूप, अति भयंकर रूप,
जलहीन अति सुदुस्तर।
जीवन उपाय शून्य, अपार से दुःख पूर्ण,
ताहे ह'ते छिलाम कातर॥
पतित-तारण केबा, मो सम पतिते जेबा,
निजगुणे करिबे उद्धार।
अधम जनार बन्धु, अति सान्द्र दयासिन्धु,
कृपा-रज्जु करिया विस्तार॥
बान्धिया आमार गले, उठाइया अवहेले,
करुणा-प्रकृति हेनो जाँर।
चरण-सरोज पाशे, राखिला ए दीन दासे,
तराइला दुःखेर पाथार॥

वैराग्ययुग् भक्तिरसं प्रयत्नै, - रपाययन्मामनभीप्सुमन्धम्।
कृपाम्बुधिर्यः परदुःखदुःखी, सनतानं तं प्रभुमाश्रयामि॥६॥

अन्वय-कृपाम्बुधिः परदुःखदुःखी यः (सनातनः प्रभु) अन्धं (अज्ञानं) अनभीप्सु (भक्तिसमिति शेषः) मां वैराग्ययुग्भक्तिरसं प्रयत्नैः अपाययत् तं प्रभुं सनातनं आश्रयामि॥६॥

अनुवाद-करुणासागर और दूसरे के दुःख में दुःखी जिन श्रीसनातन प्रभु ने मुझ अज्ञानान्ध अतएव भक्तिरसास्वादन के अनिच्छुक को वैराग्यसमन्वित भक्तिरस यत्नपूर्वक पान कराया है, मैं उन्हीं शिक्षागुरु श्रीमत् सनातन प्रभु का आश्रय ग्रहण करता हूँ॥६॥

शिक्षागुरु की वन्दना

परिमलकणा व्याख्या-श्रीपाद इस श्लोक में अपने शिक्षागुरु श्रीमत् सनातन गोस्वामिपाद की वन्दना कर रहे हैं। श्रीपाद श्रीमन्महाप्रभु के नित्य परिकर हैं, इसलिये प्रेमभक्ति और विषय-वैराग्य उनकी सहजात सम्पद् है। श्रीचैतन्यचरितामृत में देखने को मिलता है-

"साड़े सात प्रहर जाय जाँहार स्मरणे।
आहार-निद्रा चारिदण्ड, सेहो नहे कोन दिने॥
वैराग्येर कथा ताँर अद्भुत कथन।
आजन्म ना दिलो जिह्वाय रसेर स्पर्शन॥
छिन्डा कानि काँथा बिनु ना परे वसन।
सावधाने कैल प्रभुर आज्ञार पालत॥" (चै०च० अन्त्य०, परि० ६)

इतने पर भी दैन्य की खान श्रीपाद प्रभु कहते हैं-''मैं अज्ञानान्ध, अतएव भक्तिरसास्वादन का अनिच्छुक था। करुणासागर और परदुःख में दुःखी श्रीसनातन प्रभु ने मुझे यत्नपूर्वक वैराग्य-समन्वित भक्तिरस पान कराया है।'' श्रीमत् सनातन गोस्वामिपाद वैराग्य और भक्तिरस की ही मूर्ति हैं। श्रीपाद कविकर्णपूर ने लिखा है-

''गौड़ेन्द्रस्य सभाविभूषणमणिस्त्यक्त्वा य ऋद्धां श्रियं,
रूपस्याग्रज एष एव तरुणीं वैराग्यलक्ष्मीं दधे।
अन्तर्भक्तिरसेन पूर्णहृदयो बाह्येऽवधूताकृतिः
शैवालैः पिहितं महासर इव प्रतिप्रदस्तद्विदाम्॥''
(श्रीचैतन्यचन्द्रोदय नाटक - ९/४५)

''जो गौड़ेश्वर हुसेन साह की सभा को सुशोभित करने वाले मणिस्वरूप थे, श्रीरूपगोस्वामी के ज्येष्ठ भ्राता उन्हीं श्रीसनातन गोस्वामी ने समृद्ध सम्पत्ति लक्ष्मी का परित्याग कर नवीन वैराग्यलक्ष्मी का आश्रय ग्रहण

कृपा करि तार परे, श्रीस्वरूप-दामोदरे,
जिनि मोरे कैला समर्पण।
सेइ श्रीगौराङ्ग-पाय बिकाइया आपनाय,
कायमने लइनु शरण॥''५॥

किया। हृदय भक्तिरस से परिपूर्ण होने के कारण वे शैवालआच्छादित महासरोवर की तरह बाहर से अवधूताकृति होकर भी भक्तितत्त्ववेत्ताओं के प्रीतिप्रद (आनन्ददायक) थे।'' श्रीपाद सनातन श्रीरघुनाथ को परम सुहृद् अथवा सहाय (मित्र) ही मानते थे। श्रीवृहत्तोषणी टीका के आरम्भ में स्वयं लिखा है–

''राधाप्रियप्रेमविशेषपुष्टो, गोपालभट्टो रघुनाथदासः।
स्यातामुभौ यत्र सुहृत्-सहायौ, को नाम सोऽर्थो न भवेत् सुसिद्धः॥''

''श्रीराधा के परमप्रिय, प्रेमविशेष (श्रीराधा के दास्य प्रेम) द्वारा परिपुष्ट श्रीगोपालभट्ट और श्रीरघुनाथ दास ये दोनों जिसके सुहृत् और सहाय हैं, उसका कौन-सा अभीष्ट सुसिद्ध नहीं होता?'' श्रीमत् जीवगोस्वामिपाद ने भी लघुतोषणी व्याख्या के अन्त में श्रीरूप-सनातन के मित्र के रूप में ही श्रीपाद रघुनाथ का उल्लेख किया है–

''यन्मित्रं रघुनाथदास इति विख्यातः क्षितौ राधिका-
कृष्णप्रेममहार्णवोर्मिनिवहे घूर्णन् सदा दीव्यति।
दृष्टान्तप्रकर - प्रभाभरमतीत्यैवानयोर्भ्राजतो-
र्यस्तुल्यत्वपदं मतस्त्रिभुवने साश्चर्यमार्य्योत्तिमैः॥

अर्थात् ''श्रीपाद सनातन और रूपगोस्वामी के मित्र के रूप में ही श्रीरघुनाथ ने पृथ्वी पर ख्याति प्राप्त की है। वे सर्वदा श्रीश्रीराधामाधव के प्रेमसिन्धु की तरंगों में विघूर्णित होकर विराजते हैं। विज्ञजन कहते हैं-श्रीरूप-सनातन विश्व में अनुपम हैं, किन्तु आश्चर्य की बात यह है कि श्रीरघुनाथ ने उनके ही समान पद प्राप्त किया हैं।'' फिर भी दैन्य की खान श्रीपाद रघुनाथ ने श्रीरूप-सनातन को गुरु मानकर दोनों के चरणों में रति-मति की प्रार्थना की है–

''यदीच्छेरावासं व्रजभुवि सरागं प्रतिजनु-
र्युवद्वन्द्वं तच्चेत् परिचरितुमारादभिलषेः।
स्वरूपं श्रीरूपं सगणमिह तस्याग्रजमपि
स्फुटं प्रेम्ना नित्यं स्मर नम तदा त्वं शृणु मनः॥'' (मनःशिक्षा-३)

''हे मन! यदि प्रति जन्म में अनुराग के साथ व्रजवास कर श्रीश्रीराधाकृष्ण की सेवा करने की अभिलाषा हो, तो श्रीस्वरूप, गणसह श्रीरूप और श्रीसनातन को भक्तिपूर्वक नित्य ही स्मरण-प्रणाम करो।'' 'रघुनाथेर नियम जेनो पाषाणेर रेखा', अर्थात् रघुनाथ के नियम पत्थर पर खोदी रेखा की तरह अमिट हैं। उन्हीं रघुनाथ ने स्वनियमदशक में दस भजन-नियमों का उल्लेख किया हैं, प्रथम में ही कहते हैं–

''गुरौ मन्त्रे नाम्नि प्रभुवर-शचीगर्भजपदे
स्वरूपे श्रीरूपे गणयुजि तदीय प्रथमजे।
गिरीन्द्रे गान्धर्वासरसि मधुपूर्य्यां व्रजवने
व्रजे भक्ते गोष्ठालयिषु परमास्तां मम रतिः॥''

''श्रीगुरुदेव में, इष्ट मन्त्र में, श्रीहरिनाम में, श्रीगौरांगपाद-पद्मों में, श्रीस्वरूप-गणसह श्रीरूप-श्रीसनातन में, श्रीगोवर्धन-श्रीराधाकुण्ड में, मथुरा में, श्रीवृन्दावन में, गोष्ठ में, भक्तों और व्रजवासियों में मेरी परमारति

रहे।'' श्रीपाद ने गोवर्धन में भृगुपात कर श्रीचैतन्य-विरहतापित देह त्यागने का संकल्प किया, तो करुणासागर और परदु:ख में दु:खी श्रीरूप-सनातन ने उनकी प्राण रक्षा की थी।

''चैतन्येर अगोचरे, निज केश छिंड़ि करे,
विरहे आकुल व्रजे गेला।
देह त्याग करि मने, गेला गिरिगोवर्धने,
दुइ गोंसाइँ ताँहारे देखिला॥
धरि रूप-सनातन, राखिला ताँर जीवन,
देहत्याग करिते ना दिला।
दुइ गोसाइँर आज्ञा पाइया, राधाकुण्डतटे गिया,
वास करि नियम करिला॥'' (पदकल्पतरु)

श्रीसनातन बोले-'रघुनाथ! श्रीगुरु-गौरांग की करुणा ही हम लोगों का सर्वस्व है। मैंने भी एकबार पुरीधाम में निर्वेदवश रथ के नीचे प्राण त्यागने का संकल्प किया था। अन्तर्यामी प्रभु ने मन की बात जानकर कहा था-

''सनातन! देहत्यागे कृष्ण यदि पाइये।
कोटिदेह क्षणेके तो छाड़िते पारिये॥
देहत्यागे कृष्ण ना पाइ, पाइये भजने।
कृष्णप्राप्ति उपाय कोनो नाहि भक्ति बिने॥
देह त्यागादि एइ सब तमोधर्म।
तमो रजो धर्मे कृष्णेर ना पाइये मर्म॥''

(चै०चै० अन्त्य०, परि० ४)

'अतएव रघुनाथ! श्रीगौरांग की प्रीति के लिये धैर्य धारण कर श्रीराधाकुण्ड का आश्रय लेकर भजन करो।' श्रीसनातन के आदेश से श्रीपाद देहत्याग का संकल्प त्यागकर श्रीकुण्ड के आश्रय में भजनरस में निमग्न हुए। (एकबार) श्रीरघुनाथ देह-दैहिकादि के आवेश से रहित होकर श्रीकुण्ड-अरण्य में वृक्ष के नीचे भजन कर रहे हैं। इसी समय -

''एक दिन सनातन वृन्दावन हैते।
एथा आइला श्रीगोपालभट्टेर वासाते॥
मानस - पावन घाटे चलिलेन स्नाने।
देखे - एक व्याघ्र जल पिये सेइखाने॥
रघुनाथ ध्यानावेश आछेन बसिया।
व्याघ्र वने गेला ताँर निकट हइया॥
कतक्षणे रघुनाथ चाहे चारिपाने।
देखेन श्रीसनातन आइसेन स्नाने॥

अत्युत्कटेन नितरां विरहानलेन, दन्दह्यमानहृदया किल कापि दासी।
हा स्वामिनि क्षणमिह प्रणयेन गाढ़, - माक्रन्दनेन विधुरा विलपामि पद्यैः ॥७॥

अन्वय-हा स्वामिनि! (श्रीराधे!) इह (गोवर्धनैकदेशे) कापि (अति निकृष्टा) दासी (अहम्) अत्युत्कटेन विरहानलेन नितरां किल दन्दह्यमानहृदया (तथा) आक्रन्दनेन विधुरा (व्याकुला सती) प्रणयेन गाढ़' (दृढ़ यथा स्यात्तथा) क्षणं (व्यापार शून्यं यथा स्यात्तथा) पद्यैः विलपामि ॥७॥

अनुवाद-हा स्वामिनि श्रीराधे! मैं तुम्हारी कोई एक अयोग्य दासी हूँ, तुम्हारे अदर्शन के कारण उत्कट विरहानल मेरे हृदय को अतिशय दग्ध कर रहा है-उच्चक्रन्दन करते-करते मैं बड़ी व्याकुल हो गई हूँ। अतएव, श्रीगोवर्धन के एक प्रान्त में (श्रीकुण्डतट पर) बैठकर दृढ़ प्रणय से भरी चेष्टाशून्य होकर कुछेक पद्यों में विलाप कर रही हूँ॥७॥

उत्कट विरहानल

परिमलकणा व्याख्या-श्रीपाद रघुनाथदास गोस्वामिचरण ने इससे पूर्व तीन श्लोकों में स्वरूपावेश में और तीन में बाह्यावेश अथवा साधकावेश में मंगलाचरण किया है। अब इस श्लोक से वे पूर्ण स्वरूपावेश में श्रीराधा के श्रीचरण प्रान्त में विलापकुसुमाञ्जलि अर्पित कर रहे हैं। उनके राधादासीत्व के पूर्णतम आवेश ने अन्य सभी आवेशों को कवलित कर लिया है! उनका बाह्यावेश भी प्राकृत नहीं है, कारण-वे श्रीमन्महाप्रभु के परिकर हैं। फिर भी वह स्वरूप की विस्मृति है। विशुद्ध राधादास्य की अपूर्व निविड़ता। श्रीराधाचरणों को छोड़ और अवलम्बन नहीं, तभी विरह-सन्ताप से दग्ध ज्वाला2मय हृदय है। उत्कट विरहानल! निरुपाय हैं इसलिये निवेदन किये बिना रह नहीं सकते। श्रीराधारानी निकट नहीं हैं, बस यही अभाव-बोध है, और कोई अभाव बोध नहीं

भूमिते पड़िया सनातने प्रणमिलो।
सनातन स्नेहवशे आलिंगन कैलो॥
रघुनाथ प्रति स्नेहे कहे धीरे धीरे।
वृक्षतल हैते एबे रहिबे कुटिरे॥
जानाइया विशेष गोस्वामी गेला स्नाने।
कुटीरेर आरम्भ हइलो सेइ दिने॥
अन्य हित हेतु रघुनाथ सेइ हैते।
रहिलेन कुटीरे गोसाईँर आज्ञामते॥'' (भक्तिरत्नाकर-तरंग ५)

श्रीसनातन के इसी स्नेह और करुणा का स्मरण कर श्रीपाद कहते हैं-''जिन करुणासागर परदुःख में दुःखी श्रीसनातन प्रभु ने अज्ञानान्ध भक्तिरसास्वादन के अनिच्छुक मुझे यत्नपूर्वक वैराग्ययुक्त भक्तिरस का पान कराया है, उनके श्रीचरणों का आश्रय लेता हूँ।''

''जय जय शिक्षागुरु प्रभु सनातन। दयार सागर दीन पतितपावन।
वैराग्य ओ भक्तिरस एकत्र लइया। मोरे पान कराइला यतन करिया॥
आमि अनिच्छुक मन्दमति सुपामर। जाचिया करालो पान कृपार सागर॥
परदुःखे दुःखी हेनो नाहि धरातले। आश्रय लइनु ताँर चरणकमले॥''६॥

है। केवल हाहाकार! 'कहाँ हो प्रेममयी राधे! मैं जिसकी दासी हूँ उसकी प्रत्याशी हूँ। श्यामसुन्दर तो इसीलिये अच्छे लगते हैं कि वे तुम्हारे कान्त हैं। परिपूर्ण आत्मसमर्पण तो तुम्हीं को है। तुम्हें छोड़कर और क्या लेकर रहूँगी? एकबार यह विलाप सुनकर करुणा कर मेरी ओर देखो।' श्रीपाद का अप्रकट काल जितना ही निकट आता जा रहा था, उतने ही आकुल हो रहे थे-अपने मञ्जरीस्वरूप में आविष्ट होकर श्रीराधा के दर्शन और साक्षात् सेवा के लिये, महाप्रेमवती सेविका की तरह! आग्नेयगिरि-जैसे विरहानल की वह तीव्र ज्वाला ही विलापकुसुमाञ्जलि में उद्‌गीर्ण हुई है। इसमें महाविरह का जो हृदयविदारक क्रन्दन और विलाप ध्वनित हुआ है, वह एक ओर गम्भीरता एवं असीमता में सिन्धु को भी पराभूत करता है, तो दूसरी ओर तीव्रता में महासन्तापक अग्निपर्वत के अनल-उद्‌गार को भी धिक्कारता है!

कहा जा सकता है कि यदि भगवद्‌भजन का फल ऐसा महासन्तापमय रोदन और विलाप ही है, तब तो प्रेम की अपुरुषार्थता ही प्रकट हुई, कारण-सुख या आनन्द ही तो पुरुषार्थ है। इस तरह की बात उन्हीं लोगों के मन में उठेगी, जिन्होंने प्रेम का-विशेषत: व्रजप्रेम का आस्वादन प्राप्त नहीं किया। वस्तुत: श्रीकृष्ण-विरह जनित दु:ख देखने में आर्ति या वेदना-जैसा लगने पर भी तत्त्वत: वह आनन्द का ही घनीभूत परिपाक विशेष है। प्रेम के दो कलेवर हैं-एक मिलन, दूसरा विरह। इसीलिये प्रेमिकों को सदैव श्रीकृष्ण-विरह के महादु:ख और मिलन के परमानन्द सागर में डूबे रहना होता है। सांसारिक सुख-दु:ख के साथ इसकी कोई समानता नहीं-यह केवल प्रेमिक भक्तजनों के अनुभव की वस्तु है। ''एइ प्रेमा जार मने, तार विक्रम सेइ जाने, जेनो विषामृते एकत्र मिलन'' (चै०च०)। इस सम्बन्ध में श्रीमत् सनातन गोस्वामिपाद ने अपने 'श्रीवृहद्‌भागवामृतम्' ग्रन्थ में लिखा है-

''प्राग्यद्यपि प्रेमकृतात् प्रियाणां विच्छेददावानलवेगतोऽन्त:।
सन्तापजातेन दुरन्तशोकावेशेन गाढं भवतीव दु:खम्॥
तथापि सम्भोगसुखादपि स्तुत: स कोऽप्यनिर्वाच्यतमो मनोरम:।
प्रमोदराशि: परिणामतो ध्रुवं तत्र स्फुरेत्तद्रसिकैकवेद्य:॥''

(वृ०भा० १/७/१२५/१२६)

अर्थात् ''यद्यपि पहले प्रियजन के विरहरूपी दावानल-वेग से अन्त:करण में तीव्र संताप उत्पन्न होता है और उससे असीम शोक प्रकट होता है तथा उस शोक के आवेग के कारण हृदय में अतिशय दु:ख होता है, तथापि उस दु:ख का परिणाम सुखस्वरूप होने के कारण सम्भोगानन्द से भी कहीं अधिक किसी एक अनिर्वचनीय मनोरम प्रमोदराशि की स्फूर्ति करा देता है। अर्थात् विरह जनित प्रगाढ़ दु:ख की परिपक्व अवस्था में प्रमोदराशि का उदय होता है। यह एकमात्र रसिकजनों के अनुभव की बात है।'' अर्थात् विरहजनित दु:ख आपातत: दुख की तरह प्रतीत होते हुए भी वह सुखस्वरूप या सुख का ही घनीभूत परिपाक विशेष होता है। 'यथाग्नि-प्रतियोगिघन-हिमादिस्पर्शेन पादाद्यङ्गेषु जायमान परममहाजाड्यस्य ज्वलदङ्गारस्पर्शवदभिज्ञा स्यात्। तत्र हि यथोङ्गरस्पर्शप्रतीतिर्मिथ्या परममहाजाड्यमेव सत्यम्, तथात्रापि दु:खस्य प्रतीतेर्मिथ्यात्वमेव सुखस्यैव सत्यत्वं विज्ञेयम्'' (वही टीका-१/७/१२८)। इस विषय में यह दृष्टान्त है : जैसे अग्निप्रतियोगी घनहिमादि (वर्फ खण्ड) के स्पर्श से शरीर (पर आदि) में महाजड़ता आने से जलते अङ्गारे के स्पर्श जैसी प्रतीति होती है,

किन्तु वह ज्वलन्त अङ्गार के स्पर्श की प्रतीति मिथ्या होती है और महाजड़ता ही सत्य होता है, वैसे ही भगवत् विरह में दुख की प्रतीति मिथ्या होती है, और महासुख को ही सत्य जानना होगा। यही कारण है कि व्रजवासियों के प्रेम में सतत विरह की प्रचुरता देखने में आती है। विरह ने ही उनके प्रेम को इतना उन्नत और महान् कर रखा है। कृष्णविरह जनित प्रेमविशेष का परम महत्व और उदय व्रजवासी ही आस्वादन किया करते हैं। यद्यपि भगवत् प्राप्ति के अभाव में विरह दशा का उदय सभी भक्तों में होता है, सही है, तथापि उनमें वैसे प्रेम का अभाव होने से व्रजवासियों की तरह विरह-आर्ति सम्यक् उदय नहीं होती, और इसीलिये उन्हें महासुख विशेष भी प्राप्त नहीं होता। व्रजवासियों में भी श्रीराधा में प्रेम परम महान् है, तभी माथुर-विरह में उनमें अनन्य साधारण दिव्योन्माद की दशा का उदय होता है। इसी में प्रेमानन्द की चरमता है, इसीलिये गम्भीरालीला में यह दिव्योन्मादरस ही श्रीमन्महाप्रभु का आस्वाद्य था। राधाभाव के ध्रुवानुस्मृति (निरन्तर चिन्तन) सागर में निमग्न श्रीगौरसुन्दर के उस अपूर्व एवं अलौकिक लीलाविलास के साक्षात् द्रष्टा हैं श्रीपाद रघुनाथ, इसीलिये उनमें भी उसी विरहलीला का छायाभास देखा जाता है।

श्रीराधा-विरही रघुनाथ श्रीकुण्डतीर पर फुत्कार कर रो रहे हैं-'हा स्वामिनी! तुम्हारा विरह अब और नहीं सह सकती।' यह सम्बोधन उनके हृदय के पुञ्जीभूत विरह-दु:ख का व्यञ्जक है! हृदय के निभृत स्थान की भाषा! आर्ति की पराकाष्ठा! 'स्वामिनी!' सम्बोधन कितना मधुर है! उसमें एक आवेशभरी मादकता है। मन में देहावेश की कोई गन्ध भी है, ऐसा नहीं लगता। वे स्वयं को तुलसी मञ्जरी ही समझ रहे हैं। साधक को भी अपने स्वरूपावेश के प्रति तीव्र दृष्टि रखनी चाहिये। माया की दिशा (आकर्षण) पूरी तरह से शून्य हुए बिना स्वामिनी की आहट सुनाई नहीं देती। दूसरी ओर मन लगाने से वे भाग जाती हैं। कहती हैं-'पहले मेरी होना पड़ेगा, मुझे सम्पूर्ण आत्मसमर्पण कर छाया की तरह मेरे साथ-साथ रहना होगा, तभी तो मेरी आहट सुनाई देगी!

श्रीपाद रोते-रोते विवश हो गये हैं। अपने हृदय की वेदना श्लोक-माध्यम से निवेदन कर रहे हैं। 'हा स्वामिनि! तुम्हें छोड़कर मेरा तो और कोई इस विश्व में नहीं है। किसे लेकर रहूँगी? तुम्हारे दर्शन और सेवा से रहित यह जीवनभार और नहीं ढो सकती।' ''तोमार दर्शन बिने, अधन्य एइ रात्रिदिने, एइ काल ना जाय काटानों।'' श्रीपाद की ऐसी अवस्था है।

ऐसी विरह-वेदना का कारण भी श्रीपाद स्वयं बता रहे हैं-''कापि दासी।'' 'मैं तुम्हारी दीन दासी हूँ तभी तुम्हारी साक्षात् सेवा के अभाव में हृदय में इतनी ज्वाला है।' राधाकिंकरियों का भाव श्रीराधारानी के साथ तादात्म्य रखता है। जैसे श्रीमती अखण्ड महाभाव की मूर्ति हैं, वैसे ही किंकरियाँ अखण्ड सेवारस की मूर्तियाँ हैं। उनके स्वरूप सेवारस से गठित हैं। मर्म (हृदय की बात) जानकर श्रीयुगल की सेवा करने में किंकरियों-जैसा योग्य पात्र कोई नहीं, तभी तो सेवा के अभाव में इतनी आर्ति है। स्वामिनीजी के मानस का अनुभव ग्रहण करने योग्य अन्त:करण किंकरियों के पास ही है, सखियों के पास भी नहीं।

श्रीराधा मानिनी हैं। उनका मान शान्त करने के लिये श्रीकृष्ण स्त्रीवेश में आ रहे हैं। श्रीमती के इंगित को समझने वाली मञ्जरी उन्हें भर्त्सना कर कुञ्ज से खदेड़ देती है।

''शठोऽयं नावेक्ष्यः पुनरिह मया मानधनया,
विशन्तं स्त्रीवेशं सुबलसुहृदं वारय गिरा।
इदन्ते साकूतं वचनमवधार्योच्छलितधी-
श्छलाटोपैर्गोपप्रवरमवरोत्स्यामि किमहम्॥''

(उत्कलिकावल्लरि-५९)

''हे श्रीराधिके! तुम्हारे मानिनी होने पर (मैं उस धूर्त का मुख और नहीं देखूँगी, देखो, सुबलसुहृत कृष्ण स्त्रीवेश धारण कर मेरे कुञ्ज में आ रहा है, उसे रोको-) तुम्हारा ऐसा अभिप्राय समझकर तुम्हारे इंगित को जानने वाली मैं उस गोपप्रवर कृष्ण को ऐसे छलाटोप वाक्य कहकर कुञ्ज से विताड़ित कर दूँगी-हे धूर्त! यहाँ दैत्य कोई नहीं, जिसे तुम इस मोहिनीवेश से मोहित करोगे, हम श्रीराधा की किंकरियाँ हैं, तुम्हारी चतुराई जानती हैं, अपनी शठता की बात यादकर कुञ्ज से शीघ्र चलते बनो।'' ''इंगिते बुझिबो सब काज'' (ठाकुर महाशय)। श्रीकृष्ण भी श्रीराधा के हृदय का भाव नहीं समझ सके, तभी तो गौर बने। तीन वाञ्छायें अपूर्ण रहीं, तभी तो श्यामसुन्दर गौर हुए। प्रेयसी की प्रणय-महिमा न समझ पाने के कारण लोभ उत्पन्न हुआ था। श्रीमती की भावकांति का आश्रय लेकर आस्वादन किया। किसी भी बोझे (भार) को आँखों से देखकर नहीं जाना जाता कि उसका वजन कितना है। कन्धे पर रखो, तभी पता चलता है। प्रेयसी के भाव का वजन मालूम करने में उत्कट अवस्था हो गई।

''रोमकूपे रक्तोद्गम, दन्त सब हाले।
क्षणे अङ्ग क्षीण हय, क्षणे अङ्ग फूले॥
गम्भीरा-भितरे रात्र्ये नाहि निद्रा-लव।
भित्त्ये मुख-शिर घषे,-क्षत हय सब॥
× × ×
काँहा नाहि शुनि जे जे भावेर विकार।
सेइ भाव हय प्रभुर शरीरे प्रचार॥
हस्त-पदेर सन्धि जत वितस्ति-प्रमाणे।
सन्धि छाड़ि भिन्न हये चर्म रहे स्थाने॥
हस्त पद शिर सब शरीर - भितरे।
प्रविष्ट हय - कूर्मरूप देखिये प्रभुरे॥'' (चै०च०)

श्रीराधा का भाव समझने में अखण्ड अद्वय ज्ञानतत्त्व की यह अवस्था! किन्तु राधाकिंकरी सब कुछ समझती है। उसे भावी लीला तक की अनुभूति है। क्या लीला होगी, पहले ही जानकर तदनुरूप कुञ्ज-सज्जा करती हैं। शय्या एक जने के योग्य तकिया एक, क्या लीला होगी अनुभव से जानने की बात है। ललितादि सखियाँ भी जानती हैं कि किंकरियाँ निगूढ़ सेवा की अधिकारिणी है; तभी वे किंकरियों को ही रहस्यमय निकुञ्ज-सेवा में नियुक्त करती हैं। ''ललिता आदेश पाइया, सेवन करिबो जाइया, प्रियसखी संगे हर्ष मने'' (ठाकुर महाशय)। किंकरियों का भाव महाभाव के साथ तादात्म्य प्राप्त किया है। महाभावमयी हैं श्रीराधारानी, कृष्णवाञ्छापूर्ति के लिये साक्षात् चिन्तामणि-स्वरूपा! ''सेइ महाभाव हय चिन्तामणि-सार। कृष्णवाञ्छा पूर्ण

करे-एइ कार्य जार।'' (चै०च०)। और किंकरियाँ हैं युगलवाञ्छा पूर्ति की चिन्तामणि! तभी तो श्रीकृष्ण श्रीवृन्दावनेश्वरी का कोई अनिर्वचनीय प्रसाद प्राप्त करने की कामना से किंकरियों की ही शरण लेते हैं।

''यस्यास्ते वत किंकरीषु बहुशश्चाटुनि वृन्दाटवी-
कन्दर्पः कुरुते तवैव किमपि प्रेप्सुः प्रसादोत्सवम्॥'' (राधारस-सुधानिधि-९४)

''हे राधे! तुम्हारे किसी अनिर्वचनीय प्रसाद की कामना से वृन्दावन-कन्दर्प श्रीकृष्ण तुम्हारी किंकरियों के आगे हर्ष से भरकर बड़ी चाटुवाणी का विस्तार किया करते हैं।'' उसी तरह श्रीराधा भी श्रीकृष्ण-संग की कामना से अभिन्न प्राण किंकरियों का ही आश्रय लेती हैं। श्रीश्रीराधामाधव किंकरियों की अद्‌भुत सेवा-परिपाटी की मन ही मन प्रशंसा करते हैं।

एकबार रासनृत्य में श्रीकृष्ण वंशी बजा रहे हैं, स्वामिनीजी नृत्य कर रही हैं। श्रीमती के एक चरण का नूपुर निकल गया है। प्रेममयी के नूपुरों की झंकार श्याम के वंशी-नाद को समृद्ध बना रही थी। अब उसका अभाव हो गया। श्याम ने अपना नृत्य-माधुर्य प्रकट करते हुए सभी की दृष्टि से बचकर श्रीमती के चरण में वह नूपुर पहना दिया। सोचने लगे-'किंकरी की सेवा की तरह (मेरी यह) सेवा प्रगाढ़ प्रेममय तो नहीं हुई। श्रीमती की सेवा के विषय में दासी के भाव का ही सम्पूर्ण गौरव है।' यही कारण है कि अखिल भक्तिभावमय अवतार श्रीमन्महाप्रभु में राधा-रसमाधुरी आस्वादन के पश्चात् भी मञ्जरीभाव आस्वादन की स्पृहा जगी थी।

श्रीपाद के विशुद्ध राधादास्य की अपूर्व निविड़ता है। कह रहे हैं - ''विलपामि कापि दासी''-'मैं तुम्हारी प्रसिद्ध दासी हूँ, सत्य दासी हूँ। तुम्हारे विरह-सन्ताप से मेरा जीवन दग्ध ज्वालामय हो गया है।' हम लोगों का भजन भी आचार्यपादों के आनुगत्य से युक्त है, अतएव यह दशा यत्किंचित् हमें भी प्राप्त करनी होगी। ''मुझमें अयोग्यता हो सकती है, किन्तु जिन्होंने मुझे किंकरीरूप में तुम्हारे चरणों में समर्पित किया है, वे तो तुम्हारी योग्य दासी हैं। उनके समर्पित जन को तुम अङ्गीकार क्यों नहीं करोगी?'' करुणामय गुरुदेव ने जब मुझे तुम्हारे चरणों में समर्पित किया है, तो तुम्हें ग्रहण करना ही होगा।'' ''गुरु कृष्णरूप हन शास्त्रेर प्रमाणे। गुरुरूपे कृष्ण कृपा करेन भक्तगणे॥'' (चै.च.)। प्रकारान्तर से यह तुम्हारे कान्त का ही दान है, तुम क्या इसकी उपेक्षा कर सकती हो? देहावेश मुझ-जैसे जीव के सर्वनाश का कारण है। ''देहे ना करिह आस्था, मरिले जे यम शास्ता, दुःखेर समुद्र कर्मगति'' (प्रे.भ.च.)।

राधा-दास्य ही जिनका जीवातु (प्राण) है, वे श्रीपाद प्रगाढ़ स्वरूपावेश में कह रहे हैं- ''तुम्हारे अदर्शन से उत्पन्न हुआ उत्कट विरहानल मेरे हृदय को अत्यन्त दग्ध कर रहा है (और) उच्च क्रन्दन के फलस्वरूप मैं बड़ी व्याकुल हो उठी हूँ।'' श्रीपाद के हृदय में पूँजीभूत विरहानल का दाव-दहन (जलन) है और उनका यह क्रन्दन उनके भीतर-बाहर की तीव्र वेदना का व्यञ्जक है। वे विलाप कर रहे हैं- ''हा स्वामिनि! इस कुण्ड-अरण्य में ही तो तुम विहार कर रही हो। व्रज में यह श्रीकुण्ड तुम्हारा सर्वाधिक प्रिय स्थान है। प्रियतम के साथ सुखविलास के लिये ऐसा सुन्दर स्थान और कहीं नहीं है, पर मेरा दुर्भाग्य! उसी कुण्ड अरण्य का आश्रय लेने पर भी मैं तुम्हें देख नहीं पा रही।'' अभीष्ट के रूप-गुण की माधुरी और श्रीकुण्ड की नैसर्गिक शोभा ने श्रीपाद

के चित्त में विपुल आलोड़न की सृष्टि की है। वे साक्षात् दर्शन किये बिना और प्राण धारण नहीं कर सकेंगे। विरह में उनके प्राण कण्ठ में आ गये हैं। वे कुण्ड-तीर पर पड़े विलाप कर रहे हैं-

''छिन्न-स्वर्ण-विनिन्दि-चिक्कण-रुचिं स्मेरां वयःसन्धितो,
रम्यां रक्तसुचीन-पट्टवसनां वेशेन विभ्राजिताम्।
उद्घूर्णच्छितिकण्ठपिञ्छ - विलसद्वेणीं मुकुन्दं मनाक्,
पश्यन्तीं नयनाञ्चलेन मुदितां राधां कदाहं भजे॥'' (उत्कण्ठादशकम्-१)

''जिनकी उज्ज्वल देहकान्ति छिन्न स्वर्ण की शोभा को लजाती है, जो वयः सन्धि की शोभा से मनोहारिणी हैं, जिनका पट्टवस्त्र सुचिक्कण और रक्तवर्ण है, उल्लासमय नृत्यपरायण मयूर-पुच्छ की तरह जिनकी सुन्दर वेणी है, और जो अपांग भंगिमा (आँखों की कोर) से मुकुन्द की ओर भावयुक्त होकर थोड़ा सा देख रही हैं-मैं उन श्रीराधा की साक्षात् सेवा कब करूँगी?''

कभी कहते हैं -

''यस्याः कान्ततनूल्लसत्-परिमलेनाकृष्ट उच्चैः स्फुरद्-
गोपीवृन्द - मुखारविन्द - मधु तत्पीयता धयन्नप्यदः।
मुञ्चन् वर्त्मनि वंभ्रमीति मदतो गोविन्दभृंगः सतां
वृन्दारण्य-वरेण्य - कल्पलतिकां राधां कदाहं भजे॥'' (वही-२)

''कृष्णभृंग समस्त सौन्दर्यमयी गोपियों का मुख-कमल-मकरन्द अति प्रेम के साथ पान करके भी उसे त्यागकर जिनकी कमनीय देह की उल्लसित गन्ध से समधिक आकृष्ट होकर मत्तता के कारण कुञ्जपथ पर बार-बार भ्रमण कर रहा है, वृन्दावन की सर्वश्रेष्ठ कल्पलतिका रूपा उन्हीं श्रीराधा की सेवा मैं कब करूँगी?''

कभी विलाप करते-करते कहते हैं-

''श्रीमत्कुण्ड - तटी - कुड़ंग-भवने क्रीड़ाकलानां गुरुं
तल्पे मञ्जुल-मल्लि-कोमल-दलैः क्लृप्ते मुहुर्माधवम्।
जित्वा मानिनमक्षसंगरविधौ स्मित्वा दृगन्तोत्सवै-
र्युञ्जानां हसितुं सखीः परमहो राधां कदाहं भजे॥'' (वही-३)

''परम शोभामय श्रीकुण्डतीरस्थ निकुञ्ज-सदन में मनोहर मल्लिका-पुष्पों के सुकोमल दलों से निर्मित शय्या पर केलि-कलाविशारदों के गुरु, पाशक-युद्ध-विधान में गर्वित माधव को पराजित कर जो उनसे उपहास करने के लिये अपने नयन-प्रान्त से सखियों को संकेत कर रही हैं-उन्हीं श्रीराधा को मैं कब भजूँगी, अर्थात् उस समय की सेवा में अनुकूलता की व्यवस्था कब करूँगी?''

इस प्रकार श्रीपाद ने सेवा-प्राप्ति की आकांक्षा से ईश्वरी की साक्षात् सेवा-प्राप्ति के लिये हाहाकार करते हुए शत-शत प्रकार से विलाप किया है-

''विलपामि कापि दासी।''

''राधाकृष्ण प्राप्ति लागि सदा उत्कण्ठित।
सदा हाहाकार क्षणे स्थिर नहे चित॥
अनुराग - पराकाष्ठा श्रीराधागोविन्दे।
दिवानिशि नाहि जाने मत्त प्रेमानन्दे॥'' (भक्तिरत्नाकर)

ऐकान्तिक भावग्राह्य राधादास्य के सौन्दर्य-माधुर्य की अनुभूति ऐसी अनुपम है। अनुभवी लोग कहते हैं-''रस का आस्वादन भाव में और भाव की अभिव्यक्ति रस में।'' अखिल रसामृतमूर्ति हैं श्रीकृष्ण एवं अखण्ड महाभाव की मूर्ति हैं श्रीराधा। महाभाव-स्वरूपिणी श्रीराधा रसब्रह्म रसिकशेखर श्रीकृष्ण को अखण्ड शृंगार रस-माधुरी आस्वादन कराती हैं। श्रीमत् रूपगोस्वामिपाद ने लिखा है-''इत्यस्यां कृष्णसौख्यार्थमेव केवलमुद्यमः'' (उ.नी), अर्थात् 'समर्थारतिमती व्रजसुन्दरियों के समस्त उद्यम श्रीकृष्ण-सुख के लिये ही देखने में आते हैं।' उसी प्रकार राधा-किंकरियों के सभी उद्यम श्रीश्रीराधामाधव के सुख के लिये ही होते हैं। वे सब तो युगल के सेवा-सुख में ही आत्महारा हैं। युगलमाधुरी के आस्वादन के माध्यम से अपूर्व सेवानन्द प्राप्त कर ये सब धन्य हो जाती हैं।

''हरि हरि! आर कि एमन दशा हबो।
छाड़िया पुरुषदेह, कबे बा प्रकृति हबो, दुहुँ अङ्गे चन्दन पराबो॥
टानिया बाँधिबो चूड़ा, नवगुञ्जाहारे बेड़ा, नाना फूले गाँथि दिबो हार।
पीतवसन अङ्गे, पराइबो सखी-संगे, वदने ताम्बूल दिबो आर॥
दुहुँ रूप मनोहारी, हेरिबो नयन भरि, नीलाम्बरे राइ साजाइया।
नवरत्न जरि आनि, बाँधिबो विचित्र वेणी, ताहे फूल मालती गाँथिया॥
से-ना रूपमाधुरी, हेरिबो नयन भरि, एइ करिमने अभिलाष।
जय रूप-सनातन, देहो मोरे एइ धन, निवेदये नरोत्तमदास॥'' (प्रार्थना)

इस वस्तु के अभाव में ही प्रेमिक के चित्त में दुर्विसह ज्वाला उदित होती है। श्रीपाद दासगोस्वामी द्वारा प्रदर्शित पथ ही युगल-उपासकों का प्रशस्त पथ है। अन्य प्रतीक्षाओं से रहित अनन्य भजन! केवल एक ही बात-कहाँ हो राधारानी! श्रीराधारानी के चरण ही भजन है। तभी उनके दर्शन बिना विश्व सूना है। एक ओर अभीष्ट के सौन्दर्य-माधुर्य का विपुल आकर्षण, दूसरी ओर विपुल उत्कण्ठा-ये दोनों वस्तुएं प्रेमिक के चित्त में ऐसे आलोड़न की सृष्टि करती हैं कि वह पागल हो जाता है। महाजनों का ऐसा मत है कि श्रील बिल्वमंगल ठाकुर की यथावस्थित साधक देह में प्रेम की ऊर्ध्वतन दशा अनुराग उत्पन्न हुआ था। उन्होंने श्रीकृष्ण-विरह में कातर दशा में श्रीकृष्णकर्णामृत (६३) में कहा है-

''कदा नु कस्यां नु विपद्दशायां कैशोरगन्धिः करुणाम्बुधिर्नः।
विलोचनाभ्यां विपुलायताभ्यामालोकयिष्यन् विषयीकरोति।''

साथ के वैष्णवों ने श्रीकृष्ण-विरह व्याकुल श्रीपाद लीलाशुक को यह कहकर धैर्य प्रदान करने की चेष्टा की कि श्रीकृष्ण करुणामय हैं; वे आपको अवश्य दर्शन देंगे। इस पर उन्होंने कहा-''हाय! इससे अधिक और किस विपद-अवस्था में वे करुणासागर, नवकिशोर विपुलायत नेत्रों से देखकर हम लोगों को कृतार्थ करेंगे?'' एक ओर श्रीपाद की प्रबल उत्कण्ठा, दूसरी ओर श्रीकृष्ण के विपुल माधुर्य का आकर्षण-दोनों वस्तुएं उनके चित्त में उन्माद दशा ले आई हैं।

'माधुर्यादपि मधुरं मन्मथतातस्य किमपि कैशोरम्।
चापल्यादपि चपलं चेतो वत हरति हन्त किं कूर्मः॥ (वही-६५)

''चित्त-दु:खदायी काम को उत्पन्न करने वाले श्रीकृष्ण का कैसा अनिर्वचनीय कैशोर है। वह माधुर्य से भी मधुर-मधुर का जो धर्म है, उससे भी मधुर हैं, अर्थात् अति मधुर है। और, चापल्य से भी चपल, अर्थात् अति चपल है! श्रीकृष्ण के इस कैशोर ने मेरा चित्त अपहरण कर लिया है-अब क्या करूँ!'' श्रीदासगोस्वामिपाद की महाभाव दशा है, कारण-वे व्रज की तुलसी मंजरी है। राधादास्य ही उनका प्राण है, अतएव उनकी उत्कण्ठादशा चरम अवस्था को प्राप्त है।

स्वरूपाविष्ट साधक के मन-प्राण में भी श्रीराधारानी का अभाव थोड़ा-बहुत जगना चाहिये। जहाँ चिच्छक्ति की सहायता रहती है, वहाँ माया का प्रभाव स्तिमित (शान्त) हो जाता है। माया स्वरूप के आवेश को नष्ट नहीं कर सकती। स्वरूपशक्ति की वृत्ति के हृदय में जाग्रत हो जाने पर माया का आधिपत्य नहीं टिकता। स्वरूप का आवेश देहावेश को कवलित करेगा ही। स्वरूप से उठी आकांक्षा के जगने पर मायिक संस्कार नष्ट हो जाते हैं और नित्य संस्कार चित्त में बद्धमूल हो जाते हैं। इसीलिये होता है भजन-साधन। विशेषत: रागभक्ति लोभमूला है। राधादास्य श्रीकृष्णदास्य से भी अधिक लोभनीय है। लोभ उत्पन्न होता है आत्मा में, अन्त:करण में नहीं। अन्त:करण तो जड़ है। आत्मा से उत्पन्न होने के कारण ही उसकी क्रिया अन्त:करण आदि पर होती है। प्रकृत लोभ साधक के हृदय में इष्ट प्राप्ति की उद्दाम वासना जगाकर विश्व को भुलाकर उसके चित्त को अभीष्ट में तन्मय कर देता है। तब साधक अभीष्ट के रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श का अनुभव करने के लिये लालायित हो उठता है। उसके प्राणों में सतत यह प्रार्थना उठती है-''तुम्हारे आश्रित जन को तो परमानन्द प्राप्त होता है, पर मेरा दुर्दैव! कुछ भी नहीं पा रहा है। हे वृन्दावन! मुझे बताओ, तुम्हारे भीतर किस ओर हैं युगल? मैं खोजता-खोजता घूमूँगा, वे किस कुञ्ज में है। पुकारता हूँ, पर आहट नहीं मिलती। कैसे तृप्त होऊँ।' क्रमश: साधक में उन्माद के लक्षण प्रकट होंगे। विद्युत की तरह स्वामिनी का स्फुरण होगा-तभी आश्वास (राहत, तसल्ली)!

श्रीमत् दासगोस्वामिपाद का कैसा हाहाकार है! वक्ष विदीर्ण हुआ जा रहा है। 'हा स्वामिनि!' कैसा मधुर सम्बोधन है। सुनने की कैसी तीव्र आकांक्षा है। सम्पूर्ण हृदय से पुकारा जा रहा है। ''हा स्वामिनि। यह दीन दासी तुम्हारे दर्शन की आशा से समस्त चेष्टाओं से रहित होकर तुम्हारे श्रीकुण्डतट पर पड़ी कुछेक पदों के माध्यम से विलाप कर रही है। तुम लीलामयी हो, मेरी बात लीला करते-करते ही थोड़ी सुन लो।'' विरह दु:ख की अनुभूति से हाहाकार! विलाप के साथ प्रार्थना-

''हे स्वामिनि वृन्दावनेश्वरि!
तोमार विरहानले, दिवानिशि हिया ज्वले,
अत्युत्कट सहिते ना पारि॥
आमि जे अधमा दासी, सदा दु:ख नीरे भासि,
हइयाछि कातर अन्तर।

देवि दुःखकुलसागरोदरे, दूयमानमति दुर्गतं जनम्।
त्वं कृपाप्रबल-नौकयाऽद्भूतं, प्रापय स्वपदपंकजालयम्॥८।

अन्वय-देवि! त्वं दुःखकुलसागरोदरे दूयमानं (उत्तप्तं क्लिष्टं वा) अति दुर्गतं (निरावलम्ब) जनं (मां) कृपा प्रबल-नौकया अद्भुतं स्वपदपंकजालयं प्रापय॥८॥

अनुवाद-हे देवि! श्रीराधिके! मैं दुःख समूहरूपी दुष्पार सागर में गिरकर निराश्रय अवस्था में अति दुर्दशाग्रस्त हो गई हूँ। तुम अपनी कृपारूपी प्रबल नौका द्वारा मुझे अपने अपूर्व पाद पद्मालय में ले जाओ॥८॥

विरह-दुःख का दुस्तर सिन्धु

परिमलकणा व्याख्या-विरह की अवस्था में हृदय में ऐसा आलोड़न आता है कि प्रेमी भक्त उसके समाधान में अशक्त होकर स्वयं को अति निराश्रय या दुर्दशाग्रस्त ही समझ लेता है। विरह-दुःख के आघात से हृदय चूर-चूर होता रहता है, पर अभीष्ट के साक्षात् दर्शन या सेवा के बिना इस दुःख-वेदना के शान्त होने का कोई उपाय भी नहीं रहता। श्रील रघुनाथ श्रीराधारानी के विरह दुःख को अति दुस्तर समुद्र-जैसा ही मान रहे हैं। इस दुःख-सिन्धु की तुलना विश्व में नहीं है। प्राकृत अथवा अप्राकृत जगत् की दुःखराशि इसकी कोई धारणा ही नहीं करा सकती। एकबार श्रीगौरीदेवी ने श्रीमन्महादेव से श्रीराधा के प्रेम-वैशिष्ट्य के विक्रम के विषय में प्रश्न किया, तो श्रीमन्महादेव बोले-

''लोकातीतमजाण्डकोटिगमपि त्रैकालिकं यत् सुखं
दुःखञ्चेति पृथग् यदि स्फुटमुभे ते गच्छतः कूटताम्।
नैवाभासतुलां शिवे! तदपि तत्कूटद्वयं राधिका-
प्रेमोद्यत्सुखदुःखसिन्धुर्भवयोर्विन्देत विन्द्वोरपि॥''

(उ० नी० स्था० प्र० - १७१)

''हे शिवे! यदि लोकातीत अर्थात् अनन्त वैकुण्ठों और अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों के त्रिकाल का सुख-दुःख भी भिन्न-भिन्न रूपों में पुञ्जीभूत हो, तब भी वह श्रीराधा के प्रेमोद्भव सुख-दुःख सिन्धु के बिन्दु के साथ भी तुलनीय नहीं हो सकता।''

महाभावमयी श्रीमती की अभिन्नप्राण किंकरी में भी श्रीमती के इस निरुपम सुख-दुःख का यत्किंचित् संक्रमण होता है। इसीलिये श्रीरघुनाथ के इस विरह-विषाद-सिन्धु के ऊपर स्तर-स्तर पर जिस भयावह

बसि गोवर्द्धने पाशे, तोमार दरश आशे,
सेवा लागि काँदि निरन्तर॥
सकल व्यापार त्यजि, तव पद-ध्याने मजि,
कतिपय कविता रचिया।
करि अति विलापन, प्रणय अमृत-कण,
दिये मोरे जुड़ाओ आसिया॥''७॥

तरंगमाला का उच्छसित नृत्य चल रहा है, उसका क्षीण शब्द भी यदि कोई प्रेमी भक्त दूर से किंचित् सुन ले, तो वह समझ जायेगा कि यह नृत्य-परिकर को छोड़ साधक-जगत् में सम्भव नहीं। उसके मानसपटल पर श्रीराधा के विरहरस के आस्वादक विप्रलम्भरस-घनमूर्ति श्रीगौरसुन्दर का गम्भीरावाला विरहमलिन-मुखचन्द्रमा ही प्रस्फुटित होगा!

जब विपुल विरह में प्राण कण्ठ में आ जाते हैं, तब फिर प्रेमीभक्त का आश्रय-स्फुरण दशा उदित होती है, तब आनन्द की सीमा नहीं रहती, ऐसा लगता है कि मैं अभीष्ट के निकट हूँ। बार-बार स्फूर्ति और विरह से उसकी अनिर्वचनीय दशा हो जाती है। व्रजप्रेम की यही विशिष्टता है। इस अवस्था को व्रजरस के उपासक की महासम्पत्ति कहा गया है।

''तथेदमानन्दभरात्मकं वाथवा महाशोकमयं हि वस्तु।
भवन्ति सम्पत्त्युदयेन यस्य, सदा महोन्मत्तविचेष्टितानि॥''

(वृहद्भागवतामृतम्)

''यह सम्भोग और विप्रलम्भरूपी प्रेम नाम की वस्तु 'आनन्दभरात्मक' है अथवा 'महाशोकमय' यह विशेषरूप से निश्चित नहीं किया जा सकता; यह ऐसी प्रेम-सम्पत्ति है जिसके उदय से प्रेमिक में महाउन्मत्त की-सी चेष्टायें प्रकट होने लगती हैं।''

स्फूर्ति के विराम में विरह-वेदना का इतना गुरुत्व होता है कि पूर्व में अनुभव किये आनन्द की स्मृति भी मन से पुछ जाती है। ऐसी अवस्था में पुन: स्फूर्ति ही जीवन का एकमात्र अवलम्बन हो जाता है। अनुभव की प्रगाढ़ता ही स्फुरण है। साधन-दशा में साधक का भजन भी थोड़ा-बहुत अनुभव युक्त होना चाहिये। भजन में जितनी अनुभूति, उतनी ही उन्नति! अक्रूरजी के एक अनुभवमय प्रणाम से ही अभिलाषा सिद्ध हो गई थी। एक प्रणाम में ही कितना आस्वादन!

''पदानि तस्याखिललोकपालकिरीटजुष्टामलपादरेणो:।
ददर्श गोष्ठे क्षितिकौतुकानि विलक्षितान्यब्जयवाकुशाद्यै:॥
तद्दर्शनाह्लादविवृद्धसम्भ्रम: प्रेम्णोर्द्धलोमाश्रुकलाकुलेक्षण:।
रथादवस्कन्द्य स तेष्वचेष्टत प्रभोरमून्यङ्घ्रिरजांस्यहो इति॥''८॥

(भा० - १०/३८/२५-२६)

श्रीशुकदेव महाराज ने परीक्षित से कहा-''हे राजन्! श्रीकृष्ण के जिन चरणों की रेणु समस्त लोकपाल अपने-अपने किरीट में धारण करते हैं, जो पृथ्वी के भूषण-स्वरूप हैं और जिनमें पद्म, यव (जौ), अंकुशादि चिन्ह देदीप्यमान हैं, अक्रूरजी को अपने रथ से वही चरण दिखाई दिये। उन श्रीचरणारविन्दों के दर्शन से उनका आह्लाद-जनित सम्भ्रम बढ़ गया; प्रेम से देह पुलकित हो गई और अश्रुबिन्दुओं से नेत्र आकुल हो उठे। वे रथ से कूदकर धरणी पर उतरकर 'अहा, कैसा आश्चर्य! कैसा आश्चर्य!' कहकर दण्डवत् प्रणाम कर चरणरज में लोटपोट होने लगे।''

इसके ठीक पीछे ही उन्होंने श्रीकृष्ण-बल्देव के दर्शन किये। भक्ति के प्रत्येक अङ्ग के याजन में ही

अनुभव की आवश्यकता है। भक्त का अनुभव देखकर लगता है जैसे इष्टदेव उसका हाथ पकड़ रहे हैं। यदि इष्ट के साथ कुछ भी परिचय न हो, तो साधक क्या लेकर रहेगा? जिन्हें देखा नहीं-जो अनुभव के बाहर हैं-उसकी ओर अग्रसर कैसे होऊँगा? जो सबसे अधिक अपने हैं, उनके साथ ही परिचित नहीं हो पाया। करुणामय श्रीगुरुदेव ने जिस राधाकिंकरीत्व का परिचय बता दिया है, उस किंकरीत्व (दासीपने) का अभिमान तो मन में आता ही नहीं! अभी तो देह में प्रचण्ड आवेश बना हुआ है। सभी कुछ भाव-विरुद्ध है। जो अखिल ब्रह्माण्ड और चित् राज्य के एकमात्र अधिनायक हैं, वही स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण जिनके एक कटाक्ष से मूर्छित हो जाते हैं, ⁂ उन्हीं प्रेममयी श्रीराधारानी के दासीत्व का परिचय श्रीगुरुदेव ने दिया है। यदि उनसे थोड़ा भी परिचित नहीं हो पाता, तो जीवन की कितनी बड़ी व्यर्थता है! श्रीराधा के श्रीचरण-सान्निध्य पाने की प्रबल उत्कण्ठा ही साधक को उनकी ओर खींच ले जाती है। ''स्वामिनि! तुम यदि एक बार मेरे चिन्तन में आ खड़ी हो, स्वप्न में खड़ी हो जाओ, तभी तो आश्वस्त होऊँ! थोड़ी-सी आहट करो स्वामिनि! एक बार कह दो-'तुम मेरी हो।' यह अनन्य प्रतीक्षा लिये बैठी हूँ।'' ऐसी उत्कण्ठामय स्मृति की प्रतीक्षा में अन्य सब तुच्छ हो जाता है; वे धीरे-धीरे अनुभव प्रदानकर अपने चरणों की ओर खींच ले जाती हैं। जिसके हृदय में कोई अनिर्वचनीय भक्ति उदित होती है, उसी का चित्त श्रीराधारानी की श्रीचरण-नख-ज्योति से उद्भासित होता है। श्रीराधानाम-श्रवण-कीर्तन करने वाले, श्रीराधापदों का ध्यान करने वाले के पास श्रीकृष्ण को अनाहूत आना पड़ता है। ''श्रीराधे श्रीराधे वाणी, जेदिके जार मुखे शुनि, सेइ दिके धाय मोर मन'' (महाजन)। श्रीमद्भागवत में आया है- श्रीकृष्ण अपनी कथा सुनने वाले के हृदय में प्रविष्ट कर स्वयं उसके चित्त का कामना-वासना-मल परिष्कार कर स्वयं ही अपने बैठने के लिये आसन बिछा लेते हैं।

''शृण्वतां स्वकथा कृष्णः पुण्यश्रवणकीर्तनः।
हृद्यन्तःस्थो ह्यभद्राणि विधुनोति सुहृत्सताम्॥'' (भा० १-२-१७)

स्वामिनीजी का हृदय और भी कोमलतर है। उनकी श्रीमुखोक्ति को पद-रचयिता ने इस प्रकार कहा है-''आमार कथा बले जेइ, आमार मत हय सेइ, बसिया कहिनु वृन्दावने।'' श्रील ठाकुर महाशय ने लिखा है-

''राधिका-चरणरेणु, भूषण करिया तनु, अनायासे पाबे गिरिधारी।
राधिका-चरणाश्रय, करे जेइ महाशय, तारे मुइँ जाउँ बलिहारी॥
जय जय राधानाम, वृन्दावन जार धाम, कृष्ण सुखविलोसेर निधि।
हेनो राधागुण-गान, ना शुनिलो मोर कान, बंचित करिलो मोर विधि॥
तार भक्त संगे सदा, रसलीला प्रेमकथा, जे करे से पाय घनश्याम।
इहाते विमुख जेइ, तार कभु सिद्धि नाइ, ना शुनिये जेनो तार नाम॥'' (प्रे०भ०च०)

इस श्लोक में स्फुरण की अनुभूति लेकर ही सम्बोधन है। 'देवि!' गोप-बाला को 'देवी' क्यों कहा जा रहा है? ''देवी कहि द्योतमाना परमासुन्दरी'' (चै०च०)। इसका अनुभव स्फूर्ति में हुआ है। महाभाव से उत्थित सौन्दर्य है! प्रेमोत्थित सौन्दर्य के बिना रसिकशेखर श्रीकृष्ण को सुख-उल्लास नहीं होता। 'देवी' कहते ही

⁂ श्रीश्रीराधारस-सुधानिधि का श्लोक ३९ और मेरी रसवर्षिणी व्याख्या देखिये।'

आराध्या'! किसकी? ''कृष्ण-क्रीड़ापूजार बसति नगरी'' (वही)। 'दिव् धातु के कुछेक अर्थ हैं; एक है 'क्रीड़ा'। दिव्यति क्रीड़ति अस्याम्।- इस अधिकरण वाक्य में देवी पद का अर्थ यही है कि श्रीराधा के साथ श्रीकृष्ण क्रीड़ा करते हैं? इसीलिये वे 'देवी' हैं। क्रीड़ा अन्यान्य प्रेयसियों को लेकर भी है, किन्तु श्रीराधा ही उनकी मूल अधिकरण हैं, इसी अभिप्राय से कहा है 'बसति नगरी'। उसी प्रकार श्रीकृष्ण की आराधना और बसति नगरी (वास स्थान) श्रीराधा श्रीकृष्ण की आराध्य भी है।

एक मधुर लीला की स्फूर्ति से सम्बद्ध है यह श्लोक। कुंज में विलसित हैं श्रीश्रीराधामाधव। स्वामिनी की अभिन्न देह और अभिन्न प्राण तुलसी विलासी युगल की पंखा-सेवादि में जुटी हैं। स्वामिनी कृष्ण के साथ खेल रही हैं। स्वामिनी के भाव के योग्य हैं नायक। मादनरस के अद्‌भुत उपचार से जो आनन्दमूर्छा आई है, उससे नागर की क्रीड़ा स्थगित है। अनुरागवती अतृप्त हैं। उन्होंने स्वयं विचित्र खेल से नागर को मुग्ध कर दिया। क्या करना होगा, नागर कुछ समझ नहीं पा रहे। मदनकेलि उत्सव में स्वामिनी लीलाकमल से नागर की ताड़ना कर रही हैं। तुलसी गूढ़ हँसी हँस रही हैं। वह हँसी श्यामसुन्दर को उन्मत्त बना रही है। यह किंकरियों की एक निरुपम सेवा है, फिर भी वे द्योतमान (कांतिमयी) हैं। प्रत्येक अङ्ग से माधुरी झर रही है! नागर को पागल बनाने वाला माधुर्य! ''लीला-अन्ते सुखे इँहार जे अङ्गमाधुरी। ताहा देखि सुखे आमि आपना पासरि॥'' (चै० च०)। स्वामिनी कहती हैं-'हे सुन्दर! मेरी वेशरचना कर दो। सखियाँ आकर परिहास करेंगी।'

श्रीमती की वेश-रचना के लिये उन्मुख विह्वल नागर श्रीचरण-प्रान्त में बैठे हैं। शृंगार करेंगे। शृंगार तो शृंगार ही है। ⁂ प्राणेश्वरी कहती हैं-''आलता (महावर) लगाओ।'' श्याम आलता लगायेंगे। उनके श्रीचरण अपने वक्ष पर रख लिये हैं। श्रीचरणों के माधुर्यरस में श्याम आत्महारा हैं! स्वामिनी कहती हैं-'क्या करते हो, शीघ्र लगाओ। ऐसा करते सखियाँ देखेंगी, तो क्या कहेंगी।' पर श्याम हैं कि चरणों को कभी वक्ष से लगाते हैं, कभी उन्हें चूमते हैं, और कभी काँपते हाथों से थोड़ा आलता लगा देते हैं। उनकी ऐसी स्थिति है मानो ''अनेक जतने, रतन पाइया, थुइते ठाँइ ना पाय'' (महाजन)। श्याम के श्यामल वक्ष पर ताजा महावर लग गई है। लगता है जैसे प्रगाढ़ तिमिर (अन्धकार) पर उदीयमान तपन (सूर्य) की छटा हो! अथवा यमुना के नीले जल में रक्त-वर्ण कोकनद (कमल) फूटा हो! श्याम के वक्ष पर विराजते हैं मनोहर श्रीवत्स-चिन्ह, कौस्तुभ मणि और स्वर्ण रेखा के रूप में कमला देवी। प्रेममयी के श्रीचरणों की महावर इन सबकी शोभा को पराजित कर श्याम के वक्षस्थल पर दीप्तिमान है। श्रीचरणों का सौन्दर्य देखकर श्याम विमोहित हैं। ''जगत-मोहन कृष्ण ताँहार मोहिनी'' (चै० च०)। स्वामिनी कहती हैं-'सुन्दर! समझी, तुम नहीं लगा सकोगे। तुलसि! आ, तू आलता लगा दे।' श्याम सोचते है-'हाय! मैं इतना अयोग्य हूँ।' स्वामिनी का आदेश पाकर तुलसी ने श्यामसुन्दर को मृदु धक्का देकर कहा-'हटो! तुमसे नहीं होगा।' तुलसी श्रीचरण पकड़ने के लिये हाथ बढ़ाती हैं कि स्फूर्ति में विराम आ जाता है। हाथों को श्रीचरण नहीं मिल पाये। वे हाहाकार कर उठीं। लगा जैसे वे दु:ख के समुद्र में गिरकर निराश्रय अवस्था में डूब-उतर रही हैं! विलाप करते-करते स्वामिनी के चरणों में निवेदन किया-'तुम्हारे चरण ही मेरा घर है। अपनी कृपा रूपी प्रबल नौका पर चढ़ाकर मुझे मेरे घर ले चलो।'

''शुनो शुनो अयि देवि। श्रीमती राधिका। तोमार वियोग-दु:ख समुद्र अधिका॥

⁂ पुंस: स्त्रियाँ स्त्रिया: पुँसि संयोगस्यच या स्पृहा। स शृंगार इति ख्यातो रतिक्रीड़ादि कारणम्॥

त्वदलोकन-कालाहि-दंशैरेव मृतं जनम्।
त्वत्पादाब्जमिलल्लाक्षाभेषजैर्देवि जीवय॥९॥

अन्वय-देवि! त्वदलोकन-कालाहि-दंशैः मृतं एव जनं (मां) त्वत्पादाब्जमिलल्लाक्षाभेषजैः (त्वत् पादाब्जे मिलन्त्यो या लाक्षा अलक्तानि ता एव भेषजा औषधानि तैः) जीवय॥९॥

अनुवाद-हे देवि श्रीराधे! तुम्हारे अदर्शनरूपी कालसर्प के दंशन से मैं मृत हो गई हूँ। अपने श्रीपादपद्मों से लगी लाक्षा (महावर) रूपी औषध से मुझे जीवित करो॥९॥

विरह-विष की ज्वाला

परिमलकणा व्याख्या-पिछले श्लोक में श्रीपाद ने स्फूर्ति में स्वामिनीजी का आस्वादन प्राप्त किया था। अब स्फूर्ति के विराम में तीव्र विरहज्वाला! जैसे उग्र विषधर कालसर्प के दंशन से तीव्र ज्वाला होती है और आपाद-मस्तक जर्जरित होकर शीघ्र ही मृत्यु-दशा उपस्थित हो जाती है, वैसे ही श्रीपाद को लग रहा हैं कि श्रीराधारानी के विरह-विष की ज्वाला में दग्ध होकर उनकी मृत्यु ही हो गई है। श्रीराधारानी के श्रीचरणों से लगी महावर ही श्रीपाद की मृत-संजीवनी है, अन्य किसी भी उपाय से यह ज्वालामय मृत्यु टलने वाली नहीं। श्रीराधारानी की विरहज्वाला उनके बिना और कोई शान्त नहीं कर सकता। राधा-विरह-विधुर श्यामसुन्दर भी शतकोटि गोपियों से आनन्द न पाकर यमुनातट पर श्रीराधा के लिये विलाप करते हैं।

''कंसारिरपि संसार-वासना-बन्ध-शृङ्खलाम्।
राधामाधाय हृदये तत्याज व्रजसुन्दरीः॥
इतस्ततस्तामनुसृत्य राधिका-मनंगवाण-व्रणखिन्नमानसः।
कृतानुतापः स कलिन्द-नन्दिनी-तटान्तकुंजे विषसाद माधवः॥''

(गीतगोविन्दम् ३/१-२)

कवि जयदेव के वसन्तरास में वर्णित है-श्रीकृष्ण का सभी गोपियों के साथ समविहार देखकर श्रीकृष्ण-प्रियाओं में मुख्य श्रीराधा मानिनी होकर रासस्थली त्यागकर अन्यत्र चली गईं, तो कंसारि कृष्ण ने रास-अभिलाषरूपी अपनी सम्यक् सारभूत वासना को दृढ़ करने में शृंङ्खला रूपी श्रीराधा को हृदय में धारणकर अन्य व्रजसुन्दरियों को त्याग दिया। श्रीकृष्ण ने श्रीराधा को इधर-उधर खोजा, पर वे दिखाई न दीं। तब वे कन्दर्प-शराघात से व्यथित होकर अनुतप्त चित्त से यमुना तटवर्ती कुंज में विषाद करने लगे। श्रील कविराज गोस्वामिपाद ने कहा है-''शतकोटि गोपीते नहे काम-निर्वापण'' (चै०च०)। शतकोटि गोपियों की संयुक्त शक्ति भी श्रीकृष्ण के हृदय में श्रीराधा की विरह-व्यथा को शान्त करने में समर्थ न हुई। श्रीमत् दासगोस्वामिपाद ने अपने मुक्ताचरित में लिखा है कि द्वारका लीला में सत्यभामा देवी के आगे व्रजविलास वर्णन करते-करते श्रीकृष्ण के चित्त में जब श्रीराधा की विरह-वेदना की स्फूर्ति हुई, तो वे व्याकुल होकर विलाप करने लगे-

---

आमि तो पड़िया आछि ताहार उदरे। सतत सन्तप्त अति हतेछि अन्तरे॥
निरालम्ब ताय आमि ना जानि साँतार। तोमार जे कृपामात्र भरसा आमार॥
से प्रबल कृपातरि दिया ए समये। लहो तूलि निज पद-पंकज आलये॥'८॥

''मद्वक्षःस्थल चम्पकावलिरियं मन्नेत्रपद्मद्वयी-
सौधासिक्तिरियं मदेकविलसत्-सर्वांगलक्ष्मीरियम्।
मत्प्राणोरुविहंगवल्लरिरियं मत्कामितश्रीरियं
मज्जीवातुरियं मया पुनरहो हाहा कदा लप्स्यते॥''

''जो मेरे वक्षस्थल की चम्पकावलीस्वरूप हैं, जो मेरे नयन-कमलों को सुधासिक्त किये रहती हैं, जिनके सर्वांग की शोभा मेरा एकमात्र विलास स्थान है, जो मेरे प्राणरूपी विहंग के लिये लता-जैसी हैं, जो मेरी वांछित सम्पत्तिस्वरूप हैं, जो मेरा जीवातु (प्राण, आहार) हैं-हाय, हाय, मुझे वे श्रीराधा कितने दिनों में मिलेंगी?''

श्रीराधा के विषय में मधुमंगल का मधुर वाक्यामृत पानकर श्रीकृष्ण के हृदय में राधा-स्मृति अत्यधिक उद्दीप्त होने से उन्होंने प्रगाढ़ विरह अनुभव किया था। उस विरहानुभूति से उत्पन्न उनका स्वगत विलाप सुनकर कठोर पाषाण भी विदीर्ण हो जाता है।

''हा मत् प्राण-कपोत-वासवड़भिप्रेमस्फुरन्माधुरी-
धारापार-सरिद्वरे! गुणकला-नर्मप्रहेली-खने!
हा मन्नेत्र-चकोर-पोषक-विधुज्योत्स्ना-तते राधिके!
हाहा मद्दुरितेन केन निधिवत् प्राप्ताकरात्वं च्युता?''

''हा राधे! तुम मेरे प्राणरूपी कपोत की वासस्थली हो, प्रेम द्वारा विकसित माधुर्यधारा की असीम सरिता हो, गुण-कला और परिहास-पहेली की खान हो, तुम मेरे नयन-चकोरों की पोषक ज्योत्स्नाराशि हो; हाय हाय, मैंने तुम्हें महानिधि की तरह प्राप्त कर किस दुर्दैववश खो दिया?''

अखण्ड-आनन्दघन विग्रह श्रीकृष्ण ही उनके विरह में इतने कातर होते हैं, राधादासियाँ तो ठहरीं अनन्यशरण! विरहिणी दासी के प्राणों को शीतल करने का श्रीमती के श्रीचरण-दर्शन के अतिरिक्त और उपाय नहीं। श्रीमती के प्रति किंकरियों का प्रणय इतना विशुद्ध और अहैतुक है कि ऐसा भाव अन्यत्र दिखाई नहीं देता। श्रीपाद ने अपने शतनाम स्तोत्र में लिखा है-''स्वगणाद्वैत-जीवातुः स्वीयाहंकारवर्द्धिनी'' (१४) ''श्रीराधा किंकरियों के लिये एकमात्र जीवातु हैं, किंकरियाँ इसी अभिमान को लेकर आत्महारा हैं।'' श्रीमती के प्रति राधाकिंकरियों की ममता की जो निविड़ता है, वह श्रीकृष्ण प्रणय में भी नहीं है। श्रीराधारानी का योग्य प्रियपात्र किंकरियों के अतिरिक्त और कोई नहीं। इस बात का परिचय विरह में अधिक मिलता है। स्वामिनी की कृपा से विरहिणी दासी को स्मरण में, स्वप्न में, स्फुरण में विचित्र अनुभूति प्राप्त होती है। यह अनुभूति ही किंकरियों के प्राणों का एकमात्र अवलम्ब है। स्फूर्ति में सामयिक शान्ति है, तो विरह में तीव्र ज्वाला। इस ज्वाला का मूल निदान है युगल की साक्षात् सेवा का अभाव। किशोर-किशोरी के प्रति इन किंकरियों का प्रणय अहैतुकी है। अकेले कृष्ण-भजन में आनन्द कहाँ? युगल के भजन में ही यथार्थ आनन्द है। ''युगल चरण देखि, सफल करिबो आँखि, एइ मोर मनेर कामना'' (प्रार्थना)। गौड़ीय वैष्णव महाजन (पदकर्ता) ने प्राणों की एकान्त विरह-ज्वाला शान्त करने के लिये युगल-दर्शन की कामना और युगल की श्रीचरण-सेवा की ही प्रार्थना की है -

''निजपद सेवा दिवा, नहि मौरे उपेखिबा, दुँह पँहु करुणासागर।
दुँहु बिना नाहि जानों, एइ बड़ो भाग्य मानो, मुइ बड़ो पतित पामर॥''
× × ×
''मल्लिका मालती जूथी, नाना फूले माला गाँथि, कबे दिबो दोंहार गलाय।
सोनार कटोरा करि, कर्पूर चंदन भरि, कबे दिबो दोंहाकार गाय॥
आर कबे एमन हबो, दुँहु मुख निरखिबो, लीलारस निकुंजशयने॥''

इत्यादि (वही)

किंकरियाँ अकेले श्रीकृष्ण को कभी नहीं चाहतीं। श्रीकृष्ण-संग की बात उनके मन में स्वप्न में भी नहीं आती। श्रीकृष्ण श्रीरूप आदि मंजरियों की कंचुक खींचते हैं अथवा इस प्रकार का अन्य कोई आचरण करते हैं, तो वह दलित (कुचली हुई) फणिनी की तरह गर्जकर कहती है-''छि: छि:! जानते नहीं मैं कौन हूँ? प्राण दे सकती हूँ, देह नहीं। यह देह तो श्रीराधा-चरणों में समर्पित है।'' तब श्रीकृष्ण हाथ जोड़कर क्षमा माँगते हैं। विश्व में किंकरियों-जैसी राधा-निष्ठा और कहीं नहीं।

पिछले श्लोक में स्फूर्ति प्राप्त जिस लीला का वर्णन है, उसी की स्मृति को लेकर इस श्लोक में प्रार्थना की गई है। श्रीमती के श्रीचरणारविन्दों से लगी महावर का अतुलनीय आकर्षण प्राणों में जग रहा है। 'देवि! तुम्हारे अदर्शनरूपी कालसर्प के दर्शन से मृत इस जीव के लिये तुम्हारे चरण-कमलों से लगी महावर ही मृतसंजीवनी की तरह महौषध है। अपने वही यावक-रंजित चरण एक बार दिखाओ।' कहते हैं-'मृत जनम्।'' जो बात कर रहे हैं, वे मृत कैसे? जीवित दशा ही मृत्युवत् है। साक्षात् रूप से श्रीराधा के साथ संयोग नहीं है, अतएव राधागत प्राण किंकरी की मृत्यु नहीं तो और क्या? इस मृति (मरण) का एक अपूर्व आस्वादन है! कारण-यह प्रेमसिन्धु की तरंग विशेष-संचारिभाव है।

''उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति स्थायिन्यमृतवारिधौ।
ऊर्मिवद्वर्द्धयन्त्येनं यान्ति तद्रुपताञ्च ते॥''

(भ० र० सि०-२/४/३)

अर्थात् ''संचारिभाव तरंग की तरह स्थायिभाव रूपी अमृतसिन्धु में डूब-उतरकर सिन्धु को वर्धित कर उसी में लीन हो जाते हैं।'

स्वरूपावेश की वाणी है। देहावेश का मरण नहीं। आत्मा राधा-किंकरी है। स्वरूप पिस रहा है, तभी मृत्यु से भी अधिक क्लेशप्रद है। ''तुया अदर्शन अहि, गरले जारल देही (आत्मा)'' (महाजन)। 'सर्पदंशन से मृत व्यक्ति भी औषधविशेष से जी जाता है। तुम्हारे चरणारविन्दों का अलक्तक (महावर) ही मेरी मृतसंजीवनी है।'

जैसे श्रीपाद के लिये श्रीराधा के साक्षात् श्रीचरण-दर्शन का अभाव ही मृत्युवत् क्लेशद है, वैसे ही साधक के लिये स्मरण का सौन्दर्य ही जीवातु और विस्मृति ही मरणवत् क्लेशप्रद होना चाहिये। हृदय में विस्मृति की पीड़ा का थोड़ा-बहुत अनुभव होना चाहिये। ''तुया विस्मरण शेल बुके'' (महाजन)। देहावेश का

देवि ते चरणपद्मदासिकां, विप्रयोगभर-दावपावकैः।
दह्यमानतर-कायवल्लरीं, जीवय क्षणनिरीक्षणामृतैः॥१०॥

अन्वय-देवि! विप्रयोगभरदावपावकैः (विप्रयोगभर विरहातिशय एव दावपावका वनवन्हयस्तैः) दह्यमानतरकायवल्लरीं ते चरणपद्मदासिकां क्षणनिरीक्षणामृतैः (क्षणं स्वल्पकालं यानि निरीक्षणानि तान्यमृतानि तैः) जीवय॥१०॥

अनुवाद-हे देवि! तुम्हारे विरहातिशयरूपी दावानल में तुम्हारी इस दीन दासी की तनुलता अत्यन्त दग्ध हो रही है, क्षणभर अमृत-दृष्टि से इसे संजीवित करो॥१०॥

विरह-दावानल

परिमलकणा व्याख्या-स्वरूपाविष्ट श्रीपाद राधा-विरह में रोदन कर रहे हैं। उस विरह ज्वाला का

स्वभाव है- युगल-चरण भुलाकर अनित्य वस्तु की स्मृति चित्त में जगाना। ''यह दुष्ट मन सदा उन चरणों में क्यों नहीं रहता? हृदय के भीतर संसार क्यों आ जाता है? मेरा समग्र ज्ञान तुम्हें लेकर रहे, तुम्हारे चरणों को छोड़कर अन्यत्र न जाय''-साधक के अन्तस में श्रीराधा-चरणों को अर्पित ऐसी व्याकुलता भरी प्रार्थना जगनी चाहिये। श्रीपाद की महावाणी से साधक को यह शिक्षा भी मिलती है।

स्मरणनिष्ठ साधक का स्मरणांग-भजन अपना कर्तापन भुला देता है। ध्यान कर रहा हूँ, अपनी स्मृति नहीं है, स्मरण के कारण स्मरणकर्ता स्वयं को भूल जाता है। सिद्धस्वरूप में अभीष्ट के सान्निध्य की ही उपलब्धि होती है। स्मृति में भी श्रीराधा का सान्निध्य बड़ा ही आनन्ददायक है। श्रीपाद नित्य परिकर हैं, अतएव उनकी स्फूर्ति का आनन्द प्रत्यक्ष की अपेक्षा भी निविड़ (सघन) है। उनकी मनोमत (मन पसन्द) आस्वाद्य वस्तु एक श्रीराधा हैं। उनके श्रीचरण-नखों की छटा कितनी अपूर्व है! ऐसे चरणारविन्दों का आस्वादन किये बिना मधुसूदन क्या रह सकते हैं? जिनके चरणों की महावर से श्याम के घुंघराले केश रंजित हैं, श्रीपाद उन्हीं की किंकरी हैं। श्याम स्वामिनी के चरणों में यावक (महावर) नहीं लगा पा रहे। प्रेम में उनका सर्वांग अवश हैं, नेत्र अश्रुधाराओं से भरपूर हैं! स्वामिनी कहती हैं-'सुन्दर! तुम नहीं लगा सकोगे। तुलसि! तू लगा दे।

तुलसी यावक लगायेंगी, हाथ बढ़ाया है, श्रीचरण हाथ में नहीं आये। स्फूर्ति-भंग!' उसी लीला के स्मृति-रस में डूबे चित्त में, विरहतापित प्राणों में महासर्प-दंशन की महाविष ज्वाला अनुभव कर कातर विलाप किया है।

''तव अदर्शन, काल-भुजंगम, दंशने मृतेर प्राय।
कि बलिबो हाय, विषेर ज्वालाय, जीवन ज्वलिया जाय॥
देवि! तोमार महिमा जानि।
सँपि कायमने, ओ रांगा-चरणे, शरण लइनु आमि॥
तव पदतले, प्रफुल्ल कमले, अलक्त भेषज भाय।
ता दिया त्वरित, करो संजीवित, एइ भिक्षा दासी चाय।''९॥

उच्छ्वास दावानल की ज्वाला-माला की तरह सन्ताप-दायक है। वे अपनी प्राणेश्वरी के दर्शन की लालसा से श्रीकुण्डतीर पर पड़े प्रगाढ़ आर्ति के साथ विलाप कर रहे हैं। अपनी विरह-विधुर देह के भार को वहन करने में नितान्त ही असमर्थ। ईश्वरी के विरह-दावानल में किंकरी की तनुलता अतिशय दग्ध हो रही है। एकाकिनी अनाथिनी की तरह अपने दु:ख-निलय में रोदनशील! जो लोग उन चरणों में समर्पित हैं, वे विश्व में कहीं भी राहत नहीं पा सकते। मन-प्राण श्रीराधा के विश्व-विप्लावी माधुर्य के प्रवाह में दारुयन्त्र (कठपुतली) की तरह उन्हीं की ओर तैरता जाता है। श्रीपाद ने अपने व्रजविलास-स्तव (३) में लिखा है-'यन्माधुरी दिव्य- सुधारसाब्धे: स्मृते: कणेनाप्यतिलोलितात्मा' 'जिनके माधुर्यरूपी सुदिव्य सुधा-सिन्धु की स्मृति में मेरा चित्त-मन अतिशय चंचल हो गया है।'' महाजन (महापुरुष) कहते हैं-सिद्ध के लिये जो स्वाभाविक है, साधक के लिये वही साधना की लक्ष्य वस्तु है। आचार्यपादों की चरित्र-धारा ही वृन्दावनीय रससाधकों का आदर्श लक्ष्यस्थान है। इस आदर्श से अनुप्राणित होने के लिये स्वरूप का अभिमान आवश्यक है। देहावेश का स्वभाव है मनबुद्धि को जड़ीय नश्वर वस्तु में आसक्त करना। स्वरूपावेश का सौन्दर्य जगत् में किसी के साथ सम्पर्क स्वीकार नहीं करेगा। संसार अच्छा लगेगा क्यों? रघुनाथ ने इन्द्रसम वैभव, अप्सरासम स्त्री त्यागकर अनन्यभाव से श्रीमन्महाप्रभु के श्रीचरणों का आश्रय लिया। मुझ-जैसे जीव का इस संसार में कितने ही लोगों के साथ परिचय है, इष्ट के साथ कोई परिचय नहीं। श्रीपाद ने अपनी मन:शिक्षा में कहा है-काम-क्रोध आदि हृदय को छोड़ दें, तब भी हृदय धृष्ट श्वपच-रमणी की तरह प्रतिष्ठा की आशा नहीं छोड़ता, साधुप्रेम उस हृदय को कैसे स्पर्श करेगा?' "प्रतिष्ठाशा धृष्टा श्वपचरमणी में हृदि नटेत् कथं साधुप्रेमा स्पृशति शुचिरेतन्ननु मन:" (मन:शिक्षा)। प्रतिष्ठाशा इष्ट के चरणों में स्वाभाविक भाव नहीं आने देती। देह में आत्म बुद्धि ही इन सभी अनर्थों का मूल है। "विश्व में तुम्हें छोड़कर मेरा और कोई नहीं है"-यह बात स्वरूपाविष्ट साधक के साधन-अवकाश में अवश्य ही अनुभव होगी, अन्यथा अभीष्ट की ओर अग्रसर नहीं हुआ जायेगा। अभीष्ट के लिये उत्कण्ठित साधक चुप बैठा नहीं रह सकता। वाण-विद्ध हरिणी की सी अवस्था है। इसीलिये वृन्दावन-आगमन है। श्रील ठाकुर महाशय ने गाया है-

''सुखमय वृन्दावन, कबे हबे दरशन, से धूलि माखिबो कबे गाय।
प्रेमे गदगद होइया, राधाकृष्ण नाम लईया, काँदिया बेड़ाबो उभराय॥
निभृत निकुंजे जाइया, अष्टांगे प्रणाम हईया, डाकिबो 'हा राधानाथ!' बलि।
कबे यमुना तीरे, परश करबो नीरे, कबे पिबो करपुटे तुलि॥
आर कबे एमन हबो, श्रीरासमंडले जाबो, कबे गड़ागड़ि दिबो ताय।
वंशीवट छाया पाइया, परम आनन्द हईया, पड़िया रहिबो तार छाय॥
कबे गोवर्धन गिरि, देखिबो नयन भरि, कबे हबे राधाकुण्डे वास।
भ्रमिते भ्रमिते कबे, ए देह पतन हबे, कहे दीन नरोत्तम दास॥'' (प्रार्थना)

श्रील प्रबोधानन्द सरस्वतीपाद ने कहा है-'कदा स्यां श्रीराधे चकित इह वृन्दावनभुवि'' 'हा राधे! तुम्हारी चरितामृतलहरी स्मरण करते-करते चकित भाव से वृन्दावन में वास कब करूँगा? लगता है तुम आ गईं, लगता है तुम मिल गईं-इस प्रकार तुम्हारी दर्शन-लालसा में चारों ओर (कब) देखूँगा? अनुभव की व्याकुलता से ही लीला नयन-गोचर होगी। मुझ-जैसे जीव की श्रीवृन्दावन-वास करके भी कोई अनुभव नहीं है। मुँह से

बहुत कुछ बोला जाता है, पर हृदय शून्य है। साधन जीवन में प्रतिफलित होना चाहिये। 'तुम मेरी स्वामिनी हो'-यह आशा लेकर समय व्यतीत किया जा सके, तो उसमें भी लाभ है।

श्रीपाद कर रहे हैं - 'देवि! ते चरणपदमदासिकाम्''-हे देवि श्रीराधे! मैं तुम्हारे ही पादपद्मों की दासी हूँ। मन तुम्हारे ही आश्रित है। तुम्हारे विरह की अतिशयतारूपी दावाग्नि में दग्ध हो रही है इस दीना दासी की देहलता-''दह्यमानतर-कायवल्लरीम्।'' स्वामिनी मानो कह रही है-'मेरे लिये तेरे प्राण छटपटायेंगे नहीं? तू मुझे कैसे पायेगी?'' वे हैं अपार करुणासागररूपिणी; दासी को आर्ति-उत्कण्ठा देकर किस प्रकार श्रीचरणों में लेना होगा, वे अच्छी तरह जानती हैं। फिर प्रेमिक के उत्कण्ठामय विलाप का रस उनके लिये बड़ा ही आस्वाद्य है! दासी उत्कण्ठावती है। स्वामिनी श्यामसुन्दर के साथ उसका विलाप सुन रही हैं। भक्तिरस के भोक्ता हैं इष्टदेव! श्रीविल्वमंगल से बोले-''मैं तुम्हारे साथ-साथ ही हूँ और मैंने मिलन-विरह के भावोच्छ्वास से युक्त तुम्हारा सब प्रलाप सुना है। मेरे कानों को आनन्दायक होने के कारण तुम्हारे प्रलाप का नाम होगा श्रीकृष्णकर्णामृतम्।''

श्रीपाद की आर्ति हृदय-विदारक है। प्रचण्ड है विरह-दावानल। देह-वल्लरी दग्ध हो रही है। निवेदन किये बिना रहा नहीं जाता। 'मैं तुम्हारे चरण-कमलों की दासी हूँ। इन परम सुशीतल चरणों को वक्ष से लगाकर श्यामसुन्दर शान्त-तृप्त हो जाते हैं। विरह-ताप से दग्ध होते श्रीकृष्ण-हृदय को सुशीतल करते हैं (शीतलता-गुणयुक्त) तुम्हारे ये चरण-कमल। विरह-दावानल में जलती इस दीना दासी की देहवल्लरी-एकबार निरीक्षणामृत से बचाओ।' श्रीपाद तो नित्य परिकर हैं; साधनसिद्ध प्रेमिकों की उत्कण्ठा ही बड़ी अपूर्व होती है! गोवर्द्धन के सिद्ध श्रील कृष्णदास बाबाजी महाराज ने अपने प्रार्थनापद में लिखा है-

''हाहा प्राणेश्वरि! तुया विच्छेद अनले। निरवधि प्राण मोर धिकि धिकि ज्वले॥
ए दु:खसागर हइते उद्धार करिया। श्रीचरणे राखो मोरे किंकरी करिया॥
हेनो दिन कि हबे तव श्रीमुखेर वाणी। कर्णेते शुनिबो आर नूपुरेर ध्वनि॥
तोमार लावण्यामृत नयन-चषके। कबे बा करिबो पान परानन्दसुखे॥
आघ्राण करिबो तब अङ्ग-परिमल। पुलके पूर्णित हबे मोर कलेवर॥
कबे तवोच्छिष्टामृत दिबे कृपा करि। पाइया कृतार्था हबे ए नव किंकरी॥
तुमि मोर जप तप तुमि मोर ध्यान। जन्मावधि तोमा बिना नाहि जानि आन॥
कान्तालि सहित तुमि जथाय बिहरो। कृपा करि सेइ स्थाने मोरे दासी करो॥
काँदे दीन कृष्णदास दन्ते तृण धरि। अभिलाष पूर्ण मोर करो हेमगौरि॥''

ऐसे आचार्य महाजनों को पाकर भी हम लोग किस प्रकार दिन बिता रहे हैं! प्रकृत साधन-जीवन में थोड़ी-बहुत व्याकुलता या उत्कण्ठा आयेगी ही। श्रीपाद का कैसा हाहाकार है! लगता है हृदय विदीर्ण हुआ जा रहा है। सहसा विद्युत की तरह पहले स्फूर्ति प्राप्त लीला का स्फुरण हुआ। देख रहे हैं-श्याम स्वामिनी की वेश रचना में जुटे हैं। श्रीरूपमञ्जरी के हाथों में वेश-सामग्री है। गण्डस्थल पर मकरी-रचना कर रहे हैं। हाथ प्रेम के कारण काँप रहे हैं, रचनाकार्य ठीक नहीं हो रहा।

स्वप्नेऽपि किं सुमुखि ते चरणाम्बुजात,-राजत्-पराग-पटवास-विभूषणेन।
शोभां परामतितरामहहोत्तमांगं, विभ्रद्भविष्यति कदा मम सार्थ-नाम? ॥११॥

अन्वय-सुमुखि! अहह! स्वप्ने अपि किं कदा मम उत्तमांगं (शिरः) ते चरणाम्बुजातराजत् पराग-पटवास-विभूषणेन (तव चरणाम्बु-जातस्य यः परागो रजः स एव पटवासः सुगन्धिचूर्ण विशेषः स एव विभूषणं तेन) परां अतितरां शोभां विभ्रत् सार्थनाम (सार्थक संज्ञं) भविष्यति? ॥१॥

रचनाकार्य में उनका आवेश देखकर स्वामिनी के मुख पर मृदुमन्द हँसी फूट आई है। वह हँसी तो अमृत है, यदि झर पड़ी! इसीलिये श्यामसुन्दर ने उसे गिरने नहीं दिया, अधर-चषक में भर लिया। स्वामिनी श्याम के वदनमण्डल पर एक विलोल (चञ्चल) कटाक्ष-पात करती हैं। श्यामसुन्दर विमोहित हैं! सिद्ध स्वरूपावेश में श्रीपाद ने इस लीला का आस्वादन किया है। लीलारस में चित्त डगमगा उठा है। श्याम को मकरी-रचना में असमर्थ देखकर स्वामिनी तुलसी की ओर देखती हैं, आँखों के संकेत से मकरी-रचना का आदेश देती हैं। आनन्द से तुलसी का हृदय भर उठा है। इसी समय स्फूर्ति भंग! श्रीपाद साधकावेश में कुण्डतट पर पड़े रोदन कर रहे हैं। तीव्र विरह ज्वाला। राधा-निष्ठा की अवधि नहीं। विरह की अतिशयता के कारण श्रीराधाकुण्ड को व्याघ्रतुण्ड (बाघ के मुँह) की तरह समझ रहे हैं।

''शून्यायते महागोष्ठं गिरीन्द्रोऽजगरायते।
व्याघ्रतुण्डायते कुण्ड जीवातुरहितस्य मे॥''
(प्रार्थनाश्रय-चतुर्दशकम्-११)

''जीवातुरहित मुझे महागोष्ठ शून्य की तरह, गिरिराज गोवर्द्धन अजगर की तरह और श्रीराधाकुण्ड व्याघ्रतुण्ड की तरह लग रहा है।''

अभीष्ट के दर्शन और साक्षात् सेवा के अभाव में परम रहस्यमय लीलाक्षेत्र अभीष्ट का विपुल उद्दीपन जगाकर अत्यन्त विरह-वेदना के कारण बन जाते हैं। श्रीपाद रो-रोकर प्रार्थना कर रहे हैं-''जीवय क्षणनिरीक्षणामृतैः''-सेवा के लिये उसी कृपादेशपूर्ण मधुरातिमधुर इंगितपूर्ण करुणा के दृष्टिपात की बात याद आती है। 'वही कृपादृष्टि अमृत है, जीवन-रक्षा की महौषधि है! इस दीन दासी के प्रति एकबार और करुणा-दृष्टि निक्षेप करो।' इसी प्रकार विलाप-आर्ति सहित प्रार्थना-

''शुनो देवि! निवेदन, आमि तव दासीजन,
चिर पादपद्म-सेवारता।
तोमार विरहानले, सदा मोर तनु ज्वले,
दावानले जेनो वनलता॥
तव क्षण-निरीक्षण, अमृतेर प्रस्त्रवण,
कणामात्र चाहि आमि तार।
कृपा करि करो दान, बाँचाओ दासीर प्राण,
तोमा बइ गति नाहि आर॥''१०॥

अनुवाद-अहो! हे सुमुखि! क्या कभी स्वप्न में भी तुम्हारे चरण-कमलों के परागरूपी सुगन्धि चूर्ण-भूषण से परम शोभायुक्त होकर मेरा मस्तक सार्थकनाम होगा (अर्थात् अपना 'उत्तमांग' नाम सार्थक करेगा) ?११॥

उत्तमांग की सार्थकता

परिमलकणा व्याख्या-श्रीपाद का स्फुरण का अनुभव जितना निविड़ है, स्फूर्ति के विराम में उत्कण्ठा भी उतनी तीव्र है। स्फुरण में विराम आने पर साधकावेश में एक ओर स्वामिनी के रूप-गुण-लीला आदि अतिशय दुर्लभ लगते हैं, तो दूसरी ओर प्रबल उत्कण्ठा प्राप्ति के लिये दुर्बार लोभ जगाती है! श्रीपाद बलदेव विद्याभूषण ने श्रीमत् रूपगोस्वामिपाद की उत्कलिकावल्लरी के प्रथम श्लोक की व्याख्या में लिखा है- ''अलब्धाभीष्टस्याभीष्टोत्कण्ठया विगलितचित्तस्य तल्लाभे स्वायोग्यत्व स्फूर्त्याभ्युदित दैन्यस्य भक्तस्य सक्रन्दोऽश्रुनिर्झरः पततीति''-'स्फूर्ति के विराम में भक्त के अभीष्ट वस्तु के अनुभव के अभाव में उत्कण्ठा से जैसे चित्त विगलित होता है, वैसे ही विपुल दैन्य के उदय होने से वस्तु-प्राप्ति की अयोग्यता की स्फूर्ति के कारण वह अविराम रोदन करता है।' श्रीपाद की यही अवस्था है। स्वरूप के आवेश में कहते हैं-'साक्षात् तो दुर्लभ है, पर क्या किसी दिन स्वप्न में भी तुम्हारे चरण-कमलों के पराग के पटवास (चूर्ण) से मेरा उत्तमांग (मस्तक) सार्थक नाम होगा? तुम्हारे श्रीचरणों से लगे पटवास या सुगन्धि चूर्ण से उत्तमांग की सार्थकता है।' आकांक्षा कितनी निविड़ है! लालसा कितनी तीव्र है! सुदुर्लभ लगने पर भी आशा नहीं छूटती। ''आपना अयोग्य देखि मने पाउँ क्षोभ। तथापि तोमार गुणे उपजाय लोभ॥'' (चै.च.)। जैसा आभास मिल रहा है, उससे आशा नहीं छोड़ी जाती। अपनी शत अयोग्यताओं के रहते भी इष्ट की करुणा-माधुरी चित्त में आशा का आलोकपात करती है। श्रीमत् रूपगोस्वामिपाद ने लिखा है-

''साक्षात्कृतिं वत ययोर्न महत्तमोऽपि
कर्तुं मनस्यपि मनाक् प्रभुतामुपैति।
इच्छन्नयं नयनयोः पथि तौ भवन्तौ
जन्तुर्विजित्य निजगार भियं ह्रियञ्च॥''

''अथवा मम किं नु दुषणं, वत वृन्दावनचक्रवर्तिनौ।
युवयोर्गुणमाधुरी नवा जनमुन्मादयतीह कं न वा॥''

(उत्कलिकावल्लरी-३४-३५)

''हे नाथ श्रीकृष्ण! हे श्रीमती राधिके! महा महत्तम जन भी तुम दोनों का साक्षात्कार पाने में समर्थ नहीं होते, फिर क्षुद्र जीव मैं तुम्हारे दर्शनों की वासना कर रहा हूँ, इसलिये लज्जा और भय दोनों को जीतकर मैं इन दोनों को खा बैठा हूँ। पर मेरा दोष भी क्या है, तुम दोनों की नित्य नवीन गुणमाधुरी किसे उन्मादित नहीं करती?'' श्रीमती के सौन्दर्य-माधुर्य के आस्वादन ने, लीला-माधुरी और गुण-माधुरी के आस्वादन ने श्रीपाद के प्राणों में विपुल आलोड़न की सृष्टि कर दी है। उत्कण्ठा-अगस्त्य ने धैर्य-सिन्धु को सुखा डाला है। आचार्यों के मधुमय चरित्रों से भजन-कौशल का पता चलता है। माया का संश्रव रखकर भक्ति-पथ का आश्रय लेने से

अपराध आदि अन्तरायों (बाधा विघ्नों) का उद्‌गम होता है। भक्तिरस के आस्वादन से वंचित रहना पड़ता है। उपासना एक स्वतन्त्र वस्तु है, वह मेरे जीवन को स्वतन्त्र कर देगी। आचार्यचरणों की शिक्षा कितनी मधुर है। प्रसाद पा रहे हैं कहते हैं-''साधु सावधान! खाद्य-बुद्धि रखकर इन्द्रिय-लालसा में मग्न मत होना। अधरामृत के आस्वादन की ओर लक्ष्य रखो। इसी प्रकार भोजन, शयन आदि समस्त देह-दैहिक चेष्टाओं को भजन के अन्तर्गत कर लो। सांसारिक व्यापार मन में लाते ही प्रकृत वस्तु से वंचित हो जाओगे।''

स्वरूपाविष्ट श्रीपाद इस श्लोक में श्रीमती के चरणों में प्रार्थना कर रहे हैं। सम्बोधन करते हैं-''हे सुमुखि!'' कैसा मधुर सम्बोधन है! सुन्दर मुख देखकर कितनी-कितनी मधुर लीलाओं की स्मृति हृदय में जग रही है। श्रीकृष्ण धीरललित नायक हैं, निश्चिन्त हैं, प्रियाजी के वशीभूत! ब्रह्माण्ड आदि की रक्षा की चिन्ता उन्हें विव्रत नहीं करती। 'रात्रि दिन कुञ्जक्रीड़ा करे राधा संगे। कैशोर वयस सफल कइलो क्रीड़ारंगे॥'' (चै०च०)। जैसे श्रीकृष्ण, वैसी ही प्रियाजी। हर समय खेल में डुबाये रखती है। सुन्दर महाभाव-रस का मुख देखकर सब भूलकर शृंगार रसमय खेल में डूब गये हैं।

''श्रीमुख सुन्दरवर, हेमनीलकान्तिधर, भाव-भूषण करु शोभा।
नील-पीत-वासधर, गौरीश्याम मनोहर, अन्तरेर भावे दुहुँ लोभा॥'' (प्रेमभक्तिचन्द्रिका)

माँ के निकट बालक, पूतना के निकट सर्वज्ञ, श्रीराधारानी के निकट बस अज्ञ। निशान्त में कुञ्ज के भीतर शयन कर रहे हैं। शुक पक्षी प्रबोधगीत गा रहा है। माँ की बात भी मन में नहीं। श्रीराधारानी के महाभाव ने भगवत्ता को कवलित कर रखा है! निद्रा नहीं, रसालस। महाभाव-स्वरूपिणी अखण्डज्ञान पर छायी हुई हैं। परम-पुरुष, नित्य, शाश्वत, आत्माराम, आप्तकाम-किन्तु उन्हें भी डुबो रखा है। कुञ्जभंग के समय कक्‌खटि बार बार जटिला के आगमन की घोषणा कर रही है। दोनों डरकर अपने-अपने मन्दिर (भवन) को जा रहे हैं। उस समय भी परस्पर के प्रेम में दोनों ही अधीर हैं।

''पद आध चलत खलत पुन बेरि।
पुन फेरि चुम्बये दुहुँ मुख हेरि॥
दुहुँ जन नयने गलये जलधार।
रोइ रोइ सखीगण चलइ ना पार॥
क्षेणे भये सचकित-नयने नेहार।
गलित वसन फूल कुन्तल-भार॥
नूपुर आभरण आँचरे नेलो। दुहुँ अति कातरे दुहूँ पथे गेलो।
पुन पुन हेरइते ना पाइ। नयनक लोरहिं वसन भिगाय॥'' (महाजन)

ऐसी पिपासा जगाने में और कोई कान्ता समर्थ हो पाई है? श्रीराधा ने ही बताया है-''वृन्दावने अप्राकृत नवीन मदन। कामगायत्री कामबीजे जाँर आराधन॥'' (चै०च०)। बिना आराधना के प्राकृत संस्कारों को लेकर बात समझ में नहीं आती। श्रीशुक मुनि कहते हैं-'साधु सावधान! जो विश्व को उन्मत्त करता है, वह मदन नहीं है। 'साक्षान्मन्मथमन्मथ'' (भा० १०/३२/२) नानावासुदेवादिचुर्व्यूहेषु ये साक्षान्मन्मथः स्वयं कामदेवाः, नतु

तदीयशक्त्यांशावेशि प्राकृतमन्मथवद-साक्षाद्रूपा:, तेषामपि मन्मथ: मन्मथत्वप्रकाशक:, चक्षुषश्चक्षुरित्यादिवत्'' (तोषणी टीका)। द्वारका के चतुर्व्यूह के अन्तर्गत प्रद्युम्न ही अन्याय धामों के चतुर्व्यूहों के मूल हैं, अतएव वे साक्षात् अप्राकृत मन्मथ हैं। व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण इस मन्मथ के भी मूल आश्रय कारण हैं। दृष्टि शक्ति के मूल आश्रय को जैसे 'चक्षु का चक्षु' कहा जाता है, उसी तरह। अतएव श्रीकृष्ण महामोहनता के सिन्धु तुल्य हैं, जिसका कणांश पाकर ही समस्त कन्दर्पों ने मोहनता-शक्ति प्राप्त की है। उस महामोहन की भी मोहिनी हैं श्रीराधा! ''जगत मोहन कृष्ण ताँहार मोहिनी' (चै०च०)। महामोहन की भी मोहनता। मोहित होकर अन्त में भाव-कान्ति का अङ्गीकार! ''राधार धेयाने हिया, कि साजे साजिलो गो, एइ गोरा तनु तार साखि'' (लोचन दास)। ऐसी स्वामिनी के लिये राधागतप्राण किंकरी के प्राण छट्-पट नहीं करेंगे? त्रिभंग क्यों हैं? श्रीराधा के घाघरे के प्रान्तदेश के स्पर्श के लिये। यह रसिकजनों के समझने की बात है।

श्रीपाद रो रहे हैं-'साक्षात् प्राप्ति की तो आशा है नहीं, पर क्या स्वप्न में भी थोड़ा दर्शन नहीं दोगी? तुम्हारे श्रीचरण-कमलों का उज्ज्वल परागरूपी पटवास (सुगन्धि चूर्ण) मेरे मस्तक का भूषण है! उसी से मेरे उत्तमांग की सार्थकता है।' श्रीराधाकृष्ण के अवतरण में सृष्टि की भी सार्थकता है। माया भगवान् की बहिरंगा शक्ति है, बाहर का कार्य करती है। इससे सृष्टि की सफलता कहाँ? माया के राज्य में प्रभु भगवान् प्रकट होकर लीला करते हैं, इसी में सृष्टि की सफलता है। चिन्मयी लीला मृन्मयी पृथ्वी पर अवतीर्ण होकर और भी अधिक माधुर्य मण्डित होकर प्रकाशित होती है-जैसे अन्धकार में प्रकाश की वैचित्री! लीला के माधुर्य को बढ़ाने के लिये ही सृष्टि की आवश्यकता है, केवल जीव को कर्म-फल भोग कराने के लिये नहीं। जीव का कर्मफल-भोग तो आनुषंगिक है।

एक मधुर लीला की स्फूर्ति का ही परिणाम है यह श्लोक। श्रीपाद ने सिद्ध स्वरूप में अर्थात् तुलसी मञ्जरी रूप में श्रीकुण्डतट पर एक निभृत निकुञ्ज में श्रीयुगल का मिलन कराया है। कैसी मधुर विलास-परिपाटी है! वृन्दावन साम्राज्ञि! श्रीकृष्ण जिसकी इच्छा करना नहीं जानते, वह भी दे रही हैं। तुलसी ने कुञ्ज-रन्ध्रों पर नेत्र रखकर निभृत निकुञ्ज का लीलारस आस्वादन किया है।

विलास के अन्त में श्रीमती के रूपमुग्ध नागर श्रीमती के पादपीठ के निकट बैठकर अपलक नेत्रों से उनकी मुखमाधुरी आस्वादन कर रहे हैं। सेवा का अवसर समझकर तुलसी कुञ्ज में प्रविष्ट होती हैं। श्रीकृष्ण ने श्रीमती के पादपद्म वक्ष से लगा रखे हैं। ''कृष्णसुख-विलासेर निधि'' (चै०च०)। कैसी अपूर्व है प्रणय-परिपाटी! श्रीराधा-चरण वक्ष से लगाकर नागर सात्त्विक विकारों से अभिभूत हैं! देह पुलकित हैं, नेत्रों से प्रेमाश्रुओं की स्निग्ध धारायें प्रवाहित हैं, स्वेद-जल से वक्षस्थल आर्द्र हैं! श्रीकृष्ण के वक्षस्थल पर जो पटवास (सुगन्धि चूर्ण) था, वही प्रस्वेद युक्त पटवास श्रीराधा के पादपद्मों से लिप्त हो गया है। उसे देखकर तुलसी श्रीमती के चरणों में बैठकर सिर झुकाये हँस रही हैं। स्वामिनीजी तुलसी को हँसते देखकर अपने श्रीचरणों से उस भाग्यवती का सिर झटक देती हैं। श्याम के वक्षस्थल का जो पटवास श्रीमती के चरणों में लग गया था, वह तुलसी के ललाट पर अंकित होकर उसे शोभित या सार्थक कर रहा है। सहसा स्फूर्ति में विराम आ गया। अब श्रीपाद साधकावेश में श्रीकुण्ड पर पड़े रो रहे हैं। उनके हृदय में विपुल दैन्य का उदय हो गया है, अत: अपने को

अमृताब्धि - रसप्रायैस्तव नूपुरशिञ्जितैः।
हा कदा मम कल्याणि वाधिर्य्यमपनेष्यते?१२॥

अन्वय-कल्याणि (मंगलस्वरूपे)! कदा तव अमृताब्धिरसप्रायैः (अमृतसमुद्ररसतुल्यैः) नूपुरशिञ्जितैः मम बाधिर्य्यं (श्रवणेन्द्रिय-व्याकुलतां) अपनेष्यते (दूरिकरिष्यते)?१२॥

अनुवाद-हे कल्याणि! श्रीराधे! हाय! अमृतसागर के रसतुल्य तुम्हारे नूपुरों का शिञ्जन मेरा बाधिर्य कब दूर करेगा, अर्थात् मैं तुम्हारी नूपुर-ध्वनि कब सुन पाऊँगा?१२॥

अमृत-सिन्धु का रस

परिमलकणा व्याख्या-पिछले श्लोक में श्रीपाद ने अभीष्ट वस्तु की दुर्लभता की बात की थी और अन्ततः यह वासना जगी थी कि वस्तु स्वप्न में ही प्राप्त हो जाय। इस श्लोक में वे प्रार्थना करते-''हे कल्याणि! अमृतसागर के रस-जैसा तुम्हारा जो नूपुर-शिञ्जन है, वह क्या मेरी बधिरता दूर करेगा?'' श्रीराधा के नूपुरों की ध्वनि अमृत-सागर के रस के समान कही गई है। अन्तरात्मा में इसी रस का आस्वादन है। अनुरागी श्रीपाद लीलाशुक ने श्रीगोविन्द के श्रीचरणों की नूपुर-ध्वनि पर मोहित होकर कहा था-

''मम चेतसि स्फुरतु वल्लवीविभोर्मणिनूपुरप्रणयि मञ्जुशिजितम्।
कमलावनेचरकलिन्दकन्यकाकलहंसकण्ठकलकूजितादृतम्॥''

(कृष्णकर्णामृतम्-१७)

''कालिन्दी के कमलवन में विचरणशील कलहसों के (कण्ठ से) कूजन से भी सुमधुर श्रीराधावल्लभ श्रीकृष्ण के पदकमलों के मणिमय नूपुरों की मनोहर ध्वनि मेरे चित्त में स्फुरित हो।''

उस सुदुर्लभ सम्पदा की प्राप्ति के लिये सर्वथा अयोग्य मान रहे हैं। किन्तु दुर्निवार लालसा ने हृदय में विपुल आलोड़न की सृष्टि कर दी है, सो कम से कम स्वप्न में ही उस सौभाग्य-प्राप्ति की कामना उमड़-घुमड़ रही है।

''हे सुमुखि राधे! कि कहबो हाय!
तव श्रीचरण-तल, जेनो फुल्ल-शतदल,
स्वपनेओ ना हेरिनु ताय॥
ताहे जे पराग-रेणु, पटवास सम जनु,
भूषण-स्वरूप अनुपाम।
कबे ताहा शिरे धरि, बाड़ाइया सुमाधुरी,
उत्तमांग हबे सार्थ नाम॥
ए बड़ो भरसा मने, तब कृपा-महाधने,
स्वपनेओ ना हबे वंचित।
सखीगण-माझे तव, चिन्हित हइया रबो,
सदा एइ मनेर वांछित॥''११॥

श्रीपाद कविराज गोस्वामी की सारंग-रंगदा व्याख्या से पता चलता है कि श्रीगोविन्द श्रीराधा का अनुगमन कर रहे हैं, तभी श्याम के नूपुरों की ध्वनि का ऐसा अपूर्व आस्वादन है! फिर स्वयं श्रीमती के नूपुरों की ध्वनि कितनी मधुरतर होगी, कौन कह सकता है? श्रीपाद प्रबोधानन्द सरस्वती ने लिखा है-

''पादांगुलीनिहितदृष्टिमपत्रपिष्णुं, दूरादुदीक्ष्य रसिकेन्द्रमुखेन्दुबिम्बम्।
वीक्ष्ये चलत्पदगतिं चरिताभिरामां, झंकार-नूपुरवतीं वत कर्हि राधाम्॥''

(राधारससुधानिधि-१६)

"रसिकेन्द्र श्रीकृष्ण का मुखचन्द्रबिम्ब दूर से देखकर जो लज्जावश पैरों की अंगुलियों में अपनी दृष्टि स्थिर कर मनोरम स्वभाव युक्त हो गई हैं और नूपुर-झंकार करती चल रही हैं मैं उन राधारानी के दर्शन कब करूँगा?"

श्रीकृष्ण के दर्शनानन्द में श्रीराधा के श्रीअङ्ग से जो अजस्र महाभावरस निकल रहा है, उसमें भीगकर ही नूपुरों का शिञ्जन अमृतसागर के रस-तुल्य हैं! श्रीपाद कहते हैं-'नूपुरों की उसी रसमाधुरी की एक कणिका आस्वादन कराओ।'' यह तीव्र लालसा हृदय में भरी है। अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति के लिये तीव्र आकांक्षा उत्तरोत्तर बढ़ती ही जा रही है। यह सुतीव्र आकांक्षा ही विलाप का हेतु है। इस विलाप को व्याख्या द्वारा प्रकट करना सम्भव नहीं। श्रीपाद के चित्त की एकाग्रता प्रार्थना के माध्यम से अनुभूत होती है। वे सम्बोधन करते हैं- 'हे कल्याणि!' ऐसा सम्बोधन सभी के लिये सम्भव नहीं। जाने कितनी प्रीति के आधिक्य से निकलता है यह सम्बोधन! सम्बोधन की मधुरता को देखकर नहीं लगता कि उनके हृदय में बाह्य जगत् की भी कोई अनूभूति है। लीला इस प्रकार प्रस्फुटित हुई है कि दृश्यमान जगत् का कोई अनुभव चित्त में नहीं। व्यवहारिक आवेश साधक के हृदय को पंकिल कर देता है। श्रीपाद स्वरूप के आवेश में ही सर्वदा विभोर हैं।

"या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुने॥" (गीता-२/६९)

"जीवसमूह जिस आत्मनिष्ठा में निद्रित होते हैं, संयमी साधक उसमें जाग्रत होते हैं; जीव जिस व्यवहारिक जगत् में जगते हैं, मननशील साधक उसमें सोते हैं।"

'कल्याणि!' सम्बोधन कितना मधुर है! 'मंगलमयी स्वामिनि!' यह वस्तु शुष्क ज्ञान से प्राप्त नहीं होती। शुद्ध प्रेम से मिलती है। ममता की अतिशयता का नाम ही 'प्रेम' है। व्रजप्रेम ममता की अतिशयता पर विस्मित होकर महामनस्वी श्रीशुकदेव ने महाराजा परीक्षित से कहा था-

"न चान्तर्नबहिर्यस्य न पूर्वं नापि चापरम्।
पूर्वापरं बहिश्चान्तर्जगतो यो जगच्च यः॥
तं मत्वात्मजमव्यक्तं मर्त्यलिंगमधोक्षजम्।
गोपीकोलूखले दाम्ना वबन्ध प्राकृतं यथा॥" (भा०-१०/९/१३-१४)

''जिनका भीतर नहीं, बाहर नहीं, आगा नहीं, पीछा नहीं, जो जगत् के पूर्व-पश्चिम अन्तर-बाह्य में व्याप्त हैं; जगत् जिनकी मूर्ति है, उन्हीं अव्यक्त अधोक्षज भगवान् को पुत्रभावनामय विशुद्ध वात्सल्यरस में

गोपिका यशोदाजी ने प्राकृत परिच्छिन्न (सीमाबद्ध) बालक की तरह ओखली से बाँध दिया था।'' वहाँ श्रीभगवान् की सर्वव्यापकता सर्वशक्तिमानता आत्महारा है! वस्तुतः तत्त्व की दृष्टि से जो असम्भव है, लीला में वही सम्भव हो जाता है। तत्त्व की अपेक्षा लीला कहीं अधिक समृद्धि सम्पन्न है। सख्य प्रेम में भी वही बात है। प्रभु खेल में हारकर श्रीदाम गोप को कन्धे पर ले जाते हैं। ''उवाह भगवान् कृष्णः श्रीदामानं पराजितः।'' योगिजन समाधियोग से भी जिनके श्रीचरण-कमलों का दर्शन नहीं पाते, वही स्वयं भगवान् ग्वाल-बालक के पैर वक्ष पर धारणकर चल रहे हैं! कान्तारस के माधुर्य की तो तुलना ही नहीं। कुञ्ज के भीतर प्रियाजी मानिनी हैं! भगवान् कुञ्ज के द्वार पर भिखारी बने खड़े हैं। अपराधी की तरह। नेत्रों से अश्रुधारा बह रही है, कण्ठदेश में वस्त्र लिपटा है! मानमयी प्रणय-रोष में भरकर श्याम को खदेड़ देती हैं-''याहि माधव याहि केशव मा वद कैतवादम्। तामनुसर सरसीरुहलोचन या तब हरति विषादम्॥'' मदीयता-अभिमान (श्याम मेरे हैं, इस बात के अभिमान) में श्रीमती कहती हैं-''हे माधव! हे केशव! जाओ, जाओ, और शठता की आवश्यकता नहीं। जहाँ जाकर तुम्हारे हृदय का विषाद दूर होता है, उसी चन्द्रा के कुञ्ज में चले जाओ।''''मेरा'-यह सम्बन्धज्ञान प्रेम में ही यथार्थरूप से प्रकट होता है। प्रेमात्मक ज्ञान ही प्रभु को अच्छी तरह पकड़कर रखता है। ब्रह्मस्तव में ब्रह्माजी ने कहा-''प्रभु! मेरा समग्र ज्ञान आपको पकड़ नहीं सका।''

''जानन्त एव-जानन्तु किं वहूक्त्या न मे प्रभो।
मनसो वपुषो वाचो वैभवं तव गोचरः॥ (भा० १०/१४/३८)

'हे प्रभो! इस जगत् में यदि कोई तुम्हारी महिमा जानता है, तो जाने, पर तुम्हारे महिमा-सिन्धु का एक बिन्दु भी मेरे कायमनोवाक्य के गोचर नहीं।''

किन्तु व्रज का एक दरजी अपने गज से नापकर बता देगा कि श्रीकृष्ण का कौन-सा अङ्ग कैसा है! यही है व्रजप्रेम की अलौकिक शक्ति! पारस्परिक आस्वादन के माध्यम से अनुभव की मधुर छटा 'कल्याणि' सम्बोधन में प्रदीप्त है! श्यामसुन्दर को राधारानी के अनुभव से और राधारानी को श्यामसुन्दर के अनुभव के माध्यम से आस्वाद करना होगा, श्रीपादगणों की यही शिक्षा है। श्यामसुन्दर की दृष्टि से कल्याणी'-मंगल की आधार। श्रीकृष्ण विश्व के मंगलकारी हैं; उनके भी मंगल की मूर्ति हैं स्वामिनी! आनन्दघनविग्रह पूर्वराग की दशा में श्रीराधा के लिये व्याकुल हैं! पदकर्ता कहते हैं-

''चम्पक-दाम हेरि चित अति कम्पित
लोचने बहे अनुराग।
तुया रूप अन्तरे जागये निरन्तर
धनि धनि तोहारि सोहाग॥
वृषभानु-नन्दिनी जपये राति दिनि
भरमे ना बोलये आन।
लाख लाख धनि बोलये मधुर वाणि
स्वपने ना पातये कान॥

'रा' कहि 'धा' पहुँ कहइ ना पारइ
धारा धरि बहे लोर।
सोइ पुरुखमणि लोटाय धरणी पुन
को कह आरति ओर॥
गोविन्ददास तुया चरणे निवेदल
कानुक एतहुँ संवाद।
नीचये जानह तछु दुख-खण्डक
केवल तुया परसाद॥''

मंगलमय गोविन्द श्रीमती की प्राप्ति को ही परम मंगल मान रहे हैं। उन्हें श्रीराधा के बिना विश्व शून्य लग रहा है। तभी यह सम्बोधन 'कल्याणि'। भाव पारस्परिक है, तभी 'कल्याणि' सम्बोधन की सार्थकता है? भानुनन्दिनी कहती हैं-''जिसे पाने की किसी दिन सम्भावना नहीं, उसे प्रेम कर बैठी हूँ। प्रेम कर लज्जा से मरी जाती हूँ। गुरुजनों की गञ्जना (निन्दा भर्त्सना) की सीमा नहीं। यह शरीर परवश है। इतनी प्रतिकूल अवस्था है। मैं मर क्यों नहीं गई। शुक-सारिका उसे पा रही हैं, मेरे ही पाने का उपाय नहीं।'

श्यामसुन्दर भी इस प्रकार अनुराग प्रकट कर रहे हैं। आनन्दघन विग्रह श्रीराधा के विरह में नित्य ही रात्रि जागरण करते हैं, रो-रोकर आँखे लाल कर ली हैं। आँखें आ गई हैं, समझकर माँ हल्दिया रंग का वस्त्र देती हैं-उसे देखकर और अधिक उद्दीपन! फिर भी राधारानी के अनुराग के अनुरूप नहीं हुआ, तभी तो श्रीराधा की भाव-कान्ति अङ्गीकार कर उन्होंने अनुरूप अनुराग प्रकट किया। महाप्रभु ने अन्तिम बारह वर्ष विरह की ज्वाला भोगी। आनन्द-घनविग्रह, उनकी कैसी अवस्था! एक-एक रोमकूप (लोमछिद्र) में बस गई है वह ज्वाला! ऐसी व्यथित कृष्ण की कल्याणकारिणी हैं श्रीराधा! अपने हाथों गीतगोविन्द का चरण पूरा कर दिया-''देहि पदपल्लवमुदारम्''। 'जयदेव! तुम्हें यह लिखने में संकोच क्यों हुआ? मेरे प्राणों की तो समग्र सार्थकता है इन चरणों में। (श्रीराधा को छोड़कर) ऐसा प्रेम करना और कौन जानता है? जगत् में सभी मुझसे कहते हैं- ''दो-दो''। राधारानी के निकट केवल-''लो, लो।''

''कृष्णवाञ्छा पूर्तिरूप करे आराधने।
अतएव राधिकानाम पुराणे बाखाने॥'' (चै०च०)

निकुञ्ज-गृह की अधीश्वरी श्रीराधा! और श्याम हैं क्षुधार्त। उन्हें प्रचुर आस्वादन प्रदान कर रही हैं। कैसे? राजभवन में कोई कंगाल भोजन करने बैठा हो, श्याम राधारानी के निकट उसी प्रकार उपस्थित हैं। श्रीपाद कहते हैं-'तुम उन्हीं (श्याम) का कल्याण करो, हम लोग देखकर सुखी होंगे। श्याम की वासना की पूर्ति के समय तुम्हारे मुखरित नूपुरों की रस-झंकार सुनकर मेरी बधिरता (बहरापन) कब दूर होगी? श्याम के रसास्वादन में नूपुर बजेंगे। नूपुरों का वह शिञ्जन (ध्वनि) सीधे-सीधे सुनाई नहीं देगा। श्यामसुन्दर के आस्वादन (आनन्दानुभूति) के माध्यम से आयेगा।' उस ध्वनि ने प्राणों में इतनी लालसा जगा दी है कि श्रवण (कान) उसे छोड़कर और कोई शब्द ग्रहण ही नहीं करना चाहते-''बाधिर्य' (बधिरता) शब्द का ध्वनिगम्य अर्थ यही है।

शशकभृदभिसारे नेत्रभृङ्गाञ्चलाभ्यां
दिशि विदिशि भयेनोद्घूर्णिताभ्यां।
कुवलयदल-कोषाण्येव क्लृप्तानि याभ्यां
किमु किल कलनीयो देवि ताभ्यां जनोऽयम्? ॥१३॥

एक मधुर लीला की स्फूर्ति का परिणाम है यह श्लोक। रास हो रहा है। नृत्य में मुरली की तान के साथ-साथ नूपुर बज रहे हैं। वंशी के स्वर की मधुरता दबाकर नूपुरों की गमक (तरंग) उठ रही है! मुरली की ध्वनि रस की साम्राज्ञी (महारानी) है, उसका माधुर्य बढ़ा रही है नूपुरों की ध्वनि। मुरली वदन पर, नूपुर चरणों पर। चरणों में रहकर ही वे नूपुर वदन की मुरली की कल ध्वनि को मधुरतर बना रहे हैं। मुरली की ध्वनि अमृतसिन्धु है, कारण-वह स्वर, वह ध्वनि भगवत् राज्य का एक महावैभव है। ''शब्दब्रह्ममयं वेणुं वादयन्तं मुखाम्बुजे।'' इसके माधुर्य से सभी कुछ मधुमय हो जाता है। इसकी सुधा स्थावर-जंगम को मत्त कर विपरीत धर्म प्रदान करती है। ''अस्पन्दनं गतिमतां पुलकस्तरुणां'' (भागवत)। ऐसे अमृत-सिन्धु का भी माधुर्य बढ़ाती है नूपुर-ध्वनि, तभी वह अमृत-सागर के रस के समान है। श्रीपाद रूपगोस्वामी ने लिखा है-

''ध्वस्तब्रह्ममरालकूजितभरैरूर्जेश्वरी नूपुर-,
क्वाणैरूर्जितबैभवस्तव विभो वंशीप्रसूतः कलः।
लब्धः शस्तसमस्तनादनगरीसाम्राज्यलक्ष्मीं परा-,
माराध्यः प्रमदात् कदा श्रवणयोर्द्वन्द्वेन मन्देन मे?''

(उत्कलिकावल्लरी-२७)

''हे विभो! (सौन्दर्य-माधुर्य में परिपूर्ण) श्रीकृष्ण! ब्रह्मा के हंस की कलध्वनि की तरह सुमधुर श्रीराधा की नूपुर-ध्वनि के साथ मिली तुम्हारी वंशी-ध्वनि सुनकर समस्त नादनगरी की आधिपत्य-सम्पदा प्राप्तकर मेरे प्यासे कर्ण-आनन्द विवश कब होंगे?''

'श्रीमती की नूपुर-ध्वनि के आस्वादक हैं श्याम। उनके रसास्वादन का माधुर्य उन्हीं के आस्वादन के माध्यम से तुलसी के प्राणों में उमड़ रहा है! इसी समय राधारानी के श्रीचरण से एक नूपुर निकल गया। अब तो मुरली की ध्वनि जम ही नहीं पा रही। जाने किस बात का अभाव है! तुलसी राधारानी के श्रीचरणों में वह नूपुर पहनाने को होती है कि श्रीचरण हाथ ही नहीं आता। स्फूर्ति में विराम आ गया। श्रीपाद हाहाकार करते हुए विलाप करते हैं-'अमृतसिन्धु के रस के समान तुम्हारा नूपुर-शिञ्जन मेरा बाधिर्य कब दूर करेगा?''

''हा हा श्रीमती राधिके! मंगलस्वरूपे।
आमार श्रवण - द्वन्द्व बधिर अनूपे॥
तोमार नूपुर-ध्वनि सुधा पारावार।
से ध्वनि पशिबे कबे श्रवणे आमार॥
पशिया अभीष्ट सिद्धे आनन्द बाढ़ाबे।
बधिरता व्याधि मोर समूले नाशिबे॥''१२॥

अन्वय-देवि! शशकभृदभिसारे (ज्योत्स्नाभिसारे) भयेन दिशि विदिशि उद्घूर्णिताभ्यां याभ्यां नेत्रभृंगाञ्चलाभ्यां वनानि कोषाणि एव क्लृप्तानि ताभ्यां अयं जनः किं उ (भो) किल कलनीयः (दर्शनीयः भवति) ?१३॥

अनुवाद-हे देवि! श्रीराधिके! ज्योत्स्ना अभिसार में जब तुम भय के कारण चारों ओर उद्घूर्णित (चञ्चल) नयनप्रान्तों (आँखों की कोरों) से वृन्दावन को नीलकमल सदृश शोभायुक्त करोगी, तब क्या उन्हीं नेत्र प्रान्तों से इस दीनजन को थोड़ा नहीं देखोगी? ॥१३॥

ज्योत्स्नाभिसारिका श्रीराधा

परिमलकणा व्याख्या-विलाप के प्रत्येक श्लोक में ही श्रीपाद का इष्ट के प्रति प्रीति-मधुर भाव फूटा है। श्रीमती के अङ्ग-प्रत्यंग की माधुरी ने उनके चित्त में अत्यधिक आलोड़न की सृष्टि की है। वे नित्यसिद्ध होकर भी साधन का रसास्वादन कर रहे हैं। साधनभक्ति में भी प्रेम का कुछ साजात्य (सजातीयता) रहता है, कारण-साधनभक्ति, भावभक्ति और प्रेमभक्ति स्वरूपतः एक ही अवस्था के 'तर' और 'तम' हैं (जैसे सुन्दर, सुन्दरतर, सुन्दरतम)। ऐसा न हो, तो नित्यसिद्धों में भी साधना के रसास्वादन की वासना क्यों जगे? प्रेमी के अनुगत साधक में भी प्रेम की सजातीयता कुछ न कुछ तो रहेगी ही। साधनगत आस्वादन से बाह्य आवेश दूर होता है-यही श्रीपादगणों की शिक्षा है। प्राप्ति के लिये तीव्र व्याकुलता हृदय में जगने पर समस्त चेष्टा उन्हीं (प्रभु) से बँध जायेगी। प्रेमभक्ति की पिपासा ही साधना की प्राणवस्तु है। जिसके हृदय में आकुल पिपासा है, वही चाह करेगा और वही उपाय करेगा। यथार्थ साधन-जीवन में प्रेम-प्राप्ति की पिपासा अवश्य ही जगेगी। मुझ-जैसे जीव की विषय-प्राप्ति के लिये कैसी आकुलता होती है! स्वप्न में भी विषय! जो लोग भजन करेंगे, उनकी यह अवस्था इष्ट के लिये होगी। प्रेमी के चित्त और मन पर प्रेम का कार्य (प्रभाव) वर्णन करते हुए श्रील विश्वनाथ चक्रवर्तिपाद ने लिखा है-''ततश्चास्य भक्तजनस्यात्मात्मीय गृहवित्तादिषु शतसहस्रशो भवत्यो याश्चित्तवृत्तयो ममतारज्जुभिस्तेषु तेषु निबद्ध एव पूर्वमासन् ता एव चित्तवृत्तीः सर्वा एव ततस्ततोऽवहेलयैवोन्मोच्य स्वशक्त्या मायिकीरपि ता महारसकूपस्पृश्यमानपदार्थमात्राणीव साकारचिदानन्दज्योतिर्मयीकृत्स ताभिरेव ममताभिः सर्वाभिस्ततस्ततो विचिताभिः स्वशक्त्यैव तथाभूतीकृताभिः श्रीभगवद्रूपनामगुणमाधुर्येषु यो निवध्नाति सोऽयं प्रेममहाकिरणमालीव उदयिष्यमान एव निखिल पुरुषार्थनक्षत्रमण्डलीः सहसैव विलापयति।'' अर्थात् ''भक्तों की जो चित्तवृत्तियाँ पहले ममतारूपी रज्जु की सहायता से शत-सहस्र प्रकार के धन-जन-आत्मीयों में लगी रहती थीं, प्रेम उन्हीं चित्तवृत्तियों को अनायास ही उन जड़ीय विषयों से मुक्त कर देता है। वे चित्तवृत्तियाँ मायिक हैं और चारों ओर बिखरी हैं, फिर भी अप्राकृत प्रेमरस द्वारा स्पर्श किये पदार्थों की तरह प्रेम उन्हें ममतारूपी अपनी शक्ति से साकार चिदानन्द ज्योतिर्मय बनाकर भगवान् के नाम-गुण-माधुर्य में निबद्ध कर देता है। वह प्रेम भक्त के हृदय में महासूर्य की भाँति उदित होकर समस्त पुरुषार्थरूपी नक्षत्रों को हृदयाकाश से लुप्त कर देता है।''

यथार्थ साधन-जीवन में भी इस अवस्था का थोड़ा-बहुत संक्रमण होगा। मुझ-जैसे जीव के चित्त में संसार को लेकर कितनी ही वस्तुओं का अभाव निरन्तर जगता है, पर राधारानी का अभाव तो नहीं जगता! 'मन

विषयों में डुबा हुआ है, भजन का उत्साह नहीं है, विश्व को तुच्छ नहीं कर सका, राधारानी के साथ सम्बन्ध मधुर नहीं कर सका-मैं साधक किस बात का?' साधन-अवकाश के समय कम से कम ऐसा धिक्कार तो प्राणों में जगना चाहिये। भजनरस का आस्वादन होने पर, संसार ज्वालामय लगने पर (भी) इष्ट की सेवा के अभाव में प्राण रोयेंगे।

''हा हा प्रभु करो दया करुणासागर।
मिछा माया जाले तनु दहिछे आमार॥
कबे हेनो दशा हबे सखी संग पाबो।
वृन्दावने फूल गाँथि दोंहाके पराबो॥
सम्मुखे रहिया कबे चामर ढुलाबो। अगुरुचन्दनगन्ध दोंहा अङ्गे दिबो॥
सखीर आज्ञाय कबे ताम्बूल जोगाबो। सिन्दूर तिलक कबे दोंहाके पराबो॥
विलास-कौतुक-केलि देखिबो नयने। चन्द्रमुख निरखिबो बसाये सिंहासने॥
सदा से माधुरी देखि मनेर लालसे। कतो दिने हबे दया नरोत्तमदासे॥'' (प्रार्थना)

जीवन भक्तिमय होने पर प्रीति का अभाव कभी नहीं रहेगा। ''विषयान्तरैरनवच्छेद्या, तात्पर्यान्तरमसहमाना'' (प्रीति सन्दर्भ)। ''भक्ति विषयान्तर से छेद्यमान नहीं होती और तात्पर्यान्तर सहन नहीं कर सकती।'' श्रीगुरुकृपा से यदि साधक के भीतर लोभ उत्पन्न हो जाय, तो वह अवश्य ही इस वस्तु का आस्वादन प्राप्त करेगा। भजन का अर्थ ही है खोजना या अनुसन्धान करना। साधक विरही है, इष्ट के सान्निध्य से विच्युत है। वह रो-रोकर अनुसन्धान करेगा-'कहाँ हो राधारानि!' राधा-दास्य का अधिकार प्रत्येक आत्मा में है। महाप्रभु की अनर्पितचरी करुणा (ऐसी करुणा, जो पहले कभी नहीं दी गई) का यही अवदान है। 'महाभाव-स्वरूपिणी श्रीराधा, उनके पास से माया क्या मुझे हटा देगी? हा स्वामिनी आपकी किंकरी होकर मै क्या माया का चाबुक खाऊँगी? उनका तीव्र निष्पेषण (चूर-चूर करने वाली व्यथा, ग्लानि) हृदय में जगेगा। व्याकुलता के भोक्ता हैं इष्टदेव। वे निकट रहकर सब देखते हैं और आस्वादन करते हैं। जो सब छोड़कर उनके लिये व्याकुल है, उसके प्रति क्या वे उदासीन रह सकते हैं? श्याम को साथ लेकर स्वामिनी भक्त की प्रेम-चेष्टा देखती हैं। ''भक्तेर प्रेमचेष्टा देखि कृष्णेर चमत्कार।'' भगवान् तो भक्तिरस-लम्पट हैं। अर्जुन से बोले-

''पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥
यत् करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥'' (गीता-९/२६-२७)

''जो भक्तिपूत चित्त से मुझे पत्र-पुष्प-फल-जल प्रदान किया करता है, उस शुद्धचित्त भक्त के भक्ति प्रदत्त सभी उपहार मैं ग्रहण करता हूँ। अतएव हे कौन्तेय! तुम जो भी कर्म करो, जो भोजन करो, जो होम करो, दान करो, तपस्या करो-सभी मुझे समर्पित करना। तुम्हारा सभी कुछ मैं आस्वादन करूँगा।'' भक्त भी भगवान् की थोड़ी-सी कृपा-दृष्टि पाने के लिये व्याकुल होता है! भक्त और भगवान् का कैसा मधुर सम्पर्क है!

एक मधुर लीला की स्फूर्ति का परिणाम है यह श्लोक। ज्योत्स्नामयी रजनी है। शुक्लाभिसार। तुलसी ने स्वामिनी को शुभ्रवेश में सजाया है। चन्दन का अनुलेपन, हीरकमणि के अलंकार। स्वामिनी मानो ज्योत्स्ना में मिल गई हैं।

''कि कहब राइक हरि-अनुराग। निरवधि मनहि मनोभव जाग॥
सहजे रुचिर तनु साजि कत भाति। अभिसरु शारद पूणमिक राति॥
धवल वसन तनु चन्दन-पूर। अरुण अधरे धरु विशद कपूर॥
कवरी उपरे करु कुन्द विथार। कण्ठे विलम्बित मोतिम हार॥
कैरवे झाँपल करतल-काँति। मलयज चन्दन वलयको पाँति॥
चान्दकि कौमुदी तनु नहे चिन। जैछन क्षीर नीर नहे भिन॥
छाया बैरी न छोड़ल वाद। चरणे शरण करु यामिनी आध॥
गोपालदास कहे-सुचतुर गोरी। नूपुर रसन तुलि मुख पूरी॥''

श्रीमत् रूपगोस्वामिपाद ने लिखा है-

''लज्जया सांगलीनेव निःशब्दाखिलमण्डना।
कृतावगुण्ठा स्निग्धैकसखीयुक्ता प्रियं व्रजेत्॥'' (उ०नी०)

''लज्जा से मानो अपने अङ्ग में लीन होकर निःशब्द अलंकार धारण किये एक स्निग्ध (प्रिय, हितैषी) सखी के साथ अभिसारिका अवगुण्ठनवती होकर प्रिय के निकट जाती हैं।'' तुलसी और स्वामिनी। 'तुलसि! तू मुझे ले चल। तुझे छोड़ मेरी गति नहीं।' स्वामिनी तुलसी के साथ वन मार्ग से जा रही हैं। भय से इधर-उधर देख रही हैं। उस दृष्टि सौन्दर्य से वृन्दावन सुन्दर हो गया है। उनके नेत्रों की अद्‌भुत सुषमा से स्वभाव-सुन्दर प्रकृति के हृदय में मानो सौन्दर्य का प्लावन (बाढ़) उमड़ उठा है। सद्य प्रस्फुटित कुवलय (नीलकमल)-गर्भ के अन्तर्दलों में यत्नपूर्वक रक्षित सुषमा को भी पराजित कर वृन्दावन को नील-कमल-सदृश शोभामय कर डाला हैं श्रीराधा की नयन-सुषमा ने! स्वामिनी डर रही हैं। तुलसी अभय देती हुई कहती हैं-''चलो, चलो, भय किस बात का? मैं साथ में हूँ न।'' तुलसी की बात सुनकर स्वामिनी उसकी ओर देखती हैं। स्वामिनी की अभयदात्री है दासी। स्वामिनी उसकी बात से आश्वस्त होकर निःशब्द पैर चलाती अग्रसर होती हैं। तुलसी ही स्वामिनी की आश्रयस्थली हैं। धन्य दासी! समय के अनुरूप सेवा कर स्वयं को धन्य कर रही हैं। दासी, जो अखिल विश्व के परम आश्रय श्रीगोविन्द की प्राण-स्वरूपिणी श्रीराधा की भी आश्रयस्थली हैं! धन्य है राधा-दास्य! 'प्रियतम तुम्हारी आशा में बैठे हैं, उनके हाथों तुम्हें समर्पित करूँगी।' दासी के प्राणों का सौन्दर्य कैसा निरुपम है! ऐसे राधादास्य का परिचय पाकर भी मुझ-जैसा जीव भाग्यदोष से वंचित है! राधादासीत्व का अभिमान नहीं। जड़ीय अभिमान से हृदय भरा है। लाभ, पूजा, प्रतिष्ठा की आशा में मत्त। कृपा बिना गति नहीं। तुलसी अभय देकर स्वामिनी को लिये जा रही हैं।

''पूरति मनोरथ गति अनिवार।
गुरुकुल-कण्टक कि करये पार॥

यदवधि मम काचिन्मञ्जरी रूपपूर्वा, व्रजभुवि वत नेत्रद्वन्द्व-दीप्तिं चकार।
तदवधि तव वृन्दारण्यराज्ञि प्रकामं, चरणकमल-लाक्षा संदिदृक्षा ममाभूत्॥१४॥

अन्वय-वृन्दारण्यराज्ञि! यदवधि काचित् (अनिर्वचनीया) रूपपूर्वा मञ्जरी (रूपमञ्जरी) व्रजभुवि वत नेत्रद्वन्द्वदीप्तिं चकार (त्वत् परिचर्यादि-प्रकार शिक्षणेन नेत्रप्रकाशं चकार। तदवधि मम प्रकामं (यथेच्छं) तव चरणकमल-लाक्षा संदिदृक्षा अभूत्॥१४॥

अनुवाद-हे वृन्दावनेश्वरि! जिस दिन से अनिर्वचनीय श्रीरूपमञ्जरी ने तुम्हारी परिचर्यादि की शिक्षा देकर मेरे नेत्र खोले हैं, उसी दिन से तुम्हारे श्रीचरणों का अलक्तकराग (आलता, महावर) देखने के लिये मेरी विपुल अभिलाषा उत्पन्न हो गई है॥१४॥

श्रीराधानिष्ठा का हेतु

परिमलकणा व्याख्या-पिछले श्लोक में श्रीपाद को श्रीमती के शुक्लाभिसार की एक मधुर लीला

सुरत-शिंगार-किरिति सम भास।
मिललि निकुञ्जे कह गोविन्ददास॥'' (पदकल्पतरु)

सम्भोग-सज्जा (शृंगार वेश) की कीर्ति तुल्य शुभ्रकान्तियुक्त श्रीराधा को लेकर तुलसी संकेतकुञ्ज में प्रविष्ट हुईं। श्याम उत्कण्ठित हैं। स्वामिनी और तुलसी को देखकर रसमय रस-सागर में डूब गये। स्वामिनी का हाथ पकड़कर तुलसी कहती हैं-'ज्योत्स्ना भरी रात्रि है। गुरुजनों का भय है। दिन-जैसा प्रकाश है। बड़े कौशल से-बड़े यत्न से लाई हूँ सुकुमारी को-यह लो, तुम्हारी प्रिया.....' कहकर श्यामसुन्दर को पकड़ाने को हुईं, हाथ बढ़ाया, पर कुछ नहीं मिला। स्फूर्ति का विराम हो गया। श्रीपाद हाहाकार कर उठे। 'हाय!' ''श्याम, तुमने जिस तरह अपनी प्रिया की ओर देखा था, उस तरह कब देखोगे? हा स्वामिनि! तुम्हारी वह अनन्त-मधुर दृष्टि-माधुरी मेरे नयनगोचर कब होगी?'' वेदनार्त श्रीपाद के प्राण विरह के मारे कण्ठ में आ गये। विलाप के साथ प्रार्थना-

''हाय देवि! कबे हबे सुदिन एमन।
शारद पूर्णिमा-निशि ज्योत्स्ना-प्लावित दिशि
अभिसारे करिबे गमन।
मने बड़ो भय पाइ निशि दिशि नेहारइ
नेत्र-भृंग हइबे चञ्चल।
चाहिते नयन-कोणे श्यामल श्रीवृन्दावने
विकशिबे कुवलयदल॥
से कृपा-कटाक्ष कणे कबे ए दासीर पाने
चाहिबे गो निज करुणाय।
एइ से सुखेर सार इहा बिना किछु आर
नाहि चाइ तुया रांगा पाय॥''१३॥

का स्फुरण प्राप्त हुआ था। स्फूर्ति के विराम में असह्य दु:ख। आस्वादन में जितना आनन्द, अभाव में उतना ही दु:ख। सेवारस से गठित स्वरूप है। राधा-किंकरियाँ सेवारस की ही मूर्तियाँ हैं। जो सेवारस की मूर्ति हैं, उनके निकट यदि सेवा नहीं आती, तो उन्हें कितना दु:ख होता है! सेवा-प्राप्ति में जितना आनन्द है, सेवा के अभाव में उतना ही दु:ख है। स्वामिनी की दृष्टि दासियों को सर्वदा सञ्जीवित किये रखती है, अन्यथा वे जीवनहीन हैं। साधन-स्तर पर भी साधक को इस विषय की थोड़ी-बहुत अनुभूति आवश्यक है। यदि कुछ भी अनुभव नहीं रहता, तो भजन निर्जीव लगता है। नाम कर रहे हैं-नाम-माधुर्य का अनुभव नहीं। श्रवण-कीर्तन-अर्चनादि यंत्रवत् चल रहा है। श्रीमद्भागवत का वचन है : भोजन के समय जैसे प्रति ग्रास में तुष्टि-पुष्टि और क्षुधा-निवृत्ति होती है, वैसे ही भजनकाल में भक्ति, परेशानुभूति (भगवत् अनुभूति) और विषय-वैराग्य एक साथ चित्त में उदित होगें ही।

''भक्ति: परेशानुभवो विरक्तिरन्यत्र चैष त्रिक एककाल:।
प्रपद्यमानस्य यथाश्नत: स्युस्तुष्टि: पुष्टि: क्षुदपायोऽनुघासम्॥'' (भा०-११/२/४२)

भक्तिपथ पर अनुकूल रूप से सहायता करने वाले का अभाव नहीं है। गिर भी पड़ें, तो पकड़कर उठाने वाला व्यक्ति पीछे है। गर्भस्तव में ब्रह्मादि देवगण बोले-

''तथा न ते माधव तावका: क्वचिद् भ्रश्यन्ति मार्गात्त्वयि बद्धसौहृदा:।
त्वयाभिगुप्ता विचरन्ति निर्भया विनायकानीकपमूर्द्धसु प्रभो॥''

(भा०-१०/२/३३)

''हे माधव! जिस प्रकार भक्तिशून्य ज्ञानि-योगी आदि (साधक) विघ्नों से अभिभूत होकर सिद्धावस्था से विच्युत हो जाते हैं, उस प्रकार तुम्हारे भक्तजन कभी भी अपने साधन-पथ से भ्रष्ट नहीं होते। तुम उनकी सर्वदा रक्षा करते हो, इसलिये वे समस्त विघ्नों के सिर पर निर्भय विचरण कर तुम्हारी श्रीचरण-सेवा प्राप्त कर धन्य होते हैं।" "विनायकानीकपमूर्द्धसु विशेषेण चरन्ति निर्भयत्वेन तानेव महाविघ्नवर्गेशान् विघ्नकरणार्थमागतान् सोपानानीव कृत्वा श्रीवैकुण्ठपदमारोहन्तीत्यर्थ:। तेषां भक्ति विघ्ने ह्ययनूताप: स्यात्, तेन च श्री भगवतो महती कृपा स्यादिति। (वैष्णव तोषणी टीका) 'समस्त विघ्नों के सिर पर निर्भय विचरण करते है'-इसका तात्पर्य यही है कि भक्त के भजनपथ पर विघ्न उत्पन्न करने के लिये महाविघ्न-समूह आते हैं, तो भक्त सीढ़ियों की तरह उन पर चलकर श्रीभगवद्धाम में पहुँच जाता है। अर्थात् भक्त के आगे भजन-विघ्न उपस्थित होते ही उसके चित्त में विपुल अनुताप उत्पन्न होता है और उससे दैन्य-आर्ति अथवा उत्कण्ठा उदित होने पर वह भगवान् की महती करुणा प्राप्त कर धन्य होता है।

राधादास्य के भजन में अनुभव अवश्यम्भावी है। दासी मानो स्वामिनी की पुकार सुन रही है। परम करुण-कोमल-हृदय स्वामिनी! स्फूर्ति में स्वामिनी मानो स्नेहमिश्रित स्वर में दासी को पुकार रही हैं! यह कम सौभाग्य से नहीं होता। स्फूर्ति की सघनता में साक्षात्कार की भ्रान्ति! फिर स्फूर्ति के विराम में मर्मभेदी हाहाकार! प्रेमी रोते-रोते विवश हो जाता है। इस प्रकार क्या स्फुरण, क्या स्फूर्ति का विराम-इस रस की आस्वादन-धारा निर्बाध गति से चलती रहती है। साधक को साधन-भक्ति का आस्वादन भी कम नहीं होता। मुझ-जैसा जीव अपराध-दोष के कारण उससे भी वंचित है। नाम करने का नियम है, सो करता हूँ, किन्तु नाम-रस का आस्वादन नहीं मिलता। नियम के साथ-साथ भजन पूरा क्यों होगा? देखना होगा कि नियम ही बड़ा (मुख्य

बात) बनकर आस्वादन में बाधा तो नहीं पहुँचाता? आस्वादन के अधीन नियम रहे-यही वाञ्छनीय है। जैसे विषयी जीव का प्रेम अर्थ-सम्पदा स्त्री-पुत्रादि में स्वाभाविक होता है, वैसे ही साधक की भी भजन में स्वाभाविक आसक्ति होनी चाहिये। हृदय व्याकुल होना चाहिये। रोते-रोते खोजते घूमना पड़ेगा-'कहाँ हो राधारानि!' आचार्यचरणों ने कहा है, 'हरे कृष्णेति'-तारकब्रह्म नाम सम्बोधनात्मक है। प्राणों के आवेग से नाम-साधना में आह्वान करना होगा। जैसे शोकातुर माँ खोयी सन्तान को पुकारती है; जैसे विरहिणी पतिव्रता प्रवासी पति के लिये रोती है-उसी तरह! 'मैं जिसकी दासी हूँ, उन्हीं से भेंट नहीं! कहाँ, किस कुञ्ज में, किस वृक्ष की आड़ में छिपी हो, एकबार दर्शन दो।'

''देखा दिया प्राण राखो मरितेछि एइ देखो
करुणा-कटाक्ष करो दान॥
दोहें सहचरी संगे मदन-मोहन-भंगे
श्रीकुण्डे कलपतरु-छाय।
आमारे करुणा करि देखाइबे से माधुरी
तबे हय जीवन उपाय॥'' (महाजन)

विरही रघुनाथ रो रहे हैं। उनके अश्रु-नीर से श्रीकुण्डतट भीग रहा है। सहसा स्फुरण होता है। स्फूर्ति के भीतर स्वामिनी मानो पुकार रही हैं-'तुलसि!' कैसी मधुर पुकार है। अमृतश्रावी (अमृत-वर्षण करने वाले) कण्ठस्वर को सुनकर विरहिणी किंकरी के प्राण शीतल हो गये। देखा कि स्वामिनी सामने खड़ी हैं। महाभावोज्ज्वल करुणा-निर्झर नेत्रों से झर-झर प्रवाहित है। करुण-कोमल स्नेह-मिश्रित स्वर में किंकरी को पुकार रही हैं। जो आशा हृदय में चिरकाल वास करती है, उसी आशा का अमृत है स्वामिनी के इस मधुमय कण्ठस्वर में! 'बता तुलसि! तू अकेली मुझे ही क्यों देखना चाहती है?'- स्वामिनी पूछती हैं। स्वरूपाविष्ट श्रीपाद ने स्वामिनी के इस प्रश्न का उत्तर इस श्लोक में दिया है। 'हे स्वामिनी! जिस दिन तुम्हारी करुणा का दान-श्रीरूपमञ्जरी को दृष्टिपथ पर पाया (जिस दिन तुम्हारी कृपा से श्रीरूपमञ्जरी के दर्शन हुए), जिस दिन तुम्हारी परिचर्या की शिक्षा देकर उन्होंने मेरी आँखें खोलीं, उसी दिन से हे वृन्दावनेश्वरि! मेरे मन में तुम्हारे श्रीचरणों की महावर देखने की इतनी साध है।'

सेवा-रस की मूर्ति हैं रूप! समस्त राधा-किंकरियों की अधिनेत्री। तुलसी के प्रति उनका अपार सौहार्द है। श्रीपाद अपने 'स्वसंकल्पप्रकाश स्तोत्र' में श्रीयुगल की विविध सेवा-परिपाटी सिखाने की प्रार्थना भले ही प्राण-प्रेष्ठ सखियों से करते हैं, किन्तु वस्तुतः वह प्रार्थना श्रीरूपमञ्जरी के चरणों में ही हुई है। और उन्हीं के आगे श्रीयुगल की रहस्यमय सेवा-प्राप्ति की आकांक्षा व्यक्त की है।

''समानं निर्वाह्य स्मर-सदसि संग्राममतुलं
तदाज्ञातः स्थित्वा मिलिततनु निद्रां गतवतोः।
तयोर्युग्मं युक्तया त्वरितमभिसंगम्य कुतुकात्
कदाहं सेविष्ये सखि कुसुमपुञ्जव्यजनभाक्?''

''हे सखि रूपमञ्जरि! ऐसा कब होगा कि श्रीराधा-कृष्ण स्मर (रति) सभा में अतुलनीय कन्दर्प-आवेश में समभाव से स्मरसंग्राम कर निस्पन्द देहों से सोयेंगे, तो मैं उनकी पुष्पशैय्या के निकट आकर कौतूहल से भरकर कुसुम-व्यजन से उन दोनों की हवा करूँगी?''

''मुदा कुञ्जे गुञ्जद्भ्रमरनिकरे पुष्पशयनं
विधायारान्माला - घुसृण - मधुवीटिविरचनम्।
पुनः कर्तुं तस्मिन् स्मरविलसितान्युत्कदमनसो-
स्तयोस्तोषायालं विधुमुखि विधास्यामि किमहम्?''

''हे चन्द्रमुखि! ऐसा कब होगा कि श्रीश्रीराधामाधव मधुप-गुञ्जन से भरे कुञ्ज में पुष्पशैय्या पर कन्दर्पक्रीड़ा कर पुनः उसके लिये समुत्सुक होंगे, तो मैं पुष्पमाला, कुंकुम, मधु और पान के बीड़े तैयार कर उनके निकट पहुँचकर सेवा से उन दोनों को परम सन्तुष्ट करूँगी?''

श्रील ठाकुर महाशय ने अपनी प्रार्थना गीतिका में साधनसिद्ध किंकरियों की युगल-सेवा प्राप्ति-श्रीयुगल की प्रथम सेवा प्राप्ति के दिन श्रीरूपमञ्जरी का ही नियन्तृत्व (अगुआई, नेतृत्व) वर्णन किया है-

''प्रभु लोकनाथ कबे संगे लइया जाबे। श्रीरूपेर पादपद्मे मोरे समर्पिबे॥
एइ नव दासी बलि श्रीरूप चाहिबे। हेनो शुभक्षण मोर कतो दिन हबे॥
शीघ्र आज्ञा करिबेन-'दासि! हेथा आय। सेवार सुसज्जा-कार्य करहो त्वराय॥'
आनन्दित हइया हिया ताँर आज्ञाबले। पवित्र मनेते कार्य करिबो तत्काले॥
सेवार सामग्री रत्नथालेते करिया। सुवासित वारि स्वर्णझारिते पूरिया॥
दोंहार सम्मुखे लये दिबो शीघ्रगति। नरोत्तमेर दशा कबे हइवे एमति॥''
''श्रीरूप-पश्चाते आमि रहिबो भीत हइया। दोंहे पुन कहिबेन आमा पाने चाइया॥
सदय-हृदये दोंहे कहिबेन हासि। 'कोथाय पाइले रूप! एइ नव दासी?'
श्रीरूपमञ्जरी तबे दोंह वाक्य शुनि। 'मञ्जुलाली दिलो मोरे एइ दासी आनि॥
अति नम्रचित आमि इहारे जानिलो। सेवाकार्य दिया तबे हेथाय राखिलो॥'
हेनो तत्त्व दोंहाकार साक्षाते कहिया। नरोत्तमे सेवाय दिबे नियुक्त करिया॥''

राधा-किंकरियों की सेवा की मूल अधिनेत्री श्रीरूपमञ्जरी ने ही श्रीमन्महाप्रभु की इच्छा से इस विशेष कलियुग में श्रीरूप गोस्वामी रूप में अवतीर्ण होकर काल-प्रभाव से अवलुप्त श्रीवृन्दावन की रसकेलिवार्ता का विश्व में प्रचार किया। श्रील ठाकुर महाशय ने लिखा है-

''प्रेमभक्ति रीति जत, निजग्रन्थ सुबेकत, लिखियाछे दुइ महाशय।
जाहार श्रवण होइते, परानन्द हय चिते, युगल-मधुर-रसाश्रय॥
युगल किशोर-प्रेम, लक्षवान जेनो हेम, हेनो धन प्रकाशिलो जारा।
जय रूप-सनातन, देहो मोरे एइ धन, से रतन मोर गले हारा॥'' (प्रेमभक्तिचन्द्रिका)

श्रीमत् रूपगोस्वामिपाद ने भक्तिरसामृतसिन्धु और उज्ज्वलनीलमणि आदि ग्रन्थों में साधन, प्रेम एवं रसतत्त्व के विभिन्न स्तरों, उनके विकास की धारा तथा प्रभाव आदि का विज्ञान-सम्मत पद्धति से वर्णन कर विश्वभर के साधकों को रहस्यमय व्रजरस-साधना में प्रवेश करने का सौभाग्य दान किया है। दूसरी ओर, उन्होंने नाटक, भाणिक (एकांकी नाटक) आदि एवं सेवा-प्रार्थनामय विविध स्तव-स्तोत्रादि की रचना कर श्रीयुगल के लीलारस और मञ्जरीभाव-सेवा के प्रकारों से अवगत होने का सुयोग दिया है। श्रीमन्महाप्रभु ने नीलाचल में श्रीहरिदास की कुटी पर श्रीरूप का आश्चर्यजनक नाटक सपरिकर श्रवण किया, तो विश्व के अद्वितीय रसिक भक्त श्रील रामराय ने श्रीरूप के काव्य-विषय पर अपना मन्तव्य व्यक्त किया। श्रील कविराज गोस्वामिपाद ने उस मन्तव्य की बात कही है-

''एतो शुनि राय कहे प्रभुर चरणे। रूपेर कवित्व प्रशंसि सहस्रवदने॥
कवित्व ना हय एइ-अमृतेर धार। नाटक-लक्षण सब सिद्धान्तेर सार॥
प्रेम-परिपाटी एइ अद्‌भुत वर्णन। शुनि चित्त-कर्णेर हय आनन्द घूर्णन॥
तोमार शक्ति विनु जीवे नहे एइ वाणी। तुमि शक्ति दिया कहाओ हेनो अनुमानि॥''

(चै०चै० अन्त्य०-परि० १)

श्रील रामराय का अनुमान अचूक है, यह प्रभु ने स्वयं श्रीमुख से बताया-

''प्रभु कहे-प्रयागे इँहार हइलो मिलन।
इँहार गुणे इँहाते आमार तुष्ट हइलो मन॥
मधुर प्रसन्न इँहार काव्य सालंकार।
ओइछे कवित्व बिनु नहे रसेर प्रचार॥
सभे कृपा करि इँहारे देहो एइ वर।
व्रजलीला प्रेमरस वर्णे निरन्तर॥'' (वही)

जो भी हो, तुलसी स्वामिनी के चरणों में निवेदन कर रही हैं-'स्वामिनी की प्रिय सहचरी रूप की कृपा से ही मेरी यह राधानिष्ठा है। तभी तुम्हारे श्रीचरणों की महावर देखने की साध है। मात्र दर्शन की साध नहीं,-'संदृदिक्षा', सम्यक् दर्शन की आकांक्षा! तुम्हारे चरणों की महावर अच्छी कहाँ दीखती है? जब काले पर लाल रंग पड़ेगा, तभी अच्छे दर्शन होंगे। तुम्हारा यावक-रंग जब श्याम-अङ्ग पर लगता है, तभी मधुर होता है। तुम्हारे श्रीचरणों में महावर लगाते समय श्रीचरणों की सुषमा पर लुब्ध नागर जब तुम्हारे श्रीचरण वक्ष पर धारण करेंगे, तभी देखूँगी। तुम अकेली को ही देखना नहीं चाहती, तुम्हारे श्याम को भी देखना चाहती हूँ, पर हाँ, श्याम जब तुम्हारे होंगे, तभी उन्हें देखूँगी। तुम्हारे श्रीचरणाश्रय के प्रभाव से मेरे मनोमत उन्हीं श्याम को न चाहने पर भी देख पाऊँगी।' ''राधिका चरणरेणु, भूषण करिया तनु, अनायासे पाबे गिरिधारी'' (प्रे०भ०च०)। यही है संदृदिक्षा का ध्वनिगम्य अर्थ। श्रीपाद की स्फुरण-धारा का विराम नहीं हुआ।

''शुनो अयि वृन्दावनेश्वरि!
जेइ हइते व्रजमाझे तव परिचर्या-काजे
नियोजिला श्रीरूपमञ्जरी॥

यदा तव सरोवरं सरस - भृंगसङ्घोल्लसत्-
सरोरुहकुलोज्ज्वलं मधुरवारि - सम्पूरितम्।
स्फुटत्सरसिजाक्षि हे नयनयुग्मसाक्षाद्वभौ
तदैव मम लालसाऽजनि तवैव दास्ये रसे॥१५॥

अन्वय-हे स्फुटत्सरसिजाक्षि! यदा सरसभृंगसंघोल्लसत्सरोरुहकुलोज्ज्वलं (सरसा शब्दायमाना ये भृंगसंघा स्तैरुल्लसत् प्रकाशमानं यत् सरोरुह कुलं तेन उज्ज्वलं मनोहरं) मधुर वारि-सम्पूरितं तव सरोवरं नयनयुग्म-साक्षात् वभौ तदैव तवैव दास्ये रसे मम लालसा अजनि॥१५॥

अनुवाद-हे विकसित कमलनयनि! मधुर गुञ्जन करने वाले भृंगों से सुशोभित कमल-समूह के कारण मनोहर और मधुर जल से परिपूर्ण तुम्हारा सरोवर अर्थात् श्रीराधाकुण्ड मेरी आँखों के आगे प्रकाशित हुआ है, तभी से तुम्हारे दास्यरस की मेरी लालसा जन्मी है॥१५॥

श्रीराधाकुण्ड की महिमा

परिमलकणा व्याख्या-श्रीपाद ने पिछले श्लोक में श्रीमती के चरणों का अलक्तक (महावर) देखने की इच्छा का हेतु उनके श्रीपादपद्मों में व्यक्त किया है। इस श्लोक में वे श्रीमती के दास्य पर लुब्ध होने का हेतु उनके श्रीचरणों में निवेदन कर रहे हैं। 'हे कमलनयनि! श्रीराधे! जिस दिन तुम्हारे सरोवर के दर्शन प्राप्त हुए, उसी दिन से तुम्हारे दास्य में मन लगा हुआ है।

श्रीकुण्ड की शोभा की सीमा नहीं। व्रज का मुकुट-मणि है श्रीराधाकुण्ड, प्रियाजी की सरसी, प्रियाजी की तरह ही सुन्दर है।

''कुण्डेर माधुरी जेनो राधा-मधुरिमा।
कुण्डेर महिमा जेनो राधार महिमा॥
सेइ कुण्डे एकबार जेइ करे स्नान।
तारे राधा-सम प्रेम कृष्ण करे दान॥'' (चै०च०)

जिन लोगों ने प्रियाजी को प्राणों के साथ प्रेम किया है, जिन्होंने अपने प्राण उनके श्रीचरणों में ही उत्सर्ग कर दिये हैं, उन राधानिष्ठ उपासकों के लिये श्रीराधाकुण्ड कितनी ममता की वस्तु है-

---

कृपा करि दुनयने चाहिला दासीर पाने
तदवधि बाड़िलो पियास।
तोमार चरण जुगे उज्ज्वल अलक्त-रागे
दर्शन करिते अभिलाष॥
त्रिभुवने अनुपम श्यामरूप मनोरम
ताहा हेरि जतो सुख पाइ।
ताहे जदि लागे तव जावकेर चिन्ह लव
दरशने सुख अधिकाइ॥''१४॥

यह बात अनुभवी भक्त समझ लेंगे। श्रीपाद कहते हैं-'तुम्हारे सरोवर की शोभा दर्शन करके ही तुम्हारे दास्य का लोभ जगा।' श्रीराधाकुण्ड-दर्शन की विशिष्टता तो है ही! तटभूमि सुदिव्य कदम्ब, चम्पक, कुन्द, शिरीष, केतकी, किंशुक (टेसू) आदि वृक्षों और लवंग, जाति (चमेली) जूही, माधवी आदि लताओं की मनोरम शोभा से परिशोभित है, विविध पुष्प-गन्धों से सुरभित है। वृक्षों की डालियों पर बैठकर शुक-सारिका मधुर स्वर में श्रीराधा-कृष्ण की लीलाओं का रसगान कर रहे हैं। उस गायन को सुनकर तरु-तलायें परम महतों (महापुरुषों) की तरह अंकुरों के बहाने पुलक धारण कर रहे हैं और मधु-धारा वर्षण के छल से आनन्दाश्रु बहा रहे हैं! कोकिलों की पञ्चम तान से, भ्रमरों की झंकार से और विविध पक्षियों के कल-कूजन से मुखरित है यह कुण्ड-तट! स्थान-स्थान पर मयूरों की 'के-का' ध्वनि के साथ मधुर नृत्य चल रहा है! वृक्ष-लताओं से रची मनोहर कुञ्जावली से श्रीकुण्ड की चारों दिशायें सुशोभित हैं। उनके बीच श्रीश्रीराधाकुण्ड और श्रीश्रीश्यामकुण्ड मधुर जल से सम्पूरित हैं। जल नहीं, श्रीयुगलकिशोर का मधुर 'उज्ज्वलरस' ही भक्तों के लाभार्थ जलरूप में प्रकाशित है!

''दोंहार उज्ज्वल मधुर जे रस वर्ण - विपर्यय करि!
भक्ते सुख दिते रहस्य-सहिते आछे 'सर' नाम धरि॥
ए कारण भक्त 'सर' करि व्यक्त, से-रसे करिया स्नान।
कृष्णेर कृपाय राधासम प्रेम लाभ करे भाग्यवान्॥
श्रीकृष्ण जखन राधा दरशन लागि उत्कण्ठित हय।
सकल उपाय विफल हइया राधाकुण्डाश्रय लय॥
तत्काले राधार पाय दरशन एमति कुण्ड-प्रभाव।
राधारओ तेमति श्यामकुण्डाश्रये कृष्णसंग हय लाभ॥''

आश्चर्यजनक कमल, कल्हार (श्वेत कमल), कुमुद आदि एवं विविध जलजातों से वह विशाल मधुर जलराशि आवृत है। सौरभ-उन्मत्त भृंगकुलों का फूल-फूल पर रसविलास चल रहा है। राजहंस, सारस आदि के कलकूजन से कुण्ड-वृक्ष मुखरित है। श्रीराधाकुण्ड को देखकर श्रीकृष्ण को श्रीराधा का और श्रीश्यामकुण्ड को देखकर श्रीराधा को श्रीकृष्ण का उद्दीपन होता है। ⁂ श्रीराधारानी के सम्बन्ध से जुड़ा है यह सरोवर। स्वप्रकाश कुण्डलीला के साथ श्रीकुण्ड के दर्शन करके ही श्रीपाद की यह उक्ति है। मध्याह्न में श्रीकुण्डतट पर पड़े विरही श्रीपाद आर्तस्वर से रो रहे थे। सहसा स्फूर्ति हुई। सरोवर-लीला के साथ सरोवर का माधुर्य दर्शन किया। श्रीयुगल का जलयुद्ध-कौतुक चल रहा है। जिसकी हार होगी, उसे पण (दाँव पर लगाई वस्तु) देना होगा। मध्यस्थ है कुन्दलता। अधरसुधा-पान ही पण है, हारने पर देना होगा। श्रीराधारानी श्रीकृष्ण-अङ्ग पर जलधारा बरसा रही हैं। नेत्रों की कैसी शोभा है!

तं सिषेच करपंकजकोषैः, साम्बुभिः समणि-कंकणघोषैः।
वारुणास्त्रमेव तत् कुसुमेषो, - रत्यसह्यमभवद्विजिगीषोः॥

⁂ श्रीकुण्ड की यह शोभा प्रेमीभक्तों को ही दीखती है। प्राकृत दृष्टि इस अप्राकृत शोभा को ग्रहण करने में सक्षम नहीं है।

शश्लथे भगवती वनमाला, हारयष्टिरपतत् सुविशाला।
एक एव बलवान् प्रियदेहे, कौस्तुभः परिभवं स विषेहे॥''

(कृष्णाह्निक कौमुदी ४/१४६ एवं १४९)

श्रीराधा मणिमय कंकणों की झंकार के साथ करपद्मकोष की जलराशि से श्रीकृष्ण का सिञ्चन करती रहीं, तो वह कामदेव के वारुणास्त्र की तरह ज्येच्छु के लिये असहनीय हो उठी। एकमात्र बलवान् कौस्तुभ ने ही इस जलधारा को अकातर भाव से सहन किया। ''ईश्वरी ने इतना जल-वर्षण किया, किन्तु यह सोचकर कि सुकुमार श्यामसुन्दर को कष्ट होगा उनके नेत्रों में जलधारा निक्षेप नहीं की। किन्तु निष्ठुर श्याम जीत की कामना से प्रियाजी के नेत्रों को ही लक्ष्य कर सुकुमारी के वदन पर जल निक्षेप करने लगे-

''सह्यतामयमयं मम पाथः, सेक इत्यथ निगद्य स नाथः।
प्रेयसी-वदन एव सहर्षः, सस्मितं सरसमम्बुववर्ष॥'' (वही ४/१५०)

''हे प्रिये! मेरा यह जलसेक सहन करो तो जानूँ-यह कहकर आनन्द पूर्वक हँसते हुए प्रेयसी के वदन पर ही रसमय मनोज्ञ जलवर्षण करने लगे।'' परस्पर विशाल जलयुद्ध। तुलसी कुण्डतट पर खड़ी इस सरस जलकेलि को देख रही हैं। सखियाँ श्याम को निषेध कर रही हैं-'श्याम! तुम हमारी सखी की आँखों में जल नहीं मारोगे। सखी ने क्या तुम्हारी आँखों में जल डाला था? उसे कितना कष्ट हो रहा है!' श्याम बात सुनने वाले पात्र नहीं। जल निक्षेप करने की परिपाटी से श्याम स्वामिनी को पागल किये दे रहे हैं, यद्यपि स्वामिनी इतनी गाम्भीर्यवती हैं। स्वामिनी का अङ्ग विवश हुआ जाता है! श्रीपाद लीलाशुक ने श्रीकृष्ण को 'आनन्द' कहा है और उस आनन्द के मुख पर शृंगार रस की हँसी प्रस्फुटित की है। शृंगार रस के खेल को छोड़कर वे और कोई खेल नहीं खेलते। रसमय-रसमयी की रसक्रीड़ा रसवर्षण चल रहा है! स्मरणनिष्ठ साधक स्मृति में नित्य ही इस रसक्रीड़ा का माधुर्य आस्वादन करते हैं। लीला में ही स्वरूप खड़ा रह पायेगा। मन बाहर गया नहीं कि स्वरूप छूट जायेगा। तभी श्रील ठाकुर महाशय ने कहा है-''साधन स्मरण लीला, इहाते ना करो हेला कायमने करिया सुसार।'' लीला का स्वभाव है मन को स्वरूप की ओर खींच लेना। रागभजन का एकमात्र उपजीव्य (संरक्षक) जो लोभ है, वह भी लीलारस के निषेवण (सेवन, अभ्यास) से ही जगता है। भाव का माधुर्य श्रवण करने से लोभ जन्मता है।

"तत्तद्भावादिमाधुर्ये श्रुते धीर्यदपेक्षते।
नात्र शास्त्रं न युक्तिञ्च तल्लोभोत्पत्तिलक्षणम्॥"(भ०र०सि० १/२/२६२)

भाव का माधुर्य सुनते-सुनते ही आयेगा अनुभव। लीला-कथा देहावेश को नष्ट करने वाली और स्वरूप की पुष्टि करने वाली होगी ही। लीलाकथा सुनकर जिसे कामोद्रेक होता है, वह हतभाग्य है। श्रीपाद शुकमुनि ने कहा है कि राधामाधव की लीला हृदय-रोग नाश कर शीघ्र ही श्रीराधा के दास्यभाव से युक्त प्रेम प्रदान कर श्रवण-कीर्तनकारी को धन्य करती है। ⁎

⁎ ''विक्रीड़ितं'' आदि, श्रीरासलीला का अन्तिम श्लोक एवं श्रीजीव गोस्वामिपाद की लघुतोषणी टीका देखिये।

स्वामिनी जलयुद्ध में हारकर पीछे मुड़कर खड़ी हो गईं। पहलवान् से वे सुकुमारी भला कैसे जीतें? श्याम ताली बजाके कहते हैं – 'हार गईं, हार गई! मुझे पण दो, मैं जीत गया।' यह कहकर उन्होंने स्वामिनी का कण्ठ पकड़ लिया। उस समय स्वामिनी के नेत्रों की कैसी शोभा! जलयुद्ध के कारण वे किंचित् रक्ताभ हो गये हैं– ''स्फुटत्-सरसिज''। महाजनगण सामान्यत: स्वामिनी के कज्जललिप्त नयनों की तुलना नीलकमल से ही करते हैं।

''अलस लोचन हेरि काजरे उजल।
जले बसि तप करे नील उतपल॥''

यह भी कहा है – ''इन्दिवर-वर गरव गरासित खञ्जन गञ्जन नयना।'' किन्तु यहाँ ''स्फुटतसरसिजाक्षी।'' नागर भी कैसे धृष्ट हैं! स्वामिनी आँखें बन्द कर रही हैं पर बिना देखे भी नहीं रहा जाता। यही कारण है कि उनके रक्ताभ नयन-कमल ईषत् विकसित हैं। पणग्रहण का कार्य हो गया। सखीसमाज में लज्जित होकर स्वामिनी चम्पत हैं। कहाँ चली गईं, किसी को पता नहीं चला। सरोवर नील, पीत, रक्त और श्वेत चार प्रकार के कमलों से उज्ज्वल है। ''सरोरुह-कुलोज्ज्वल।'' स्वामिनी डुबकी लगाकर स्वर्णकमल-वन में जा पहुँची! केवल मुख ऊपर है। देहरूपी स्वर्णमृणाल पर मुखकमल उन स्वर्ण कमलों के साथ मिल गया है। ''पद्मे मुखे ना पारि चिनिते'' (चै०च०)। हठात् स्वामिनी के मुखकमल की अलौकिक गन्ध से आकृष्ट होकर भ्रमरगण अन्य कमल-वनों को त्यागकर सरस झंकार करते-करते स्वर्णकमलवन में आ रहे हैं। ''सरसभृंगसंघोल्लसत्''- सरस झंकार से उल्लसित भृंगकुल! इधर सखियाँ श्याम से कह रही हैं-''तुमने हमारी सखी को क्या कर दिया, खोजकर शीघ्र ही लाओ।' श्याम नागर ने स्वर्णकमल में भ्रमरों का आवागमन देखकर वहाँ पहुँचकर श्रीमती को जा पकड़ा। सखियाँ भी पहुँच गईं। श्याम कहते हैं-'प्रिये! तुम्हारी तरह यदि मैं छिप जाऊँ, तो तुम सब मिलकर भी मुझे नहीं खोज पाओगी।' स्वामिनी दर्प से कहती हैं-'अच्छा छिपो, तुम्हें अवश्य ही खोज निकालेंगी।' श्यामसुन्दर डूबकर नील कमलवन में जा छिपे। उन्हें खोजते-खोजते स्वामिनी देखती हैं-कुण्डतट के वृक्षों की शाखाओं पर बन्दर नीलकमलवन की ओर एकटक देख रहे हैं। स्वामिनी ने बात को समझकर वहीं पहुँचकर श्याम को जा पकड़ा। इसके पश्चात् वे श्याम का कण्ठ पकड़कर अगाध जल में तैरने लगती हैं। ''तिहों कृष्णकण्ठ धरि, भासे जलेर उपरि, गजोत्खाते जैछे कमलिनी'' (चै०च०)।

श्रीअङ्ग के माधुर्य से कुण्ड उज्ज्वल हो रहा है। सन्तरणरत (तैरती) अपनी ईश्वरी को वक्ष पर पाकर श्रीकुण्ड का कैसा उल्लास! मधुर जलराशि तरंगों के बहाने कैसा उल्लास प्रकट कर रही है-''मधुरवारिसम्पूरितम्।'' कैसी मधुर लीला है! लीला-दर्शन कर आत्महारा हैं तुलसी-मञ्जरी! उसी लीला की स्मृति में कहती हैं-तुम लोगों की लीला के साथ तुम्हारा कुण्ड दर्शन करके ही तुम्हारे दास्यरस में मेरा मन डूब गया है।'

श्रीराधारानी के कुण्ड का दर्शन कर उनकी लीला की स्फूर्ति और श्रीकुण्ड के सेवन से राधादास्य का लोभ तो जगेगा ही। श्रीपाद ने अपने श्रीराधाकुण्डाष्टक (५) में लिखा है-

''अपि जन इह कश्चिद् यस्य सेवाप्रसादै: प्रणयसुरलता स्यात्तस्य गोष्ठेन्द्रसूनो:।
सपदि किल मदीशा-दास्य-पुष्प प्रशस्या स्तदति-सुरभि राधाकुण्डमेवाश्रयो मे॥''

पादाब्जयोत्सव बिना वर-दास्यमेव, नान्यत् कदापि समये किल देवि याचे।
सख्याय ते मम नमोऽस्तु नमोऽस्तु नित्यं, दास्याय ते मम रसोऽस्तु रसोऽस्तु सत्यम्॥१६

अन्वय-देवि! तव पादाब्जयोः वरदास्यं (श्रेष्ठ दास्यं) बिना कदापि (कस्मिन्नपि) समये किल (निश्चितं) अन्यत् (सख्यादिकं) न याचे। ते (तव) सख्याय मम नित्यं नमोऽस्तु नमोऽस्तु (त्वरायां दिरुक्ति) ते (तव) दास्याय एव मम रसोऽस्तु रसोऽस्तु सत्यम् (इति शपथम्) ॥१६॥

अनुवाद-हे देवि! तुम्हारे पादपद्मों में श्रेष्ठ दास्य को छोड़कर मैं किसी समय भी अन्य (सख्यादि) किसी वस्तु के लिये प्रार्थना नहीं करती। तुम्हारे सखीत्व को मेरा सदा नमस्कार रहे, (पर) मेरा दृढ़ अनुराग तुम्हारे दासीत्व में ही हो-यह बात मैं शपथ पूर्वक कहती हूँ॥१६॥

श्रीराधा का वरदास्य

परिमलकणा व्याख्या-श्रीपाद की स्फूर्ति में विराम नहीं आया। स्वामिनी सामने खड़ी हैं। तुलसी को सख्य देना चाहती हैं। 'तुलसि! तू मेरा सख्य ले (मेरी सखी बन)। ललिता आदि सखियों की तरह मेरी सेवा और मेरे श्यामसुन्दर की सेवा दोनों ही प्राप्त करेगी।' तुलसी कहती हैं-'हे देवि! मैं तुम्हारे श्रीपादपद्म युगल के वरदास्य को छोड़कर और कुछ नहीं चाहती। तुम्हारे सख्य को प्रणाम करती हूँ। सख्य मेरे सिर माथे। मैं तो तुम्हारे दास्य की प्राप्ति के लिये ही लालायित हूँ।' श्रीपाद की राधादास्य-निष्ठा लक्ष्य करने की वस्तु है। ऐसी व्याकुलता का उच्छलन अन्यत्र नहीं मिलेगा। साधक को आचार्यपादगणों के आनुगत्य में भजन करना होगा। ये सब सम्प्रदाय के गुरु हैं। साधनमय जीवन गठित करने के लिये श्रीमत् दासगोस्वामिपाद आदर्श हैं। ऐसा और कहीं देखने में नहीं आता। हम लोग कुछ कर पायें या न कर पायें, कम से कम उन लोगों के आनुगत्य का अभिमान तो होना चाहिये। श्रीपाद की इस महावाणी के श्रवण-कीर्तन से ही आनुगत्य-अभिमान जगेगा। महाशक्तिशाली वाणी है! ऋषियों की महावाणी से भी उच्चतर। जिस में महर्षियों की भी गतिविधि (प्रवेश) नहीं है, उसी परम रहस्यमय व्रजनिकुञ्ज के लीलारस से भरपूर है यह वाणी। श्रीराधारानी की श्रीचरण-सेवा-प्राप्ति का उपाय श्रीराधारानी से भी कहीं अच्छी तरह जानती हैं किंकरियाँ। षड़गोस्वामिपाद व्रजनिकुञ्ज की ही नित्य-

---

''जिस राधाकुण्ड के वास, स्नान, दर्शन, स्पर्श आदि सेवाओं की अचिन्त्य शक्ति के प्रभाव से विवेकादिशून्य अति अयोग्य व्यक्तियों के हृदय में भी मेरी ईश्वरी श्रीराधा के दास्यरूपी पुष्पदलों से शोभित श्रीकृष्णप्रेमकल्पलता शीघ्र ही उत्पन्न होती है, वही रमणीय श्रीकुण्ड मेरा आश्रय हो।'' श्रीपाद कहते हैं-'तुम्हारे श्रीकुण्ड की माधुरी दर्शन करके ही तुम्हारे दास्य में मेरा मन लगा है। तुम्हारे दास्य के अतिरिक्त और कुछ कामना नहीं करता।'

''यदवधि हेरिनु तोमार सरोवर। विकसित सरोरुह-कुलेते उज्ज्वल।
सारसादि विलसित भृंग उलसित। सुमधुर निर्मल सलिले सम्पूरित॥
सेइ हइते मने मोर लालसा जन्मिलो। तुया दास्यरसे मोर मन डुबि गेलो॥
तुया दास्यरस छाड़ा अन्य नाहि चाइ। कदाचित् मोर मने अन्य वाञ्छा नाइ॥''॥१५॥

सिद्ध किंकरियाँ हैं, तभी उनका आनुगत्य आवश्यक है। विलाप के भीतर श्रीरघुनाथ का हार्द (अभिप्राय) समझना होगा। इसी उद्देश्य से विलाप की समालोचना है।

श्रीपाद स्वरूपावेश में श्रीमती के चरणों में निवेदन कर रहे हैं-'हा देवि! अपने चरणों में वरदास्य दो।' दास्य वर (श्रेष्ठ) है। दास्यभाव के सम्भ्रम-संकोच से मुक्त, परम सुरसाल। ऐसा दास्य और कहीं नहीं है। इस दास्य की प्राप्ति श्रीगौरसुन्दर की विशेष करुणा का दान है। रघुनाथ नित्यसिद्ध किंकरी हैं। राधादास्य का सौन्दर्य-माधुर्य हम लोगों का भी हार्द है। जितने भी दास्य हैं, उनमें राधादास्य ही वर या श्रेष्ठ है। सखी होकर भी दासी। रूप-गुण में किशोरी अन्तरंग सेवाधिकारिणी दासी! दास्यरस की पात्र! इस दास्य को छोड़ गौड़ीय वैष्णवों के लिये प्राण शीतल करने का और स्थान नहीं। मधुररस की पात्र होकर भी दासी-मधुररस के अन्तर्गत सेवा की अधिकारिणी! पहले रस की अनुभूति, अन्त में सेवा। ''कबे हाम बुझबो से युगल-पिरीति'' (ठाकुर महाशय)। परस्पर का (राधा-श्याम का एक-दूसरे के प्रति) प्रेम कब समझूँगा? समझने का उपाय भी है रूप-रघुनाथ की कृपा। वे हैं 'युगल उज्ज्वलमय तनु'। नखाग्र से केशाग्र तक युगल उज्ज्वलमय। अप्राकृत नवीन-मदन की सेवा। उसके लिये हृदय में जोर कितना है! चित्त जब तक युगल-उज्ज्वलरस से विभावित नहीं होगा, यह सम्भव कैसा होगा? यह योग्यता प्राप्त करने के लिये ही काम-बीज कामगायित्री की उपासना है। ''वृन्दावने अप्राकृत नवीन-मदन। कामगायत्री कामबीजे जाँर उपासन॥'' (चै०च०)। जो प्राकृत जगत् को भुलाकर अपने अप्राकृत रूप-गुण-लीलादि विषयों में उपासक के चित्त को प्रमत्त कर डालते हैं- वे ही हैं अप्राकृत नवीनमदन, उन्हें 'धीमहि'। ''गायन्तं त्रायते यस्मादिति गायत्री''। यथावस्थित दशा से मेरा उद्धार कर श्रीश्रीराधागोविन्द के लीलारस के आस्वादन के लिये उपयोगी देह-मन-प्राण देंगे, इसीलिये कामगायत्री की उपासना है।

स्वरूपाविष्ट श्रीपाद स्वामिनी के चरणों में निवेदन कर रहे हैं-'कुञ्जविहार में तुम्हारा आनन्द श्याम को विवश करेगा, यह मेरे ध्यान का विषय बने। उस आनन्द-वैवश्य को दूर करने में तुम भी हार मनोगी, तब मेरी आवश्यकता होगी।' कुञ्ज में श्रीराधा के विशाल और विपुल मादन-रस के तरंगाघात से आनन्दविवश हैं श्याम। मूर्छा भंग नहीं हो रही। राधामाधुरी ने नागर को आनन्दविवश कर रखा है। अनुरागवती लीला से अतृप्त हैं। उपास्य हैं अप्राकृत नवीनमदन। इस समय वरदास्य की आवश्यकता है। स्वामिनी मन ही मन कहती हैं-'तुलसि! मैं तो प्रियतम की मूर्छा भंग नहीं कर पा रही रही री, तू आ न तुलसि!' ऐसी गुप्त सेवा और कहाँ है? ललिता आदि सखियों को भी चिर अगोचर है यह सेवा। यही है वरदास्य। 'देवि! सम्बोधन लीला के प्रति लक्ष्य करके है। पण रखकर (दाँव लगाकर) पाशाक्रीड़ा चल रही है। जिगीषा (स्पर्धा) पूर्ण क्रीड़ा है। जो अधिक सुख दे पायेगा, उसी की जीत होगी।

श्याम की पराजय हो गई। दासी राधारानी के इंगित पर श्याम से परिहास कर रही हैं-'अरे, पासा खेलने और मत आना। गायें चराना ही अच्छा, समझे? गायें चराने से गाय-जैसी बुद्धि ही तो होगी। जानते हो, संग का दोष-गुण नहीं छूटता। इसलिये जहाँ शारीरिक बल से जीत हो, वहाँ खेलना। जहाँ बुद्धि की आवश्यकता है, वह खेल और मत खेलयो।' यह सुनकर श्याम लज्जित हैं। स्वामिनी के आनन्द की सीमा नहीं। यही है वरदास्य! सखी होकर भी दासी, कैसी मधुर उपासना है! दास्य की श्रेष्ठता कहाँ है? मधुररस-मिश्रित दास्य में।

मधुरभाव को छोड़ अन्य किसी भी भाव से युगललीला में प्रवेश नहीं किया जा सकता। और यह सम्भव है उसी के लिये, जो भावमय एवं भावमयी के मानस की खबर रखता है। किंकरियाँ अकेले कृष्ण को स्वप्न में भी नहीं चाहतीं। 'तुम अपनी प्रिया के साथ प्रणय पूर्वक जहाँ खेल कर रहे हो, मुझे दोनों की प्रिय-सेवा के लिये वहीं रखो'-श्रीकृष्ण से राधादासी की यही प्रार्थना है।

श्रीमत् रूप गोस्वामिपाद ने कहा है। कामरूपा रागभक्ति दो प्रकार की है, 'सम्भोगेच्छामयी' एवं 'तद्भावेच्छात्मिका।' 'तद्भावेच्छात्मिका' ही सखी-भाव है। ''तद्भावेच्छात्मिका तासां भावमाधुर्यकामिता'' (भ०र०सि० १/२/२९९)। अर्थात् श्रीकृष्ण के साथ श्रीराधा चन्द्रावली आदि नायिकाओं के मिलन आदि विषयों में सहायता करने को ही अपना परम सुख मानकर नायक-नायिका को आकर्षित करने वाला जो भावविशेष है- और उसी भाव की अभिलाषा से युक्त जो भक्ति है-वही है 'तद्भावेच्छात्मिका' अथवा 'सखीभाव'। ललितादि सखियों की तद्भावेच्छात्मिका प्रीति है। इन लोगों की कृष्णरति स्थायी है, सुहृत् रति (श्रीराधारानी के प्रति रति) संचारी है। स्थायीभाव के भीतर सञ्चारण करती हैं, इसलिये 'सञ्चारी'! 'सञ्चारयन्ति भावस्य गतिं सञ्चारिणोऽपि ते'' (वही २/४/२)। सखियों ने पहले कृष्ण को प्रेम किया है, वही प्रेम श्रीराधारानी में सञ्चारित हुआ है। पूर्वराग की अवस्था में कालियदह-तट पर श्रीराधा के साथ ललिता आदि सखियों की भेंट होती है। भाव के साजात्य (समानता) का परिचय उसी दिन मिल जाता है। श्रीराधा के भाव का उत्कर्ष देखकर सखियाँ मुग्ध हो जाती हैं और उनकी इच्छा होती है राधा के साथ श्रीकृष्ण का मिलन सम्पादन करा आनन्द आस्वादन करने की। श्रीकृष्ण की उक्ति पदकर्ता इस प्रकार गाते हैं-

''कालिदमन दिन माह। कालिन्दीकूल कदम्बक छाह॥
कत शत व्रज-नवबाला। पेखलुं जनु थिर बिजुरीक माला॥
तोहे कहों सुबल सांगाति। तब धरि हाम ना जानों दिन-राति॥
तँहि धनी-मणि दुइ चारि। तँहि मनमोहिनी एक नारी॥
सो रहु मझु मने पैठी। मनसिज धूमे घूम नाहि दिठि॥
अनुखण तहिक समाधि। को जाने कैछन विरह-वियाधि॥
दिने दिने क्षीण भेलो देहा। गोविन्ददास कह ऐछे नव लेहा॥'' (पदकल्पतरु)

श्यामसुन्दर के दर्शन कर श्रीमती का भी इसी प्रकार का अनुराग प्रकट हुआ-

''देखिया नागर शिरोमणि। ना जानिये दिवस रजनी॥
कि हैलो मरमे व्यथा। काहारे कहिबो कथा॥
सखि! कि आर पुछसि मोरे। मरम कहिलुं तोरे॥
यदि से मिलये मोय। तबे से सफल होय॥
नहिले ना जीबो और। तोहारे कहिलुं सार॥'' (वही)

इस प्रकार अनुरागी अथवा उत्कण्ठित श्रीश्रीराधामाधव का एक-दूसरे के साथ मिलन-सम्पादन कराकर जो आनन्द मिलता है, स्वतन्त्रभाव से श्रीकृष्ण-मिलन आनन्द की तुलना में वह कहीं अधिक हैं। इसी

आनन्द-आधिक्य की उपलब्धि से ललिता आदि सखियों की यह तद्भावेच्छात्मिका प्रीति उत्पन्न या अभिव्यक्त हुई। किन्तु श्रीराधा की इच्छा से कभी-कभी ललितादि सखियों का नायिकात्व भी देखने में आता है। मञ्जरियाँ भी एक प्रकार की सखियाँ हैं, किन्तु उनमें यह (नायिकात्व) कभी नहीं मिलता। विकसित कुसुम के साथ भ्रमर का मिलन होता है, मञ्जरी के साथ नहीं। ये मञ्जरियाँ विकसित कुसुम के प्रति भ्रमर की लिप्सा बढ़ाती हैं। ललितादि सखियाँ समस्नेहा हैं, पर मञ्जरियाँ राधा-स्नेहाधिका हैं। इनकी रति को 'भावोल्लासा' कहा गया है।

''सञ्चारी स्यात् समानो वा कृष्णरत्याः सुहृद्रतिः।
अधिक पुष्यमाणा चेद्भावोल्लास इतीर्यते॥'' (भ०र०सि० २/५/१२८)

''सखियों की सुहृद्रति (राधारानी के प्रति रति) यदि कृष्णविषयिणी रति के समान या उससे कुछ कम हो, तो वह कृष्णविषयिणी रति के सञ्चारिभाव में ही गिनी जायेगी। और यदि कृष्ण-सम्बन्धी रति की अपेक्षा राधा सम्बन्धी रति की अधिकता हो, तो उसे 'भावोल्लासा' कहा जायेगा।'' राधाकिंकरियों की ही भावोल्लासा रति है। श्रीश्रीरामाइ ठाकुर ने श्रीश्रीजाह्नवा ठाकुरानी से भावोल्लासा रति के विषय में पूछा था-

''ठाकुर कहेन-आगे कृपा करि कहो। भावोल्लासा रति कोथा आमारे शुनाहो॥
जाह्नवा कहेन-'बापु! शोनो सावधाने। भावोल्लासा रति मात्र हय वृन्दावने॥
वृन्दावन स्थान से देवेर अगोचर। जाँहा विलसये नित्य किशोरी-किशोर॥
श्रीरूपमञ्जरी आर श्रीरतिमञ्जरी। सेवानन्दे मन रहे दिवा विभावरी॥
भावोल्लासा रति मात्र इँहा सभाकार। दुँहु सुखे सुखी किछु नाहि जाने आर॥
राधाकृष्ण-सेवानन्दे सदा काल हरे। आनन्दसागरे ताँरा सदाइ विहरे॥
श्रीमती समा सबे देह-भेद मात्र। एक प्राण एक आत्मा सभे राधातन्त्र॥''

परिपूर्णरूप से श्रीकृष्ण-माधुरी का आस्वादन करने के लिये श्रीराधा का एकान्त आश्रय ग्रहण करना ही होगा। श्रीपाद प्रबोधानन्द सरस्वती ने कहा है-''क्वा सौ राधा निगमपदवीदूरगा कुत्र चासौ कृष्णस्तस्याः कुचमुकुलयोरन्तरैकान्तवासः'' (राधारससुधानिधि-२६१) ''अहा! कहाँ हैं निगपदवीदूरगा अर्थात् वेदविधि के अगोचर श्रीराधा और कहाँ हैं श्रीराधा के स्तन-मुकुलों में एकान्तभाव से रहने वाले स्वयं श्रीकृष्ण?'' श्रीराधारानी कहती हैं-'मेरे सुन्दर को देखने के लिये एकान्तभाव से मेरा आश्रय लेना ही होगा।' मञ्जरियाँ श्रीकृष्ण को प्रेम क्यों करती हैं? इसीलिये कि वे श्रीराधारानी के कान्त हैं। 'इस व्रजवन में मेरी स्वामिनी के प्राणवल्लभ के रूप में श्रीकृष्ण का स्मरण करो। पहले राधा, पीछे श्याम। यदि कृष्ण कोई गोलमाल करते हैं, तो उन्हें हाथ पकड़कर कुञ्ज से निकाल देंगी। हम लोग राधाकिंकरियाँ हैं।' नन्दालय में रात्रि भोजनलीला में दासी श्याम को पंखा झल रही है। दूसरों की दृष्टि से बचकर श्याम दासी के पैर से हाथ लगाकर इशारे से पूछ रहे हैं-मिलन होगा कि नहीं? दासी ने भी श्याम के हाथ के ऊपर पैर की अँगुली स्पर्श करा इंगित किया-'होगा।' यही है वरदास्य। अपना कहने को कुछ नहीं। सब युगल-सुख के लिये।

किंकरियाँ सखी-कक्षा (वर्ग) में रहती हैं, फिर भी मात्र सेवा-निष्ठा के कारण इन्हें दास्य प्राप्त है। पदमर्यादा में सखियाँ श्रेष्ठ हैं, पर सौभाग्य में मञ्जरियाँ ही श्रेष्ठ हैं। मरम (मन की बात) जानकर निःसंकोच सेवा करती हैं। विश्व में ऐसी सेवा और कोई नहीं कर सकता। कुञ्ज में निविड़ युगल-विलास चल रहा है।

लता-वातायन से मञ्जरी लीला-माधुरी आस्वादन कर रही है। युगल की लीला में जाने कहाँ क्या बाधा आ गई है। युगल आवेश के कारण कुछ समझ भी नहीं पा रहे। किंकरी ने लक्ष्य किया-स्वामिनी के केश और श्याम के केश, दोनों में गाँठ पड़ गई है। सेवा के पीछे लीला का आवेश नष्ट न कर वह अलक्षित भाव से कुञ्ज में प्रवेश कर दोनों के केश अलग कर बाहर आ गई। लीला पूर्ववत् निर्बाध हो गई। युगल को पता भी न चला, और बिना कहे सेवा। ऐसी मरम की सेवा कौन जानता है? यह सेवा ललितादि सखियों को भी अगोचर है। यही वरदास्य है। किंकरियाँ राधानाम के प्रभाव से प्राप्त करती हैं। ''जय जय राधानाम, वृन्दावन जार धाम, कृष्ण-सुख विलासेर निधि'' (प्रे०भ०च०)। हा राधे! तुम्हारे इस वरदास्य की प्राप्ति के लिये मैं एकान्तभाव से तुम्हारे श्रीचरणों में ही आश्रय लेती हूँ-जिन चरणों को वक्ष से लगाकर अनंगताप-संतप्त तुम्हारे श्याम भी शीतल हो जाते हैं।'

''वृन्दावनेश्वरि तवैव पदारविन्दं प्रेमामृतैक-मकरन्दरसौघपूर्णम्।
हृद्यर्पितं मधुपतेः स्मरतापमुग्रं निर्वापयत् परमशीतलमाश्रयामि॥''

(राधारससुधानिधि-१३)

श्रीकृष्ण की इन्द्रियों का पालन करती हैं तभी 'गोपी' हैं (गुप् धातु पालन अर्थ में)। गिरिधारी ने गोवर्धन धारण किया है-थोड़ा सा भी क्लेश नहीं हो रहा है। सामने आनन्दिनी शक्ति सब समाधान कर रही हैं। महा-भाव-चिन्तामणि के सारभाग से गठित हैं श्रीराधा। वे प्रेम की ही मूर्ति हैं। कितना उज्ज्वल, कितना मधुर। 'श्याम! तुम इतने सुन्दर क्यों हो, जानते हो? तुम्हारी प्रिया है, इसलिये।'

''राधासंगे यदा भाति तदा मदनमोहनः।
अन्यथा विश्वमोहोऽपि स्वयं मदनमोहितः॥

(गोविन्दलीलामृतम्-८/३२)

''चड़ि गोपीर मनोरथे, मन्मथेर मन मथे, नाम धरे मदन-मोहन॥'' (चै०च०)

''वल्लवी-भुजलता-बद्धे मनोभावति ब्रह्मणि मनो मे रमते।''राधा सेवक' कहते ही श्रीकृष्ण सुखी! ऐसी बात तो प्राय कोई भी नहीं कहता। जो एक बार राधानाम उच्चारण करता है, श्रीकृष्ण उसके अनन्त अपराधों की गणना न कर महाप्रेमाविष्ट चित्त से उसे राधादास्य देने की सोचने लगते हैं, इसलिये राधादास्य में ही निष्ठा रखने वाले की महिमा तो जान ही कौन सकता है?

''अनुल्लिख्यानन्तानपि सदपराधान्मधुपति-
र्महाप्रेमाविष्टस्तव परमदेयं विमृशति।
तवैकं श्रीराधे गृणत इह नामामृतरसं
महिम्नः कः सीमां स्पृशतु तव दास्यैकमनसाम्॥'' (राधारससुधानिधि-१५५)

श्रीपाद कहते हैं-''तुम्हारा वरदास्य छोड़ और कुछ भी नहीं चाहती। यदि तुम्हारे दास्य के योग्य नहीं हूँ, तो कम से कम उसमें आसक्ति तो दो, जिससे किसी दिन पा सकूँ। दास्यायते मम रसोऽस्तु रसोऽस्तु सत्यम्।''

अति-सुललित-लाक्षाश्लिष्ट सौभाग्यमुद्रा,-
ततिभिरधिकतुष्ट्या चिह्नती-कृत्य बाहू।
नखदलित-हरिद्रा - गर्वगौरि प्रियां मे,
चरणकमलसेवां हा कदा दास्यसि त्वम्? ॥१७॥

अन्वय-नखदलित-हरिद्रा गर्वगौरि! त्वं अधिकतुष्ट्या (अति तोषेण) अति-सुललित-लाक्षाश्लिष्ट-सौभाग्यमुद्राततिभिः (अति सुललित या लाक्षा तया श्लिष्टा संयुक्ता या सौभाग्यमुद्राततयः यवादिचिह्नसमूहास्तैः) बाहू चिह्नतीकृत्य हा! मे (मह्यं) प्रियां चरणकमलसेवां कदा दास्यसि? ॥१७॥

अनुवाद-नखदलित गर्विणी हरिद्रा (हल्दी) की तरह गौरवर्णी। हे श्रीराधे! तुम अत्यन्त सन्तोष के साथ श्रीचरणों में स्थित अति सुन्दर महावरयुक्त सौभाग्यसूचक यव (जौ) आदि चिह्नों से मेरी भुजाओं को चिह्नित कर हाय! मेरी चिर अभिलषित अति प्रिय अपनी श्रीचरण-कमल-सेवा मुझे कब दोगी?१७॥

सौभाग्य-मुद्रा

परिमलकणा व्याख्या-श्रीपाद ने पिछले श्लोक में श्रीराधा के वरदास्य की इच्छा की। स्फूर्ति की देवी उनकी अपूर्व दास्य-निष्ठा की बात सुनकर सन्तुष्ट होकर आड़ में चली गई। श्रीपाद की आर्ति-उत्कण्ठा की सीमा नहीं। विलाप करते-करते कहते हैं-'तुम्हारे सम्बन्ध से शून्य होकर मैं विश्व में किसी से परिचित नहीं होना चाहती। जगत् में सभी जान लें-तुम्हें छोड़ विश्व में मेरा और कोई नहीं। सभी जान जायेंगे कि तुलसी राधा की ही किंकरी है।' अव्यभिचारी नित्यस्वरूप का उपभोग! स्वरूपावेश में यही होता है। बाह्यावेश में भी स्वरूप की झंकार रहती है। ''तनुवां मनोभिरहं तवास्मि''-'मैं कायमनोवाक्य से तुम्हारा हूँ'-यह निष्ठा आत्मा को सम्पूर्ण रूप से ग्रसित कर लेती है। साधक बाह्यावेश में भी राधादास्य की कामना करता है। स्मरण में, स्फुरण में, स्वप्न

''तोमार चरण पद्म प्रेमभक्ति-रससद्म
दासीभावे सेवा बिना तार।
जीवने मरणे हाय! मन मोर नाहि चाहे
सखीत्वादि अन्य किछु आर॥
ना जानि सख्येर गुण ताइ देवि! पुनः पुनः
तव सख्ये मोर नमस्कार।
यदि बलो लज्जा पाइ सखीत्वेरे नाहि चाइ
नाहि मने वासना ताहार॥
शुनो देवि! निवेदन से लालसा कदाचन
नाहि उठे आमार हृदये।
तव दास्यरसे मोर सदा मन रहु भोर
एइ सत्य जानिबे निश्चय॥''१६॥

में पाकर भी तृप्ति नहीं, साक्षात् चाहिये। श्रीपाद बाह्यदशा में स्वामिनी का तीव्र अभाव अनुभव कर रहे हैं। कुण्डतीर पर लोट पोट होकर रो रहे हैं।

''अबीक्ष्यात्मेश्वरीं काचिद् वृन्दावनमहेश्वरीम्।
तत्पादाम्भोजमात्रैकगतिर्दास्यति कातरा॥
पतिता तत् - सरस्तीरे रुदत्यार्तरवाकुलम्।
तच्छ्रीवक्त्रेक्षणावाप्त्यै नामान्येतानि सञ्जगौ॥''

''श्रीराधा के चरण ही जिसका एकमात्र आश्रय है-ऐसी कोई एक दासी अपनी प्राणेश्वरी को न देख पाकर उन्हीं के कुण्डतीर पर पड़कर उनके मुखचन्द्र-दर्शन की लालसा से अत्यन्त कातर हो गई है और आर्तस्वर से प्रचुर क्रन्दन कर यह नामावली गा रही है।'' रोते-रोते श्रीपाद प्रार्थना कर रहे हैं-'किंकरी बनाकर श्रीचरणों में खींच लो। लुके छिपे दासी नहीं बनूँगी। तुम्हारी चिन्हित दासी बनूँगी।' विरह में प्राण कण्ठ तक आ गये हैं। सहसा एक मधुर लीला की स्फूर्ति होती है।

कुण्डतीर पर निभृत निकुञ्ज में मधुर युगल-विलास चल रहा है। तुलसी मञ्जरी कुञ्ज-रन्ध्रों पर नेत्र रखे विलासमाधुरी का आस्वादन कर रही हैं। विलास का अवसान होने पर सेवापरायण किंकरी कुञ्ज में प्रवेश करती हैं। श्रीराधा हैं स्वाधीनभर्तृका। ''स्वायत्तासन्नदयिता भवेत् स्वाधीन-भर्तृका'' (उ०नी०)। ''कान्त जिसके अधीन होकर सतत निकट रहता है, उसे स्वाधीनभर्तृका कहते हैं।'' अनुगत नायक श्रीमती के चरणों के निकट बैठे हैं। इच्छा है कि अपने हाथों स्वामिनी की सेवा करूँ। अनुगत भाव के बिना सेवा-कार्य नहीं होता न! इसीलिये वे श्रीचरण-सान्निध्य में बैठे हैं। वे श्रीचरणों में यावक लगायेंगे। यावक (महावर) का पात्र और तूलिका तुलसी के हाथ में है। तूलिका लेकर नागर श्रीमती के चरणों में महावर लगा रहे हैं। नेत्रों में प्रेमाश्रुओं की स्निग्ध धारा है। सोच रहे हैं-'इस महावर-जैसा सौभाग्य मेरा नहीं, जो प्रेममयी के श्रीचरणों में हर समय लगा रहूँ। पर सभी तो कहते हैं-मेरा नाम और मैं दोनों में भेद नहीं। तो फिर मेरा नाम चरणों में रहे।' ऐसा सोचकर वे श्रीचरण के किनारे-किनारे अपना नाम लिख रहे हैं। प्रेममयी के चरणतल में अपना नाम देखकर-अपने नाम का सौन्दर्य देखकर स्वयं ही विह्वल हैं। सोचते हैं-'हाय! नाम का सौभाग्य भी मेरा नहीं हुआ।' श्रीमत् प्रबोधानन्द सरस्वतिपाद ने कहा है-'श्याम का मयूरपुच्छ मुकुट जब श्रीराधा के श्रीचरणतल में विलुण्ठित होता है, तभी वे रसघन-मोहनमूर्ति होते हैं।

''रसघनमोहनमूर्तिं, विचित्रकेलिमहोत्सवोल्लसितम्।
राधाचरण-विलोड़ित, रुचिरशिखण्डं हरिं वन्दे॥''

(राधारससुधानिधि-२०१)

तुलसी ने उसी विचित्रकेलि-महोत्सव में उल्लसित रसघनमोहनमूर्ति श्रीश्यामसुन्दर की यावक-सेवा की परिपाटी का आस्वादन किया है। श्याम की विपुल आर्ति देखकर तुलसी मुँह पर वस्त्र रखकर हँस रही हैं। हँसी देखकर स्वामिनी 'क्या हुआ, क्या हुआ' कहते-कहते दण्डस्वरूप सद्यरंजित यावकयुक्त चरण से तुलसी के बाहुमूल पर आघात कर रही हैं। ताजी महावर से युक्त श्रीचरणों की यवादि सौभाग्य-रेखायें भाग्यवती तुलसी

के कन्धे पर छप गई हैं। उस अपूर्व सौभाग्यमुद्रा से मुद्रित बाहुओं को खोलकर तुलसी गर्व से भरकर कुञ्ज-कुञ्ज में विचरण कर रही हैं। 'सभी देखें, मैं श्रीराधा की छाप लगी दासी हूँ।'

सहसा स्फूर्ति में विराम आ जाता है। वे हाहाकार के साथ प्रार्थना करते हैं-'हा राधे! उस महावर की छाप से मेरी बाहुओं को कब अंकित करोगी? ''अति-सुललित-लाक्षा''-यावक के साथ प्रेम मिला होगा, तभी वह सुललित होगा। दासी का लगाया जावक नहीं, तुम्हारे कान्त जब लगाते हैं, तब! वे तुम्हारे अनुगत नहीं होंगे, तो क्या दासी के प्राण तृप्त होंगे? तुम्हारे कान्त, जो तुम्हारे अञ्चल की थोड़ी-सी हवा पाकर कृतार्थ हो जाते हैं!'' ''धन्यातिधन्य पवनेन कृतार्थमानी'' (राधारससुधानिधि-२)। श्रीराधा का उत्कर्ष चाहिये, यह श्याम का अपकर्ष नहीं है, उनके उत्कर्ष की चरमता तो वरन् इसी से है। श्रीपाद लीलाशुक ने श्यामसुन्दर के नेत्रों की शोभा वर्णन करते हुए कहा है-''प्रतिपदललिताभ्यां प्रत्यहं नूतनाभ्याम्'' (कृष्णकर्णमृतम्-१३)। श्रीपाद कविराज गोस्वामी ने सारंगरंगदा व्याख्या में लिखा है-श्रीराधा के प्रणयरस में घटित होकर (मिलाकर) ही नेत्रों का इतना सौन्दर्य है। श्रीकृष्ण की उक्ति है-

''यद्यपि निर्मल राधार सत्प्रेम-दर्पण।
तथापि स्वच्छता तार बाढ़े क्षणे क्षण॥
आमार माधुर्येर नाहि बाढ़िते अवकाशे।
ए दर्पणेर आगे नव नव-रूपे भासे॥'' (चै० च०)

'तुम्हारे अनुगत और तुम्हारे श्रीचरणों के जावकरस से रंजित नायक को देखना चाहती हूँ।''ऐश्वर्योपासक भीष्मजी ने अन्तिम समय में श्रीकृष्ण को किस भाव से देखना चाहा था?

''युधि तुरगरजोविधूम्रविष्वक्,-कचलुलितश्रमवार्यलंकृतास्ये।
मम निशितशरंर्विभिद्यमान, त्वचि विलसत् कवचेऽस्तु कृष्ण आत्मा॥'' (भा०-१/९/३४)

''युद्धकाल में अश्व-खुरों से उठी धूल से धूसरित, अस्तव्यस्तभाव से उड़ते केशों की शोभा से युक्त, मनोहर घर्मबिन्दुओं (पसीनों) से परिशोभित मुखमण्डल, मेरे तीक्ष्णधार वाणों से बिद्ध सर्वांग, वाणों से बने कवच को धारण किये हैं-ऐसे लगने वाले श्रीकृष्ण में मेरा मन निश्चलभाव से विराज करे।''

अधीन नायक और स्वाधीनभर्तृका हरिद्रागर्विणी गौरी के दर्शन कर नेत्रों की सफलता का अनुभव! 'अपने अनुगत नायक द्वारा रचित जावक से चिन्हित कर मुझे सेवा-दान करो।' सेवा के लिये श्रीपाद की तीव्र लालसा प्रकट होती है। ''चरणकमलसेवां हा कदा दास्यसि त्वम्।'' भक्ति का अर्थ ही है सेवा। ''भज् इत्येष वै धातुः सेवायां परिकीर्तितः।'' जो प्रेमी है, उनका तो जीवन-सर्वस्व ही सेवा है। सेव्य की तुष्टि के प्रति लक्ष्य रखकर सेवा, अपनी तुष्टि के लिये नहीं। ''आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा'' (भ०र०सि०-१/१/११)-''आनुकूल्यञ्चास्मिनन्नुद्देश्याय श्रीकृष्णाय रोचमानाः प्रवृत्ति'' (टीका श्रीजीवपाद)-इष्ट की रुचि के प्रति लक्ष्य रखकर सेवा की प्रवृत्ति का नाम ही 'भक्ति' है। जो शास्त्रों में लिखा है, वह कर दिया इष्ट की रुचिकर हुई कि नहीं, इस बात का ध्यान नहीं रखा-यह रागभजन का नियम नहीं है। इष्टदेव हृदय में खटखटाकर कहेंगे-'तुम्हारी सेवा मुझे रुचिकर लगी'-तभी तो पता चलेगा कि सार्थक है। भक्तमाल से पता चलता है कि श्रीहरिदास स्वामी के राजभोग की उपेक्षा कर श्रीबाँकेबिहारी ने जगन्नाथपुरी के माधवदास के भुने चने चबाये थे। साक्षिगोपाल ने क्षेत्र की महारानी की नाक का मोती माँग कर लिया था। उदासीन की उपासना नहीं, प्रेमी की उपासना! कैतव (छल, चालाकी)-शून्य धर्म ही प्रेम है। ''धर्मः प्रोज्झितकैतवः'' (भा०१/१/२)।

प्रेम देहसुख भुला देता है। देह, इन्द्रिय, यहाँ तक कि आत्मा के सुख की लालसा भी प्रेमी उपासक में नहीं होती। आत्मसुख ही कपटता (कैतव) है। यह सहज में नहीं जाती। तभी श्रीपाद प्रेमानन्द ठाकुर ने कहा है (मनःशिक्षा-९०)

''ओरे मन! ए तोर बुझिबार भुल।
कहिछो वेदेर पार करिछो निषिद्धाचार
भाबो देखि आपनार मूल॥
मुक्ति के ऐश्वर्य बलि दूरेते दियाछो फेलि
इंगिते बुझाओ एइ तत्त्व।
अनित्य असार अर्थ से भालो सदाइ प्रार्थ्य
जा लागि रजनी दिवा मत्त॥
निर्हेतु याजन करो हेतु से छाड़िते नारो
कथाय विरक्त ए संसार।
सर्वस्व बलिछो जार दिते एक बट तार
से चाहिले कहो आपनार॥
कहो भजि वृन्दावन घरे सुखवास मन
भालोबासो वसन - भूषणे।
सन्तुष्ट मानिछो माने महाक्रोध अपमाने
आत्मसुख घुचिलो केमने॥
कहिछो गोपीर धर्म कि बुझिछो तार मर्म
स्वभाव छाड़िते नारो तिले।
देखिया पाइछो सुख प्रकृति बाघिनी-मुख
सर्वात्मा सहिते जेइ गिले॥
कहे शुनो प्रेमानन्द विचारिले सब धंध
कहिले शुनिले किबा हय।
'हरि' 'हरि' अविरत कहो एइ प्रेम पथ
निर्मल हइबे सुनिश्चय॥''

प्रेमी साधक नाम करते-करते प्रेमाश्रुओं में डूब जाता है, इष्टदेव उस दृश्य का आस्वादन करते हैं। यही तो निरुपम सेवा है! ''भक्तेर प्रेमचेष्टा देखि कृष्णेर चमत्कार'' (चै०च०)। 'नेत्रों से तुम्हारा रूप देखूँगा, कानों से तुम्हारी वंशी सुनूँगा।' 'मैं अयोग्य हूँ, देख नहीं पाऊँगा'-लोभ ऐसी निराशा को पास नहीं फटकने देता। लोभ योग्य-अयोग्य को नहीं देखता-यही रागभजन का सौन्दर्य है। 'तुम उत्तर नहीं दोगे, कोई खटका नहीं करोगे, तो और कौन उठायेगा? जीवन का थोड़ा सा अंश भी यदि तुम्हारी सेवा में लगा सकूँ, तभी तो धन्य होऊँगा।' प्रेमी उपासक में ऐसी प्रवृत्ति जगेगी ही। और वही समझा देगी, क्या उसके अनुकूल है, क्या प्रतिकूल है। बहुत बार विरही प्रेमी की साक्षात् दर्शन की इच्छा भी सम्भवतः इष्ट को मनोनुकूल नहीं होती। महाजनों ने स्वयं

आचरण कर जगत् को शिक्षा दी है। एकबार श्रीरूप गोस्वामिपाद ने सोचा-'वृन्दावनेश्वरी की करुणा तो हुई नहीं, यह शरीर धारण कर फिर क्या लाभ?' सोचकर वे द्वार बन्द कर पड़े हुए हैं। सन्ध्या के समय जाने कौन पुकार रही है-'बाबा! द्वार खोलो, मैं आई हूँ।' श्रीराधारानी स्वयं ब्रजबालिका-वेश में दूध लेकर आई हैं। यह बालिका श्रीरूप की परिचित है, इसके घर गोस्वामिपाद माधुकरी के लिये जाते हैं। किन्तु आज उस बालिका के कैसे अपूर्व मधुर दर्शन! बोली-'बाबा! माधुकरी को क्यों नहीं आये हैं?, श्रीरूप-'लालि! अब और नहीं जाऊँगा।' बालिका-'क्यों बाबा, क्या हुआ?' श्रीरूप-'उपास्य ने ही जब कृपा नहीं की, तो इस देह को रखने से क्या लाभ?' बालिका-'कौन कहता है, कृपा नहीं की? वृन्दावन में पड़े रहना-यही तो उनकी कृपा है! दूध अवश्य पीना और कल से मधुकरी करना। देह रहेगी तो भजन होगा!' कहकर बालिका चली गई। कैसी अपूर्व गतिभंगी (चाल)! श्रीरूप मुग्ध! 'कौन है यह अद्‌भुत बालिका-'वे सोच रहे हैं। श्रीराधारानी की इच्छा से उसी समय श्रीमत् सनातन गोस्वामिपाद श्रीरूप की भजन-कुशल जानने वहाँ आ निकलते हैं। श्रीरूप ने भी पहले श्रीसनातन प्रभु को दुग्ध पान कराने की इच्छा की थी। वह दूध उन्हें दिया, तो उसकी गन्धमात्र से श्रीसनातन को आनन्दमूर्छा आ गई। बाद में दूध का इतिहास सुनकर वे बोले-'रूप! अपार करुणाघन विग्रह (श्रीराधारानी) उन्हें इस तरह परेशान करोगे?' श्रीरूप ने सब समझकर माधुकरी में मन लगाया।

श्रीपाद कहते हैं-'मेरे अनुरोध पर चिन्हित मत करना, सेवा से सन्तुष्ट होकर स्वतः प्रवृत्त होकर ही करना-''अधिकतुष्ट्या''। मेरे बिना तो तुम्हारा काम नहीं चलता। 'तुम कहोगी- 'तुलसि! तू आ, तेरी ही आवश्यकता है।' चरणाघात तुष्टि का चिन्ह है। वे जिस-तिस पर पदाघात नहीं करतीं। ममता की कैसी सघनता है! मैं तुम्हारी हूँ' यह दब गई-तू मेरी है' इस उक्ति से! भृंग द्वारा अनाघ्रात कुसुम की तरह है अनन्यशरण दासी! प्राणेश्वरी चरणकमलों की सेवा दे रही हैं-'हार टूट गया है, गुथकर पहना दे। तिलक मिट गया है, लगा दे' इत्यादि। ''आज्ञाय करिबो सेवा चरणारविन्दे'' (प्रार्थना)। 'तुम मुझे चिन्हित दासी बना लो। मैं चाहती हूँ तुम्हारे चरणकमलों की सेवा।' भाव की मूर्ति की सेवा के लिये श्रीपाद की आर्ति हैं! सहसा अपूर्व क्रमिक सेवा का स्फुरण होता है। अगले श्लोक में उसी का आस्वादन है।

"नख-विदलित मरि! हे हरिद्रा-गर्वगौरि!
तब पदकमल - युगले।
कि सुन्दर शोभा पाय, अलक्तक राग ताय,
यवादिक चिन्ह झलमले॥
से सौभाग्य-चिन्हे कबे, बाहु सुचिन्हित हबे,
पादपद्‌म सेबिबो जखन।
कातरे तोमार पाय, दासी एइ भिक्षा चाय,
अभिलाषा करहो पूरण॥
चरणकमल-सेवा, सेइ धन मोर दिबा,
से जे मोर प्राण-अधिकाइ।
नाहि मोरे उपेक्षिबा, सेइ सेवा कबे दिबा,
ताहा बिनु आन नाहि चाइ॥"१७॥

प्रणालीं कीलालैर्बहुभिरभि - संक्षाल्य मधुरै-
र्मुदा सम्मार्ज्य स्वैर्बिवृत - कचवृन्दै: प्रियतया।
कदा बाह्यागारं वरपरिमलैर्धूप - निवहै -
र्विधास्ये ते देवि प्रतिदिनमहो वासितमहम्? ॥१८॥

अन्वय-देवि! अहो कदा अहं प्रतिदिनं बहुभि: मधुरै: किलालै: (जलै:) प्रणालीं (पयस: पदवीं) संक्षालय प्रियतया मुदा (हर्षेण) स्वैर्विवृतकचवृन्दै: सम्मार्ज्य ते बाह्यागारं वरपरिमलै: धूपनिवहै: प्रतिदिनं वासितं विधास्ये (सुगन्धं करिष्यामि) ?१८॥

अनुवाद-हे देवि! हाय! मैं कब सुमधुर प्रचुर जल से पय:प्रणाली (नाली) को अच्छी तरह धोकर प्रिय जानकर परमानन्द से अपने उन्मुक्त केशों से उसे पोंछकर उत्कृष्ट सुगन्धित धूप समूह से तुम्हारा बाहरी आगार सुवासित करूँगी?१८॥

बाह्यागार सेवा

परिमलकणा व्याख्या - प्रार्थना इष्ट की करुणा की अर्गला खोल देती है। पिछले श्लोक में स्वरूपावेश में श्रीपाद को प्रार्थना करते-करते एक मधुर लीला की स्फूर्ति प्राप्त हुई थी। स्फुरण में करुणामयी श्रीमती ने ताजा महावर से रंजित अपने श्रीपादपद्मों की सौभाग्य रेखाओं की छाप बाहुमूल पर अंकित कर श्रीपाद को अपनी चिन्हित दासी बना लिया है। स्फूर्ति के विराम में वे अपने जीवन को विफल समझ रहे हैं। किंकरी के साथ स्वामिनी की ऐसी आँखमिचौनी चलती है! एकबार दर्शन देकर तुरन्त ही अदृश्य! प्रेमी भक्त की जीवनधारा इसी अप्राकृत सुख-दु:ख की धूप-छाया से भरी है। ''शुद्ध प्रेम सुखसिन्धु, पाइ तार एक बिन्दु, सेइ बिन्दु जगत डुबाय'' (चै०च०)। उसी प्रेमसिन्धु में निरन्तर तैरते रहने पर भी श्रीपाद का इतना हाहाकार! अखण्ड प्रेमघन तत्त्व हैं श्रीराधा। उन्हें स्मरण में, स्वप्न और स्फुरण में निरवधि प्राप्त करके भी इतनी वेदना! यही है व्रजप्रेम की विशिष्टता! कवि ने इसी प्रेम की स्मृति में कहा है-'बड़ो वेदनार मत बेजेछो हे, तुमि आमार प्राणे।' आस्वाद्य वेदना। आचार्यपाद ने भगवद् विरह को 'रस' नाम दिया है। जो भावराज्य में विचरण करते हैं, वे ही इसका मर्म समझ सकते हैं। स्फूर्ति के विराम में श्रीपाद की विपुल उत्कण्ठा है। 'उद्वेगे दिवस ना जाय, क्षण हैलो युगसम। वर्षार मेघप्राय अश्रु वरिषे नयन'' (चै०च०)। श्रीपाद की यही अवस्था है। श्रीमती की साक्षात् सेवा के अभाव में वे जगत् को शून्य अनुभव कर रहे हैं, इसलिये विपुल यातना विलाप में व्यक्त हो रही है! राधाकैङ्कर्यरस में चित्त लुब्ध है।

सहसा एक मधुर लीला का स्फुरण प्राप्त हुआ। प्रात:काल है। श्रीपाद सिद्धस्वरूप में जावट में श्रीराधारानी के अलिन्द (चबूतरे) पर बैठे हैं। श्रीमती रात्रि-विलास के आलस्य में घर के भीतर निद्रामग्न हैं। श्रीरूपमञ्जरी तुलसी को उनकी प्रिय सेवा दे रही हैं। एक बारगी नीच सेवा से आरम्भ कर हर प्रकार की सेवा जीवन का सर्वस्व है। सेवारस के आस्वादन से हृदय भरा है। श्रीरूप की कृपा से तुलसी को श्रीमती के बाह्यागार की सेवा प्राप्त हुई है। ग्रीष्मकाल है। प्रचुर सुशीतल जल से बाह्यागार धोकर नाली से जल निकाला। प्राणेश्वरी का बाह्यागार है, तभी तो सेवा में प्राण भर दिये हैं! भाग्यवान् साधक स्मृतिरस में डूबकर नित्य ही

प्रातः सुधांशुमिलितां मृदमत्र यत्ना, - दाहृत्य वासित-पयश्च गृहान्तरे च।
पादाम्बुजे तव कदा जलधारया ते, प्रक्षाल्य भाविनि कचैरिह मार्जयामि? ॥१९॥

अन्वय-भाविनि (हे भावमयि!) प्रातः (प्रातःकाले) सुधांशुमिलितां (कर्पूरयुतां) मृदं (मृत्तिकां) गृहान्तरे च वासितपयः (सुगन्धित जलं) च यत्नादाहृत्य अत्र (पादाम्बुजयोर्दत्वा) इह (परिचरणयोग्यस्थले) तव पादाम्बुजे जलधारया प्रक्षाल्य कदा कचैः (केशैः) मार्जयामि (जलापसारणं करोमि) ?१९॥

सेवारस का आस्वादन प्राप्त करते हैं। यही साध्य है, यही साधना। महाजन कहते हैं-''साधन एखाने, सिद्धिओ एखाने, भावेर गोचर से। एखाने ता जदि, देखिते ना पाओ, मरिले देखिबे के?'' स्मरणनिष्ठ साधक का चित्त लीलाराज्य में पहुँचकर प्रत्यक्षवत् सेवारस का आस्वादन करता हैं। ''सिद्धदेह चिन्ति करे 'ताहाँइ' सेवन। सखी-भावे पाय राधाकृष्णेर चरण॥'' (चै० चै०)। महाजन कहते हैं, प्रत्येक जीव को राधादास्य का अधिकार है। तादृश महत् संग आदि के प्रभाव से शुद्ध चित् वस्तु जीव में वह चिन्मय भागवती वृत्ति स्वयं ही उदित होती है। ''सेइ गोपीभावामृते जार लोभ हय'' (चै०च०) - 'जार' का अर्थ है तादृश सजातीय महत् की कृपा प्राप्त कर लेने वाला साधक, ऐसे साधक में ही गोपीभावामृत का लोभ जगता है। भक्तिभाव का पूर्णतम विकास ही 'गोपीभाव' है। आत्मसुख-निरपेक्ष होकर एकान्तभाव से श्रीकृष्ण की प्रसन्नता-प्रीति ही गोपियों का काम्य है। यह गोपीभाव ही निष्किञ्चन परमहंसों की साधना का धन है। इसी की चरम पर्याय (कक्षा) है मञ्जरीभाव। नित्यसिद्धा स्वरूपशक्ति वर्ग के आनुगत्य में श्रीश्रीराधामाधव की रहस्यमय निकुञ्ज सेवा की प्राप्ति!

श्रीपाद ने स्वरूपावेश में श्रीमती का बाह्यागार धोकर अपने मुक्त केशपाश से परमानन्द-पूर्वक बाह्यागार और नाली पोंछी। ममता की कैसी निविड़ता है! मेरी स्वामिनी का बाह्यागार है, कोटि-कोटि प्राणों से भी अधिक प्रिय है। केशों से मार्जन करना ही होगा! प्राणों से मार्जन-कार्य कर पाती तो और भी अच्छा होता। केश द्वारा नीच सेवा। कितनी करुणा की पात्र हैं किंकरी! श्रीमत् लोकनाथ गोस्वामिपाद का संकल्प था-किसी को मन्त्रदीक्षा नहीं देंगे। श्रील नरोत्तम ठाकुर ने ममता के साथ नीच सेवा कर उनकी कृपा प्राप्त की थी। ममतापूर्ण नीच सेवा के स्रोत में श्रीपाद की प्रतिज्ञा भी बह गई, यह बात सभी को विदित है। किंकरी श्रीमती की कितनी करुणा की पात्र हैं! अब वे सुगन्धित अगरु-धूम से बाह्यागार सुवासित करेंगी-धूपदानी लेने के लिये हाथ बढ़ाती हैं, वह हाथ नहीं आती! स्फूर्ति में विराम आ गया। हाहाकार के साथ सेवा के लिये प्रार्थना करते हैं।

"हे देवि राधिके! कबे तव बाह्यागार।
आनन्दे करिबो नित्य संस्कार ताहार॥
मधुर सलिल दिया प्रणाली पाखालिबो।
निज केशपाशे परे मार्जना करिबो॥
वर धूप गन्धे पुन करि सुवासित।
आपना कृतार्थ मानि हबो पुलकित॥"१८॥

अनुवाद-हे भावमयि! प्रात:काल घर में कपूर मिली मिट्टी और सुवासित जल यत्नपूर्वक लाकर तुम्हारे पाद्पद्मों में लगाकर पैर धोने के स्थान पर जलधारा से श्रीपाद्पद्म पुन: धोकर अपने केशपाश से कब पोंछूँगी ?१९॥

मिट्टी और जल सेवा

परिमलकणा व्याख्या-श्रीराधारानी की सेवा भगवान् के सेवा की तरह नहीं है। वह भाव की ही सेवा है! श्रीराधारानी साक्षात् भाव की ही मूर्ति हैं। श्रीपाद ने अपने श्रीश्रीप्रेमाम्भोज मरन्दाख्य स्तव में लिखा है-''महाभावोज्ज्वलच्चिन्तारत्नोद्भावितविग्रहाम्।''''महाभाव-चिन्तामणि राधार स्वरूप'' (चै०च०)। कहाँ क्षुद्र जीव, और कहाँ महाभाव!

''ह्लादिनीर सार अंश - तार 'प्रेम' नाम।
आनन्द - चिन्मय - रस - प्रेमेर आख्यान॥
प्रेमेर परम सार - 'महाभाव' जानि।
सेइ महाभावरूपा राधाठाकुरानी॥'' (वही)

अतएव श्रीराधा की सेवा में भाव-अनुकूलता युक्त अवस्था का आना आवश्यक है। पिछले श्लोक में स्फूर्ति में आकर श्रीपाद को अभीष्ट सेवा दिलाई थी। स्फूर्ति के विराम में विरह-वेदना असह्य है। रो-रोकर प्रार्थना कर रहे हैं-'हे भाविनि! प्रात:काल कर्पूर चूर्ण-मिश्रित कोमल और सुगन्धित मृत्तिका (मिट्टी) से तुम्हारे चरणकमल धोकर अपने केशों से कब सुखाऊँगी?' 'भाविनि' सम्बोधन का क्या तात्पर्य है? स्फुरण में सम्बोधन। स्वामिनी हैं भावमयी, वे सब भी वही हैं। स्वामिनी अपने कान्त के प्रति भावमयी हैं, और किंकरियाँ स्वामिनी को लेकर भावमयी हैं। इस बात का अनुभव विक्षिप्त चित्त में सम्भव नहीं। उनका भाव हृदय में आये, यह आवश्यक है। कुछ अनुकूलता रहे, तो भी बात थोड़ी समझी जा सकती है। श्रील गोस्वामिपादों की श्रीराधापादपद्म-निष्ठा कैसी विचित्र है! श्रीमत् प्रबोधानन्द सरस्वतिपाद ने लिखा है-''या वृन्दावनसीम्नि काचन घनाश्चर्या किशोरी-मणिस्तत्कैङ्कर्यरसामृतादिह परं चित्ते न मे रोचते'' (राधारससुधानिधि-७८)-'वृन्दावन की सीमा में कोई एक घनाश्चर्यरूपा किशोरीमणि विराजमान हैं, उनके कैङ्कर्यामृत को छोड़ मेरे चित्त को और कुछ भी अच्छा नहीं लगता।' अच्छा न लगना स्वाभाविक है, कारण-राग मनोधर्म है। ''रागस्य मनोधर्मत्वात्'' (रागवर्त्मचन्द्रिका)। शास्त्र-शासन की आवश्यकता नहीं-''लोभ एव प्रवर्तक:। राधा-किंकरी के मन का सौन्दर्य भगवान् के उपासक को भी उपलब्ध नहीं हो सकता। वैष्णव-शास्त्रों में भगवद्भावमग्न एकान्ती (अनन्य) भक्त की विशेष प्रशंसा सुनी जाती है। श्रीमत् रूप गोस्वामिपाद ने लिखा है-व्रजेन्द्रनन्दन-निष्ठ भक्त अनन्य भक्तों में श्रेष्ठ हैं, उनके मन को श्रीनारायण का प्रसाद भी नहीं हर सकता।

''तत्राप्येकान्तिनां श्रेष्ठा गोविन्दहृतमानसा:।
येषां श्रीश-प्रसादोऽपि मनो हर्तुं न शक्नुयाम॥'' (भ०र०सि०-१/२/५८)

फिर राधा-किंकरी की अनन्यता तो बड़ी विचित्र है, कृष्णभक्त की अनन्यता से भी अधिक है। वे तो राधा के बिना श्रीकृष्ण-प्रसाद की भी कामना नहीं करतीं। वे सब एकान्तभाव से राधाचरणों में उत्सर्गीकृतप्राण

हैं (प्राण श्रीराधाचरणों में उत्सर्ग कर दिये हैं)। ''तवैवास्मि तवैवास्मि न जीवामि त्वया बिना'' (विलापकुसुमाञ्जलि-९६)। यही है उन लोगों की राधाचरण-निष्ठा का मूल मन्त्र। ये लोग राधा के बिना श्रीकृष्णोपासना भी सहन नहीं कर सकतीं। श्रीपाद ने अपने स्वनियमदशक (६) में लिखा है-

''अनादृत्योद्गीतामपि मुनिगणैर्वैणिकमुखैः।
प्रवीणाँ गान्धर्वामपि च निगमैस्तत्प्रियतमाम्॥
य एकं गोविन्दं भजति कपटी दाम्भिकतया।
तदभ्यर्णे शीर्णे क्षणमपि न यामि व्रतमिदम्॥''

अर्थात् ''नारद आदि मुनिगण वीणा लेकर और निगम आदि शास्त्र जिनकी महामहिमा निरन्तर गाते हैं, उन कृष्ण-प्रियतमा प्रवीणा गान्धर्वा का अनादर कर जो केवल गोविन्द का भजन करते हैं, वे लोग कपटी और दाम्भिक हैं, उन लोगों के अपवित्र सान्निध्य में मैं क्षण भर को भी नहीं जाऊँगा-यही मेरा व्रत है।'' जो राधा चरणों को हृदय में धारण करते हैं, उनके मन का सौन्दर्य ऐसा ही है।

श्रीपाद आर्ति से भरकर रो रहे थे। श्रीमती की करुणा से प्रातःकालीन क्रमिक सेवा का स्फुरण जगा। स्वामिनी रजनी-विलास के श्रम से थकित रत्नों के पलंग पर दुग्धफेन-से बिस्तर पर सो रही हैं। कृष्णमयी स्वप्न में श्याम-रसमाधुरी का आस्वादन कर रही हैं। श्रीअङ्ग पर, श्रीमुख पर उसका स्पष्ट संकेत है। सखी-मञ्जरियाँ तो समस्त भाव-वैभव समझती हैं। इसी समय ''हे नातिनि! हे राधे! तुम कहाँ हो'' कहते-कहते मुखरा आईं। मुखरा के आह्वान से और सखियों की चेष्टा से श्रीमती शैय्या से धीरे-धीरे उठीं, तो मुखरा श्रीराधा-अङ्ग पर श्रीकृष्ण का पीला उत्तरीय देखकर संदिग्ध चित्त से बोलीं-'हाय! यह क्या प्रमाद (पागलपन)! ओ विशाखे! मैंने कल शाम को श्रीकृष्ण के अङ्ग पर जो पीतवस्त्र देखा था, वही तो है, यह तुम्हादी सखी के अङ्ग पर! कुलवतियों का यह कैसा व्यवहार!' मुखरा की बात से चौंककर विशाखा उस पीतवस्त्र को देखकर शंकित होकर भी प्रत्युत्पन्नमति से बोलीं-'हे मुग्धे! गवाक्ष (झरोखे)-रन्ध्रों से कमरे के भीतर प्रभात सूर्य का अरुणिम किरणजाल फैल रहा है, तभी तुलसी ने निमिषभर में पीताम्बर हटाकर अलक्षित भाव से श्रीमती के अङ्ग पर नीलवस्त्र डाल दिया। नील वस्त्र देखकर मुखरा लज्जित होकर चली गईं। तब ललितादि सखियाँ स्नान-शृंगार आदि समापन कर श्रीराधा के शयनकक्ष में प्रवेश कर सन्ध्याकालीन गगन की तारकावली की तरह राधा-शशि को घेरकर बैठ गईं। सखियों के आने से विविध परिहास की तरंगें उठने लगीं। इसी समय श्रीराधा के सानुराग (प्रेममय) रसोद्गार सुनने की लालसा से श्यामला सखी आईं, तो श्रीराधा ने उन्हें उल्लासपूर्वक आलिंगन कर निकट बैठाया। श्रीमती अनुराग से भरकर बोलीं-'सखि श्यामले! तुम्हारी बात ही सोच रही थी, तुम ठीक समय पर आईं। सखि! यदि मेरा तृष्णा-तरु इसी तरह सफलित हो, तभी सुप्रभात समझूँगी। हाय! मैं कब महानन्द से इनका फल देख पाऊँगी, नहीं जानती।' श्यामला ने परिहास करते हुए

निशान्त लीला में भ्रमवश श्रीयुगल के उत्तरीय बदलते हैं, विरह-विधुर दशा में उसका स्मरण नहीं रहता।

प्रक्षाल्य पादकमलं कृतदन्तकाष्ठां, स्नानार्थमन्य-सदने भवतीं निविष्टाम्।
अभ्यज्य गन्धिततरैरिह तैलपूरैः, प्रोद्वर्तयिष्यति कदा किमु किङ्करीयम्?२०॥

कहा- 'सखि! राधे! उस तृष्णा-वृक्ष का फल बार-बार खाकर तुम्हारे अधरों पर घाव हो गये हैं, उसके अरुणवर्ण रस से तुम्हारे नेत्रों की पलकें लाल हो गई हैं, फिर भी कहती हो पेड़ पर फल नहीं लगे! क्या आश्चर्य है!' श्रीमती बोलीं-'श्यामे! तुम मेरी मर्मवेदना समझे बिना ही यह कह रही हो। वर्षा-रात्रि में क्षणप्रभा (बिजली) का क्षणिक प्रकाश आँखों के अन्धकार को दुगना कर देता है; उसी प्रकार इस जीवन में श्रीकृष्ण क्षणार्ध के लिये दर्शन देकर अदर्शन-ज्वाला में हृदय को दग्ध ही कर रहे हैं।' इस प्रकार श्यामला के साथ श्रीमती के अनुरागमय रसोद्गार के जो शत-शत उत्स (फव्वारे) फूटे उनमें सखी-मञ्जरियों की प्राण-सफरियाँ (मछलियाँ) जी भरकर तैरने लगीं। तत्पश्चात् नन्दालय से मधुरिका सखी ने आकर वहाँ के संवाद दिये-नन्दालय में पौर्णमासी देवी का आगमन; यशोदा और पौर्णमासी द्वारा श्रीकृष्ण को जगाना, श्रीकृष्ण का मुखप्रक्षालन आदि, बल्देव के साथ श्रीकृष्ण की आरति, माखन-मिश्री भोजन तथा सखाओं के साथ दोनों भाइयों का गोदोहन के लिये गौशाला जाना। सखियों सहित श्रीमती को श्रीकृष्णलीलामृत आस्वादन करा श्यामला के साथ मधुरिका चली गईं। श्यामला और मधुरिका के आने से स्वामिनी की विरह-ज्वाला थोड़ी शान्त हुई थी। उनके चले जाने पर उस ज्वाला का पुनः उच्छलन हुआ। श्रीराधा भाविनी, भावोन्मादिनी, भाववती हैं। भाव की उच्छलित अवस्था आ पहुँची है। जिस भाव से विरह-विधुरा स्वामिनी की विरह-ज्वाला शान्त हो, उसी भाव से सेवा करनी होगी। किंकरियाँ तो सब जानती हैं। वे श्यामसुन्दर की लीला और छवि हृदय में अंकित कर रखती हैं; श्याम से सेवा की कला-विद्या सब सीखकर रखती हैं। श्रीमती प्रातःकृत्य आदि कर आती हैं, तो किंकरी सुगन्धि मृत्तिका और सुवासित जल से हाथ-पैर मार्जन कर देती हैं। तुलसी जानती हैं कि श्याम के हाथों का स्पर्श कैसा है, सो उन्होंने कपूर मिली सुवासित कोमल मिट्टी से श्रीचरण-मार्जन कर वैसा ही स्पर्श देकर सुवासित जल से विरहवती के श्रीचरण धो दिये हैं। अब अपने केशों से श्रीचरण पोंछेंगी। हाथ फैलाती हैं, पर श्रीपादपद्म नहीं मिलते। स्फूर्ति में विराम आया। पुनः तीव्र वेदना और हाहाकार साधकावेश में विलाप करते-करते निविड़ आकांक्षा हृदय में लिये सेवा-प्राप्ति के लिये प्रार्थना की।

''शुनो शुनो अयि देवि! हे कृष्णभाविनि!
प्रभात हइले कबे अन्य गृहे आनि॥
कर्पूरमिश्रित शुद्ध मृत्तिका आनिया।
चरणे सोपिबो तव जतन करिया॥
सुधांशुकिरणे स्निग्ध सुशीतल जल।
कर्पूर वासित ताहा अति निरमल॥
पद पाखालिबो शेषे से नीरधाराय।
पुन केशपाशे कबे मुछाइबो ताय॥''१९॥

अन्वय-उ (भो श्रीराधे!) इयं किंकरी- (तव) पादकमलं प्रक्षाल्य कृतदन्तकाष्ठां (कृता दन्तानां काष्ठा मार्जन-द्वारा प्रकर्षो यया तां) स्नानार्थं अन्यसदने निविष्टां भवतीं कदा इह (अनुभूत स्थले) गन्धिततरै: तैलपूरै: अभ्यज्य (आक्तां कृत्वा) प्रोद्वर्तयिष्यति (मर्दिताङ्गां विधास्यति) किम्?२०॥

अनुवाद-हे राधे! तुम चरण धोकर और दन्त-धावन कर स्नान के लिये अन्य कक्ष में आओगी, तब किंकरी क्या कभी तुम्हें सुगन्धि तैल से सिक्तकर तुम्हारा अङ्ग-मर्दन करेगी?२०॥

दन्तधावन और तैलाभ्यंग-सेवा

परिमलकणा व्याख्या-पिछले श्लोक में श्रीपाद को श्रीचरण-प्रक्षालन सेवा का स्फुरण प्राप्त हुआ था। इस श्लोक में दन्दकाष्ठा (दाँतुन) आदि द्वारा श्रीमुख-प्रक्षालन और अन्य कक्ष में बैठी स्वामिनी की सुगन्धि तैल से अभ्यंग (मालिश) सेवा की स्फूर्ति हुई है। तीव्रतम वासना! प्रत्यक्ष से भी अधिक घनी अनुभूति! साधक का अनुभव देखकर लगता है जैसे इष्टदेव उसका हाथ पकड़कर खीञ्च रहे हैं। भजन-साधन से जिस परिमाण में चित्त परिमार्जित होता है, उसी परिमाण में अनुभव अथवा स्फूर्ति आती है। श्रीगौरसुन्दर की कृपा का दान ही आचार्यपादों के माध्यम से प्रकट हुआ है। गौरसुन्दर के युग का व्यक्ति यदि उनकी दी हुई सम्पदा से वंचित होता है, तो इससे अधिक मर्मान्तिक परिताप (शोक, वेदना) की बात और क्या होगी? पिछले श्लोक में विरही श्रीपाद को प्रात:कालीन पाद-प्रक्षालन सेवा का स्फुरण प्राप्त हुआ था। स्फूर्ति के विराम में आई तीव्र ज्वाला। 'सेवा देकर प्राण-रक्षा करो।' श्रीराधारानी की सेवा-वासना साधारण हृदय में नहीं उठती। जो विश्व की उपेक्षा कर सके हैं, जिनमें किसी प्रकार की अपेक्षा (आशा-आकांक्षा) नहीं है, उन्हीं के हृदय में यह वासना जगती है। जहाँ सांसारिक भाव है, वहाँ राधा-दास्य के लिये स्थान कहाँ? मायिक वृत्ति मन-बुद्धि से तिरोहित होनी चाहिये। गीता में भगवान् ने अर्जुन से कहा-''मय्यर्पितमनो-बुद्धिर्यो मद्भक्त: स मे प्रिय:''-जिस भक्त ने मन-बुद्धि मुझे समर्पित कर दी है, वही मुझे प्रिय है। राधादास्य और भी कठिन है, तन्मयता के बिना सम्भव नहीं। रघुनाथ कुण्डतीर पर खुले स्थान में भजनावेश में मग्न हैं। इष्टदेव पीछे रहकर भक्त की भावमाधुरी का आस्वादन कर रहे हैं। व्याघ्र आया और कुण्ड का जल पी गया। रघुनाथ तो आविष्ट हैं, कुछ भी नहीं जानते। सनातन ने दूर से यह देखकर कहा-'रघुनाथ! इस अनावृत स्थान में भजन करने से तुम्हारी प्रतिष्ठा फैल जायेगी। दैन्यहीन भजन प्राणहीन जैसा होता है। कायिक, वाचिक, मानसिक न होने से भजनरस का आस्वादन नहीं होगा। अतएव रूप-गुण-लीलादि का चिन्तन करते-करते कुटीर में पड़े रहो।' श्रीरघुनाथ के प्रति स्नेहसिक्त चित्त रखने वाले श्रीपाद सनातन ने व्याघ्रवाली बात का उल्लेख न किया। उसी दिन से कुण्डतीर पर कुटीर का सूत्रपात हुआ।

सेवा के अभाव में श्रीपाद रो रहे थे। स्वामिनी की कृपा से स्फूर्ति में सेवारस का आस्वादन प्राप्त हुआ। श्रीतुलसी स्वामिनी को दन्तधावन करा रही हैं। कोमल आम की दाँतुन से दन्तमार्जन करा रही हैं। स्वर्णझारी की नली के अग्रभाग से वे स्वामिनी के हाथ पर जल उड़ेल रही हैं। हस्तकमल के स्पर्श से जल लोहितवर्ण हो रहा है। वदनकमल के अतिशय सौरभ से वह सुवासित जल और भी सुगन्धित हो रहा है। सोने के पतद्ग्रह (पीकदान) में कुल्लों का जल निक्षेप कर रही है। ललाट, गण्ड, नेत्र अमित कान्तियुक्त हैं। बायें हाथ की

अंगुलियों से घुंघराले केशों को यथास्थान व्यवस्थित कर रही हैं। चूर्ण कुन्तल (घुंघराले केश) देखकर श्याम की स्मृति चित्त पर उदित हो जाने से वे अवश हो उठीं! भावमयी की सेवा है। महाभाव का उच्छ्वास आया हैं। साथ ही साथ तुलसी ने उन्हें एक अतुलनीय रस का आस्वादन कराया। जिस कक्ष में स्वामिनी दन्तधावन कर रही हैं, उसमें श्यामसुन्दर का एक मधुर चित्र टँगा हुआ है। 'तुम्हारे दन्तरूप दाड़िमबीज (अनार के दाने) वृन्दावन के शुकपक्षी को आकर्षित करते हैं, वह देखो.....' यह कहकर अंगुली के निर्देश से तुलसी वह चित्र स्वामिनी को दिखा रही हैं। यह चित्र विशाखा ने पूर्वराग की अवस्था में अंकित किया है। तुलसी भावमयी को चित्र के उस मधुर इतिहास का स्मरण करा रही हैं। 'स्वामिनी! याद है, तुम पत्र लिख रही थीं-तुम चित्रपट रूप में मेरे कक्ष में वास करते हो; जिधर भागना चाहती हूँ, उधर ही हाथ फैलाकर खड़े हो जाते हो.....याद है?' तुलसी स्वामिनी को पूर्व आस्वादित लीला की याद दिलाकर आस्वादन में डुबाकर दन्तधावन मुख-प्रक्षालन करा रही हैं। धन्य दासी। यही है राधादास्य का भीतरी सौन्दर्य! श्रीगुरु-प्रदत्त सिद्धरूप के अभिमान में विभोर होकर स्वामिनी जी के उज्ज्वल मूर्ति की सेवा! किस प्रकार नित्यकिंकरी तुलसी दन्तधावन करा रही हैं-साधक को यह बात ध्यान में देखकर सेवा की शिक्षा लेनी होगी। ये किंकरियाँ ही युगल-सेवा की गुरु हैं। श्रीमन्महाप्रभु के साथ व्रजनिकुञ्ज से उतर कर आई हैं-विश्व के साधकों को मञ्जरीभाव साधना की शिक्षा देकर निकुञ्ज-सदन में ले जाने के लिये! ''तद्भावलिप्सुना कार्या व्रजलोकानुसारतः'' (भ०र०सि०)। श्रीरूप-रघुनाथ ही 'व्रजलोक' हैं। इनके आचरण मञ्जरीभाव के सिद्ध और साधक के आदर्श हैं, दोनों के लिये अनुसरण योग्य हैं।

लीलारस का आस्वादन देकर तुलसी स्वामिनी की चेतना लौटा लाई हैं। दन्तधावन के पश्चात् तुलसी ने उनके श्रीहस्त में मणिमय धनुराकृति जिह्वाशोधनी दी। स्वामिनी कोमल हाथों के अँगूठों और तर्जनियों से मार्जनी पकड़कर जिह्वाशोधन कर रही हैं, उस समय उनकी देहयष्टि (कनकछड़ी-सी देह) मृदु-मृदु स्पन्दित हो रही है! किसी रसमय अवस्था विशेष को यादकर तुलसी के चेहरे पर मृदुमन्द हँसी छिटक रही है! उस हँसी को बिखेरती तुलसी स्वामिनी के चित्त में उसी रस की स्मृति जगाकर परानन्द दे रही हैं। जल से पुनः मुख-प्रक्षालन करा सूक्ष्म मृदु वस्त्र से मुख और हाथ पोंछ दिये, तो स्वामिनी ने अपनी स्मित (मुस्कान)-सुधा से वदन को पुनः धोया। जो स्मरणनिष्ठ साधक हैं, वे बाह्यज्ञान शून्य होकर स्वरूपाभिमान को लेकर इस सेवारस का आस्वादन करते हैं। स्वामिनीजी के रूप-रस-गन्ध-शब्द-स्पर्श ही उन साधकों की प्राणरक्षा के साधन हो उठते हैं। विश्ववाला पक्ष शून्य हो जाता है, इस स्मृति के आगे अन्य सभी बातें तुच्छ हो जाती हैं। ''प्रेमभक्ति-सुधानिधि, ताहे डूबो निरवधि, आर जतो क्षारनिधि प्राय॥'' (चै०च०)।

स्नानगृह है। गुप्त कक्ष! द्वार बन्द है। मात्र तुलसी और स्वामिनी हैं। संगमर्मर की चौकी पर स्वामिनी बैठी हैं। स्नान-सम्भार सब सजा रखा है। तुलसी स्वामिनी की तेल मालिश कर रही हैं। श्रीअङ्ग उद्घाटित कर तैल-मर्दन कर रही हैं। जिस अङ्ग की खबर सर्वज्ञ श्याम भी नहीं ले सकते, उसी महाभाव के अङ्ग पर स्वच्छन्दरूप से तैलमर्दन करने का सौभाग्य भाग्यवती तुलसी ने प्राप्त किया है। मार्मिक तैल-मर्दन। सिर से नीचे की ओर तक तेल लगा रही हैं। पहले मेघ-श्यामल केशदाम का बन्धन खोलकर सुगन्धित तेल से केश सिक्त कर मणिमय प्रसाधनी (कंघी) से केश सँवारे। एक-एक लट कोटि-कोटि प्राणों से भी अधिक प्रिय है। सेवा है प्राणों की। केश-प्रसाधन के पश्चात् अब तुलसी प्रणय से भरकर नारायणादि सुगन्धित तैल से

श्रीअङ्ग-मर्दन कर रही हैं। गौर अङ्ग में म्रदिमा (कोमलता), मृदुहास्य की मधुरिमा, नेत्राञ्चलों की द्राघिमा (दीर्घता), वक्षोजों की गरिमा (स्थूलता) इत्यादि विविध माधुर्य ⁂ का अनुभव हो रहा है। किंकरी जानती हैं, श्याम के हाथों का स्पर्श कैसा है। ठीक वैसा ही स्पर्श प्रदान कर रही हैं। स्वामिनी मग्न हैं। उनका मन जाने किस रसराज्य में चला गया है! तैल-मर्दन समाप्त हो गया है। तुलसी पुकारती हैं-'स्वामिनि!' सुनकर वे चौंक पड़ती हैं-'कौन-अरे-तू तेल लगा रही है? तुलसि? मैं भूल ही गई थी-ठीक नागर की तरह!' भावमयी की सेवा! अभाव से (भाव के बिना) उसकी धारण नहीं हो सकती। भाव की तरंगों में डूबना पड़ेगा। जो डूबे हैं, उनसे सेवा सीखनी होगी।

''श्रीरूपमञ्जरी आर, श्रीरतिमञ्जरी सार, लवंगमञ्जरी मञ्जुलाली।
श्रीरसमञ्जरी संगे, कस्तूरिका आदि रंगे, प्रेमसेवा करे कुतूहली॥
ए सबार अनुगा होइया, प्रेमसेवा निबो चाइया, इंगिते बुझिबो सब काजे।
रूपे गुणे डगमगि, सदा हबो अनुरागी, बसति करिबो सखीर माझे॥''

उसी भाव में भावित होकर सेवा-चिन्तन करते-करते ही स्फूर्ति आयेगी। ''भाविते भाविते कृष्ण स्फुरये अन्तरे। कृष्ण-कृपाय अज्ञ पाय रससिन्धुपारे॥'' (चै०च०)। श्रीमद्भागवत में नारदजी ने भृंगी के दृष्टान्त से तन्मयता की बात बताई है-

''कीट पेशस्कृता रुद्धः कुड्यायां तमनुस्मरन्।
संरम्भभययोगेन विन्दते तत्स्वरूपताम्॥'' (भा०-७/१/२८)

''भृंगी द्वारा क्रीड़ा जब दीवार पर बने मिट्टी के छिद्रयुक्त घरौंदे में बन्द कर दिया जाता है, तो वह भय और द्वेष से एकाग्रचित्त से भृंगी का चिन्तन करते-करते शीघ्र ही उसका सारूप्य प्राप्त कर लेता है।'' अतएव चिन्मय भक्ति के सहयोग से तीव्र चिन्तन के फलस्वरूप साधक जड़ीय देहावेश त्यागकर मञ्जरीस्वरूप का अभिमान प्राप्त करेगा, इसमें क्या सन्देह?

तैल मर्दन के पश्चात् उद्वर्तन (उबटन)। पद्म-पराग आदि और मृदुल सुगन्धित चूर्ण से उबटन होता है। तुलसी स्वामिनी के अङ्ग पर उबटन करेंगी। स्वामिनी अनमनी हैं। तुलसी के तैल-मर्दन के समय उन्होंने श्याम के स्पर्श का अनुभव किया था। तुलसी के पुकारने पर वे मानो आकाश से आकर गिरीं। तुलसी पूर्व लीला का स्मरण करा उनका मनोयोग (ध्यान) आकर्षित कर उन्हें रस-तरंगों में डुबाकर उबटन-सेवा कर रही हैं। 'स्वामिनि! याद है, एक दिन क्या हुआ था! यमुना का निर्जन घाट। मैं तुम्हारे अङ्ग पर उबटन कर रही थी। पास ही एक ऊँचे कदम्ब पर नागर छिपे बैठे थे। बार-बार हाथ जोड़कर (संकेत कर) कह रहे थे-''थोड़ा आस्वादन (आनन्द) दो।'' मैंने उन्हें प्रचुर आस्वादन दिया था। तुम्हारी वेशभूषाविहीन अवस्था में स्वाभाविक सौन्दर्य देखकर उन्हें बड़ा आनन्द आ रहा था। ⁂ उसी आस्वादन की स्मृति भावमयी के हृदय में लाकर उन्हें रस-तरंगों में डुबाकर तुलसी सेवा कर रही हैं। स्वामिनी तुलसी द्वारा वर्णित श्रीकृष्ण-सुख की स्मृति में विभोर

⁂ 'मेरे द्वारा सम्पादित श्रीश्रीराधारससुधानिधि' के श्लोक ७५ की व्याख्या देखिये।

⁂ 'मेरे द्वारा सम्पादित श्रीश्रीराधारससुधानिधि' के श्लोक २४ की व्याख्या देखिये।

अयि विमलजलानां गन्धकर्पूरपुष्पै,-
जितविधुमुखपद्मे वासितानां घटोघैः।
प्रणय ललित - सख्या दीयमानैः पुरस्ता,-
त्तव बरमभिषेकं हा कदाहं करिष्ये ? २१ ॥

अन्वय-अयि जितविधुमुखपद्मे! (जितो वशीकृतो विधुः श्रीकृष्णो येन एवम्भूतं मुखपद्म यस्या हे तथाविधे!) हा! कदा अहं प्रणयललितसख्या पुरस्तात् दीयमानैः गन्ध-कर्पूर-पुष्पैः वासिताना विमलजलानां घटोघैः (प्रचुरधाराभिः) तव वरं अभिषेक करिष्ये (करिष्यामि) ?२१॥

अनुवाद-हा राधे! हा जितविधुमुखपद्मे (चन्द्रमा को भी जीतने वाली पद्माननें)! प्रणय-ललित सखियों द्वारा लाकर रखे गये गन्ध-कर्पूर-पुष्प से सुवासित जलकलशों की प्रचुर धारा से उत्तमरूप से मैं कब तुम्हारा अभिषेक करूँगी ?२१॥

श्रीराधा का स्नान

परिमलकणा व्याख्या - श्रीराधा के श्रीअङ्ग पर तैलमर्दन और उबटन करने के पश्चात् श्रीपाद की स्फूर्ति में विराम आ गया था। उन्होंने विरह दुःख निवारण के लिये स्वामिनी के चरणों में प्रार्थना की। सेवामय विग्रह हैं, सेवा के अभाव में आर्ति का अन्त नहीं। सहसा स्नान-सेवा की स्फूर्ति प्राप्त हुई। ''अहं कदा तव वरमभिषेकं करिष्ये?'' 'तुम्हारा वर (श्रेष्ठ) अभिषेक कब करूँगी? स्नान श्रेष्ठ सेवा है। गन्ध, कर्पूर, पुष्पवासित जल से स्नान कराऊँगी। प्रणय की मूर्तियाँ हैं सखियाँ, वे घट भर-भरकर देंगी। घट जल सभी प्रणयमय है। प्रणयरस से तुम्हारा श्रेष्ठ अभिषेक करूँगी।' जब तक उन लोगों की करुणा न हो, अनुभूति की बूँद न मिले, तब तक आस्वादन असम्भव है। सृष्टि के प्रारम्भ में करुणामय भगवान् ने चतुःश्लोकी उपदेश-प्रसंग में ब्रह्माजी से कहा-

''यावानहं यथाभावो यद्रूपगुण-कर्मकः।
तथैव तत्त्वविज्ञानमस्तु ते मदनुग्रहात्॥'' (भा०-२/९/३१)

हैं! ''प्रीतिविषयानन्दे तदाश्रयानन्द'' (चै०च०)। धन्य किंकरी! जब जैसा प्रयोजन, तब वैसी सेवा! इसके पश्चात् स्नान-सेवा का आस्वादन। इसी प्रकार क्रम चल रहा है।

''शुनो देवि! श्रीराधिके! मोर निवेदन।
पाखालि चरणपद्म माजिया दशन॥
गृहान्तरे बसिबे जबे स्नानेर लागिया।
सेइकाले तव नेत्र - इंगित पाइया॥
स्नान-योग्य शाटी आनि पराबो यतने।
चारु अङ्गे सुवासित तैल अद्वर्तने॥
नियुक्त हइबे एइ किंकरी तोमार।
एमन सौभाग्य हाय! हबे कि आमार॥''२०॥

''हे ब्रह्मन्! मेरी कृपा से मेरे स्वरूप, लक्षण, रूप, गुण, लीलादि का तत्त्व तुम्हें अनुभव हो।'' बिना कृपा ब्रह्मादि भी नहीं समझ सकते, तभी करुणा का आशीर्वाद! आचार्यपादगण और भी करुण हैं-अपनी अनुभूति की बात ग्रन्थ के रूप में रख दी है।

''प्रेमभक्तिरीति जतो, निज ग्रन्थे सुबेकत, लिखियाछे दुइ महाशय।
जाँहार श्रवण हैते, परानन्द हय चिते, युगल - मधुर - रसाश्रय॥
युगल-किशोर-प्रेम, लक्षवान जेनो हेम, हेनो प्रेम प्रकाशिला जारा।
जय रूप-सनातन, देहो मोरे एइ धन, से रतन मोर गले हारा॥'' (प्रे०भ०च०)

बहुत यत्न से गूंथा रत्नहार-साधक की आत्मा की शोभा बढ़ायेगा। श्रीरघुनाथ के प्राणों की प्रार्थना है विलापकुसुमाञ्जलि। प्रत्येक श्लोक आर्ति-मकरन्द से भरपूर है। भावुक साधक मधुकर की तरह इन कुसुमों की मकरन्दरस-माधुरी का आस्वादन करेंगे। इस मकरन्द की मादकता साधक-चित्त में श्रीमती की सेवाकांक्षा की उन्मादना अवश्य ही जगायेगी।

सम्बोधन गूढ़ अर्थ से भरा है। ''जितविधुमुखपद्मे।'' सेवा के समय अतीत लीला की स्मृति जगा रहे हैं। निविड़ आन्तरिक आस्वादन में स्वामिनी को डुबाया जा रहा है। ''तुम्हारे मुखपद्म ने श्याम-चाँद को जीत लिया है।'' कुञ्जविलास की एक मधुमयी स्मृति की छवि स्वामिनी के चित्तपट पर आँक रही हैं-सुनिपुण शिल्पी की तरह। कुञ्ज गृह में स्वामिनी मानिनी हैं। मान किस लिये है, कोई नहीं जानता। लगता है, अकारण। प्रेम की गति सर्पिल होती है। तभी तो कारण हो, न हो, मान प्रकट हो जाता है।

''अहेरिव गतिः प्रेम्णः स्वभावकुटिला भवेत्।
अतो हेतोरहेतोश्च युनोर्मान उदञ्चति॥'' (उ०नी०)

मानिनी के मुख से थोड़ी-सी बात सुनने के लिये श्याम व्याकुल हैं। 'हृदय अन्धकार से भरा है, चन्द्रमुख से कुछ बोलो, वह अन्धकार नष्ट हो!'' श्रीमती प्रस्ताव रखती हैं कुछ शर्तें पूरी करने का; श्याम शर्तें पूरी करें, तो वे प्रसन्न हों-

''तुहुँ यदि माधव चाहसि लेह। मदन साखी करि खत लेखि देह॥
छोड़बि केलि - कदम्ब बिलास। दूरे करबि निज गुरुजन-आश॥
मो बिने स्वपने ना हेरबि आन। हामारि वचने करबि जल पान॥
रजनी दिवस गुण गायबि मोर। आन युवती कोई ना करबि कोर॥
ऐछन कवच धरब जब हात। तबहिं तुया संगे मरमक बात॥'' (पदकल्पतरु)

श्याम ने मदनखत पर (मदन को साक्षी बना पत्र पर) अपने हस्ताक्षर कर दिये। श्रीराधा की ऐसी वश्यता की ही तो वे सदा आकांक्षा करते हैं! मिलन बना बड़ा उत्कण्ठामय। प्यासा भ्रमर, स्वामिनी के मुखकमल की कैसी शोभा! श्यामचाँद पराजित हुए थे। इस विश्व का चाँद कमल की शोभा का आस्वादन नहीं करता, चाँद की शोभा से तो कमल पराजित होता है। प्रेमराज्य में होता है इसका विपरीत। स्वर्णकमल (राधारानी का श्रीमुख) चाँद (श्यामसुन्दर) की शोभा से पराजित न होकर और भी अधिक सुशोभित हो गया था। यही

कारण था कि चाँद ने प्राण भरकर कमल की शोभा का आस्वादन करना चाहा तो वह स्वयं कमल की सुषमा से पराजित हो गया। श्यामचाँद ने और किसी की मुखशोभा का इस प्रकार आस्वादन नहीं किया। दूसरे को कृतार्थ करने के लिये आस्वादन किया है, किन्तु श्रीराधारानी का आस्वादन-स्वयं कृतार्थ होने के लिये! पूर्वराग में देखा गया है-अप्राकृत नवीनमदन-राधारानी को छोड़ और कुछ भी (उन्हें) अच्छा नहीं लगता। (वे) राधा-विरह में कातर होकर स्थलकमलिनी पीतझिण्टि (पुष्प विशेष) आदि को राधा समझकर आलिंगन कर रहे हैं। मधुमंगल से बोले-'सखे! राधा को थोड़ा दिखाओ न!'' मधुमंगल पत्ते पर राधानाम लिखकर दिखाते हैं। अक्षर देखकर ही बोले-'ये मेरे प्राण के अक्षर हैं।' नाम से ही तुष्ट हैं। ⁂ विश्व में ऐसा प्रेम कहीं नहीं है। आनन्दघन मूर्ति श्रीमती के लिये तभी इतना उन्माद है!

श्याम के उद्दीपन के लिये इन्द्रनीलमणि के घटों में सुगन्धित जल सजा हुआ है। घट देखकर ही स्वामिनी विवश! तुलसी भावमयी के अन्तर (हृदय) को समझकर 'जितविधुमुखपद्मे' कहकर पुकार रही हैं परिहासरस के माध्यम से उन्हें स्मृति का आस्वादन दे दिया। स्वामिनी स्नानवेदी पर बैठी हैं। ललितासखी जल से भरा घट दासी के हाथों में दे रही हैं। श्रीरूपमञ्जरी जल भर रही हैं। प्रणयिणी ललितासखी स्वयं स्नान न करा, कहती हैं-'तेरे हाथ से स्नान कराऊँगी।' तुलसी पहले श्रीराधा के मस्तक पर घट से धीरे-धीरे सुगन्धि जल डालने लगीं। कोई एक किंकरी परमानन्द पूर्वक कोमल हाथों से केशकलाप मार्जन करने लगी; कोई दासी श्रीअङ्ग-मार्जन करने लगी। तुलसी गन्ध-कर्पूर-गुलाब आदि कुसुमों से सुवासित प्रचुर जलधारा से स्वामिनी का अभिषेक कर रही हैं। स्नान के समय श्रीमती के श्रीमुख, नयन, अधर, दन्त-अङ्गप्रत्यंग से जो अमित कांति छिटक रही है, उसमें सखी-मञ्जरियों की नयन-सफरियाँ (मछलियाँ) सुख से तैर रही हैं। स्नान समाप्त हो गया। स्वामिनी पुकारती हैं-'तुलसि! स्नान हो गया, अब देह पोंछ दे।' सहसा स्फूर्ति में विराम आ जाता है। स्वामिनी की वह मधुमयी वाणी अब भी कानों के निकट तैर रही है। श्रीपाद हाहाकार के साथ स्नान-सेवा की प्रार्थना कर रहे हैं-'उस सेवा-रस में कब डूबूँगी!'

''अयि जित विधु-पद्ममुखि ठाकुराणि।
ए दासीर अभिलाष पूर्ण करो तुमि॥
कलसी कलसी करि सेइ जल भरि।
तब प्रियतमा सखी ललिता सुन्दरी॥
निरमल नीर घनसारेते शोधित।
सुगन्धि पुष्पेते पुनः करिया वासित॥
तोमार अग्रेते मोरे करिबे अर्पण।
सेइ घटचय आमि करिया धारण॥
तव वर - अभिषेक विधान करिबो।
हाय! हाय! हेनो भाग्य कवे बा लभिबो॥''२१॥

⁂ विदग्धमाधव नाटक, अङ्क ६ देखिये।

पानीयं चीनवस्त्रैः शशिमुखि शनकै रम्य-मृद्वङ्गयष्टे-
र्यत्नादुत्सार्य मोदाद्दिशिदिशि विचलन्नेत्रमीनाञ्चलायाः।
श्रोणौ रक्तं दुकूलं तदपरमतुलं चारुनीलं शिरोग्रात्
सर्वाङ्गेषु प्रमोदात् पुलकित वपुषा किं मया ते प्रयोज्यम्?२२॥

अन्वय-शशिमुखि! (हे राधे!) दिशि दिशि मोदात् विचलन्नेत्रमीनाञ्चलायाः (मीनी इव चञ्चलं नेत्राञ्चलं यस्याः) ते रम्यमृद्वंगयष्टेः पानीयं (जलं) चीनवस्त्रैः (सूक्ष्मवसनैः) शनकैः (यत्नात्) उत्सार्य श्रोणौ (नितम्बे) रक्तं दुकूलं तत् (प्रसिद्धं) अपरम् अतुलं चारुनीलं (दुकूलं) शिरोग्रात् सर्वांगेषु (शिरोऽग्रमारभ्य सर्वांगेषु) प्रमोदात् पुलकित वपुषा (हर्षात् जातपुलकं वपुर्यस्यास्तया) मया किं प्रयोज्यम्?२२॥

अनुवाद-हे शशिमुखि श्रीराधे! स्नान के अन्त में जब तुम आनन्द से मीन की तरह चञ्चल नेत्रों से चारों तरफ देखोगी, तब अति हर्ष से भरकर पुलकित देह से मैं सूक्ष्म वस्त्र से तुम्हारे रमणीय कोमल अङ्ग का जल यत्न-पूर्वक धीरे-धीरे पोंछकर क्या नितम्बदेश में रक्तवर्ण का वस्त्र और सर्वांग में निरूपम सुन्दर नील वस्त्र पहनाऊँगी?२२॥

श्रीअङ्ग पोंछना और वस्त्र पहनाना

परिमलकणा व्याख्या-स्वरूपावेश में श्रीपाद का अपूर्व सेवा-स्फुरण चल रहा है। मुझ-जैसे जीव का देहावेश अभीष्ट के चरणों से मन को कहीं हटा न ले! माया का संश्रव अभीष्ट-स्मृति में बाधा है। ''हइया मायार दास, करि नाना अभिलाष, तोमार स्मरण गेलो दूरे'' (प्रार्थना)। शास्त्र एवं महाजन कहते हैं-रागभक्त को स्वरूपावेश के प्रति तीव्र दृष्टि रखनी होगी।

''रागेर भजनपथ, कहि एबे अभिमत, लोकवेदसार एइ वाणी।
सखीर अनुगा हइया, ब्रजे सिद्ध देह पाइया, एइभावे जुड़ाबे पराणि॥'' (प्रे०भ०च०)

इसे छोड़ गौड़ीय वैष्णवों का प्राण शीतल करने का और स्थान नहीं। देहावेश में किसी को सिद्धि नहीं मिलती। श्रीमत् सनातन गोस्वामिपाद ने विज्ञशिरोमणि होते हुए भी दीनभाव से श्रीमन्महाप्रभु से प्रश्न किया था-

''के आमि, केने आमाय जारे तापत्रय?
इहा नाहि जानि आमि - केमने हित हय॥
साध्य-साधन तत्त्व पुछिते ना जानि।
कृपा करि सब तत्त्व कहो तो आपनि॥'' (चै०च०)

श्रीमन्महाप्रभु ने भी सरल भाव से उत्तर दिया था-

''जीबेर स्वरूप हय - कृष्णेर नित्यदास-
कृष्णेर तटस्था शक्ति-भेदाभेद प्रकाश॥

× × ×

कृष्ण – नित्यदास जीव ताहा भूलि गेलो।
सेइ दोषे माया तार गलाय बान्धिलो॥
ताते कृष्ण भजे, करे गुरुर सेवन।
माया जाल छूटे, पाय कृष्णेर चरण।''

किन्तु जो गौड़ीय वैष्णव हैं, उनकी अभीष्ट-सिद्धि राधाभजन अथवा राधाचरण-प्राप्ति के बिना नहीं होती। श्रीरघुनाथ को तीव्र ज्वाला केवल राधा-विरह में है। श्रीराधाचरणों को छोड़ उनकी और गति नहीं!

''भजामि राधामरविन्दनेत्रां, स्मरामि राधां मधुर-स्मितास्याम्।
वदामि राधां करुणाभरार्द्रां, ततो ममान्यास्ति गतिर्न कापि॥''

(विशाखानन्ददस्तोत्रम्-३१)

श्रीगौरांग ने आत्मसात् कर प्रिय रघुनाथ को गुञ्जाहार और गोवर्द्धन शिला दी थी। श्रीरघुनाथ का चिन्तन है-''शिला दिया गोसाइँ मोरे समर्पिला गोवर्द्धने। गुञ्जामाला दिया स्थान दिला राधिकाचरणें॥'' (चै०च०)। प्रभु की करुणा का स्मरण कर श्रीपाद का अपनी प्राणेश्वरी के लिये इतना आर्तनाद है! इस आर्तनाद का विराम नहीं। लीला नित्य है। भाग्यवान् साधक अब भी श्रीकुण्डतीर पर रघुनाथ का वही विरह-विलाप सुन पाते हैं। गभीर रात्रि में जब कर्ममुखर जगत् का कोलाहल रुक जाता है, तो उसी नैश (रात्रिकालीन) नीरवता में मर्मी भक्त की हृदयतंत्री पर बज उठती है-विलाप की वही करुण रागिणी! श्रीगौर की करुणा से एक प्रेम के पागल हैं श्रीपाद रघुनाथ, और एक श्रील प्रबोधानन्द सरस्वतीपाद! श्रीवृन्दावन में रो-रोकर खोजते घूम रहे हैं-'कहाँ हो वृन्दावनेश्वरि!' हमारे श्रीपाद ने मधुर सरसीतट पर ही अपनी ईश्वरी को देखना चाहा है-

''तट – मधुर – निकुञ्जे श्रान्तयोः श्रीसरस्याः
प्रचुरजलविहारैः स्निग्धवृन्दैः सखीनाम्।
उपहृत – मधुरंगैः पाययत्तन्मिथस्तै-
र्व्रजभुवि नवयुनोर्द्वन्द्वरत्नं दिदृक्षे॥''

''श्रीराधाकुण्ड में प्रचुर जलविहार से थककर तीरवर्ती मधुर कुञ्ज में जो सुस्निग्ध सखियों द्वारा कौतुकपूर्वक लाया मधु लेकर सखियों के साथ एक-दूसरे को पान करा रहे हैं-मेरी उन्हीं नवयुवयुगलरत्न श्रीश्रीराधाकृष्ण के इसी व्रजभूमि में दर्शन की वासना है।''

स्वरूपाविष्ट श्रीपाद श्रीमती के श्रीअङ्ग से सुचीन वस्त्र (वस्त्रविशेष) द्वारा जल पोंछ रहे हैं। लोभवश 'पानीय' (पेय) शब्द आ गया है। मात्र यमुना-जल ही पानीय नहीं, श्रीअङ्ग का अभिषेकजल भी पानीय है। प्रत्येक जलकण महाभाव से सिक्त होकर अपूर्व आस्वाद्य हो गया है, तभी उसके प्रति राधाकिंकरी का इतना लोभ है। तुलसी कोमल शुभ्र वस्त्रखण्ड से परमानन्द पूर्वक श्रीराधा के श्रीअङ्ग से लगे जलबिन्दु पोंछने लगीं- लगा जैसे स्थिर तड़ित (बिजली) लता पर लगे मुक्ताफलों को शारदीय शुभ्र मेघखण्ड द्वारा धीरे-धीरे उतार लिया गया है। श्रीअङ्ग के पोंछे जाने के समय स्वामिनी आनन्द से मीन-जैसे चञ्चल नेत्रों से चारों ओर देख रही हैं। नेत्रों की कैसी अपूर्व सुषमा है! नेत्रों की माधुरी देखकर ही तुलसी ने 'शशिमुख' सम्बोधन का प्रयोग किया है।

इस सम्बोधन में कुञ्ज-विलास की एक मधुर स्मृति की छवि ओतप्रोतभाव से जड़ी है। कुञ्ज में विलसित हैं श्रीराधामाधव। स्वामिनी के नयनों की सुषमा पर माधव विमोहित हैं। 'आहा! इतने सुन्दर हैं तुम्हारे नयन! नयन-माधुर्य पर लुब्ध नागर ने स्वामिनी के नेत्रों का चुम्बन किया ⁂। नेत्रों का काजल श्याम के अधरों से लग गया, वह देखकर स्वामिनी 'फिक्' कर थोड़ी हँसी। 'ओः! हँसी तो अमृत हैं!' कहकर नागर ने अधरचषक से उस अमृत को ग्रहण किया। श्याम के अधरों का काजल स्वामिनी के वदन से लग गया। नेत्रों की चञ्चलता देखकर तुलसी ने स्वामिनी के मन में उसी लीला की स्मृति जगाकर सम्बोधन किया- 'शशिमुखि!' सकलंक चन्द्रमा के साथ अकलंक मुखचन्द्र की तुलना की यही सार्थकता है।

श्रीअङ्ग पोंछने के पश्चात् तुलसी ने केशों का जल सुखाने के लिये शुभ्र वस्त्रखण्ड में केश-गुच्छ को लपेटकर उन्हें धीरे-धीरे निचोड़ा, तो जल निकलने लगा-ऐसा लगा मानो अन्धकार राशि चन्द्रिकाग्रस्त होकर रोते-रोते अश्रुधारा बहा रही है। इसके पश्चात् तुलसी स्वामिनी का भीगा वस्त्र निकलवाकर लाल घाघरा और ऊपर से नीचे तक नील वस्त्र पहनायेंगी। कैसी अपरूप प्राणभरी प्रेम की सेवा है! प्रेम के बाहर खड़े होने पर प्रेममयी को नहीं समझा जा सकता। तुलसी किस प्रकार सेवा कर रही हैं, यह देखकर साधक को सेवा की शिक्षा लेनी होगी। नीली साड़ी, नीली चूड़ियाँ पहनानी होंगी श्याम के उद्दीपन के लिये! स्मरणनिष्ठ साधक विषयचिन्तन की अभिभूति (प्रधानता) त्याग कर शुद्ध चित्त से साक्षात्कार की तरह ही अपनी स्मृति में सेवारस का आस्वादन प्राप्त करते हैं। ''भवति च स्मृतेर्भावना प्रकर्षाद्दर्शनरूपता'' (श्रीभाष्य में - श्रीपाद रामानुज)। अर्थात् 'जब स्मृति प्रगाढ़ होती है, विजातीय प्रत्यय (विश्वास, धारणा, भाव) प्रवाह शून्य होकर स्वजातीय प्रत्यय एकतानता प्राप्त करता है, तब स्मरणात्मक ज्ञान भी प्रत्यक्ष ज्ञान के रूप में परिणत हो जाता है।' भगवान् ने भी श्रीमुख से स्मरण-माहात्म्य प्रकट करते हुए कहा है-

''अनन्यचेता सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥ (गीता-८/१४)

'हे पार्थ! जो अनन्यचित्त से नित्य अनुक्षण मेरा स्मरण करता है, उस नित्ययुक्त योगी के लिये मैं अति सुखलभ्य हूँ।' स्मरणनिष्ठ साधक श्रीनामकीर्तन के सहयोग से स्मरण-अभ्यास द्वारा स्मरणांग साधना में शीघ्र ही सफलता प्राप्त कर धन्य होता है।

''संकीर्तनाद्ध्यानसुखं विवर्द्धते, ध्यानाच्च संकीर्तनमाधुरीसुखम्।
अन्योऽन्यसम्बर्द्धकतानुभूयते, - ऽस्माभिस्तयोस्तद्द्वयमेकमेव तत्॥''

(वृ० भा०-२/३/१५३)

'संकीर्तन द्वारा ध्यानसुख बढ़ता है, फिर ध्यान से कीर्तनानन्द बढ़ता है। दोनों एक-दूसरे के पोषक हैं; कार्य-कारण की अभेदात्मकता के कारण हम लोग दोनों को एक समझते हैं।''

⁂ ''नयनयुगकपोलं दन्तवासो मुखान्तस्तनयुगललाट चुम्बनस्थानमाहुरिति'' (सारंगरंगदा)-नयनयुगल, कपोल, ओष्ठाधर, मुखान्त, स्तनयुगल और ललाट, ये आठ चुम्बन स्थान है।

प्रक्षाल्य पादकमलं तदनुक्रमेण, गोष्ठेन्द्रसूनुदयिते तव केशपाशम्।

हा नर्मदाग्रथित-सुन्दर-सूक्ष्मामाल्यै,-र्वेणी करिष्यति कदा प्रणयैर्जनोऽयम्॥२३॥

अन्वय-गोष्ठेन्द्रसूनुदयिते! (हे नन्दनन्दन प्रेयसि!) अयं जनः तदनुक्रमेण पादकमलं प्रक्षाल्य नर्मदा-ग्रथित-सुन्दर-सूक्ष्म-माल्यैः तव केशपाशं हा कदा प्रणयैः वेणीं करिष्यति?

अनुवाद-हे नन्दनन्दन प्रेयसि! हाय! मैं यथाक्रम तुम्हारे पादपद्म धोकर माली की कन्या नर्मदा द्वारा गूँथी सूक्ष्म माला से अत्यन्त प्रणयपूर्वक तुम्हारा केशकलाप वेणीबद्ध कब करूँगी॥२३॥

वेणी-बन्धन

परिमलकणा व्याख्या-स्वरूपाविष्ट श्रीपाद ने पिछले श्लोक में स्फूर्ति में अभिषेक के पश्चात् स्वामिनी का श्रीअङ्ग पोंछकर वस्त्र धारण कराये हैं। स्फूर्ति में विराम आया तो हाहाकार। कुण्डतट पर पड़े रोदन कर रहे हैं-'अभीष्ट-सेवा देकर इस दीनजन की सुचिर आशा कब पूरी होगी?'' साक्षात् सेवा के अभाव में उत्कण्ठा से उनका चित्त विगलित है। साथ ही, दैन्य के उदय होने से अपनी अयोग्यता का स्फुरण होता है, तो

द्वार बन्द है, फिर भी वस्त्र धारण करने के समय स्वामिनी चारों ओर देख रही हैं-'लगता है सुन्दर (श्याम) ने देख लिया!'' नीली साड़ी देखकर श्याम का उद्दीपन होता है ''कृष्णमयी कृष्ण जार अन्तरे बाहिरे। जाँहा जाँहा नेत्र पड़े ताँहा कृष्ण स्फुरे॥'' श्याम के उद्दीपन से लज्जावती ने सिमट-सिकुड़कर वस्त्र पहन लिये। श्रीपाद ने प्रेमाम्भोज-मरन्दाख्य स्तव में कहा है-''ह्रीपट्ट-वस्त्रगुप्तांगीम्''। श्रील कविराज गोस्वामिपाद ने इसका अनुवाद किया है-'निज लज्जा श्याम-पदृशाटी परिधान'' (चै०च०)। अब ओढ़नी देंगी। ओंढ़नी के लिये हाथ बढ़ाया, तो कुछ नहीं मिला। स्फुरण का विराम हो गया। विलाप करते हुए स्फूर्ति में प्राप्त सेवा के लिये स्वामिनी के चरणों में प्रार्थना की।

''मोर निवेदन पुनः राइ! शशिमुखि! शुनो
स्नानक्रिया हैले समापन!
अति सुकोमल काया दिबो ताहा मुछाइया
लये सूक्ष्म पाटेर वसन॥
ताहे आनन्दित हय निशि दिशि नेहारइ
नेत्र-मीन करिबे चञ्चल।
दूरे फेलि आर्द्रवासे रक्ताम्बर दिया शेषे
आबरिबो नितम्बमण्डल॥
पुन दिव्य नीलाम्बरे दिया तव शिरोपरे
सर्वांग ढाकिबो पुनराय।
नाहि मोरे उपेखिबा एइ सेवा मोरे दिबा
हर्ष-पुलकित हबे काय॥''२२॥

रोदन करते हैं। फिर भी आशा नहीं छोड़ी जाती। अभीष्ट की करुणा की स्मृति से चित्त आशा के आलोक से उद्दीप्त हो जाता है। यह आशा ही अमृत है, विरह साधक के प्राण बचा कर रखती है। श्रीमत् रूपगोस्वामिपाद ने लिखा है–

''प्राचीनानाँ भजनमतुलं दुष्करं शृण्वतो मे,
नैराश्येन ज्वलति हृदयं भक्तिलेशालसस्य।
विश्वद्रीचीमघहर तवाकर्ण्य कारुण्यवीची–
माशाबिन्दूक्षितमिदमुपैत्यन्तरे हन्त शैत्यम्॥'' (स्तवमाला)

'हे अघारि श्रीकृष्ण! शुक अम्बरीष आदि प्राचीन महात्माओं के दुष्कर भजन–साधन की बात सुनकर निराशावश मेरा भक्तिलेश शून्य हृदय अत्यन्त अनुतप्त हो रहा है, किन्तु पामरों तक पर तुम्हारी अहैतुकी करुणा की बात सुनकर आशा–जल हृदय को सुशीतल भी कर रहा है।

स्मरणनिष्ठ साधक को स्मरण के समय लगता है कि सेवा ही कर रहा हूँ। स्मरण की निविड़ता (सघनता) में ऐसा होता है। स्मरण छोड़ बाहर आते ही लगता है मानो मरुभूमि में आ गया। व्यवहार–जगत् में आते ही लगता है जैसे मर गया। इस मृत्यु के हाथ से साधक की रक्षा करती है प्राप्ति की आशा! मैं (इष्ट को) नहीं पाऊँगा, ऐसा सोचने से भजन नहीं होता। प्राप्ति की आशा तो साधक के हृदय में आसन बिछाकर बैठती है। ''उद्धवदास आश करे हेरइते सखीसह युगल किशोर।'' जब ध्यान निविड़ होता है, तो स्फूर्ति आती है। आचार्यपद नित्य परिकर हैं, फिर भी साधना का रसास्वादन कर रहे हैं। विलाप करते हुए पुकार रहे हैं–''हा स्वामिनि! अपने गुण से (उदार स्वभाववश) कृपा कर सेवा के राज्य में ले जाओ।' देखते–देखते क्रमिक सेवा का स्फुरण जगा। चित्तमन सेवा–राज्य में चला गया।

स्वरूपाविष्ट श्रीपाद ने श्रीमती को प्रसाधन कक्ष में ले जाकर पुनः पैर धुलवाये। श्रीअङ्ग पोंछने के समय सिक्त केशों का जल सुकोमल वस्त्र लेकर निकाल चुके हैं। इस समय उनके आर्द्र केशपाश को सुगन्धित अगरुधूम से सुवासित करने के साथ–साथ सुखा लेते हैं। कितनी परिपाटीयुक्त सेवा है! उपासना का अर्थ ही है पास रहना।

''राधाकृष्ण सेबों मुइँ जीवने – मरणे।
ताँर स्थान ताँर लीला देखों रात्रि दिने॥
जे स्थाने जे लीला करे युगलकिशोर।
सखीर संगिनी हइया ताहे हउँ भोर॥'' (प्रार्थना)

स्मरणनिष्ठ साधक सेवा चिन्तन में विभोर या तन्मय रहेंगे, अर्थात् साक्षात्–सेवा की तरह ही स्मरण–सेवा के अनुभवरस में मग्न होंगे। स्मरण का अर्थ ही है मानस–संग। प्रतिष्ठानपुर के स्मरण सेवानिष्ठ ब्राह्मण की अंगुली ध्यान में पकाई खीर में जल गई थी। ⁂ श्रीमत् रघुनाथदास गोस्वामिपाद को स्मरण में खाये प्रसाद से अजीर्ण हो गया था। ⁂ श्रीगोवर्द्धन निवासी सिद्ध श्रील कृष्णदास बाबा द्वारा मानसीगंगा पर स्मरण में लाये

⁂ भक्तिरसामृतसिन्धु के श्लोक 'मानसोपचारेण' (१/२/१८२) की श्रीजीव, श्रीमुकुन्ददास और श्रीविश्वनाथ की टीकायें।

⁂ भक्तिरत्नाकर।

सुगन्धित तेल की आघ्राण (गन्ध) बाह्य जगत् में फैल गई थी। सूर्य-कुण्ड-निवासी सिद्ध श्रील मधुसूदनदास बाबा ने अपने स्मरण में होली खेली, तो अबीर-गुलाल से उनके बाहर पहने वस्त्रादि सुरंजित हो गये थे। ⁂ यदि भक्ति मिथ्या है, तो सत्य क्या होगा? भक्ति तो स्वरूपशक्ति की वृत्ति है! जैसे भक्तजन एक-दूसरे के साथ इष्टगोष्ठी करते हैं, उसी प्रकार साधक के मन में सखी-मञ्जरियों के साथ भी इष्टगोष्ठी करने की वासना जगनी चाहिये। थाको ताँदेर साथे, बसो ताँदेर काछे, महतेर वाणीर शक्ति आछे।'' महाजन कहते हैं, शास्त्र भी कहते हैं-साधक की भक्ति की परिपक्व अवस्था में स्थावर-जंगम में इष्ट स्फूर्ति होगी।

''महाभागवत देखे स्थावर - जंगम।
ताँहा ताँहा हय ताँर श्रीकृष्ण-स्फुरण॥
स्थावर जंगम देखे, ना देखे तार मूर्ति।
सर्वत्र हय निज इष्टदेव स्फूर्ति॥'' (चै०च०)

''सर्वभूतेषु यः पश्येद् भगवद्भावमात्मनः।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः॥'' (भा०-११/२/४५)

'जो सभी प्राणियों में अपने उपास्य-भगवान् की विद्यमानता देखते हैं और उपास्य भगवान् में भी सभी प्राणियों के दर्शन करते हैं, वे ही भागवतोत्तम हैं।'' भक्ति भक्त की सर्वेन्द्रियों में भगवान् को गोचर करा देती है-यह भक्ति की ही महिमा है।

श्रीराधा कनक आसन पर बैठी हैं। तुलसी स्वर्ण कंघी से स्वामिनी के मेघमाला-जैसे घुंघराले केशों का प्रसाधन कर रही हैं। उस दृश्य को देखकर लगता है मानो यमुना का जलप्रवाह स्वर्णजाल में खिञ्चकर कभी विस्तारित, तो कभी मुकुलित और प्रस्फुटित कमलमुख में गिरकर कवलित हो रहा है। अर्थात् प्रसाधन के समय तुलसी केशों को बायें हाथ की मुट्ठी में धारण करती हैं, तब बायाँ कर-कमल मुकुलित लगता है और जब वे केशगुच्छ उन्मुक्त करतल पर स्थापित कर कंघी चलाती हैं, तो कर-कमल प्रफुल्लित लगता है। कितनी प्रीतिपूर्ण सेवा है! राधारानी की एक-एक लट मानो कोटि-कोटि प्राणों के तुल्य है। होगी क्यों नहीं? साधारण केश तो नहीं हैं! श्रीमती के केशों का स्वरूप निरूपण करते हुए महाजन कहते हैं-

''राधामनोबृत्ति-लतांकुरागताः कृष्णस्य ये भावनया-तदात्मताम्।
सूक्ष्मायताः प्रेमसुधाभिषेकतस्ते निःसृताः केशमिषाद्वहिर्ध्रुवम्॥''

(गो०ली०-११/११२)

''श्रीराधा की मनोवृत्तिरूपी लता-अंकुर श्रीकृष्ण के चिन्तन से कृष्णवर्णत्व प्राप्त कर प्रेमसुधा से अभिषिक्त होकर सूक्ष्म और लम्बे केशों के बहाने बाहर निकल आये हैं।'' इस बात की अनुभूति अभिन्न प्राण किंकरी को सबसे अधिक है। प्रेम से बाहर प्रेममयी का कोई परिचय ही नहीं मिलेगा।

⁂ गौड़ीय वैष्णव जीवन, द्वितीय खण्ड।

केश-प्रसाधन हो गया है। तुलसी स्वामिनी के पीछे घुटनों के बल बैठकर निविड़ अनुराग से अपूर्व प्रणय-परिपाटी के साथ वेणी-रचना कर रही हैं। पीठ पीछे हैं न! श्रीमुख-दर्शन की विपुल लालसा है। तभी कहती हैं-'गोष्ठेन्द्रसूनुदयिते!' सम्बोधन रहस्यमय है। कितने भाव का परिचय मिलता है इस सम्बोधन से! स्वामिनी श्रीकृष्ण को लेकर भावमयी हैं और किंकरियाँ स्वामिनी को लेकर! वे सेवारस की एक मधुर लीला की स्मृति चित्त में जगाकर स्वामिनी को पागल किये दे रही हैं। 'गोष्ठेन्द्रसूनुदयिते'-'तुम ब्रजराज-नन्दन की प्रिया हो, अथवा व्रजराजनन्दन तुम्हारे प्रिय है'-इस षष्ठी और बहुब्रीहि समास का प्रयोग कर पारस्परिक प्रणय समझा रही हैं! 'कुञ्जलीला के अन्त में श्याम अपने हाथों तुम्हारी वेणी रचना करते हैं और तुम भी अपने हाथों उनका चूड़ा-बन्धन करती हो। किसी दिन प्रेम-विलास-विवर्त में जब तुम दोनों के नायक-नायिका भावों में परिवर्तन होता है, तब श्याम प्रगाढ़ प्रणय-आवर्त में पड़कर स्वयं को राधा और तुम्हें श्याम समझ लेते हैं, तब वे बड़े प्रेम से तुम्हारा चूड़ा बनाते हैं और तुम उनकी वेणी गूँथती हो। तब श्याम जिस निविड़ प्रेम से परिपाटी के साथ तुम्हारी सेवा करते हैं-मैं क्या वैसी कर पाऊँगी? मैं ठहरी दीना दासी-अयोग्या दासी-अपने गुणों के वशीभूत होकर कृपाकर सेवा दी है-इस सेवा से कभी वंचित न होऊँ, यही कामना है।'

सम्बोधन सुनकर स्वामिनी मग्न हैं। सोच रही हैं मानो श्याम ही उनका केशबन्धन कर रहे हैं। इस आस्वादन के फलस्वरूप उनके नेत्र अर्धमुकुलित हैं! लगता है मानो रस-भ्रमर नील-कमलों में धीरे-धीरे डूबे जा रहे हैं। धन्य हैं तुलसी! धन्य उनकी सेवा! मात्र एक सम्बोधन से लीलारस को मूर्तकर स्वामिनी को आस्वादन में डुबा दिया!

मननशील साधक को यह भाव हृदय में लेकर प्रतिदिन की इस सेवा का चिन्तन करना होगा। स्वरूप का आवेश रहे, तो माया की क्षमता नहीं कि साधक के मन को दूषित कर सके। जो भी उपद्रव है-माया का उपद्रव-वह देहावेश में ही है।

माली की कन्या नर्मदा वेणीबन्धन के लिये सूक्ष्म माला लाई है। जूही, चमेली आदि सूक्ष्म सुगन्धित पुष्पों की माला। कैसा सुन्दर शिल्प है उन मालाओं का! तुलसी ने उन्हीं मालाओं से वेणीबन्धन किया। वेणी संभार बाँधने को हुई, तो हाथ कुछ नहीं लगा। स्फुरण में विराम आ गया। रोते-रोते प्रार्थना की-'यह दीनजन नर्मदा की बनाई मालाओं से प्रेमपूर्वक तुम्हारी वेणी रचना कब करेगी?'

''पुन पादपद्म दुटि, पाखालिबो परिपाटी,
सुवासित जले सयतने।
निज केशपाश दिया, दिबो ताहा मुछाइया,
बसाइबो विचित्र आसने॥
शुनो, शुनो, व्रजराज-नन्दन-दयिते!
आँचरि चाँचर केश, वेणी बनाइते वेश,
बसिबे ए दासी हर्षचिते॥
नाना फूले गाँथि माला, भरिया कुसुम-डाला,
नर्मदा आनिबे त्वरा करि।

सुभगमृगमदेनाखण्डशुभ्रांशुवत्ते, तिलकमिह ललाटे देवि मोदाद्विधाय।

मसृण - घुसृण चर्चामर्पयित्वा च गात्रे, स्तनयुगमपि गन्धैश्चित्रितं किं करिष्ये?२४॥

अन्वय-देवि! (अहं) इह सुभगमृगमदेन (सुन्दरकस्तुर्य्या) ते (तव) ललाटे मोदात् अखण्डशुभ्रांशुवत् (पूर्णचन्द्रमिव) तिलकं विधाय (निर्माय) गात्रे मसृण-घुसृण-चर्चां (चिक्कण कुंकुमा-भरणं) अर्पयित्वा च किं स्तनयुगं गन्धैः (गन्धद्रव्यैः) चित्रितं करिष्ये?२४॥

अनुवाद-हे देवि! मैं क्या परमानन्द पूर्वक सुन्दर कस्तूरी से तुम्हारे ललाट पर पूर्णचन्द्र-जैसी तिलक-रचना और अङ्ग पर सुचिक्कण कुंकुम-लेपन कर तुम्हारे स्तन सुगन्धि द्रव्यों से चित्रित करूँगी?२४॥

तिलक-रचना और कुंकमचर्चा

परिमलकणा व्याख्या-श्रीपाद ने अप्राप्ति के कारण असह्य यत्रणा भोगी थी। अब पुनः स्फुरण में स्वामिनीजी के सेवारस का आस्वादन प्राप्त कर लिया। स्नान के पश्चात् अङ्ग पोंछकर वस्त्र पहना दिये, वेणी-रचना कर दी, अब तिलक-रचना कर रहे हैं। स्मरण, स्वप्न अथवा स्फुरण में थोड़ा-सा आस्वादन न मिले, तो साधक क्या लेकर रहेगा? यह आस्वादन ही उपासक के चित्त में दूसरी वस्तुओं की विस्मृति और भगवत् अनुध्यान (चिन्तन, स्मृति) जगा देगा। उपासना का उद्देश्य भी वही है। श्रीपाद शंकराचार्य ने छान्दोग्य-श्रुति-भाष्य-भूमिका में 'उपासना' शब्द का संज्ञा निरूपण करते हुए लिखा है-''उपासनं तु यथाशास्त्रसमापितं किंचिदालम्बनमुपादाय तस्मिन् समान चित्तवृत्ति-सन्तानकरणं-तदविलक्षणप्रत्ययान्तरितमिति।'' अर्थात् ''उपासना अर्थ में शास्त्रानुसार व्यवस्थित किसी एक ध्यान के विषय को अवलम्ब बनाकर उसमें चित्तवृत्ति की एकाकारता इस प्रकार उत्पन्न करनी होती है कि उसमें अन्य वस्तु का ज्ञान व्यवधान के रूप में न आ सके।''

श्रीपाद का राधा सम्पर्क छोड़ विश्व में और कुछ भी नहीं। भक्तिरत्नाकर ग्रन्थ में उल्लेख है कि श्रीपाद ने सिद्ध देह के प्रगाढ़ आवेश में सखी-स्थली से लाया गया पलाशपत्र-स्थित तक्र (मठा) दूर फेंक दिया था-

''दास नामे एक व्रजवासी एथा रय। दास गोस्वामीर तारे स्नेह अतिशय॥
तेहों एकदिन सखीस्थली ग्रामे गेला। वृहत् पलाशपत्र देखि तुलि निला॥
दासगोस्वामीर कथा मने मने कहे। अन्नादिक त्याग कैला दारुण विरहे॥
एक दोना तक्र पिये नियम ताँहार। इथे किछु अतिरिक्त हइबे आहार॥
ओइछे मने करि घरे आसि दोना कैला। ताहे तक्र लैया रघुनाथ आगे आइला॥
नव्यपत्र दोना देखि जिज्ञासे गोसाइँ। ए वृहत् पत्र आजि पाइला कोन् ठाइँ॥
दास कहे-सखीस्थली गेनु गोचारणे। पाइया उत्तम पत्र आनिनु एखाने॥

कबे ताहा प्रीत हैया, सेइ फूलमाला लैया,

बिरचिबो विचित्र कवरी॥''२३॥

'सखीस्थली' नाम शुनि क्रोधे पूर्ण हैला। तक्र सह दोना दूरे फेलाइया दिला॥
कतोक्षणे स्थिर हैया कहे दास प्रति। से चन्द्रावलीर स्थान-ना जाइबा तथि॥''

(पञ्चम तरंग)

कैसी अद्‌भुत है श्रीपाद की राधानिष्ठा! जिसके साथ नित्य सम्बन्ध है, उसके प्रति ऐसा ममत्व जगेगा नहीं तो और क्या! जिन लोगों ने थोड़ा भी साधनरस आस्वादन किया है, उनके चित्त में भी राधारानी के प्रति थोड़ी-बहुत ममता आयेगी और श्रीराधा की विरहानुभूति-तीव्र न भी सही, कुछ न कुछ उनके अन्तःकरण में जागेगी ही। राधापद-सुधारस साधक का परम अवलम्बन है। 'देह-दैहिकादि सभी अनित्य हैं, सभी तो जायेगा, किसके पास जाकर खड़ा होऊँगा? राधाचरण छोड़ और तो स्थान नहीं जहाँ खड़ा हुआ जा सके। श्रीगुरुदेव ने उन्हीं के दास्य का परिचय मुझे करा दिया है।' अनन्य का यह भाव आयेगा ही। अप्राप्ति-जनित असह्य यंत्रणा की अनुभूति होगी। खाना-पीना कुछ अच्छा न लगेगा। लगेगा कि और स्थान नहीं, जो प्राणों को शीतल कर सके। स्मरण में, स्वप्न में, स्फुरण में स्वामिनी के रूप, रस, शब्द, स्पर्श, गन्ध आदि का अनुभव होगा-तभी राहत मिलेगी।

श्रीपाद स्फुरण में श्रीमती के ललाट-फलक पर मृगमद द्रव से पूर्णचन्द्र-जैसा तिलक बना रहे हैं। स्वामिनी को पास बिठाकर, बाँये हाथ से चिबुक पकड़कर, दायें हाथ में तूलिका लेकर कितने प्रेम से परम आवेश के साथ तिलक बना रहे हैं। पहले अगुरु-द्रव में मृगमद मिलाकर एक मण्डल (गोला) बनाया। उसमें सिन्दूर की रेखाओं से सूक्ष्म सुन्दर कमल अंकित कर उसके बीच में कपूर मिले चन्दन-बिन्दु से अति सुन्दर चित्र की तरह तिलकांकन किया। वह श्यामसुन्दर को उद्दाम आनन्द प्रदान करने वाला और परम वशीकरण 'कामयन्त्र' तिलक है! मधुर ललाट-फलक पर मधुर तिलक झिलमिला उठा! उस शोभा का आस्वादन कर सम्बोधन किया-'देवि!' कितने अभिप्राय व्यक्त करता है यह सम्बोधन!

''देवि कहि द्योतमाना परमा सुन्दरी।
किम्बा कृष्णक्रीड़ा-पूजार वसतिनगरी॥'' (चै०च०)

जो ज्योतिमान हैं, वे देवी अर्थात् परमसुन्दरी हैं। विश्व के सौन्दर्य की तरह नहीं। मादनाख्य महाभाव से निकला सौन्दर्य! कारण स्पष्ट है-जो सौन्दर्य प्रेम से नहीं निकला, उसे लेकर रसिक-शेखर श्रीकृष्ण को सुख-उल्लास नहीं होता। वे ह्लादिनी के दिये आनन्द के अलावा अन्य कोई आनन्द ग्रहण नहीं करते। उनकी प्रियता एकमात्र प्रीतिरस को लेकर ही है। फिर ''दीव्यति क्रीड़ति अस्यां''-इस अधिकरणवाच्य में देवी शब्द का अर्थ इस प्रकार होगा कि श्रीकृष्ण राधा के साथ क्रीड़ा करते हैं, इसलिये वे 'देवी' हैं। यद्यपि उनकी क्रीड़ा अन्यान्य प्रेयसियों को लेकर भी होती है, किन्तु उनका मूल अधिकरण श्रीराधा हैं। इसीलिये वे कृष्णक्रीड़ा-पूजा की 'वसतिनगरी' हैं। पूजा शब्द का अर्थ है सन्तोष पहुँचाना। राधारानी श्रीकृष्ण को सन्तोष प्रदान करने वाली अनन्त रसमयी क्रीड़ा-सामग्री का अक्षय भण्डार हैं। यहाँ तक कि जिस क्रीड़ा-सुखास्वादन का संकल्प भी श्रीकृष्ण के हृदय में उत्पन्न नहीं हो सकता, श्रीराधा वही संकल्पातीत आस्वादन देकर कृष्ण को सदा उन्मत्त किये रखती हैं। तुलसी ने 'देवि' सम्बोधन के द्वारा लीलारस की कितनी-कितनी मधुर स्मृतियाँ स्वामिनी के हृदय में जगाकर तिलक रचना की। बाहर काली कस्तूरी श्याम के वर्ण और गन्ध की उद्दीपक है। स्वामिनी

मग्न हैं। उन्होंने तुलसी की इच्छा के स्रोत में अपना श्रीअङ्ग निढ़ाल कर दिया है। धन्य है किंकरी! इन किंकरियों के प्रेम की तुलना नहीं। ममता की अतिशयता से चिन्हित है यह प्रेम। राधारानी इन पर अपने से भी अधिक विश्वास करती है। राधारानी के समझने से पहले ये लोग समझ जाती हैं। श्रीपाद ने कहा है-'केवल दास्य ही नहीं, प्रणयपुष्ट दास्य चाहिये' - ''प्रणय-पुष्ट-दास्याप्तये।'' एक दूसरे के प्राणों के तादात्म्य के कारण अभेद लगता है। राधारानी की अनुभूति किंकरी के हृदय में जगती है। आत्मा की आत्मा हैं राधारानी, उनकी चरणप्राप्ति के अभाव में दु:ख असहनीय होता है। राधारानी के श्रीकृष्ण-मिलन आनन्द की और श्रीकृष्णविरह-दु:ख की अनुभूति किंकरी के हृदय में जगती है। महाप्रभु इसी राधाभाव को हृदय में रखकर बड़े आवेग के साथ तीन द्वार पार कर गये हैं! प्रेम को कोई बाधा नहीं पहुँचा सकता। दु:सह विरह में श्रीरघुनाथ की प्राणरक्षा का अवलम्बन यह स्फूर्ति ही है। स्फुरण में आस्वादित युगल-माधुरी ही उनके प्राणों का उपजीव्य (संरक्षक) है। स्मृति का आस्वादन साधक के लिये भी प्राणों की खुराक होनी चाहिये। "मनेर स्मरण प्राण, मधुर मधुर धाम, युगल-विलास-स्मृतिसार'' (प्रे०भ०च०)। 'मधुर मधुर धाम' - इसका अर्थ स्मृति में आस्वादित युगलमाधुरी ही समझना चाहिये। लीला के माधुर्य-आस्वादन की परिपाटी श्रील गोस्वामिपाद की वाणी से जानी जाती है। श्रीमत् रूपगोस्वामिपाद ने लिखा है-

''गवेषयन्तावन्योऽन्यं कदा वृन्दावनान्तरे।
संगमय्य युवां लप्स्ये हारिणं पारितोषिकम्?'' (कार्पण्यपंजिकास्तोत्रम्)

''हे नाथ श्रीकृष्ण! हे श्रीमती राधिके! तुम दोनों विरहव्यग्र अवस्था में वृन्दावन में जब एक-दूसरे को खोजते फिरोगे, तब मैं तुम्हारा मिलन कराकर तुम दोनों से हार-पदकादि पुरस्कार कब प्राप्त करूँगी?'' स्वामिनी ने नागर को चुम्बन कर दासी को पुरस्कृत किया; दासी ने उसी को हार बनाकर हृदय में धारण कर लिया। श्रीयुगल की मिलन - माधुरी ही दासी का श्रेष्ठ पारितोषिक है!

तिलक-रचना पूरी हो गई है। तुलसी श्रीमती के गलितकाञ्चन (पिघले सोने)-जैसे श्रीअङ्ग पर सुचिक्कण कुंकुम लगा रही हैं और स्वर्ण के बने मंगलघटों को भी लजाने वाले कुचों पर सुगन्धि द्रव्य से सुन्दर केलिमकरी-रचना कर रही हैं। काली कस्तूरी श्याम के वर्ण और गन्ध की उद्दीपक है। स्वामिनी विवश (निढाल-सी) हैं। वेश-रचना में सुदक्ष किंकरी ने पूर्वराग की एक सुन्दर लीला की स्मृति स्वामिनी के चित्त में जगाकर उन्हें उत्फुल्ल कर दिया। एकबार श्याम का वेणुनाद सुनकर श्रीराधा को दो प्रहर की आनन्दमूर्छा रही थी। सखियों ने उन्हें चैतन्य कराने के लिये विशेष यत्न किये, फिर भी वे सफल नहीं हुईं, तब पौर्णमासी देवी श्रीमती को अपनी पर्णकुटी में ले गईं और मधुमंगल द्वारा श्रीकृष्ण को बुलवाया। उनके वेणुनाद से उस दीर्घ मूर्छा की बात बताई। वृन्दादेवी ने शोक-कातर अवस्था में श्रीकृष्ण के श्रीचरण बलपूर्वक श्रीराधा के वक्ष पर रखे। श्रीचरणों के ईषत् स्पर्श से ही श्रीराधा अपनी उस दीर्घ मोहदशा से इस प्रकार मुक्त हो गईं मानो मृतसञ्जीवनी-पल्लव का स्पर्श मिला हो। उन्होंने आँखें खोलकर श्रीकृष्ण को देखा और इस प्रकार अस्पष्ट ईषत् रोदन किया जैसे कोई स्वप्न देखकर उठी हों। श्रीकृष्ण भी सलज्जभाव से शीघ्र चले गये। उस श्रीचरण-स्पर्श

सिन्दूररेखा सीमन्ते देवि रत्नशलाकया।
मया या कल्पिता किन्ते सालकाञ्छोभयिष्यति?२५॥

अन्वय-देवि! रत्नशलाकया (कृत्वा) मया (तव) सीमन्ते या सिन्दूररेखा कल्पिता सा किं ते अलकान् (चुर्णकुन्तलान्) शोभयिष्यति? ॥२५॥

अनुवाद-हे देवि! मैं तुम्हारी माँग में रत्नशालका से जो सिन्दूररेखा रचूँगी, वह क्या उनकी अलकावलि को शोभित करेगी?२५॥

सीमन्त (माँग) में सिन्दूररेखा

परिमलकणा व्याख्या-श्रीराधारानी के वक्षस्थल पर चित्रकेलिमकरी रचना करते-करते जब श्रीपाद का स्फुरण रुक गया, तो उन्हें विरहदु:ख की अनुभूति हुई थी। फिर जब सेवारस का स्फुरण होता है, तो आनन्द-सिन्धु उछलने लगता है। यही धारा निरन्तर चल रही है। इस आनन्द-वेदना का दृष्टान्त हम लोगों के संसार में नहीं मिलेगा। मिलन-विरह का यह सुख-दु:ख रसिक भागवतों के हृदय में चिर सजीव है। यह मानो हर्ष-विषाद, सुख-दु:ख सिन्धु से निकली मृतसञ्जीवनी-सुधा है-विष और अमृत का मिलन जैसा! प्रेमिक का हृदय प्रेमसागर में मग्न होकर उससे उठने वाले घात-प्रतिघातों के फलस्वरूप कभी विरहदु:ख से, तो कभी अप्राकृत मिलनानन्द-रस से अभिसिंचित होते-होते सदा अभीष्ट की ओर तैरता रहता है।

इस श्लोक में माँग सिन्दूर-सेवा की स्फूर्ति है। भाव-मूर्ति राधारानी की सेवा! सामने बैठकर बड़े मनोयोग के साथ तुलसी ने धीर-स्थिर हाथ से रत्नशलाका द्वारा श्रीमती की माँग में सिन्दूररेखा अंकित कर दी।

से श्रीराधामाधव को जो असमोर्ध्व अप्राकृत सुखोल्लास हुआ था, उसका कणांश भी वर्णन करने में कौन कवि सक्षम है? श्रीराधा के वक्षस्थल को स्पर्श करते समय वक्षस्थल का कुंकुम श्रीचरणों से लग गया था और फिर वही घास पर लग गया-पुलिन्दकन्याओं ने उसी कुंकुम को प्राप्तकर आनन्द-विशेष अनुभव किया था। श्रीमद्भागवत के ''पूर्णा: पुलिन्द्य'' (१०/२१/१७) श्लोक में उसी का वर्णन है। उसी अतीत लीला की स्मृति का चित्र श्रीमती के चित्तपट पर अंकित कर तुलसी उनके कुचों पर चित्रकेलिमकरी बना रही हैं। रस के राज्य में रस की सेवा! चित्रांकन करते-करते स्फूर्ति में विराम! फिर विरहदु:ख की अनुभूति में प्रार्थना!

''जिनि पूर्णशरदिन्दु दिया मृगमदबिन्दु
तिलक रचिया दिबो भाले।
कुंकुम-कस्तूरी-पंके तव चारु गौर अङ्गे
लेपन करिबो कुतूहले॥
नानाविध गंधसारे तव स्तनयुगोपरे
चित्रित करिबो सयतने।
करुण नयने हेरो दासी अङ्गीकार करो
सेवा दिया राखहो चरणे॥''२४॥

मानो प्रगाढ़ अन्धकार में प्रभाती अरुणिमा का उदय हुआ! शोभा देखकर तुलसी विस्मित हैं। कहती हैं-'हे देवि मैंने रत्नशलाका से तुम्हारी माँग में जो सिन्दूर लगाया है, वह क्या उनके चूर्ण कुन्तल (घुँघरालों अलकों) को शोभित करेगा? अर्पण की शोभा तो है ही, पर उसके अतिरिक्त भी कुछ जिज्ञासा है। किसी क्रीड़ा विशेष में सिन्दूर अलकावली से लग सकता है। मैंने सजा दिया-(अब लालसा है) देखने को मिले-साज नष्ट हो गया। विलास में साज नष्ट होना रूपसज्जा की समग्र सार्थकता है! वेश तुम्हारे लिये भी नहीं, मेरे लिये भी नहीं। तुम्हारा वेश देखने योग्य हैं (एकमात्र) तुम्हारे श्याम!' धन्य है किंकरी! कैसी अपूर्व है उसकी सेवा-परिपाटी! तुलसी प्रत्येक सेवा के साथ श्याम-रस का अद्‌भुत आस्वादन कराते-कराते स्वामिनी को पागल बना रही हैं! स्वामिनी की स्वाधीन अनुभूति है-उनका वेश देखने के योग्य उनके श्याम ही हैं, ऐसा और कोई नहीं। तभी तो एक दिन प्रिय सखी के आगे यह रसोद्‌गार रखा था-

''मरम कहिलुँ-मो पुन ठेकिलु से जनार पिरीति-फाँदे।
राति दिन चिते भाविते भाविते तारे से पराण काँदे॥
बुके बुके मुखे चोखे लागि थाके तमु सतत हाराय।
ओ बुक चिरिया हियार माझारे आमारे राखिते चाय॥
हार नहों पिया गलाय परये चन्दन नहों माखे गाय।
अनेक यतने रतन पाइया थुइते ठाइँ ना पाय॥
कर्पूर-ताम्बूल आपनि साजिया मोर मुख भरि देय।
हासिया हासिया चिबुक धरिया मुखे मुख दिया लेय॥
साजाइया काचाइया वसन पराइया आवेशे लइया कोरे।
दीप लैया हाते मुख निरखिते तितिल नयन-लोरे॥
चरणे धरिया जावक रचइ आउलाय्या बान्धये केश।
बलराम - चिते भाविते - भाविते पाँजर हइलो शेष॥''

तुलसी ने अतीत की यही सब मधुर स्मृतियाँ स्वामिनी के हृदय में जगाकर सीमन्त (माँग) में सिन्दूर-रेखा अंकित की। वेश रचना की परिपाटी में सुनिपुण किंकरी ने एक बड़ा दर्पण भावमयी के आगे किया। 'देखो, कैसा सजाया है!' रूप देखकर स्वामिनी व्याकुल हैं।''जो थोड़ा-सा असंस्कृत (बिना सजा-सँवरा) रूप देखकर ही पागल हो जाता है, वह इस अपूर्व शोभा को देखकर क्या करेगा? यह रूपमाधुरी नागर को कितनी देर में भोग कराऊँगी? यह त्रिजगत्-विलक्षण असीम रूपमाधुरी और यौवनराशि देकर उसे सुखी कर पाऊँगी?' - श्रीमती की यह चिन्ता है। यह सुन्दर चिन्ता भगवान् के लिये भी लोभनीय है। किसी लीलाविशेष में राधारानी के उरोजों में अपना प्रतिबिम्ब देखकर विमोहित चित्त से (उन्होंने) कहा था-

''नीलेन्दीवरवृन्दकान्तिलहरीचौरं किशोरद्वयं
त्वय्येतत् कुचयोश्चकास्ति किमिदं रूपेण मे मोहनम्।
तन्मामात्मसखीं कुरु द्वितरुणीयं नौ दृढ़ं श्लिष्यति
स्वच्छायामभिवीक्ष्य मुह्यति हरौ राधास्मितं पातु नः॥''

(श्रीराधारससुधानिधि-२४६)

'हे राधे! नीलकमल की कांति-लहरी चुराकर जो दो किशोर तुम्हारे कुचों में शोभा पा रहे हैं, उनका रूप देखकर मैं नितान्त विमोहित हूँ। तुम मुझे अपनी सखी बना लो, जिससे हम दोनों तरुणियों को ये (किशोर) एक ही समय प्रगाढ़रूप से आलिंगन करें।' ''अपनी छाया देखकर विमोहित नागर की ऐसी बात सुनकर जो हँस रही हैं, उन्हीं श्रीराधा का हास्य हम लोगों की रक्षा करे।'' स्वामिनी कहती हैं-''हे श्याम! तुम अप्राकृत नवीनमदन हो। अपनी माधुरी भोगने की आकांक्षा इतनी बलवती है?'' स्वामिनी सोचती हैं-''मेरा इतना सौन्दर्य है! (श्याम) सुन्दर इसका आस्वादन न करें तो सभी व्यर्थ है!'' श्रीकृष्ण के सुख में ही राधारानी सुखी हैं। श्रीकृष्ण को आस्वादन कराने की प्रबल वासना रखती हैं, तभी तो वेश-रचना की इतनी आकांक्षा है।

'देवि' सम्बोधन प्राणस्पर्शी है। स्वामिनी के साथ बात करने का सौभाग्य तो मुझ-जैसे जीव को नहीं है। आचार्यचरणों की बातों का अनुवाद (व्याख्या, आवृत्ति) करना भी उनके साथ वार्तालाप करना है-ऐसा लगता है। जिसके साथ एक दिन का परिचय होता है, उसके साथ भी बात करने की इच्छा होती है, फिर जिनके पादपद्मों में श्रीगुरुदेव ने सदा-सदा के लिये समर्पित कर दिया है, उनके साथ बात करने की आकांक्षा नहीं जगेगी? यदि किसी प्रकार का उत्तर, संकेत, आहट नहीं मिलती, तो मैं साधक किस बात का? आचार्यपाद की वाणी का अनुशीलन खरी विशुद्ध प्रार्थना होगी, अवश्य ही उत्तर देंगी। आचार्य द्वारा आस्वादित लीला, गुण और नाम-माधुर्य अन्त में साधक के प्राणों में उत्कण्ठा जगायेगा और उत्कण्ठामय आह्वान नामी को खीञ्चकर लायेगा ही। 'जगत् के बन्धु-बान्धवों को पुकारने पर वे उत्तर देते हैं,-तुम तो कोटि-कोटि प्राणों से भी अधिक प्रिय हो, तुम उत्तर क्यों नहीं दोगी?' उत्कण्ठित साधक के प्राणों में ऐसी आकांक्षा जगनी चाहिये। उत्कण्ठा ही भजन की प्राणवस्तु है। उत्कण्ठा विहीन भजन तो मानो निष्प्राण है। भगवान् भी चाहते है कि साधक का भजन उत्कण्ठामय हो। श्रीमद्भागवत में आता है, देवर्षि नारद से बोले-'तुम्हारे उत्कण्ठा-वर्द्धन के लिये ही एकबार दर्शन देकर अन्तर्हित हो गया। तुम्हारी सर्वेन्द्रियों को अपने में आविष्ट करने के लिये ही मेरी यह चतुराई है।'

उत्कण्ठा की मूर्ति रघुनाथ प्रबल सेवा-उत्कण्ठा ※ से सम्बोधित कर रहे हैं-'देवि! 'कृष्ण क्रीड़ा पूजार वसति नगरी।'' श्याम के घुंघराले केश तुम्हारे इस सिन्दूर से लाल होंगे-वह दृश्य कब देखूँगी?' शृंगार शृंगाररसमय है। होगा भी क्यों नहीं? नायक साक्षात् शृंगार, नायिका महाभाव की मूर्ति, और सेवारस से गठित किंकरी का स्वरूप! 'दिव्' धातु क्रीड़ा के अर्थ में। 'ऐसा खेल खेलना होगा कि मेरी अंकित सिन्दूर-रेखा स्थानभ्रष्ट हो जाय।'

शृंगाररस का खेल तीन प्रकार का है-(१) स्वामिनी के साथ सहयोग कर, जब कृष्ण कर्ता (खिलाड़ी) हों, (२) श्याम को सहयोग कर, जब स्वामिनी कर्ता बनें, (३) दोनों ही कर्ता हों।

'रस स्वयं तुम्हें सजायेगा। बस यही इच्छा है कि लीला के अन्त में वह देख पाऊँ।' अभिन्न-प्राण किंकरी इस प्रकार की कितनी ही मरम की बातें करते-करते भावमयी को विवश (निढाल, आविष्ट)

※ श्रीदासगोस्वामिपाद ने सेवोत्कण्ठा लेकर कातर प्राणों से कैसी-कैसी अद्भुत प्रार्थनायें राधारानी के श्रीचरणों में ज्ञापित की हैं-इसका उज्ज्वल दृष्टान्त है उनका ग्रन्थ 'स्तवावली'। विशेष रूप से 'उत्कण्ठादशक' साधक के लिये अवश्य पाठ्य है।

हन्त देवि! तिलकस्य समन्ता, - द्विन्दबोऽरुण-सुगन्धिरसेन।
कृष्ण-मादक महौषधि-मुख्या, धीरहस्तमिह किं परिकल्प्याः॥२६॥

अन्वय-देवि! तिलकस्य समन्तात् (चतुर्दिक्षु) हन्त (हर्षेण) अरुणसुगन्धिरसेन (व्यक्तराग सुगन्धि द्रव्येण) किं धीरहस्तं कृष्णमादक महौषधि-मुख्या (कृष्णस्य मादनाय मत्ततायै महौषधि प्रधानानि) बिन्दवः परिकल्प्याः (निर्माणियाः) ?२६॥

अनुवाद-हे देवि! क्या मैं परमानन्द पूर्वक सुगन्धि अरुण रस से धीर हाथों से तुम्हारे तिलक के चारों ओर कृष्ण-मादक-महौषधि रूपी बिन्दुओं की रचना कर सकूँगी ?२६॥

किये दे रही है! स्वामिनी को रस कैसे सजाता है? विमर्दित कुसुममाला, आधी खुली कवरी (वेणी), बिखरा रत्नहार, स्थान-भ्रष्ट वेशभूषा, बाहर मृदुरोदन के साथ मधुर स्मितमुखी, भीतर उत्फुल्ल विघूर्णित अलसनेत्रा! जो 'रसानां रसतमः' हैं, जिन्हें अन्तर के अन्तरतम प्रदेश में अनुभव करने की भक्त अभिलाषा करता है, वे स्वयं ही महाभावमयी की इस रस-सज्जा को देखकर आत्महारा हो जाते हैं। प्रेमिक कवि ने उनकी अनुभूति के माध्यम से ही लिखा है-

''लीला अन्ते सुखे इहार जे अङ्गमाधुरी।
ताहा देखि सुखे आमि आपना पासरि॥'' (चै०च०)

जो राधागत प्राण मञ्जरी भावाविष्ट और रसास्वादन-चतुर सहृदय साधक है, वह इस रस की तरंगों में असीम की ओर तैरने लगेगा, इसमें सन्देह क्या? रस की चरम अनुभूति में ही साधक के साधन-जीवन की सर्वांगीण परिणति है, यह बात सहृदय रसिक भागवतों के ग्रन्थादि से प्रमाणित होती है। यह विश्व भगवान् के अनन्त वैचित्र्य की लीलाभूमि है। अनन्त मानव अनन्त भावों से जुड़े हैं। कोई कर्मी है, कोई योगी; कोई ज्ञानी, कोई भक्त। फिर कोई अन्य किसी भाव में भावित होकर विश्व में विचरण कर रहा है। किन्तु इन सभी श्रेणियों से अलग है एक मानव, जो एक प्रकार के असाधारण भाव से आक्रान्त है और जो अनादिकाल से पृथ्वी का भूषण बना विराज रहा है-वह 'रसिक' संज्ञा से जाना जाता है।

रस भगवान् का स्वरूप है, अतः वह असीम-अखण्ड है और देश-काल-पात्र आदि से सीमाबद्ध नहीं है। वह सार्वजनीन, सार्वभौम और स्वप्रकाश है। व्रजलीला में ही इसका चरम विकास है और श्रीश्रीराधा-माधव के निकुञ्ज-लीलारस में ही इसकी चरमतम परिणति है। आचार्यपादों ने स्वयं उसका आस्वादन कर उसे अपने ग्रन्थों में लिपिबद्ध किया है-विश्व के साधकों के प्रति यही उन लोगों की असीम करुणा है।

कितनी मधुर-मधुर बातें कहते-कहते तुलसी ने स्वामिनी की माँग में सिन्दूर-रेखा अंकित की। सहसा स्फूर्ति में विराम आ गया। स्फुरण के अवसान पर रोदन!

''सिन्दूरेर रेखा तव सीमन्त-उपरि।
रचित करिबो रत्नशलाकाय करि॥
आमार कल्पित सेइ सुदृश्य सिन्दूर।
अलका सहित शोभा हबे कि प्रचुर॥''२५॥

अरुणरस के बिन्दु-

परिमलकणा व्याख्या-स्वरूपाविष्ट श्रीपाद ने स्वामिनी की सीमन्त में सिन्दूर-रेखा अंकित की है। अब इस श्लोक में तिलक के चारों ओर अरुणवर्ण की बिन्दु-रचना का स्फुरण हुआ है। स्फूर्ति की देवी सामने हैं। तीव्र लालसाभरा हृदय है। रागमार्ग में लालसा ही अभीष्ट वस्तु के आस्वादन और प्राप्ति का एक मात्र कारण है। राग-साधक का भजन देह-गेह भूलकर प्रगाढ़ लालसा और आर्ति-उत्कण्ठा से जितना ही पुष्ट होगा, उतना ही निकट होगा अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति का समय। स्फुरण में विराम आता है, तब श्रीपाद किस प्रकार प्रगाढ़ लौल्य (लालसा, उत्कण्ठा) के साथ ईश्वरी के दर्शन की कामना करते हैं-यह रागमार्गीय साधक के ध्यान का विषय है। ध्यान के देवता श्रीपाद के भीतर-बाहर खेल कर रहे हैं। तुलसीमञ्जरी प्रीतिपूर्वक सुगन्धि अरुणरस से स्वामिनी के तिलक के चारों ओर बिन्दु-रचना कर रही हैं। सामने बैठकर बायें हाथ से स्वामिनी का चिबुक पकड़कर गहन मनोयोग के साथ कोटि प्राणों के तुल्य एक-एक अरुण बिन्दु की रचना! सेवा में उनका अभिनिवेश कितना प्रगाढ़ है! इस मनोयोग की प्रतिच्छवि तुलसी के नेत्रों में, वदन पर और हाथों में अभिव्यक्त है! भावुक साधक निकट बैठकर सेवा का कौशल या परिपाटी सीखें। ये किंकरियाँ युगल प्रेम की गुरु हैं। इनके साथ इनकी आनुगत्यमयी सेवा ही गौड़ीय वैष्णव साधक का चरम काम्य है।

''प्रिय सहचरी संगे सेवन करिबो रंगे
अङ्गे वेश करिबेक साधे।
राखो एइ सेवाकाजे निज पद-पंकजे
प्रिय सहचरींगण-माझे॥
सुगन्धि चन्दन मणिमय आभरण
कौषिक-वसन नाना रंगे।
एइ सब सेवा जाँर दासी जेनो हउँ ताँर
अनुक्षण थाकि ताँर संगे॥'' (प्रार्थना)

इन लोगों की ऐकान्तिक शरणागति ही साधक को भावराज्य में ले जाकर इनका संग-सान्निध्य देकर धन्य करेगी। तभी श्रील ठाकुर महाशय ने लिखा है-''व्रजपुर-वनितार, चरण आश्रय सार, करो मन एकान्त करिया'' (प्रे० भ० च०)। साधकावेश में भी साधक इन लोगों के श्रीचरणों में ही आर्ति-उत्कण्ठामय प्रार्थना करें-''काँहा मोर स्वरूप रूप, काँहा सनातन। काँहा दास रघुनाथ पतितपावन॥'' ऐसी उत्कण्ठामयी प्रार्थना से उन लोगों की करुणा खिंची आयेगी और साधक युगल-माधुरी का आस्वादन कर धन्य होंगे।

'हे देवि! लीलामयि! ('दिव्' धातु क्रीड़ा के अर्थ में) कृष्णमादक-महौषधि है यह अरुण-बिन्दु! यह वेश रचना देखकर तुम्हारे कृष्ण पागल हो जायेंगे। तुम्हारा खेल का साथी पागल हो जायेगा, खेल होगा निर्बाध! जादू टोना बहुत करती है, इसलिये हम लोग उसे ऐसे औषधि देंगे जो उसे पागल बना देगी। बाधाविघ्न ही मिट जाय। और कोई उसे आकर्षित नहीं कर सकेगा।' धन्य है दासी! राधारानी को कृष्ण की बात सुनाकर विमुग्ध कर आनन्दसागर में डुबाकर सेवा करना!

'कृष्ण' शब्द की व्याख्या करते हुए श्रीमत् जीव गोस्वामिपाद ने ब्रह्मसंहिता की टीका में लिखा है- तदेवं स्वरूपगुणाभ्यां परम-वृहत्तमः सर्वाकर्षक आनन्दः कृष्णशब्दवाच्य इति ज्ञेयम्। स च-शब्दः देवकीनन्दन एव रूढ़ः। अस्यैव सर्वानन्दकत्वं वासुदेवोपनिषदि दृष्टम् ''देवकीनन्दनो निखिलमा-नन्दयेत्'' इति। आनन्दमात्रमविकारमनन्यसिद्धम्' अर्थात् 'अपने रूप-गुणादि द्वारा सभी का चित्त आकर्षित करने वाला परम वृहत्तम आनन्द ही ''कृष्ण'' शब्द का वाच्य है। फिर ''कृष्ण'' शब्द भी श्रीदेवकीनन्दन में (यशोदा का एक अन्य नाम है 'देवकी', अतः यशोदानन्दन में) रूढ़ि है। इन्हीं का सर्वानन्दकत्व वासुदेवोपनिषद् में देखा जाता है-'देवकीनन्दन अखिल विश्व के आनन्द-प्रदाता हैं। वह आनन्द भी विशुद्ध चिन्मय आनन्द है और वह कृष्ण में अनन्यसिद्ध है, अर्थात् वह अन्य किसी भगवत्स्वरूप से नहीं आता। विशुद्ध चिन्मय आनन्द ही श्रीकृष्ण का स्वरूप है।' एकमात्र प्रेम ही इस चिन्मयानन्द-सिन्धु के हृदय में कामना की तरंग जगाने में समर्थ है। राधारानी उसी प्रेमरस की ही घनीभूत मूर्ति हैं! प्रेम की परमसार साक्षात् 'महाभाव-स्वरूपिणी।' महाभाव ही कृष्णमादक महौषधि है। अमृतसिन्धु में जो कुछ गिरता है, वही अमृतमय हो जाता है। उसी प्रकार इस महाभावसिन्धु श्रीराधा के ललाट पर विन्यस्त होकर अरुणवर्ण बिन्दु 'कृष्णमादक महौषधि' हो गये हैं।

तुलसी कहती हैं-'इसके बाद सब बाधाविघ्न कट जायेंगे, स्वच्छन्द रूप से तुम्हारे साथ मिलन होगा।' महाभाव चन्द्रावली आदि में भी है, यह सत्य है, किन्तु मदीयतामय प्रेम के प्रभाव से श्रीराधा श्रीकृष्ण को वशीभूत करने में सदा समर्थ हैं। इसी गौरव के कारण राधाकिंकरियाँ चिर गौरवान्वित हैं। श्रीरूप गोस्वामिपाद ने लिखा है-

''अघहर बलीवर्दः प्रेयान्नवस्तव यो व्रजे,
वृषभवपुषा दैत्येनासौ वलादभियुज्यते।
इति किल मृषागीर्भिश्चन्द्रावलीनिलयस्थितं,
वनभुवि कदा नेष्यामि त्वां मुकुन्द मदीश्वरीम्॥'' (उत्कलिकावल्लरी ६०)

नन्दीश्वर में संक्षिप्त मिलन है। पूर्ण मिलन है श्रीराधाकुण्ड पर। श्रीराधा मिलन की आकांक्षा से सूर्य पूजा के बहाने व्याकुलता से भरकर सखियों के साथ कुण्डतीर पर उपस्थित हैं। किन्तु श्याम कहाँ हैं? श्रीमती का हृदय चूर-चूर हुआ जाता है। ईश्वरी की व्याकुलता देखकर श्रीरूपमञ्जरी श्याम की खोज में निकली हैं। इधर-उधर खोजती हैं, कहीं भी श्याम को न पाकर वे सखीस्थली पहुँचती हैं। देखती हैं, श्याम चन्द्रावली के कुञ्ज में चन्द्रावली के साथ बैठे हैं। श्रीरूपमञ्जरी सहसा कुञ्ज में प्रविष्ट होकर भीतियुक्त स्वर में कहती हैं-'हे अघहर! हे मुकुन्द! कंस के अनुचर किसी वृषभाकार दैत्य ने वृन्दावन आकर तुम्हारे प्रिय नये वृष पर आक्रमण कर दिया है, शीघ्र चलकर उसकी रक्षा करो।' रूपमञ्जरी की बात सुनकर रसिक-शिरोमणि समझ गये कि उनकी प्रियाजी को विरह-असुर सता रहा है। वे 'अघहर' हैं, विरह-दैत्य का नाश करने में वे ही समर्थ हैं और उनके श्रीमुख की हास्य-चन्द्रिका से श्रीमती का विरह-ताप शान्त होता है, इसीलिये वे 'मुकुन्द' हैं। चन्द्रावली सरल हैं; चतुर नहीं हैं। श्रीकृष्ण बोले-'प्रिये! अपने प्रिय वृष की रक्षा कर अभी आता हूँ। यदि लौटने में विलम्ब हो जाय, तो बुरा मत मानना।' वे रूपमञ्जरी के साथ श्रीराधा के कुञ्ज आ पहुँचे! श्रील गोस्वामिपाद कहते हैं-'इस प्रकार मिथ्या बात कहकर मैं तुम्हें चन्द्रावली के कुञ्ज से अपनी श्रीराधा की कुञ्ज में कब लेकर आऊँगी?''

तुलसी सेवारस में विभोर हैं। 'यह अरुणरस के बिन्दु नहीं हैं, श्याम को पागल करने की महौषधि है। वह तो लम्पट है, बहुवल्लभ। अपना मुँह एक बार अच्छी तरह दिखाना उसे।' सेवा-चिन्तन के समय भावुक साधक की दृष्टि इन सब बातों की ओर रहनी चाहिये। स्मरण का अर्थ ही है मानस संग। साक्षात् न सही, मन ही मन उनसे बात करने में क्या बाधा? मन की सेवा उन्हें परम सुखकर लगती है। तभी तो उस भाव में भावित साधक निरन्तर ब्रजलीलारस में निमग्न होकर मानसी सेवा से साक्षात् सेवा-जैसा आनन्द प्राप्त किया करते हैं। 'हृदय में बसे श्याम को पीछे कोई छीन ले' इसी आशंका से स्वामिनी बिन्दु-धारण करने की इच्छुक हैं। उन्होंने अपना मुख स्थिर होकर तुलसी के हाथों में सौंप दिया है। उनकी इच्छा जानकर तुलसी ने मनोमत रूप से बिन्दु-रचना कर दी। कितनी परिपाटी वाली सेवा! इतनी परिपाटीयुक्त प्राण डालकर की गई सेवा राधादासी के अतिरिक्त और कोई सेवक नहीं जानता। तभी महाजन कहते हैं-

''त्वत् प्रेमसेवनमहो पुरुषार्थरत्नं,
शास्त्रं विचार्य विदुषाञ्च मतं विलोक्य।
जानन् मुदा मदनमोहन-मुग्धरूपे,
दासी भवानि वृषभानुकुमारिके ते॥''

'हे वृषभानुकुमारिके! शास्त्र विचार से और पंडितों के अभिमत से जाना कि तुम्हारी प्रेम सेवा ही समस्त पुरुषार्थों की शिरोमणि है। तभी हे मदनमोहन मुग्धरूपे! मैं परमानन्द पूर्वक तुम्हारी दासी बनी हूँ।'

स्वामिनी के हृदय में कृष्ण का आस्वादन जगाते हुए तुलसी की सेवा-परम्परा चल रही है। मैंने स्वयं सेवा न की सही, इन लोगों (किंकरियों) की सेवा के समय सेवा-परिपाटी देखकर सेवा की सामग्री देकर कृतार्थ क्यों न होऊँ? भावुक साधकों के प्राणों में ऐसी आकूति जगनी चाहिये। उन्हें इसी से युगलरस का अनुभव होगा। ''रूप-रघुनाथ बोलि होइबे आकूति। कबे हाम बुझबो से युगल-पिरीति।'' युगल-उपासकों की प्रेम की ही उपासना है। श्रीराधारानी साक्षात् प्रेम की ही मूर्ति हैं। अभीष्ट के लिये सुतीव्र आकूति (छटपटाहट, व्याकुलता) का नाम ही 'प्रेम' है। साक्षात्कार न होने तक उत्कण्ठा क्रमशः बढ़ेगी। 'हेमगौरी तनुराइ, आँखि दरशन चाइ, रोदन करिबो अभिलाष'' (प्रे०भ०च०)। तुलसी कहती हैं-'इन बिन्दुओं को देखकर तुम्हारा श्याम पागल होगा ही। मुँह दिखाना उसे-और बीच में यदि अवसर मिले, तो करुण नयनों से इस दीना दासी की ओर थोड़ा देख लेना।' सहसा स्फूर्ति में विराम! हाहाकार के साथ प्रार्थना।

''हे देवि! कबे तब होइबे करुणा।
अरुण सुगन्धि रसे तिलकेर चारि पाशे
बिन्दु सब करिबो रचना॥
अतीव सम्भ्रमभरे धीर सुनिपुण करे
कल्पना करिबो मनोहर।
मादक औषधि प्राय हेरि तार सुषमाय
उन्मत्त होइवे वंशीधर॥''२६॥

गोष्ठेन्द्रपुत्रमदचित्तकरीन्द्रराज, बन्धाय पुष्पधनुषः किल बन्धरज्जोः।

किं कर्णयोस्तव वरोरु वरावतंस - युग्मेन भूषणमहं सुखिता करिष्ये॥२७॥

अन्वय-वरोरु! (वरौ श्रीकृष्णमनोहरणत्वेन श्रेष्ठौ ऊरू यस्याः हे तथाविधे!) अहं सुखिता (सुखिनी सति) गोष्ठेन्द्र-पुत्रमदचित्त-करीन्द्रराज बन्धाय (गोष्ठेन्द्रपुत्रस्य नन्दपुत्रस्य यत् मदो तद्युक्तं चित्तं, तदेव करीन्द्रराजः मत्तहस्तिप्रधानं तस्य बन्धाय) पुष्पधनुषः (कन्दर्पस्य) किल (निश्चितं) बन्धरज्जोः (बन्धसाधन दाम्नोः वत्) तव कर्णयोः किं वरावतंसयुग्मेन (श्रेष्ठकर्णभूषणयुगलेन) भूषणं करिष्ये?२७॥

अनुवाद-हे वरोरु (श्रेष्ठ जंघाओं वाली) श्रीराधिके! क्या मैं परमानन्द पूर्वक श्रीनन्दनन्दन के चित्तरूपी मदमत्त गजराज को बाँधने के लिये कन्दर्प की बन्धनरज्जु-जैसे तुम्हारे कर्णयुगल को मनोहर कर्णभूषण से भूषित करूँगी?२७॥

श्रेष्ठ कर्णभूषण

परिमलकणा व्याख्या-विरही श्रीपाद स्फूर्ति में अभीष्ट की क्रमिक सेवा प्राप्त करते चल रहे हैं। तिलक शृंगार के पश्चात् इस श्लोक में कर्णभूषण पहनायेंगे। महाभावमयी को शृंगार करना होगा। महाभाव का स्वभाव है श्रीकृष्ण को सुखी करना, उनके साथ खेलना। व्रजराजनन्दन श्रीकृष्ण के हृदय में शृंगाररसास्वादन की जो वासनायें जगती हैं, उनकी परिपूर्ति का एकमात्र उपादान ही है 'महाभाव'। 'सेइ महाभाव हय चिन्तामणि सार। कृष्णवाञ्छा पूर्ण करे एइ कार्य जार' (चै०च०)। यही कारण है कि रसमयी किंकरी श्रीकृष्णसुख की मधुर-मधुर बातें कर महाभावमयी को सुखसागर में डुबाकर शृंगार कर रही हैं। 'व्रजराजनन्दन का चित्त कैसा है जानती हो? मानो मदमत्त करीन्द्र (गज) राज!'

कोई भी आस्वाद्य वस्तु हो, उसे जानने के लिये दो छोर हैं। एक 'तत्त्व', दूसरा 'रस'। जैसे एक रसगुल्ला है : उसके उपादान क्या क्या हैं, उन उपादानों को मिलाने का क्रम क्या है, अथवा प्रणाली क्या है-यह सब जानना ही रसगुल्ला का 'तत्त्व' जानना है। इसे जाने बिना रसगुल्ला नहीं मिलता। किन्तु जिह्वा के स्पर्श से रसगुल्ला के आस्वादन की जो अनुभूति है, यही है रसगुल्ला का 'रस' जानना। उसी प्रकार आस्वाद्य वस्तु हैं भगवान् (''रसो वै सः'', ''आनन्दं ब्रह्म''-श्रुति)। उन्हें अनुभव करने के भी दो छोर हैं-तत्त्व और रस। व्रजेन्द्रनन्दन स्वयं अखण्ड अद्वय ज्ञानतत्त्व हैं। परिपूर्णतम स्वरूप ऐश्वर्य और माधुर्य का निकेतन है। अनन्त ब्रह्माण्डों का विषयानन्द जिस आनन्दसिन्धु की एक कणिका का आभास मात्र ही है, उसी आनन्दसिन्धु के हृदय में कामना की तरंग जगा सके, ऐसी शक्तिमान् वस्तु एकमात्र प्रेम है-कृष्णसुखैकतात्पर्यमय प्रेम (ऐसा प्रेम जिसका लक्ष्य-उद्देश्य है बस कृष्ण का सुख)-प्रेम को छोड़ और कोई वस्तु नहीं। इसीलिये उनका चित्त है मदमत्त गजराज! प्रेमरज्जु को छोड़ और किसी से उसे नहीं बाँधा जा सकता। यह हुई 'तत्त्व' की दिशा। किन्तु 'रस' की दृष्टि से राधारानी को दिखाई पड़ते हैं ब्रजवनिताओं के साथ विलासरंग में रँगीले श्यामसुन्दर! स्वयं राजा नहीं हैं, राजकुमार (गोष्ठेन्द्र पुत्र) हैं। राज्य पालन आदि की चिन्ता उन्हें व्यग्र नहीं करती, वे निश्चिन्त हैं-धीरललित नायक हैं। मदमत्त हाथी की तरह उनका चित्त ब्रजनिकुञ्ज में स्वच्छन्द विलास करता है। उसी गजराज को बाँधने के लिये उनके कर्णयुगल मानो कामदेव की रज्जु-जैसे हैं। तुलसी का कहना है-'कृष्ण तो

तुम्हारे कानों के स्वाभाविक सौन्दर्य पर ही मुग्ध हैं। ऊपर से अवतंस (कर्ण आभूषण) और पहनाये जा रहे हैं। अब तो वह मदमत्त करीन्द्रराज (कृष्ण का चित्त) सदा ही तुम्हारे वशीभूत होकर रहेगा। स्वच्छन्द रूप से तुम्हारे साथ खेलेगा।'

तुलसी की बात सुनकर कृष्ण-अनुरागिणी के वदन पर कृष्ण-अनुराग की कैसी अपूर्व दीप्ति! दोनों को देखना हो, तो पारस्परिक अनुराग के माध्यम से ही देखना होगा। अनुरागिणी स्वामिनी के प्रियतम हैं श्यामसुन्दर। नाम भी यही, मन्त्र भी यही, गायत्री भी यही। अनुरूप माधुर्य के साथ युगलरस का आस्वादन! स्मरणनिष्ठ साधक का विशेष लक्ष्य इसी ओर रहना चाहिये। श्यामसुन्दर के रंधन के लिये राधारानी नन्दीश्वर में प्रवेश कर रही हैं। श्याम दर्शन-लालसा से पुरद्वार पर रास्ते की ओर देख रहे हैं। सखी दिखा रही है-'वह देखो, द्वार पर श्यामसुन्दर!' सुनते ही स्वामिनी ने घूँघट खींचने की अदा से उन्हें अपना मुख और अन्य अङ्ग अच्छी तरह दिखा दिये। ब्रज का कण्टक (काँटा) भी श्रीश्रीराधामाधव का सेवक है। श्रीमती के पैर में काँटा लग गया है; दासी उसे निकाल रही है। उसी अवसर पर वे एकबार श्याम को देख लेती हैं और अपना बदन उन्हें दिखा देती हैं। सभी श्रीकृष्ण-सुख के लिये। तभी इस अनुराग की ऐसी गरिमा है। राग का दृष्टान्त देते हुए श्रीमत् रूपगोस्वामिपाद ने लिखा है-

''तीव्रार्कद्युतिदीपितैरसिलताधाराकरालास्त्रिभिर्मार्तण्डोपलमण्डले: स्थपुटितेऽप्यद्रेस्तटे तस्थुषी।
पश्यन्ती पशुपेन्द्रनन्दनमसाविन्दीवरैरास्तृते तल्पे न्यस्तपदाम्बुजेव मुदिता न स्पन्दते राधिका॥''

(उ० नी० स्थायी-१२७)

ललिताजी दूर से श्रीराधा को दिखाते हुए सखियों से बोलीं-''अरी सखियों! देखो, देखो, श्रीराधा ज्येष्ठ मास की सूर्यद्युति से अग्निवत् उत्तप्त और खड्गतुल्य अति कराल धार से युक्त सूर्यकान्तमणि पर खड़ी हैं-और इस प्रकार खड़ी होकर मानो इन्दीवर-शय्या पर चरणकमल रखे हैं वे स्थिर होकर परम सुख से गिरितट पर श्रीनन्दनन्दन के दर्शन कर रही हैं।'' यह राग का धर्म है। यही राग जब क्षण-क्षण में अभिनव होकर सदा अनुभूत (देखे-पहचाने) प्रियजन को नव-नव रूपों में अनुभव कराता है, तो उसका नाम 'अनुराग' हो जाता है। रंधन के लिये आईं श्रीमती को पुरद्वार पर देखकर भी श्याम को लग रहा है-'वे रंधनशाला में न जाने कितनी मधुर होंगी।' रसोईघर में स्वामिनी की वेशभूषा अस्तव्यस्त है, घूँघट भी नहीं। श्याम झरोखे से चुपचाप देख रहे हैं, उन्होंने दासियों को इंगित कर पहले ही वशीभूत कर लिया है। भनक पड़ते ही स्वामिनी जल्दी-जल्दी घूँघट आदि ठीक कर रही हैं और दासियों पर शासन कर रही हैं। वह भी कितना मधुर है! श्याम सोचते हैं-'तुम्हें इतना सुन्दर तो कभी नहीं देखा!' यही अनुराग का स्वभाव है। इसी प्रकार माता-पिता, सखा, दास सभी अनुरागमय श्रीश्रीराधामाधव के मधुररस के पोषक हैं। श्रीराधा के साथ विलास हेतु सभी आवश्यक है।

तुलसी ने कृष्ण-मनमोहिनी के मनोहर कानों में कर्णभूषण पहनाये। कर्णभूषणों की दीप्ति से गण्डद्वय और गण्डस्थल की प्रभा से कुण्डल झिलमिला उठे। तुलसी के मुख पर मृदुमन्द हास्य! 'श्याम का चित्तरूपी मदमत्त गजराज-सम्पूर्ण रूप से तुम्हारे वशीभूत होगा ही!' श्रीगोविन्दलीलामृत में श्रीराधा के गण्डस्थलों और कर्णभूषणों की शोभा का वर्णन है-

''श्रीराधाया जितहेमदर्पणमद गण्डद्वयं सुन्दरं,
लावण्यामृत-पूर्णितं हि कणकक्षौण्यां सरोयुग्मकम्।
यत्ताटङ्कसुवर्णपद्ममलिकं कस्तूरिकाचित्रस-
च्छैवालं मकरीविलस-वलितं कृष्णातितृष्णाहरम्॥'' (गो० ली० ११/९४)

''श्रीराधा के गण्डद्वय स्वर्ण दर्पण का गर्व हरने वाले और अत्यन्त कमनीय हैं; ये मानो स्वर्णमयी धरणी पर लावण्यामृतपूर्ण दो सरोवर हैं। इनमें कर्णभूषण रूपी दो स्वर्णकमल-कलियाँ हैं और कस्तूरीचित्र रूपी शैवाल (काई, सेवार) है। फिर मकरियाँ (अर्थात् जलजन्तु, वैसे ही पंखोंवाले कर्णभूषण) सानन्द विलास कर रही हैं! ये श्रीकृष्ण के लिये अति तृष्णाहारी हैं। ये लावण्यामृत सरोवर पिपासित चातक की तृष्णा हरने वाले हैं।''तृषित चातक जनु जलधरे मिललो, भूखिल चकोर चरु चाँदे' (महाजन)।

तुलसी सम्बोधित करती हैं-'हे वरोरु!' जिनके श्रेष्ठ उरु या जंघा हैं! कानों अथवा कर्णभूषणों की माधुरी के साथ वरोरु का क्या सम्पर्क? कृष्ण के मनरूपी हस्ती के साथ ही वरोरु का क्या सम्बन्ध? श्रीराधा के उरु-सौन्दर्य के विषय में गोविन्दलीलामृत में लिखा है-

''अस्या मिषात् प्रसृतयोर्मदनाय हैमा-
लानद्वयं: विधिरदादमुनार्थित: किम्?
यत् कृष्णचित्तमदमत्तगजं स चास्मिन्
तन्माधुरीसुदृढ़शृंखलया वबन्ध॥'' (वही-११/५६)

''मदन की प्रार्थना पर क्या विधाता ने उसे श्रीराधा के विस्तृत जंघाओं के बहाने दो स्वर्ण-निर्मित आलान अर्थात् हाथी बाँधने के स्तम्भ दिये हैं? कारण-इस मदन ने श्रीराधा के जंघाओं की माधुरीरूपी सुदृढ़ शृंखला से श्रीकृष्ण के चित्तरूपी हस्ती को बाँध रखा है।''वरोरु' - एकमात्र श्यामसुन्दर ही इसका अनुभव कर सकते हैं। राधा के कानों पर कुण्डल झूलते हैं-इसे 'वरोरु' सम्बोधन के माध्यम से समझना होगा। रास में जब दोनों नाचते हैं, तो स्वामिनी का नृत्य श्याम की दृष्टि आकर्षित करता है। स्वामिनी के जंघाओं के प्रति ताल के साथ कुण्डलों का कैसा मधुर आन्दोलन! नागर पारितोषिक देते हैं-नागरीमणि के गण्ड और उरु पर चुम्बन द्वारा। तब वरोरु का आस्वादन होता है। राधादासी भाव का वैभव पूरी तरह जानती है। युगल का कुछ भी इन किंकरियों के लिये गुप्त नहीं। तुलसी श्यामसुन्दर के मन की खबर राधारानी को देकर सेवा कर रही हैं। राधादासी को छोड़ यह और कोई नहीं कर सकता। श्रीमन्महाप्रभु के युग में यह राधादास्य ही गौड़ीय वैष्णवों की साध्य वस्तु है। रूप, तुलसी का अनुगत बनकर समझना होगा।

स्वामिनी कहती हैं-'यदि कर्ण सुन्दर हैं, तो उन्हें भूषण क्यों पहनाये?' तुलसी का उत्तर है-'तुम वरोरु जो हो!' स्वामिनी के मुख पर मृदुमन्द हास्य है! कहती हैं-'तुलसि! तूने इतनी सब बातें भी मन में रख छोड़ी हैं?''तुम्हारी थोड़ी-सी सेवा में लगेंगी, तभी मन में रखा है'-तुलसी कहती हैं। इसके बाद कञ्चुकी की पहनाई होगी। स्फुरण-धारा समानभाव से चल रही है।

या ते कञ्चुलिरत्र सुन्दरि मया वक्षोजयोरर्पिता
श्यामाच्छादनकाम्यया किल न सा सत्येति विज्ञायताम्।
किन्तु स्वामिनि कृष्ण एव सहसा तत्तामवाप्य स्वयं
प्राणेभ्योऽप्यधिकं स्वकं निधियुगं सङ्गोपयत्येव हि॥ २८ ॥

अन्वय-सुन्दरि! श्यामाच्छादनकाम्यया (श्यामः श्रीकृष्णो न पश्यत्विति तस्मादावरितुं काम्यया) अत्र ते वक्षोजयोः (स्तनयोः) मया या कञ्चुलिः अर्पिता सा किल (निश्चितं) सत्या इति न विज्ञायतां, किन्तु स्वामिनि! कृष्ण एव सहसा तत्ताम् (कचुंलितां) अवाप्य (दृढ़ालिङ्गनेन प्राप्य) प्राणेऽभ्योऽपि अधिकं स्वकं (स्वीयं) निधियुगं (स्वयमेव) सङ्गोपयति एवहि॥२८॥

अनुवाद-हे सुन्दरि! श्रीराधिके! श्याम न देखें, मैंने इस कामना से तुम्हारे स्तनों पर कञ्चुकी अर्पित की है, सो नहीं। किन्तु हे स्वामिनि! दृढ़ आलिंगन द्वारा सहसा वे स्वयं ही कञ्चुलिकात्व प्राप्त कर प्राणों से भी प्रिय तुम्हारे स्तनरूपी अपने दोनों रत्नों को ढक लें-इसी कामना से मैंने कञ्चुकी पहनाई है॥२८॥

कञ्चुकी पहनाना

परिमलकणा व्याख्या-कर्णभूषण-सेवा सम्पन्न हो गई है, अब कञ्चुकी पहनानी होगी। 'स्वामिनी! तुम्हारे वक्ष पर जो श्यामवर्ण कञ्चुलिका अर्पित की, वह आच्छादन के लिये नहीं-श्रीकृष्ण सहसा कञ्चुलिकात्व प्राप्त कर तुम्हारा वक्ष आच्छादन करें, इसी कामना से मैंने यह पहनाई है।' नित्य दासियों से सेवा की परिपाटी सीखनी होगी।

''ए सब अनुगा हैया प्रेम सेवा निबो चाइया
इंगिते बुझिबो सब काज।
रूपे गुणे डगमगि सदा हबो अनुरागी
बसति करिवो सखीमाझ॥'' (प्रे० भ० च०)

ये (किंकरियाँ) भी सिखाने के लिये व्याकुल हैं। भजन का अनुभव कोई प्रकाशित नहीं करता। इन्होंने अपना अनुभव ग्रन्थ के रूप में निबद्ध कर दिया है।

विरहिणी स्वामिनी की सेवा करनी होगी। कृष्णवर्ण कञ्चुलिका को देखते ही श्रीमती कृष्ण-उद्दीपन से अस्थिर हैं। श्यामरस का आस्वादन करा विरहिणी को स्थिर कर काँचुली पहना रही हैं। कहती हैं-'हे सुन्दरि!

''अयि कृष्ण-मनोहर-वरोरु-शालिनि।
जगमाझे अनुपाम कन्दर्प बन्धन-दाम
तब श्रुतियुग विलासिनी॥
ब्रजेन्द्र-नन्दन हरि तार चित्तमद-करी
बन्धन करये अनायासे।
से चारु श्रवणद्वये कबे सुखान्विता हये
पराइबो वर अवतंसे॥''२७॥

गौरांग में श्याम काँचुली की शोभा बड़ी सुन्दर है! सोने-से अङ्ग में काली काँचुली-बड़ामेल बैठा है। आच्छादन की कामना से नहीं पहनाई। तात्कालिक अपूर्व सौन्दर्य उजागर करने के लिये ही पहनाई है।' 'सुन्दरि'-इस सम्बोधन में कोई संकोच नहीं। क्या दासी इस प्रकार सम्बोधित करती है? पर यह है मधुर के अन्तर्गत दास्य। सम्बोधन में प्रियतम के साथ अतीत लीला की स्मृति जड़ी है। प्रत्येक सेवा के माध्यम से कृष्णरस का आस्वादन कराना। धन्य दासी! धन्य उसकी सेवा!

साधन-दशा में भी ध्यान के समय रसानुरूप आस्वादन रहेगा। स्वरूप के अभिमान में जगेगा सम्बन्ध के अनुरूप रस का आस्वादन। यदि सम्बन्ध-स्थापन नहीं किया जाता, तो गौड़ीय वैष्णव के श्रीगुरु-पादपद्म-आश्रय की ही विफलता होगी। श्रीमती के मन का भाव किंकरियों के मन में सम्यक् रूप से प्रतिफलित होता है-उन्हीं किंकरियों के भाव की उपासना हमारा भजन-साधन है। श्रीमती के भावचित्र का सम्यक् प्रतिफलन सहज बात नहीं। श्रीराधा का स्वरूप है अखण्ड-मादनाख्य-महाभाव! ऊपर से फिर वे शृंगाररसमय श्रीकृष्ण के रूप-गुण-लीलादि के आकर्षण से उन्मादिनी-सतत उन्मादिनी रहती हैं। शृंगाररस-शुचिरस-इससे अधिक पवित्र वस्तु आध्यात्मिक राज्य में और कुछ नहीं। वैसे महत् के संग और कृपा के फलस्वरूप साधक के चित्त में इस रस के संस्कार क्रमशः जड़ पकड़ेंगे। प्राकृत संस्कारों को छोड़कर चित्त को रस-साधना के योग्य बनाना होगा। श्रीगुरु कृपा से जिस स्वरूप का परिचय प्राप्त किया है, देह में आत्मबुद्धि रूपी माया की दासता छोड़कर उसी स्वरूप में पूरा अभिमान लाना होगा।

''आत्मानं चिन्तयेत्तत्र तासां मध्ये मनोरमाम्।
रूप-यौवन-सम्पन्नां किशोरीं प्रमदाकृतिम्॥
सखिनां संगिनीरूपामात्मानं वासनामयीम्।
आज्ञासेवापरां तद्वत् रत्नालङ्कार-भूषिताम्॥''

(श्रीसनत्कुमार-संहिता)

''रागानुगीय साधक गोपिकाओं के बीच स्वयं को रूप-यौवन सम्पन्न मनोरम किशोरी प्रमदा (तरुणी) के रूप में देखें-स्वयं का इस रूप में ध्यान करें। श्रीललिता-विशाखा-रूपमञ्जरी आदि सखियों की संगिनी, उन लोगों की आज्ञानुसार श्रीश्रीराधामाधव की सेवापरायण और श्रीराधा के प्रसादी वस्त्र-भूषणादि से भूषित अपनी वासनामयी मूर्ति का चिन्तन करें। 'चिन्तयेत्' शब्द का तात्पर्य यही है कि नित्यसिद्ध मञ्जरी के समान भाव-रूप आदि से युक्त अपने आत्मा को ईक्षण करें-ऐसा अनुभव करें कि मैं साक्षात् नित्यसिद्ध मञ्जरी हूँ।'' जातरति साधकों के चित्त में सिद्ध देह का स्फुरण स्वतः ही होता है। वे तो मानो साधक-देह को भूल ही जाते हैं। अजातरति साधकों को इस सिद्धदेह का चिन्तन करके ही मानस-सेवा करनी होती है। सिद्धदेह का चिन्तन जितना ही प्रबल और स्पष्टतर होता है, साधक उतना ही भावराज्य में अग्रसर होता जाता है। राधारानी के वक्षस्थल का ध्यान करने में संकोच क्यों? सुखमय अवस्था का ध्यान आवश्यक है। शुद्ध चित्त के बिना सेवा का चिन्तन नहीं होता। देहावेश की प्रबलता के कारण रहस्यमयी लीला उपासना का अधिकार नहीं-श्रीजीव का यही मन्तव्य है। श्रीशुकमुनि ने कहा है-''श्रद्धान्वित चित्त से श्रीश्रीराधामाधव की लीला के निषेवण से अर्थात् श्रवण-कीर्तन से कोई भी व्यक्ति शीघ्र ही गोपी-आनुगत्यमयी उत्कृष्ट प्रेमलक्षणाभक्ति प्राप्त कर काम आदि

हृदय-रोग परित्याग कर धीर हो जाता है।'' (रासलीला के 'विक्रीड़ितं व्रजवधूभिः' इत्यादि अन्तिम श्लोक देखिये)। अतएव यदि होनी है, तो इस लीला-श्रवण कीर्तन द्वारा ही श्रीराधा-माधव के भजन की योग्यता प्राप्त होगी। आचार्यपादों की महावाणी दुर्बल साधकों का अवलम्बन है। यह महाशक्तिशाली वाणी है, मन्त्रशक्ति की तरह भाग्यवान् साधक के चित्त को श्रीमती की दास्य-वासना से वासित करेगी ही!

''महतेर भाव भाविते भाविते,
तद्भाबे हबे सर्वविस्मरण।
अन्तर्बाह्ये तबे एकाकार हबे,
महद्भाबे रस हबे आस्वादन॥''

श्रीरघुनाथ के वैराग्य को स्थिर रखा है-युगल-विलास-स्मृति ने। जैसे प्रिय-विरहिणी सती का कभी भी भोगविलास को मन नहीं करता; वह सतत प्रिय के चिन्तन में तन्मय रहती है! वैसे ही श्रीराधा-विरही रघुनाथ की तन्मयता है श्रीमती के चरणों में। श्रीमती के रूप-गुण-लीला की माधुरी ने श्रीपाद का मन हरण कर उनमें अखण्ड तन्मयता उत्पन्न कर दी है। स्वयं गाते हैं-

''चन्द्रवदनि धनि मृगनयनी। रूपे गुणे अनुपमा रमणी-मणी॥
मधुरिम हासिनि, कमल विकासिनि, मोतिम-हारिणि कम्बुकण्ठिनी।
थिर सौदामिनि, गलित काञ्चन-जिनि, तनु-रुचि-धारिणि पिकवचनी॥
ऊरजलम्बि-वेणि, मेरु परे जेनो फणि, आभरण बहुमणि गजगमनी।
वीणा परिवादिनि, चरणे नूपुर-ध्वनि, रति रसे पुलकिनि जगमोहिनी॥
सिंह-जिनि माझखिनि, ताहे मणि-किंकिणिं, झाँपि ओढ़नि तनुपद अवनी।
वृषभानुनन्दिनि, जगजनवन्दिनि, दास रघुनाथ पहुँ मनोहारिणी।''

इन्हीं ब्रजरमणी-मुकुटमणि श्रीराधारानी का अनन्त सौन्दर्य-माधुर्य-निकेतन श्रीब्रजराजनन्दन के साथ मिलन करा श्रीयुगलकिशोर की रूप-गुण-लीलामाधुरी और सेवामाधुरी का आस्वादन करूँ-यही उनकी चिर अभिलाषा है। इस रसमाधुरी का आस्वादन इतना लोभनीय है कि भगवान् प्रिय भक्त का संग चाहते हैं, किन्तु महाप्रभु ने अन्त में गौड़ीय भक्तों को नीलाचल आने के लिये निषेध कर दिया। केवल निभृत गम्भीरा में स्वरूप-रामानन्द के साथ चण्डीदास, विद्यापति, राय की नाटक-गीति, कर्णामृत, गीतगोविन्द की आस्वादन धारा चली। वे लोग परम भाग्यवान् हैं, जिनके प्राणों में राधारानी के प्रति खिंचाव (आकर्षण) उत्पन्न हो गया है। श्रील प्रबोधानन्द सरस्वती ने लिखा है- ''जिन्हें महाप्रभु से प्रेम है, उनके चित्त में श्रीराधारानी की पदनखमणियों की ज्योति अवश्य ही उदित होगी।'' ''गौरप्रेमरसार्णवे, से तरंगे जेबा डूबे, से राधामाधव-अन्तरंग'' (ठाकुर महाशय)। साधक का संकल्प-'पाना ही है, तो राधादास्य ही पाना है।' साधक का लक्ष्य ध्रुवतारे की तरह स्थिर हो कि 'मुझे राधादासी बनना ही होगा।'

तुलसी ने 'सुन्दरी' कहकर सम्बोधित किया है। श्यामसुन्दर की रूप-माधुरी वर्णन करते हुए श्रीलीलाशुक ने कहा है-''नीराजनक्रमधुरां भवदाननेन्दोर्निर्व्याजमर्हति चिराय शशिप्रदीपः'' (श्रीकृष्णकर्णामृतम् ९८)-''हे श्रीकृष्ण! चन्द्रमा तुम्हारे श्रीमुख की उपमा के योग्य कभी नहीं। इस शशि (कपूर) को प्रदीपरूप में अकपट

नानामणि-प्रकरगुम्फितचारु-पुष्ट्या, मुक्तास्त्रजस्तव सुवक्षसि हेमगौरि।
श्रान्त्याभृतालस-मुकुन्द सुतूलिकायां, किं कल्पयिष्यतितरां तव दासिकेयम्?२९॥

अन्वय-हेमगौरि! तव इयं दासिका श्रान्त्याभृतालस-मुकुन्द-सुतूलिकायां (श्रान्त्या क्लान्तिभरेण भृतो निष्पादितोऽलसो यत्र साचासौ मुकुन्दरूपतूलिका शय्यास्तरण विशेषश्चेति तस्यां) तब सुबक्षसि नाना मणि-प्रकर गुम्फित-चारु-पुष्ट्या मुक्तास्त्रजः किं कल्पयिष्यतितराम्?२९॥

अनुवाद-हे हेमगौरि! श्रीराधिके! क्या तुम्हारी यह अयोग्यदासी मदनक्रीड़ा से श्रान्त मुकुन्द के वक्षस्थलरूपी तूलामयी शय्या (गद्दे) पर टिके तुम्हारे वक्षोदेश में नाना प्रकार की मणियों से बनी अत्यन्त सुन्दर मुक्तामाला पहनायेगी?२९॥

भाव से चिरकाल के लिये तुम्हारे श्रीमुखचन्द्र की पूजा-परिपाटी का भार प्राप्त है।'' तात्पर्यः जैसे नीराजन (आरति) के पश्चात् प्रदीप को दूर निक्षेप कर दिया जाता है, वैसे ही शशिप्रदीप से तुम्हारे मुखचन्द्र की आरति की जाय और उसके पश्चात् उसे दूर निक्षेप कर दिया जाय-यह उसी के योग्य है। वही अनन्तमधुर श्रीगोविन्द भी श्रीराधारानी की एक कणिका रूपमाधुरी के आस्वादन के लिये लालायित रहते हैं! श्रीकृष्ण की आप्त (विश्वासपात्र) दूती श्रीराधा से कहती है-

''देखाय्या बयान-चाँदे, तारे-फेलिलि विषम फान्दे।
तुहुँ-तुरिते आओलि, लखिते नारिलि, ओइ ओइ करि कान्दे॥'' (कविरञ्जन)

ऐसी श्रीराधा के सहज सुन्दर रूप को प्रस्फुटित करने के लिये तुलसी ने गलित काँचन वर्ण को भी लजाने वाले उनके श्रीअङ्ग पर काली काँचुली पहनाई है। अपूर्व अङ्गमाधुरी का उच्छलन देखकर कहती हैं-'तुम्हारे उरोजों को ढकने के लिये तो यह पहनाई नहीं! सत्य काँचुली तो श्रीकृष्ण हैं, तुम्हारे वक्षोज के आवरक! इस काँचुली को अयोग्य समझकर फाड़-फेंककर अपनी कोटि प्राण-सम्पदा के तुल्य तुम्हारे उरोजों को वे अपने वक्ष से आच्छादित करेंगे। आवरण रहने से प्राप्ति-उत्कण्ठा बढ़ेगी, तभी काँचुली पहनाई है।' धन्य है किंकरी! सेव्य के हृदय में आस्वाद्य रस को मूर्तिमान् कर उनकी सेवा!!

''हे सुन्दरि! शुनो मोर निवेदन।
कृष्ण जेनो नाहि हेरे एइ अभिलाष करे
काँचुली ना पराइ कखन॥
तोमार वक्षोज परे सँपिबो गो यत्न करे
हेनो काले आसि श्यामराय।
कञ्चुलिका उन्मोचिया प्रेम-पुलकित हैया
आलिंगन करिबे तोमाय॥
स्वयं कञ्चुलिकारूपे आवरिला स्तन युगे
प्राणापेक्षा प्रियनिधि जानि।
ताइ ए कञ्चुली हाय किबा प्रयोजन ताय
वृथा मोर प्रयास स्वामिनि॥''२८॥

सुचारु मुक्तामाला

परिमलकणा व्याख्या–श्रीपाद आविष्टदशा में स्वामिनी की सेवा कर रहे हैं। 'हे हेमगौरि! तुम्हारी यह दीन दासी तुम्हारे वक्ष पर नाना मणियों से गुँथी मुक्तामाला पहनायेगी क्या?' सुन्दर वक्षस्थल पर पहनानी होगी। मुक्तामाला पहनाने को बैठी हैं, सुन्दर-सुन्दर बातें कर स्वामिनी के मन को मुग्ध कर रही हैं। संभवत: मुक्तामाला तुलसी ने स्वयं ही गूँथी है। उसे स्वामिनी की दृष्टि में लाकर कहती हैं-'नाना मणियों से गुँथी यह माला सुन्दर है। तुम्हें श्यामसुन्दर का अनुभव करा जाती है, तभी तुम्हें इतनी प्रिय है।' अतीत लीला की स्मृति का चित्र भावमयी के हृदयपट पर अंकित कर देती हैं! 'किस तरह प्रिय है यह मुक्तामाला? उसी सूर्यपूजा के पश्चात् घर लौटने पर गुरुजनों के आगे वटुवेशधारी प्रियतम को देखने की लालसा से तुमने मुक्तामाला तोड़ डाली थी और फिर मोतियों को बीनने के बहाने उसका मुँह देखा था! श्याम जब गोष्ठ को जाते हैं, तो तुम सभी के सामने लज्जावश उनकी ओर नहीं देख पाती हो; दूर से प्रियतम की प्रतिच्छवि मुक्ताओं में पड़ती है, उसे देखकर तुम्हें कितना आनन्द होता है!' इस प्रकार तुलसी मधुमय लीला के स्मृतिरस में स्वामिनी के चित्त को डुबो देती हैं। तुलसी की मधुर वाणी सुनकर श्रीमती को श्यामसुन्दर का स्फुरण होता है। उद्दीपन में ही स्फुरण। नाना प्रकार की मणियों से रचित माला को 'पुष्ट' कहा, इससे यही समझना होगा कि वह दृष्टि को आकर्षित करने वाली है। श्रीमती मणिमाला के भीतर प्रियतम का अनुभव प्राप्त कर रही हैं। कभी-कभी स्वप्न ही सत्य लगने लगता है। पूर्वराग के समय प्राणेश्वरी स्वप्न देखकर सखी से कहती हैं-

''मनेर मरम-कथा, तोमारे कहिये एथा, शुनो शुनो पराणेर सइ।
स्वपने देखिलुँ जे, श्यामल वरण दे, ताहा बिना आर कारु नइ॥
रजनी सावन घन, घन देया गरजन, रिमि झिमि शबदे वरिषे।
पालंके शयान रंगे, विगलित-चीर अङ्गे, निन्द जाइ मनेर हरिषे॥
शिखरे शिखण्ड-रोल, मत्त दादुरी-बोल, कोकिल कुहरे कुतूहले।
झिंझा झिनिकि बाजे, डाहुकि से घन गाजे, स्वप्न देखिलुँ हेनो काले॥
नयने पैठल सेह, मरमे लागल नेह, श्रवणे भरल सेइ वाणी।
हेरिया ताहार रीत, जे करे दारुण चित, धिक् रहु कुलेर कामिनी॥
रूपे गुणे रससिन्धु, मुख-छटा जिनि इन्दु, मालतीर माला गले दोले।
बसि मोर पदतले, पाये हात देइ छले, आमा किन, बिकाइलु बोले॥
किवा से भूरूर भंग, भूषणेर भूषण अङ्ग, काम मोहे नयनेर कोणे।
हासि हासि कथा कय, पराण काड़िया लय, भुलाइते कतो रंग जाने॥
रसावेशे देइ कोल, मुखे ना नि:सरे बोल, अधरे अधर परशिलो।
अङ्ग अवश भेलो, लाज भय मान गेलो, ज्ञानदास भाबिते लागिलो॥''

इसमें साक्षात्कार से भी कहीं अधिक एक विशेष आकर्षण निहित है, सुधी रसिकजन सोचकर देखेंगे। इसलिये इसे मिथ्या समझने से दु:ख होगा। ऐसा नहीं लगता कि उस प्रकार की स्फूर्ति कभी मिथ्या हो सकती है। स्वामिनी का चिन्तन कितना सुन्दर है, स्मृति कितनी मधुर है!

एकबार प्रेम-परीक्षा के लिये पौर्णमासी देवी आकर कहती हैं-'राधे! इस ब्रज में बड़ा सुयश था कि तुम साध्वी हो, किन्तु सुन रही हूँ-तुम तो कृष्ण के प्रति आसक्त हो।' स्वामिनी उत्तर देती हैं-'बूढ़ीमा! वह श्यामात्मा धूर्त है, वह मुझे किसी प्रकार भी छोड़ना नहीं चाहता। जहाँ जाती हूँ, वहीं हाथ पसारे मेरे सामने आकर खड़ा हो जाता है। कर्णफूलों से तड़ाकर भी नहीं छुड़ा पाती। चीत्कार करती हूँ, तो हथेली से मेरा मुँह ढक देता है। पैरों में लोटकर क्षमा माँगने पर बार-बार मेरे अधर काटता है। ऐसा करे, तो कौन संभाल सकता है, बताइये?' (विदग्धमाधव-अंक २)। यह सभी स्फूर्ति का आस्वादन है! स्वप्न में, साक्षात् रूप से, स्फुरण में प्रत्येक इन्द्रिय से अखण्ड श्यामरस का सतत आस्वादन! तभी तो महाजन श्रीमती के आक्षेप अनुराग की बात गाते हैं-

''जतो निबारिये चित निबार ना जाय। आन-पथे धाइ पद कानु-पथे धाय॥
ए छार रसना मोर हइलो कि बाम। जार नाम ना लइबो लय तार नाम॥
ए छार नासिका मुइँ जतो करु बन्ध। तबु तो दारुण नासा पाय श्याम-गन्ध॥
जार कथा ना शुनिबो करि अनुमान। परसंग शुनिते आपनि जाय कान॥
धिक् रहु ए छार इन्द्रियगण सब। सदा से कालिया कानु हय अनुभव॥
चण्डीदास कहे राइ भालोभावे आछो। मनेर मरम कथा कारे जानि पुछो॥''

''कृष्णमयी कृष्ण जाँर अन्तरे बाहिरे। जाँहा जाँहा नेत्र पड़े ताँहा कृष्ण स्फुरे॥'' (चै०च०)। इस कृष्णमयी से सेविका को प्राप्त होने वाला पुरस्कार भी अति मनोरम है। तुलसी ने विशाखा से गायन सीखा है। यह बात विशाखा से सुनकर स्वामिनी ने आदेश किया-''मुझे एक गीत नहीं सुनायेगी?'' तुलसी ने नृत्य करते-करते युगल-विलासात्मक गीत गाया। तुलसी की अङ्ग-भंगिमा और मधुर कण्ठ से गीत की विषयवस्तु मूर्त हो उठी। सभी आविष्ट हैं। पुरस्कार देना होगा। स्वामिनी ने नागर के गले की माला खोलकर तुलसी को पहना दी। उपहार पाकर तुलसी कृतार्थ हुई। युगल-आस्वादन से युक्त है, मधुर है यह माला। तुलसी ने शृंगाररस की क्रीड़ा के समय नागर के गले की इस माला को स्वामिनी के वक्षस्थल पर नृत्य करते देखा है।

तुलसी कहती हैं-'स्वामिनि! तुम्हारे सुन्दर वक्षस्थल को माला पहना रही हूँ। किसके लिये सुन्दर? श्यामसुन्दर के लिये! संभवतः उसके लिये इतना सुन्दर और कुछ भी नहीं। तुम थोड़ी हिलती-डुलती भी चली जाओगी, तो नागर की सेवा होगी। चाल देखकर ही नागर मुग्ध हो जाते हैं। उस समय तुम्हारे गले में मुक्तामाला झूलती है। और रासनृत्य में तो तुम इस माला के झूलन-माधुर्य से नागर को पागल कर देती हो। विलास-श्रम से अलस मुकुन्द का वक्षस्थल तुम्हारे इस वक्षोदेश का उत्तम तोषक (गद्दा) बन जाता है। श्रीपाद ने प्रेमपुराभिधस्तोत्र में लिखा है-''प्रमद-मदन-युद्ध-श्रान्तितः कान्त-कृष्ण-प्रचुर-सुखद वक्षःस्फार-तल्पे स्वपन्ती।'' इससे विपरीत विलास का पता चलता है। अथवा ''श्रान्त्याभृतालसमुकुन्दस्य सुतूलिकायां तव सुवक्षसि''-'विलासश्रम से श्रान्त मुकुन्द का विश्रामस्थल है तुम्हारे यह वक्षस्थल। 'मुकुन्द' क्यों! जो सब तुम्हारे निकट बँधे पड़े हैं। (नीवी, केश, कञ्चुकी)-इन सबके मुक्तिदाता है श्याम, इसलिये! वे ही मुकुन्द श्रम से अलस हैं। विद्युत की गोद में नवजलधर! ऐसा विश्राम-स्थल और कहीं नहीं! मैं दीन दासी, अयोग्य दासी, माला पहना रही हूँ। माला पहनाने के पश्चात् तुम्हारे उस सुन्दर को लाकर दे पाती, तो कृतार्थ होती।' तुलसी की बातों से स्वामिनी की अङ्गज्योति मानो फूटकर बाहर निकल रही है! तभी सम्बोधन है-'हेमगौरि!'

मणिचय-खचिताभिर्नीलचूड़ावलीभि,-र्हरिदयित-कलाविद्द्वन्द्वमिन्दीवराक्षि।
अपि वत तव दिव्यैरंगुलीरंगुलीयै:, क्वचिदपि किल काले भूषयिष्यामि किं नु?३०॥

अन्वय-इन्दीवराक्षि! (हे कृष्णभृंगाकर्षक नीलोत्पल नयने!) मणिचयखचिताभि: तव हरिदयित-कलाविद्द्वन्द्वं (भुजयुगलं) अपि दिव्यै: अंगुलीयै: अंगुली: (करशाखा:) किल (निश्चित-मेव) क्वचिदपिकाले वत (खेदे) किं भूषयिष्यामि नु?३०॥

अनुवाद-हे इन्दीवराक्षि! श्रीराधे! हाय! मैं क्या तुम्हारी हरि-प्रिय भुजाओं को मणिखचित नीलवर्ण चूड़ियों से और अंगुलियों को रत्न अङ्गूठियों से भूषित करूँगी?३०॥

नीली चूड़िया और रत्न-अङ्गूठियाँ

परिमलकणा व्याख्या-श्रीपाद की दिव्य स्फुरणधारा चल रही है। जो लोग साधक-कक्षा में हैं, कुछ स्फूर्ति उन्हें भी होती है; फिर श्रीपाद तो महाभावराज्य में हैं। यही कारण है कि उन्हें स्फूर्ति में साक्षात्कार-जैसा ही निविड़ आस्वादन होता है। आस्वादन के पश्चात् जब बाह्य अवस्था में लौटते हैं, तो प्रार्थना करने लगते हैं। बाह्य आवेश में भी स्वरूप की झंकार रहती है। इसीलिये प्रार्थनायें इतनी मर्मस्पर्शी हैं। श्रीपाद को स्वरूपावेश में सेवा का स्फुरण प्राप्त हुआ है। वे नीली चूड़ियाँ पहनायेंगे। नीलमणि में स्वर्णमणि जड़ी है। स्वर्ण थोड़ा-थोड़ा दिखाई देता है। कैसा अपूर्व शिल्प है! सम्बोधन भी अपूर्व है! 'इन्दीवराक्षि!' नीली चूड़ियाँ देखकर हृदय में जो भोग

श्रीमती मुक्तामाला देख रही हैं या तुलसी द्वारा वर्णित लीलायें देख रही हैं-समझ में नहीं आ रहा। श्रीमन्महाप्रभु का अँगूठा चूसने से श्रील कवि कर्णपूर को स्फुरण हुआ था-श्यामसुन्दर ही व्रजतरुणियों के मुक्ताहार आदि समस्त आभूषण हैं।

''श्रवसो कुवलयमक्ष्णोरञ्जनमुरसोमहेन्द्रमणिदाम।
वृन्दावनतरुणीनां मण्डलखिलं हरिर्जयति॥''

''हातक दरपण, माथक फूल। नयनक अञ्जन, मुखक ताम्बूल॥
हृदयक मृगमद, गीमक हार। देहक सरबस, गेहक सार॥
पाखीक पाख, मीनक पानि। जीवक जीवन, हाम तुहुँ जानि॥
तुहुँ कैसे माधव कह तुहुँ मोय। विद्यापति कह-दुहुँ दोहा होय॥''

तुलसी मुक्तामाला पहनाने को हुईं, तो हाथ कुछ नहीं लगा। स्फूर्ति के विराम में सेवा की प्रार्थना!

''विपरीत क्रीड़ारसे हे कनकगौरि!
श्रान्त अवश काय, होइबेन श्यामराय,
तार वक्ष:शय्यार उपरि॥
शोभिते जे प्रेम-खनि,- तोमार हृदयखानि,
नाना मणि-मुकुता मिलाये।
गाँथिया सुचारु हार, लये दासी उपहार-
दिबे कबे ताहाते पराये?''२९॥

कर रहे हैं, उसी का परिणाम है यह सम्बोधन। पीताम्बर श्याम के उद्दीपन के लिये ही स्वर्णखचित नीलमणियों की चूड़ियाँ हैं। भाव की मूर्ति में भाव की अभिव्यक्ति! मूर्ति और भाव एक ही वस्तु है। ''प्रेमेर स्वरूप देह प्रेम-विभावित। कृष्णेर प्रेयसी श्रेष्ठा जगते विदित'' (चै० च०)। पूर्वराग की दशा में प्रथम दर्शन के समय से ही विश्व कृष्णमय हो गया है। तभी सखी से कहती हैं-

''सजनि! जब धरि पेखलुँ कान।
तब धरि जगभरि भरल कुसुम शर
नयने ना हेरिये आन॥'' (गोविन्ददास)

प्रेम की मूर्ति का प्रेम! कवि जयदेव ने लिखा है-कुञ्ज में विरहिणी राइ (राधा) हैं। श्यामसुन्दर को आने में विलम्ब हो रहा है। सखी विरहिणी की दशा श्यामसुन्दर को बताती हैं-

''विलिखति रहसि कुरङ्गमदेन भवन्तमसमशरभूतम्।
प्रणमति मकरमधो विनिधाय करे च शरं नवचूतम्॥
प्रतिपदमिदमपि निगदति माधव तव चरणे पतिताहम्।
त्वयि विमुखे मयि सपदि सुधानिधिरपि तनुते तनुदाहम्॥
ध्यानलयेन पुरः परिकल्प्य भवन्तमतीव-दुरापम्।
विलपति हसति विषीदति रोदिति चञ्चति मुञ्चति तापम्॥''
(गीतगोविन्दम्)

''हे श्याम! आज विरहिणी राधा ने निभृत से तुम्हारी मूर्ति बनाई है। तुम्हें मदन समझती है न, सो मूर्ति के नीचे एक मकर बनाया है! चूतमुकुल (आम की कली) का वाण हाथ में देकर प्रणाम कर रही है। प्रणत होकर कह रही है-'हे माधव! मैं तुम्हारे चरणों में शरणागत हूँ। तुम्हारी विमुखता के कारण सुधानिधि चन्द्रमा भी अग्निदहन से मुझे दग्ध कर रहा है। तुम चिर दुर्लभ हो, पर आज तुम्हें श्रीमती ने ध्यान में अपने अति निकट पा लिया है।' उसके लिये आँकी मूर्ति ही सत्य हो उठी है। तभी कभी तो वह उस मूर्ति के आगे विरह निवेदन कर रोती है, और कभी तुम्हें पास समझकर हँसती है। कभी यह समझकर कि तुम चले गये, विषन्न हो जाती है। और कभी यह सोचकर कि तुम फिर लौट आये हो मूर्ति को आलिंगन कर हृदय की ज्वाला दूर करती हो।''

उसी महाभावमयी का शृंगार है! सुयोग्य दासी रसास्वादन प्रदान कर शृंगार कर रही है। सामने नीली चूड़ियाँ रख ली हैं। श्रीमती उस नीली आभा में श्यामसुन्दर का आभास पा रही हैं। उस समय उनकी आँखों का सौन्दर्य देखकर तुलसी सम्बोधित करती हैं-'हे इन्दीवराक्षि!' नयन स्वाभाविक रूप से ही सुन्दर हैं, फिर जब श्याम-दर्शन करता हैं, तो कितने सुन्दर हो जाता हैं। श्रीमत् रूपगोस्वामिपाद ने दानलीला में श्रीकृष्ण-दर्शनकारिणी श्रीराधा की 'किलकिञ्चित' (मिलन के समय प्रेम भावों से युक्त) दृष्टि की स्तुति कर उस दृष्टि के निकट विश्व की मंगल कामना की है-

''अन्तःस्मेरतयोज्ज्वला जलकणव्याकीर्णपक्ष्मांकुरा
किञ्चित्पाटलिताञ्चला रसिकोत्सिक्तता पुरः कुञ्चति॥

रुद्धाया: पथि माधवेन मधुरव्याभुग्नतारोत्तरा
राधाया: किलकिञ्चितस्तवकिनी दृष्टि: श्रियं व: क्रियात्॥''

''दानघाटी के मार्ग में श्रीकृष्ण द्वारा रोकी गईं श्रीराधा की जो दृष्टि हृदय के हर्ष के कारण ईषत् हास्य से उज्ज्वल हुई थी, जिस दृष्टि के सन्दर्भ में पलकें अश्रुकणों से भर गई थीं, जिस दृष्टि के प्रान्तभाग (किनारे, कोरें) अरुणवर्ण हो गये थे, जो रसिकता से उत्सिक्त (चञ्चल, अहंकारी) हो गई थी, श्रीकृष्ण के सामने कुंचित हो गई थी, जिस दृष्टि के सन्दर्भ में नेत्रों के तारकों ने मधुरभाव से वक्र होकर अति अपूर्व श्रीधारण कर ली थी- किलकिंचित्भावरूपी पुष्पगुच्छ से परिशोभित श्रीराधा की वही दृष्टि तुम लोगों का मंगल करे।''

स्वामिनी काली वस्तु को बहुत ही प्रेम करती हैं, नीला वर्ण ही उद्दीपक है। श्यामवर्ण का कुछ भी सामने आ जाय, वह मानो श्यामसुन्दर को ला खड़ा करता है। कृष्ण मूर्त हो जाते हैं। श्रील प्रबोधानन्द सरस्वतीपाद ने लिखा है-

''कृष्ण: पक्षो नवकुवलयं कृष्णसारस्तमालो,
नीलाम्भोदस्तव रुचिपदं नामरूपैश्च कृष्णा।''

(राधारससुधानिधि-८९)

''हे श्रीराधे! कृष्णपक्ष, नीलकमल, तमाल, नवीन मेघ और यमुना-ये सब तुम्हारे नाम और रूप के सादृश्य हेतु तुम्हें प्रिय लगते हैं।'' कृष्ण को देख रही हैं या नीली चूड़ियों को, समझ नहीं पा रहीं। ''महाभागवत देखे स्थावर जंगम। ताँहा ताँहा हय ताँर श्रीकृष्ण-स्फुरण'' (चै०च०)। फिर श्रीमती तो साक्षात् कृष्णमयी है। ''कृष्णमयी कृष्ण जाँर अन्तरे बाहिरे। जाँहा जाँहा नेत्र पड़े ताँहा कृष्णस्फुरे'' (वही)। चूड़ियाँ दिखाई जा रही हैं, किन्तु देख रही हैं श्याम को। श्याम-दर्शन की भावमय दशा नेत्रों में फूट रही है। किंकरी तुलसी सब समझती हैं, तभी तो वे अपने 'इन्दीवराक्षि' सम्बोधन से स्वामिनी की तात्कालिक नयन-शोभा वर्णन कर रही हैं। तुलसी श्रीमती के हरिदयित हाथों में चूड़ियाँ पहनायेंगी। राधारानी के हरि। अपने माधुर्य का आस्वादन प्रदान कर सभी विरोधी वस्तुओं को हटा लिया है। लज्जा, वाम्य आदि सभी बाधक हैं, हरि उन सबको हर लेते हैं। चतुरशिरोमणि अपने रूप-गुण-लीला और वेणुमाधुर्य के आकर्षण से सब भुला देते हैं। श्रीमत् प्रबोधानन्द सरस्वतीपाद ने श्रीराधा के मान की दुरवस्था दिखाई है-

''अप्रेक्षे कृतनिश्चयापि सुचिरं दृक्कोणतो बीक्षते,
मौने दार्ढ्यमुपाश्रितापि निगदेत्तामेव याहीत्यहो।
अस्पर्शे सुधृताशयापि करयोर्धृत्वा वहिर्यापये-
द्राधाया इति मानदुस्थितिमहं प्रेक्षे हसन्ती कदा॥''

(राधारससुधानिधि-२३१)

मान का पहला संकल्प है-'कृष्ण को देखूँगी नहीं।' चतुर-शिरोमणि ऐसी चतुरता में बात कर रहे हैं, ऐसे स्थान पर खड़े हैं कि उन पर दृष्टि पड़े। प्रार्थना कर रहे हैं-'एक बार देखो।' रूपमाधुरी देखकर सखियाँ भी परस्पर कह रही हैं-'आहा! नागर कैसी सुन्दर त्रिभंगिम मुद्रा में खड़े हैं! जिस नागरी ने इस माधुरी को नहीं देखा,

उसका जीवन ही व्यर्थ है।' उनकी बातें सुनकर दर्शन-लाभ से अधीर श्रीमती ने हठात् आँखों की कोरों से एक बार देखा। प्रथम प्रतिज्ञा भंग हुई।

दूसरा संकल्प-उससे बातें नहीं करूँगी' नागर किस अदा से बात कर रहे हैं। स्वामिनी चुप नहीं रह सकीं। बोलीं-'जिसे प्रेम करते हो, उसके पास जाओ न! यहाँ खड़े-खड़े बड़ी मीठी-मीठी बातें कर रहे हो!' द्वितीय संकल्प भी नष्ट हुआ।

तीसरा संकल्प-'उसे छूऊँगी नहीं। देखूँगी कि हाथ वश में रहते हैं।' नागर मैं तो साहस नहीं कि उन्हें छू लें। वे चरण क्रमशः चलाते-चलाते अँगुलियों के छोरों से ईषत् स्पर्श करा देते हैं। अब तो स्वामिनी क्रोध से अधीर होकर हाथ पकड़कर श्याम को कुञ्ज से बाहर कर देती हैं। 'ऐं, क्या किया! छू तो लिया। जब कोई प्रतिज्ञा नहीं रही, तो अब निकालकर और क्या करूँगी।' गले में हाथ डालकर पकड़कर कुञ्ज में ले आईं। इस प्रकार न जाने किन-किन तरीकों से श्रीहरि स्वामिनी का मन हरण करते हैं। तभी एक बार सखी से कहा था-

''कह सखि! कि करि उपाय।
ना जानि कि गुण कैलो विदगधराय॥
घरेर आंगिना देखिबारे लागे साध।
तबु तो ना गणे मने एतो परमाद॥
ओ-रूप देखिया कैलुँ मरण-समाधि।
राति दिन काँदे प्राण विषम बेयाधि॥
आन कथा कहों जदि गुरुर समुखे।
भरमे श्यामेर नाम आइसे मोर मुखे॥'' इत्यादि (पदकल्पतरु)

तुलसी ने स्वामिनी की कलाइयों में चूड़ियाँ पहनाईं। स्वामिनी के हाथों में स्थान पाकर उनकी कैसी अपूर्व सुषमाराशि फूटी! विश्वमोहन को मोहने वाला मधुर-अस्फुट खन्-खन् शब्द! जब स्वामिनी नृत्य करती हैं, नीली चूड़ियाँ बजती हैं। जब गेंद फेंककर मारती हैं, तो बजती हैं। मानों (ये चूड़ियाँ) मदन का मोहन अस्त्र है! पूर्वगोष्ठ में स्वामिनी अट्टालिका पर चली गई हैं, श्याम देख रहे हैं-'तुंगमणिमन्दिरे, थिर बिजुरी सञ्चरे, मेघरुचि वसन परिधाना।' स्वामिनी गुरुजनों के सामने देख नहीं सकतीं। घूँघट खींचती हैं, तो चूड़ियाँ बजती हैं। मदनमोहन विमोहित! सेवापरायण दासी। भाव का वैभव सभी समझती हैं। रास में नृत्य कर रही हैं, करकमलों की कैसी अपूर्व भंगिमा! ऊपर से चूड़ियों की मोहन शब्दमाधुरी। लगता है मानो लीलायित (सुन्दर) सनाल-स्वर्णकमल पर भृंगी की मधुर झंकार हो रही है! फिर पांसे के खेल में स्वामिनी के दोनों हाथों से पांसा रगड़ने-फेंकने का कैसा अपूर्व माधुर्य श्याम आस्वादन करते हैं! सौन्दर्य और शब्दमाधुर्य नेत्रों और कर्णों का रसायन होता है। किंकरी सेवा के समय नागर का यही सब आस्वादन स्वामिनी के हृदय में उड़ेलती हैं। स्वामिनी के हृदय में रस की जड़िमा! इन्दीवराक्षी भी हरि-प्रिय हैं। रास में जब दोनों नृत्य करते होते हैं, श्याम हठात् स्थिर हो जाते हैं। स्वामिनी कहती हैं-'क्यों, नाचो न! तुम अच्छा नाचते हो, मैं तो वैसा नहीं जानती।' श्याम उत्तर देते हैं-'अच्छा तुम्हीं नाचती हो। मैं तुम्हारा नाच देख रहा हूँ-कैसा सुन्दर! मैं तुम्हारा नाच तुम्हारे इन्दीवर (नीलकमल) को लजाने वाले नेत्रों के तारों में देख रहा हूँ। प्रतिबिम्ब देखकर समझ रहा हूँ कि तुम्हारे-जैसा

पादाम्भोजे मणिमयतुलाकोटियुग्मेन यत्नादभ्यर्चे तद्दलकुलमपि प्रेष्ठपादांगुलीयैः।
काञ्चीदाम्ना कटितटमिदं प्रेमपीठं सुनेत्रे कंसारातेरतुलमचिरादर्चयिष्यामि किं ते?३१॥

अन्वय-सुनेत्रे! (सर्वचित्ताकर्षक श्रीकृष्णस्यापि चेतस आकर्षकत्वात् हे सौभाग्य-प्रचुर-लोचने!) किं ते (तव) पादाम्भोजे मणिमयतुलाकोटियुग्मेन (नूपुरयुगलेन) अभ्यर्चे (अर्चयिष्यामि वर्तमान-सामीप्ये भविष्यति लट्), तद्दलकुलमपि (अंगुली समूहमपि) प्रेष्ठपादांगुलीयैः कंसारातेः (श्रीकृष्णस्य) प्रेमपीठं इदं अतुलं कटितटं काञ्चीदाम्ना अचिरात् अर्चयिष्यामि?३१॥

अनुवाद-हे सुलोचने! श्रीराधे! क्या मैं मणिमय नूपुरों से तुम्हारे पादपद्मों की अर्चना करूँगा? पैर की अंगुलियों की अतिप्रिय बिछुओं से, और श्रीकृष्ण के प्रेमपीठ तुम्हारे निरुपम नितम्बों की मेखला से क्या मैं अर्चना करूँगा?३१॥

नहीं हो रहा है। ' तुलसी भावमयी के हृदय में अतीत लीला की स्मृति की छवि प्रस्फुटित कर रही हैं। श्यामसुन्दर के सम्मुख स्वामिनी के नयनों की कैसी शोभा! स्वामिनी कहती हैं-'तुलसि! मैं तो वैसे ही पागल हूँ, उसकी याद दिलाकर तू और पागल कर रही है?' तुलसी ने चूड़ियाँ पहनाकर चम्पा-कलियों को भी लजाने वाली अंगुलियों में रत्न-अंगूठियाँ धारण कराईं। श्रीकृष्णभावनामृत (४/८६) में वर्णन है-

''करदलेषु धृता वभुरुर्मिका स्त्रयमृते वरमत्र तु दक्षिणम्।
किमु नखेन्दुभिरब्जयुगेश्रिते नववले ववलेऽप्युडुमण्डली॥''

''श्रीराधा ने दायें करकमल के अंगुष्ठ, तर्जनी और मध्यमा को छोड़ दोनों करकमलों की सभी अँगुलियों में रत्न अँगूठियाँ धारण कीं। कमल और चन्द्रमा की भेंट नहीं होती। किन्तु श्रीराधा के अप्राकृत और विलक्षण करकमलों की बल-विशिष्टता के कारण ही मानो नखचन्द्रमण्डली ने डरकर उनका (करकमलों का) आश्रय लिया है। और तभी उसकी (चन्द्रमण्डली की) प्रेयसी तारकाश्रेणी भी मानो रत्न अँगूठियों के रूप में करकमलों की अँगुलियों को घेरकर अति रमणीय शोभा विस्तार कर रही है!''

गुरुजनों के आगे देखना नहीं होता, इसलिये अँगूठी की मणि में प्रतिबिम्बित नागर का रूप देखती हैं। कलाइयों में नीली चूड़ियाँ और अँगुलियों में रत्न अँगूठियाँ पहना दी हैं। सहसा स्फूर्ति में विराम आ गया। अब प्रार्थना!

''हे इन्दीवराक्षि राधे, कृष्णभृंग आकर्षिते,
तोमा बोइ नाहि केहो आर।
तोमार युगल करे, मणिमय अलंकारे,
साजाइबो वासना आमार॥
कनक-चम्पक-कलि, सुन्दर अँगुलिगुलि,
अंगुरी पराये दिबो ताय।
हेरि सेइ शोभाराशि, प्रीत हबे कृष्णशशी,
दासी बोले राखो निज पाय॥''३०॥

नूपुर, बिछुए और काञ्ची

परिमलकणा व्याख्या–स्फूर्ति में तुलसीमञ्जरी के रूप में सेवा और बाहर स्वरूपावेश में प्रार्थना–श्रीपाद के साथ यही चल रहा है। साधक के अपने मन की कल्पना सुन्दर नहीं, आचार्य–चरणों का अनुगमन करना उचित है। अपना स्वतन्त्र आवेश नहीं चाहता। आचार्यों का अक्षर ही अवलम्बन है। अक्षर की सेवा (श्रवण, कीर्तन) करने से ही प्रार्थना खरी होगी। उन लोगों के हृदय में विपुल आर्ति से भरी जो प्रार्थना उमड़ फूटी है, उसका प्रत्येक अक्षर भजनरस से भरपूर है। जो इस अक्षर की सेवा करेंगे, उनके लिये भी इष्ट की कृपा–प्राप्ति का आशीर्वाद दिया है–

''इमं वृन्दावनेश्वर्या जनो यः पठति स्तवम्।
चाटुपुष्पाञ्जलिं नाम स स्यादस्याः कृपास्पदम्॥''

श्रीमत् रूपगोस्वामिपाद ने चाटुपुष्पाञ्जलि नामक प्रार्थनास्तव के अन्त में लिखा है–'जो व्यक्ति श्रीवृन्दावनेश्वरी के इस चाटुपुष्पाञ्जलि–स्तव का पाठ करेंगे, वे अवश्य ही उनकी कृपा प्राप्तकर धन्य होंगे।' प्रापंचिक आवेश लेकर राधादास्य का भजन नहीं होता। चाहिये अन्य अपेक्षाओं से रहित अनन्य भजन। महाशक्तिशाली है यह वाणी, जो प्राकृत आवेश दूरकर राधादास्य के आवेश में चित्त को आविष्ट करेगी ही।

प्रार्थना–तरंगों में डूबा श्रीपाद का चित्त लीलाराज्य में चला गया। तुलसी नूपुरों से श्रीचरणों की अर्चना करेगी। पुष्प आदि उपचारों से ही अभीष्ट की श्रीचरण–अर्चना हुआ करती हैं, नूपुरों से चरण–अर्चना की बात कुछ कम ही सुनने में आती है। किन्तु भावराज्य में श्रीचरण–अर्चना का यही एक श्रेष्ठ उपचार यही है।

श्रीराधा अभिसारिका हैं। परम उत्कण्ठा से भरी अभिसार को जा रही हैं। नूपुरों पर वस्त्र लपेटकर निःशब्द पग रखती कान्त के निकट जा रही हैं। नूपुर निकालकर भी तो जा सकती हैं? नहीं। जो श्रीराधा के आगमन–पथ की ओर निर्निमेष नेत्रों से निहार रहे हैं, शुष्क मर्मरित पत्तों के गिरने पर प्रिया के आने की सम्भावना से जिनका हृदय चौंक उठता है, इस सरस नूपुर–रव से दूर से ही उनके मन को मत्त करना होगा। फिर एकान्त रतिक्रीड़ा में भी ये नूपुर प्रियतम की विविध सेवा में काम आयेंगे। तभी नूपुर प्रेममयी की श्रीचरण–अर्चना का श्रेष्ठ उपचार है।

तुलसी ने नूपुरों से श्रीचरण–अर्चना की। मणिमय नूपुर श्रीचरणों में झिलमिला उठे! तुलसी कहती हैं–'जब तुम नाचोगी, बिना नूपुरों के नाच जमेगा नहीं। नागर को मत्त करना होगा न?' स्वामिनी के मन का भाव नृत्यकला के माध्यम से प्रकट होता है। प्रत्येक भंगिमा के भीतर से नूपुरों की ध्वनि–तरंग उठती है। मनके (दाने) एक–एक कर बजकर नृत्यकला को झंकृत कर देते हैं। पदकर्ता गाते हैं–

''नागर नाचत नागरी संग।
विविध यन्त्र कतो शब्द तरंग॥
वलय घूँघुर मणि–किंकिणी कलने।
नूपुर रुनु झुनु बाजत चरणे॥''

श्याम की वंशी भी बज रही थी। नूपुरध्वनि वंशीरव को मधुरतर बना रही थी। वंशी मुख पर, नूपुर चरण पर! हठात् एक नूपुर निकल गया है। श्याम की वंशी का स्वर पहले की तरह अब और जम नहीं रहा। कहाँ, जाने किसका अभाव है! श्याम चारों ओर देखते हैं। देखा कि श्रीमती के एक पैर में नूपुर नहीं हैं। श्यामसुन्दर ने वंशी खोंसकर श्रीचरण वक्ष पर रखकर दोनों हाथों से नूपुर पहना दिया। नूपुर के झंकृत होने के साथ-साथ वंशी का स्वर पूर्ववत् मधुमय हो उठा। किसी समय किंकरी भी नृत्य करते-करते स्वामिनी के पैर में नूपुर पहनाकर श्रीचरण-अर्चना करती हैं। यह सब रसास्वादन कराते-कराते तुलसी ने स्वामिनी के चरणों में मणिनुपूर पहनाये। साधक को भी सेवा-चिन्तन के समय इसी रस का थोड़ा-बहुत आस्वादन प्राप्त करना होगा। व्रजरस अप्राकृत है, प्राकृत-भाव की गन्धमात्र भी हृदय में रहने से इसका स्फुरण संभव नहीं। भक्ति-साधक निरपराधभाव से आसक्ति के साथ श्रवण-कीर्तनादि भजनांगों का भलीभाँति अनुष्ठान करता चला जाय, इसके परिणाम-स्वरूप वह जिस मात्रा में परिशुद्ध चित्त होता जायेगा, उसके अनुरूप ही उसके स्फटिक मणि-जैसे शुद्ध चित्त में ब्रजरस का स्फुरण होता रहेगा। दुर्दैवग्रस्त होकर पाप और महत् अपराध आदि के कारण चित्त कलुषित हो जाता है, तो बहुत दिन भक्ति-अङ्गों का अनुष्ठान करने पर भी रति का उदय नहीं होता। इसलिये भक्ति-साधक का प्रथम प्रयास होना चाहिये; महदपराधादि से शून्य होकर आसक्ति के साथ श्रवण-कीर्तन आदि भजनांगों का अनुष्ठान! भजन कर भजन ही चाहिये। भजन ही उपाय, भजन ही उपेय! ''पाकिले से प्रेमभक्ति, अपक्वे साधनरीति, भकति लक्षण तत्त्वसार'' (प्रे० म० च०)। जो सर्वदा श्रीयुगललीला-रस के ध्रुवानुस्मृति-सागर में डूबे रहते हैं (दृढ़-स्थिर होकर अनन्यभाव से निरन्तर उस लीला का चिन्तन करते रहते हैं), उन श्रीपाद दासगोस्वामी की कैसी अपूर्व भजननिष्ठा है! ''रघुनाथेर नियम जेनो पाषाणेर रेखा'' (चै० च०)।

तुलसी ने स्वामिनी के चित्त को श्यामरस में डुबाकर श्रीचरणों में मणिनूपुर पहनाये। स्वामिनी के नेत्रों में अपूर्व शोभा का विकास देखकर सम्बोधन करती हैं-'हे सुनेत्रे!' कृष्ण को देखने वाले नयन ही 'सुनयन' हैं। जिन नेत्रों से कृष्ण-दर्शन नहीं होते, उन नेत्रों को ब्रजसुन्दरियाँ कभी भी 'सुनयन' नाम नहीं देती; वे नेत्र तो उनके मत में अभिषप्त हैं।

''वंशीगानामृतधाम, लावण्यामृत-जन्मस्थान,
जे ना देखे से चाँदवदन।
से नयने किबा काज, पड़ु तार माथे बाज,
से नयन रहे कि कारण॥'' (चै० च०)

श्रीकृष्णदर्शन को छोड़ नेत्रों का और कोई फल है, इस बात की तो वे धारणा ही नहीं कर सकतीं। ''अक्षण्वतां फलमिदं न परं विदाम:'' (भा-१०/२१/७)। तुलसी अपने वर्णन द्वारा श्याम को मूर्त कर स्वामिनी की सेवा कर रही हैं। श्रीमती की अति सुठाम (सुडौल) पदांगुलियों में लहरों-से चमकते अतिप्रिय मणिमय बिछुए पहनाये-वे भी मंजु मधुर ध्वनि से युक्त! तुलसी ने इन मणिमय ऊर्मिकाओं (बिछुओं) को 'प्रेष्ठ' या 'अति प्रिय' आख्या दी है। उनके मन में यह बात उठ रही है-'आहा! ये ऊर्मिकायें ही भाग्यवती हैं, यदि मैं इन्हीं की तरह हर समय इन मधुर चरणों से लगी रहती!' उन चरणों से हर समय लगे रहने की साध किसकी नहीं

ललिततर मृणाली-कल्पबाहुद्वयं ते, मुरजयि-मति-हंसी-धैर्यविध्वंसदक्षम्।
मणिकुल-रचिताभ्यामङ्गदाभ्यां पुरस्तात्, प्रमदभरविनम्रा कल्पयिष्यामि किम्वा॥३२॥

अन्वय-(हे श्रीराधे!) प्रमदभर-विनम्रा-किं पुरस्तात् (प्रथमतः) मुरजयि-मति-हंसी-धैर्य-विध्वंसदक्षं

होती? पदकर्ता भी गाते हैं-''जाबो गो व्रजेन्द्रपुर, हबो गोपिकार नूपुर, ताँदेर चरणे मधुर-मधुर बाजबो गो!'' बिछुए भी श्रीचरण-अर्चना का श्रेष्ठ उपचार हैं, कारण-उनसे श्रीचरणसरोजों की शोभामाधुरी अत्यन्त उद्भासित हो उठी! लगा जैसे त्रिभुवन को मधुरिमा अपनी सार्थकता सम्पन्न करने के लिये ही श्रीराधाचरणों में लुण्ठित हो नूपुर, ऊर्मिका आदि विविध नाम धारण कर रुनुझुनु शब्द करती स्वयं श्रीचरणों की माधुरी या महिमा गाते हुए सुकृति सम्पन्न विवेकी व्यक्तियों को भी श्रीचरण-कमलों के गुण-कीर्तन के लिये प्रवृत्त कर रही है!

''मधुरिमैव दधाद्विविधाभिधाः स्व-सफलीकृतये पदयोर्लुठन्।
रणरणेत्यपरानपि तद्गुणान् सुकृतिनः कृतिनः किमतुष्टुवत्॥
(श्रीकृष्णभावनामृतम्-४/९५)

तत्पश्चात् तुलसी ने मणिमय कांची (मेखला) द्वारा श्रीकृष्ण के प्रेमपीठ श्रीराधा के निरुपम नितम्बों की अर्चना की। ''महकृता महता मदनेनकिं निजगृहे जगृहे मणितोरणम्'' (वही-४/९२)- ''जैसे ऐश्वर्यशाली महत् लोग प्राय नित्य ही उत्सव किया करते हैं, वैसे ही लगता है महाधनी मदन ने भी नित्य नवोत्सव सम्पन्न करने के लिये अपने मन्दिर द्वार पर मणितोरण (बन्दनवार) बाँधा।'' शोभा देखकर प्रेमपुजारिन तुलसी कहती हैं-'नागर को मत्त करने के लिये ही तुम्हारे निरुपम नितम्बों पर मणिमय कांची पहनाई है। जब घूमफिर कर नाचती हो, तो तुम्हारे कटिप्रदेश के आन्दोलन पर श्याम मुग्ध होते हैं। नागर को मत्त करने के लिये ही तो नृत्य होता है। उनके हृदय की सारी आसक्ति कटितट में है! नितम्बदेश का अपूर्व सौष्ठव मानो नागर के मन को मसल देता है! दुर्दान्त नायक को नितम्ब-शोभा वशीभूत करती है। उसका सारा प्रेम तुम्हारे नितम्बों पर टिका है!' ''इदम् अतुलं कटितटं कंसाराते: प्रेमपीठंम्।'' 'कंसारि' शब्द सुनते ही स्वामिनी चौंक उठीं। दासी के मुँह की ओर देख रही हैं। नेत्रों की कैसी शोभा है! लगता है जैसे 'कंसारि' शब्द को लेकर नेत्रों में थोड़ा डर बैठा है! तुलसी बोलीं-'भय का कोई कारण नहीं। जो कंस का निधन करने की शक्ति रखता है, उस जैसा दुर्दान्त नायक भी तुम्हारे इन नितम्बों की शोभा से वशीभूत होता है! इसलिये इनकी तुलना नहीं।' सहसा स्फूर्ति रुक गई और आरम्भ हो गई प्रार्थना!

''शुनो राधे! सुलोचने! तव रांगा श्रीचरणे,
पराइबो कनक-नूपुर।
चलिबे गो जेइक्षण, मजाये श्यामेर मन,
बाजिबे गो मधुर मधुर॥
कनक-कमलदल, पदांगुली जे सकल,
ताहे दिबो अंगुलिभूषण।
तब क्षीण कटितटे, श्रीकृष्णेर प्रेम-पीठे,
कांचिदामे करिबो शोभन॥''३१॥

(मुरजयि श्रीकृष्णस्य या मतिर्बुद्धि सैव हंसी तस्या धैर्य-विध्वंसे धैर्यविनाशे दक्षं पटु) ते ललिततरमृणाली-कल्पबाहुद्वयं (ललिततरे अति मनोहरे ये मृणाल्यो तयोः कल्पं सदृशं यद्बाहुद्वयं, तुल्यार्थे कल्प प्रत्ययः) मणिकुलरचिताभ्यां (मणिसमूहेन निर्मिताभ्यां) कल्पयिष्यामि (संयोजयामि) वा (अन्यं वेशं कल्पयिष्यामि इत्यन्वयः) ॥३२॥

अनुवाद-हे श्रीराधिके! क्या मैं सहर्ष विनम्रभाव से श्रीकृष्ण की मतिरूपी हंसिनी की धैर्यनाशक अति सुललित मृणालतुल्य तुम्हारी बाहुओं में पहले मणिमय अङ्गद (बाजूबन्द) धारण कराऊँ या कोई अन्य भूषण ?३२॥

हरिरङ्गद अङ्गद

परिमलकणा व्याख्या-प्रेममयी किंकरी श्रीराधारानी की सेवा कर रही हैं। हृदय की प्रिय सेवा ही बाहर प्रार्थना में प्रकाशित है। प्रेमसेवा पाने के लिये चिन्तन में भी वही करना होगा। श्रीमन्महाप्रभु की करुणा की मूर्ति श्रीपाद दासगोस्वामी, स्वयं भजन कर विश्व को आदर्श भजन-शिक्षा दे रहे हैं। ये लोग व्रज की नित्यसिद्ध मंजरियाँ हैं। जीवों को शिक्षा देने के लिये श्रीमन्महाप्रभु के साथ उनके प्रिय परिकरों के रूप में उतर कर आये हैं। श्रीमन्महाप्रभु ने भी गोस्वामिगण को भार दिया है-स्वयं भजन कर जगत् को भजन की शिक्षा देने का! इन लोगों की चरणों को छोड़ और गति नहीं। श्रीतुलसीमंजरी सेवा कर रही हैं, यह ध्यान में देखना होगा। ये लोग असाधारण किंकरियाँ हैं। किंकरी के आसन से कभी नीचे नहीं उतरतीं। ललिता-विशाखा आदि में कभी-कभी नायिकात्व होता है, पर किंकरियाँ स्वप्न में भी कभी नायिकात्व स्वीकार नहीं करतीं-यद्यपि ये रूप-गुण में यूथेश्वरी होने के सर्वथा योग्य हैं।

''ता विद्युदुद्युति-जयि-प्रपदैकरेखा वैदग्ध्य एव किल मूर्तिभूतस्तथापि।
यूथेश्वरीत्वमपि सम्यग्रोचयित्वा दास्यामृताब्धि-मनुसस्नुरजस्रमस्याः॥''

(श्रीकृष्णभावनामृतम्-३/२)

''श्रीराधाकिंकरियों के पैरों के अग्रभाग की एक-एक रेखा ने विद्युत की उत्कृष्ट द्युति को भी पराजित कर दिया है। वे लोग मूर्तिमती वैदग्ध्यस्वरूपिणी हैं और उनमें से प्रत्येक यूथेश्वरी होने योग्य है, फिर भी उस विषय में सम्यक् अरुचि दिखाकर वे श्रीराधा के दास्यामृत सागर में निरन्तर अवगाहन कर रही हैं।'' जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति-हर अवस्था में इनके चित्त में श्रीराधारानी की श्रीपदनख ज्योति ही प्रकाशित होती रहती है। श्रीपाद दासगोस्वामी ने कहा है-'तुम्हारे सखीत्व को नमस्कार। तुम्हारा दास्य ही मेरा काम्य है।' ये लोग नाम से मंजरी है।, स्वभाव और आकार से मंजरी हैं। कभी भी भ्रमर को विलास करने नहीं देतीं। राधाकिंकरियों की पराशुद्धि! श्रीरूप राधारानी के रूप की मंजरी हैं, श्रीरतिमंजरी उनकी रति की मंजरी हैं। मंजरी विकसित पुष्प के प्रति भृंग की लिप्सा बढ़ाती है। इन लोगों की भावशुद्धि अनिर्वचनीय है।

सिद्धस्वरूप से श्रीपाद राधारानी की बाहु में अङ्गद पहना रहे हैं और उन्हें उनका ही माधुर्य आस्वादन करा रहे हैं। 'जानती हो, तुम्हारी बाहु कैसी है?' स्वामिनी कहती हैं-'कैसी है, बता।' तुलसी-'समझाती हूँ; जिसने समझा है, उसने मुझे समझाया है। अति सुन्दर लालित्यभरी स्वर्णमृणालिनी (कमलनाल)- जैसी हैं,

तुम्हारी बाहु। कृष्ण की मतिरूपी हंसिनी उनसे आकृष्ट है, उसका धैर्य नष्ट हो गया है। उसकी मति तुम्हारी बाहुओं का माधुर्य आस्वादन करती है। उसकी मुग्धता देखकर मैं कह रही हूँ। तुम मानिनी थीं। नागरराज ने तुम्हारे पैरों में पड़कर एक परिरम्भनोत्सव (आलिंगन) की इच्छा की थी। तुमने जिस भंगी (अदा) के साथ बाहु-संचालन करते हुए ''ना-ना'' की थी, तुम समझती हो मैंने देखी नहीं थी? ⁂ मुरजयी तक का धैर्य ध्वंस हो गया था-तुम्हारी बाहु शोभा से! भुजाओं का सौन्दर्य देखकर कातर स्वर में प्रार्थना की थी-''हृदय चूरचूर हो गया है, थोड़ा आनन्द दो।'' इस प्रकार तुलसी परिचर्या के साथ-साथ प्रसंगरूपी सेवा द्वारा श्रीमती को पागल किये दे रही हैं।

रस के भीतर तत्त्व की कैसी अपूर्व झंकार है! ''मुरजयि-मति-हंसी-धैर्य विध्वंस-दक्षम्''! भुजाओं के सौन्दर्य से मुरजयी (कृष्ण) की मति-हंसी का धैर्य नष्ट हो गया है। मति है तत्त्वनिर्णायिका बुद्धि! जो मुरजयी (- जैसे वीर) हैं-उन्हीं अखण्ड अद्वयज्ञानतत्त्व की तत्त्वनिर्णायिका बुद्धि का धैर्य नष्ट कर दिया है-श्रीमती की बाहुओं के सौन्दर्य ने! इससे श्रीमती के प्रेम की विशाल शक्ति ही प्रदर्शित हुई है।

''कृष्ण कहे-आमि होइ रसेर निधान॥
पूर्णानन्दमय आमि चिन्मय पूर्ण तत्त्व।
राधिकार प्रेमे आमा कराय उन्मत्त॥
ना जानि राधार प्रेमे आछे कतो बल।
जे बले आमारे करे सर्वदा विह्वल॥
राधिकार प्रेम गुरु, आमि शिष्य नट।
सदा आमा नाना नृत्ये नाचाय उद्भट्॥''

(चै० च० आदि०-परि० ४)

श्रीकृष्ण इस प्रकार सोचते हैं-'मैं अखिलरसात्मक परमानन्द का परम आश्रय हूँ, जिस आनन्द की कणिकाभर के आस्वादन की लालसा से भक्तजन अन्य समस्त आवेश त्यागकर मुझ में ही प्रगाढ़ आवेश रख उन्मत्त हुए रहते हैं-उसी को-मुझे उन्मत्त करना सर्वथा असम्भव है। दूसरी बात मैं पूर्णानन्द स्वरूप हूँ। मेरे ही आनन्दसिन्धु की एक कणिका के आभास से विश्व उन्मत्त है-वही मैं....मुझे आनन्द देकर उन्मत्त करना असम्भव है। तीसरी बात, मैं चिन्मय पूर्णतत्त्व हूँ। मेरे ही अनुभव-आनन्द से विश्व पूर्णकाम हुआ रहता है-मेरी ज्ञानाच्छन्नता के कारण उन्मत्तता अति असम्भव है। श्रीराधा के प्रेम ने इन सभी असम्भव बातों को सम्भव कर

⁂ यह लीला श्रील प्रबोधानन्द सरस्वतीपाद ने वर्णन की है- (राधारससुधानिधि-१०)

''केनापि नागरवरेण पदे निपत्य, संप्रार्थितैक-परिरम्भरसोत्सवायाः।
सभ्रू विभंगमतिरंगनिधेः कदा ते, श्रीराधिके नहि नहीति गिरः शृणोमि॥''

'हे राधे! नागरराज कृष्ण तुम्हारे पैरों में गिरकर मात्र एक आलिंगन की प्रार्थना करेंगे, तब अति-रंगनिधि तुम (आलिंगनरस के अनुभव से प्रमोदित होकर) भ्रूभंगी के साथ 'ना-ना' कहती जाओगी-तुम्हारी वह वाणी मैं कब सुन पाऊँगा?

पूर्वोक्त स्वरूपयुक्त मुझे उन्मत्त किया है। इतना ही नहीं, श्रीराधा का प्रेमगुरु होकर शिष्य की तरह मुझे नाना प्रकार के नाच नचाता रहता है।' श्रील विश्वनाथ चक्रवर्तीपाद ने लिखा है-''नाना नृत्ये इत्यत्र अयम्भावः सर्वशक्ति-सर्वसुख-परिपूर्णः सत्यस्वरूपी नित्यज्ञानादिमयोऽप्यहं कदाचित् जरतीभयात् राधाप्रांगणकोणे निहृत्य तिष्ठामि, कदाचित् राधासंग-सुखाशया तदागमनपन्थानं पश्यामि, कदाचित् तदर्थ छद्मवेशी भवामि, कदाचित् लतायां तद्भ्रान्तौ भवामीत्यादिकं तत्प्रेमैव कारयतीति।'' अर्थात् ''श्रीराधा का प्रेम मुझे नाना प्रकार के नाच नचाया करता है, इस बात का अर्थ यही हैं-मैं सर्वशक्तिमान् होकर श्रीराधा के प्रेमबल से जटिला के भय से श्रीराधा के प्रांगण के कोने में छिपा रहता हूँ। सुखस्वरूप होकर भी श्रीराधा के संग-सुख की आशा में तन्मय होकर उनके आगमन-पथ की ओर देखता रहता हूँ। सत्यस्वरूप होकर भी उनके संग के लिये छद्मवेश धारणकर मिथ्या का आश्रय लेता हूँ। नित्यज्ञानस्वरूप होकर भी स्वर्णलता को भ्रान्तिवश श्रीराधा समझकर आलिंगन कर सुख से आत्महारा हो जाता हूँ।' मुरजयी की मति अथवा तत्त्वनिर्णायिका बुद्धि की ऐसी अवस्था है!

तुलसी ने स्वामिनी को अङ्गद पहनाकर उसी को सम्बोधित कर कहा-'हे अङ्गद! इस समय जिन्होंने तुम्हें धारण किया है, अपनी इन आश्रयदायिनी को तुम किसी का अतुलनीय अङ्ग अवश्य ही दान करना, तभी तुम्हारे 'अङ्गद' नाम की सार्थकता है। अन्यथा 'जो अङ्ग दान करता है, उसका नाम अङ्गद है'-इस व्युत्पति के बदले 'जो अङ्ग छेदन करता है, उसका नाम अङ्गद है' ('दा' धातु छेदन अर्थ में), ऐसे नामार्थवाद से तुम्हारा दोष ही घोषित होगा।

स्वामिनी से बोलीं-'हरि-रंगद अङ्गद पहना दिया। एक बार मधुर स्वर में गीत गाते-गाते श्यामसुन्दर के साथ भुजायें हिला-डुलाकर नाचना, तुम्हारी यह दासी देखकर धन्य होगी। श्याम तुम्हारा अच्छा दोहरकी (मूल गायक के पीछे-पीछे दुहराने वाला) है। उस दिन के नृत्य में सुललित बाहु द्वारा श्याम को कैसा आलिंगन किया था! पुलकयुक्त बाहुओं से परस्पर आलिंगित! जैसा उसने चाहा, तुमने वैसा ही दिया। श्यामस्कन्धों द्वारा निषेवित (सेवित) है तुम्हारी बाहु! इसीलिये इस अङ्गद को 'हरिरंगद' कहा। श्याम को अपूर्व आनन्द देगा।'' इस प्रकार पूर्वलीला की स्मृति के साथ अपना अनुभव स्वामिनी के हृदय में डालकर उन्हें उन्मत्त किये दे रही हैं। श्रीलीलाशुक ने कहा है-

''अधीरमालोकितमार्द्रजल्पितं गतञ्च गम्भीर-विलासमन्थरम्।
अमन्दमालिङ्गितमाकुलोन्मदस्मितञ्च ते नाथ विदन्ति गोपिकाः॥''

(श्रीकृष्णकर्णामृतम्-२७)

'हे नाथ! तुम्हारी चपल दृष्टि, सरस वार्ता, गम्भीर-विलास-शोभित मन्थर गति, प्रगाढ़ आलिंगन और आकुलोन्मद (भरपूर उत्साह से भरे) हास्य की माधुरी गोपियाँ ही जानती हैं।' इन सबका अनुभव करने के लिये गोपीभाव अङ्गीकार करना आवश्यक है। राधाकिंकरियाँ सभी समझती हैं। प्रापंचिक आवेश को लेकर इस वस्तु को नहीं समझा जा सकता। तभी पदकर्ता महाजन प्रार्थना करते हैं--सखीर संगिनी हैया ताहे हबो भोर।' रूप, तुलसी का अनुगत होना पड़ेगा। स्फूर्ति में विराम आने पर हाहाकार! परम उत्कण्ठा से भरकर सेवा-प्रार्थना करते हुए कहते हैं-'तुम्हारी भुजाओं में मणिमय अङ्गद पहनाऊँ या अन्य भूषण पहनाऊँ?''

रासोत्सवे य इह गोकुलचन्द्रबाहु,-स्पर्शेन सौभगभरं नितरामवाप।
ग्रैवेयकेण किमु तं तव कण्ठदेशं, संपूजयिष्यति पुनः सुभगे जनोऽयम्?३३॥

अन्वय-सुभगे! (हे सौभाग्यवति!) यः (तव कंठदेशं) इह (व्रजे) रासोत्सवे गोकुल-चन्द्रबाहुस्पर्शेन नितरां सौभगभरं (सौभाग्यातिशयं) अवाप (प्राप्तवान्), अयं जनः किं पुनः उ (भो) तव तं कण्ठदेशं ग्रैवेयकेण (कण्ठाभरण-विशेषेण) संपूजयिष्यति?३३॥

अनुवाद-हे सौभाग्यशालिनि राधे! इस वृन्दावन में रासोत्सव के समय तुम्हारे जिस कण्ठदेश ने श्रीकृष्णचन्द्र के बाहु-स्पर्श का निरतिशय सौभाग्य प्राप्त किया था, क्या यह दीनजन तुम्हारे उसी कण्ठदेश को कण्ठाभरण (चिक्) से पुनः शोभित करेगा?३३॥

कण्ठाभरण (कण्ठहार)

परिमलकणा व्याख्या-श्रीपाद स्वरूपावेश में भाव के अनुरूप भाव से (जब जिस वस्तु और पद्धति की आवश्यक होती है, उसी से) स्वामिनी की सेवा कर रहे हैं। सेवा की प्रगाढ़ लालसा और सुतीव्र आकूति हर श्लोक में अभिव्यक्त है। अभीष्ट के लिये सुतीव्र आकूति (व्याकुलता) का नाम ही 'प्रेम' है। श्रीपाद महाभावराज्य में है, इसलिये तीव्र लालसा से लीला का स्फुरण और सिद्धस्वरूप से साक्षात् सेवा दोनों ही विद्यमान है। अङ्गद पहनाने की सेवा हो गई है, अब कण्ठाभरण (हार) पहनायेंगे। रास की स्मृति हो आई है। 'रासोत्सव में गोकुलचन्द्र के बाहु-स्पर्श से तुम्हारे जिस कण्ठदेश ने अत्यन्त सौभाग्य लाभ किया था, हे सौभाग्यवति! यह दासी क्या उस कण्ठदेश को हार से पुनः परिशोभित करेगी?'' रासलीला में अनेक वाद्य बजे थे, किन्तु दो वाद्य ही प्रधान थे। एक श्रीकृष्ण की रस-चातुर्यरूपी भेरी, दूसरी श्रीराधा की सौभाग्यरूपी दुन्दुभि। ''रासलीला जयत्येषा यया संयुज्यतेऽनिशम्। हरेर्विदग्धताभेर्या राधा-सौभाग्यदुन्दुभिः।'' महारास में शतकोटि गोपियों के उस मिलन-मेले में श्रीराधा के अनन्य साधारण सौभाग्य की बात गोपीसमाज में विघोषित हुई थी। रासलीला में ही विश्व को पता चला था-''राधासह क्रीड़ारस आस्वाद-कारण। आर सब गोपीगण रसोपकरण॥'' ''राधा बिना सुख-हेतु नहे गोपीगण।'' ''ताँहा बिना रासलीला नाहि भाय चिते।'' इत्यादि उदाहरणों से रासेश्वरी श्रीराधा के असाधारण सौभाग्य की महिमा ही प्रकट होती है। अथवा 'सुभगे' का अर्थ है 'सुन्दरि'। अपार रूप-लावण्य देखकर ही ऐसा सम्बोधन किया है। तुलसी के प्रत्येक शृंगार में साक्षात् शृंगार श्यामसुन्दर मानो

''सुन्दर मृणाल प्राय, बाहुद्वय शोभा पाय,
कृष्ण मनोहंस जाहा हेरि।
कभु धैर्य नाहि धरे, कबे आमि हर्षभरे,
विनम्र हइया सुकुमारि॥
सुगठित मणिचये, कनक-कंकणद्वये,
बाहुद्वय करिबो भूषित।
किम्वा चाइ अन्य वेश, करो देवि! सुनिर्देश,
ताइ दिया साजाबो त्वरित॥''३२॥

स्वामिनी के आगे मूर्त हो उठते हैं, तभी राधा-माधुरी का अपार उच्छलन है। श्रीराधा के स्वाभाविक रूप-लावण्य का परिचय देते हुए पदकर्ता महाजन कहते हैं-

''देखो-देखो राधारूप अपार।
अपरूप को विधि, आनि मिलाओलो,
क्षितितले लावणि - सार॥
अङ्गहि अङ्ग, अनंग मुरछायत,
हेरइ पड़ये अधीर।
मनमथ कोटि, मथन करु योजन,
सो हेरि महि - माहा गीर॥'' (पदकल्पतरु)

इस स्वाभाविक रूप-लावण्य में कृष्णानुभव का रंग और मिला हुआ है! तभी 'सुभगे'! भाव की मूर्ति की सेवा है। कण्ठदेश में कण्ठाभरण पहना रही है। रासोत्सव के स्फुरण में मानो वे साक्षात् रासस्थली में खड़ी होकर ही सेवा कर रही हैं। स्मरण-उन्मुख होने तक ही साधक को ज्ञान रहेगा, तत्पश्चात् इस बात का भी ध्यान न रहेगा कि मैं स्मरण कर रहा हूँ। तब तो यही लगेगा कि स्फूर्ति में साक्षात् अनुभव कर रहा हूँ। साधक अपने चिन्तन में कुछ अनुभव कर सोचेगा-(इष्ट की) आवाज सुनी, आहट सुनी। आचार्यपादगण ने अनुभव भी किया है-प्रचार भी किया है। श्रील रघुनाथ के भजनरस की अपूर्व अनुभूति है, जो उनकी भावोद्वेलित लेखनी से निकलकर मधुर काव्य-कला-लालित्य के साथ प्रकाशित होकर भजनरसिक मनीषियों की पराश्रद्धा आकर्षित कर रही है। ध्यान करते-करते जब हृदय परिपक्व हो जाता है, तो स्फुरण होता है। वह अनुभव ही साधक की जीवन-रक्षा करता है। संसार में आवेश कम हो जाता है, जड़ विषयों में आसक्ति नहीं रहती। स्फुरण क्रमशः निविड़ से निविड़तर होता जाता है। स्वरूप के आवेश-जैसी मीठी वस्तु संसार में और कुछ नहीं। श्रीमत् जीवगोस्वामिपाद ने लिखा है-''अस्तु तावद् भजनप्रयासः केवलतादृशत्वाभिमानेनापि सिद्धिर्भवतीति'' (भक्तिसन्दर्भ-अनु० ३०४)- ''स्वरूप के आवेश को लेकर भजन की बात तो दूर, केवल स्वरूपाभिमान से ही सिद्धि हो जाती है।'' किंकरी-अभिमान को लेकर श्रीराधारानी के निकट हूँ-यही लगता है, इसी से जीवन-रक्षा होती है। श्रीपाद दास गोस्वामी की तो बाह्यावस्था में भी स्वरूपावेश की कैसी अपूर्व निविड़ता है। यह बात उनकी प्रार्थना की माधुरी से समझ में आती है। स्वामिनी के रूप-गुण के आस्वादन में जब विराम आता है, तो कैसा दुःख होता है! प्राण राधारानी का विरह-भोग करना चाहते हैं। मानो विरह ही साध्य है। विरह के बिना मिलन-आनन्द भोगने की योग्यता नहीं आती। श्रीपाद दास गोस्वामी का जितना विरह, उतना ही आस्वादन! 'हे सुन्दरि'- 'हे सौभाग्यवति', ये सब सम्बोधन बाह्यावेश में सम्भव नहीं। मानो साक्षात् पुकार रहे हैं-'यह दासी उस कण्ठ की पूजा कब करेगी?' रासोत्सव-इस उत्सव की बात मानो तुलसी मंजरी ही कह रही हैं, रघुनाथ नहीं। अपना अनुभव स्वामिनी के हृदय में डाल रही हैं। मानो उनके नेत्रों को वह लीला दिखा रही हैं। लीला दर्शन कर भाव-तूलिका से जो छवि हृदयपटल पर अंकित कर रखी है, भाषा द्वारा उसी को मूर्त कर रहे हैं।

रासोत्सव चल रहा है। देख रही है-'गोपीकृष्ण'-'गोपीकृष्ण', वृन्दावन छा गया है। सभी के हृदय के निकट कृष्ण हैं, स्वर्णहार में नीलमणि का पदक। ''मध्ये मणीनां हैमानां महामरकतो यथा'' (भा०)। रस का

आदान-प्रदान चल रहा है। रास का मूल उपादान ही 'रस' है। 'रस'-शब्द के उत्तर समूहार्थ में 'ष्ण' प्रत्यय से 'रास' शब्द बना है। रससमूह ही रास है। श्रीजीव ने लिखा है- ''रास: परमरसकदम्बमय इति यौगिकार्थ:'' (लघुतोषणी टीका)। परमरससमूह ही रासक्रीड़ा की प्राण-वस्तु है। परम लोभनीय व्रजरस का उत्कर्ष महाभाव में है। सर्वोपरि श्रीराधा के मादन में। यही 'परमरस' है। तभी श्रीराधा ही रासेश्वरी हैं। राधारानी का आस्वादन करने के लिये ही रास है। किन्तु उत्सव एक-दो जनों से नहीं होता, उत्सव के सौष्ठव की वृद्धि के लिये अनेकों का समावेश आवश्यक है। इसीलिये क्रीड़ा के सौष्ठव-वर्द्धन के लिये अन्यान्य गोपियों का सम्मिलन है। तभी 'परमरस समूह' कहा गया है। मूलत: वे सभी श्रीराधा की कायव्यूह हैं।

''आकार - स्वभाव भेदे ब्रजदेवीगण।
कायव्यूहरूप ताँर रसेर कारण॥
बहु कान्ता बिना नहे रसेर उल्लास।
लीलार सहाय लागि बहुत - प्रकाश॥
तार मध्ये व्रजे नाना भाव - रसभेदे।
कृष्णके कराय रासादिक - लीलास्वादे॥
गोविन्दानन्दिनी राधा - गोविन्दमोहिनी।
गोविन्द-सर्वस्व-सर्वकान्ता-शिरोमणि॥'' (चै० च०)

बहुत-सी गोपियाँ और एक कृष्ण, रस के उत्सव में आनन्द की सीमा नहीं। गोपियाँ देख रही हैं-आलात-चक्र (वृत्ताकार अग्नि-चक्र) की तरह नृत्यकुशल एक कृष्ण ही बहुत-सी गोपियों के बीच विराजित हैं! कैसी अपूर्व शोभा है! पदकर्ता महाजन गाते हैं-

''कांचन मणिगणे, जनु निरमायल, रमणी मण्डल साज।
माझइ माझ, महामरकत सम, श्यामरु नटवर राज॥
धनि धनि अपरूप रासविहार।
थिर बिजुरी संगे, चंचल जलधर, रस वरिखाय अनिवार॥
कतो कतो चाँद, तिमिर पर विलसइ, तिमिरहु कतो कतो चान्दे।
कनक-लताये, तमालहु कतो कतो, दुहुँ दुहुँ तनु तनु बान्धे॥
कतो कतो पदुमिनी, पंचम गायत, मधुकर धर श्रुति भाष।
मधुकर मेलि कतो, पदुमिनि गायत, मुगधल गोविन्ददास॥''

(पदामृतमाधुरी)

''मंडलीबन्धे गोपीगण करेन नर्तन।
मध्ये राधासह नाचे व्रजेन्द्रनन्दन॥'' (चै० च०)

तुलसी कहती हैं-'उसी रासोत्सव में गोकुलचन्द्र के बाहुस्पर्श से तुम्हारा कण्ठदेश पूजित हुआ था। तुम्हारे ही 'गोकुलचाँद'। तुम्हारी इन्द्रियों के तृप्तिदायक। तुम्हें आस्वादनरस में डुबाने के लिये ही तो रास होता है। तुम्हारे ही सौभाग्य की दुन्दुभि बजी थी। सौभाग्यवती की पूजा नहीं करनी पड़ती क्या? तुम्हारे गोकुलचन्द्र ने अपनी बाहुरूपी उपचार से इस कण्ठ की पूजा की थी। अब उस बाहु का पर्श नहीं है, होता तो सज्जा की

दत्तः प्रलम्बरिपुणोद्भट-शङ्खचूड़,-नाशात् प्रतोषि हृदयं मधुमङ्गलस्य।
हस्तेन यः सुमुखि कौस्तुभमित्रमेतं, किं ते स्यमन्तकमणिं तरलं करिष्ये? ३४॥

अन्वय-हे सुमुखि! यः (स्यमन्तकः) प्रलम्बरिपुणा (बलदेवेन) उद्भट शङ्खचूड़नाशात् प्रतोषिहृदयं (यथास्यात्तथा मधुमङ्गलस्य हस्तेन (कृत्वा) दत्तः, कौस्तुभमित्रं (कृष्णाश्लेषण काले उभय संयोगान्मित्रमिति भावः) एतं स्यमन्तकमणिं किं ते तरलं (हारमध्यगं) करिष्ये? ३४॥

अनुवाद-हे सुमुखि! श्रीराधे! उद्धत् शंखचूड़ के निहत होने पर श्रीबलदेव ने सन्तुष्ट होकर जो स्यमन्तकमणि मधुमंगल के हाथों तुम्हें दी थी, कौस्तुभमणि की मित्र उस स्यमन्तकमणि को क्या मैं तुम्हारी तरल (हार की मध्यवर्ती मणि) बनाऊँ? ३४॥

कौस्तुभ-मित्र स्यमन्तक

परिमलकणा व्याख्या-पिछले श्लोक में कण्ठाभरण पहनाते-पहनाते स्फुरण में विराम आ गया था। हृदय में आर्ति है। श्रीमती के सौन्दर्य, माधुर्य एवं भाव-माधुरी का विपुल आकर्षण प्राणों में उमड़ रहा है। तरुणी सेविका कोटि प्राण-समान अपनी ईश्वरी के विरह में व्याकुल प्राणों से रोदन कर रही हैं। यह शोक प्रियतम वस्तु के दर्शन-अभाव के कारण है। देहजात विलाप यहाँ विलुप्त है। जो क्षणप्रभा (बिजली) की तरह हृदयाकाश में उदित होकर विरह-अंधकार को दुगना कर रही थीं, वे ही विद्युद्दाम कान्तिमयी (विद्युत माला-

---

आवश्यकता न पड़ती। तभी मैंने कण्ठाभरण से अच्छी तरह पूजा की है। देखकर उन्मत्त होकर वह अपनी बाहु से इस कण्ठ की पूजा करे, इसी लालसा से सजाया है। धन्य है दासी! धन्य उसकी सेवा! गहन आस्वादन प्रदान कर भावमयी के आगे लीलारस को मूर्त किये दे रही हैं। जो लोग भावुक हैं, वे लीला श्रवण कर लीला को प्रत्यक्ष देखते हैं। सुमार्जित चित्त-दर्पण में साक्षात्कार की तरह ही लीलारस प्रतिविम्बित होता है। भावुक के चित्त-मन में लीला स्वतः स्फूर्त होती है। महाभावमयी का चित्त-मन तो सतत ही लीलारस-सिन्धु में डूबा रहता है। किंकरी तुलसी सेवा के समय लीला-वर्णन द्वारा उस रससिन्धु में विपुल उच्छ्वास उत्पन्न कर देती हैं। भावमयी का चित्त-मन उद्वेलित हो उठता है। तुलसी कहती हैं-'कण्ठाभरण पहना दिया। अब देख पाऊँ-इस कण्ठ में एक नया आभरण पड़ गया है (श्रीकृष्ण-बाहु के रूप में)।' कण्ठाभरण पहनाते-पहनाते स्फूर्ति में विराम आ गया। अभाव-बोध से चीत्कार और क्रन्दन! विलाप सहित प्रार्थना!

''वृन्दाने रासोत्सवे, ब्रजराज-सुत जबे,
तव कण्ठ कैला आलिंगन।
ताहाते सौभगभर, तव कण्ठे मनोहर,
लये कबे कण्ठ - आभरण॥
पेये तव कृपादेशे, पराबो से कण्ठदेशे,
सदा मने करि ए वासना।
हे सुभगे! तुमि कबे, करुणानयने चाबे,
पूराइबे दासीर कामना॥''३३॥

जैसी कान्तियुक्त) 'कांचनपिकी' (स्वर्ण कोकिला) उनके हृदय कुंज में सहसा आविर्भूत होकर अन्तर्हित हो गईं; उन्हें भीतर-बाहर प्राप्त करने के लिये ही सेविका व्याकुल हैं। रोते-रोते श्रीपाद का मन लीलाराज्य में चला गया है। एक के बाद एक, स्वामिनी की वेशरचनालीला का ही स्फुरण हो रहा है। इस बार वक्षस्थल के मध्य में स्यमन्तकमणि का पदक धारण करा रही हैं। कौस्तुभमणि की मित्र है यह स्यमन्तक, इसे क्या तुम्हारे हार की तरल (मध्यमणि) बना दूँ। प्रलम्बासुर विनाशकारी श्रीबल्देव ने शंखचूड़-हन्ता श्रीकृष्ण पर सुखी-प्रसन्न होकर स्यमन्तक मधुमंगल के हाथों श्रीराधारानी को दी है। तुलसी कितनी-कितनी लीलाओं की स्मृति स्वामिनी के हृदय में जगा रही हैं!

होली लीला की रात है। दोनों भाई गोपियों के साथ ब्रजवन में विहार कर रहे हैं। कैसी अपूर्व है वृन्दावन की शोभा!

''कदाचिदथ गोविन्दो रामश्चाद्भुतविक्रमः।
विजह्रतुर्वने रात्रां मध्यगौ ब्रजयोषिताम्॥
उपगीयमानौ ललितं स्त्रीरत्नैर्वद्धसौहृदैः।
स्वलंकृतानुलिप्ताङ्गौ स्रग्विणौ विरजोऽम्बरो।
निशामुखं मानयन्तावुदितोडुपतारकम्।
मल्लिकागन्धमत्तालि - जुष्टं कुमुदवायुना॥'' (भा०-१०/३४/२१-२३)

''एक बार वासन्ती पूर्णिमा को मल्लिका कुसुम के परिमल से मत्त भृंगों द्वारा परिसेवित, कुमुद-गन्धयुक्त मलयपवन से स्निग्ध, पूर्णचन्द्र एवं तारकाओं से उज्ज्वल प्रदोषकाल में ब्रजरमणियों के ललितस्वर में गाये गीत और नर्म-परिपाटी द्वारा अभिनन्दित, मनोहर अलंकार और माल्य से विभूषित, चन्दनचर्चित, निर्मल वस्त्र धारण किये, अद्भुत विक्रमशाली श्रीकृष्ण और बलदेव वृन्दावन में विहार करने लगे।'' पदकर्ता महाजन ने गाया है-

''एके ऋतुराज ब्रजसमाज होरिरंगे रंगिया।
नागरीबर होरिरंगे, उनमत चित श्याम संगे, नाचत कतो भंगिया॥
गायक कतो रस प्रसंग, बायत कतो वीणामुचंग, थैया थैया मृदंगिया।
चंचल गति अति सुरंग, निरखि भूले कतो अनंग, संगीतरसे सुरंगिया॥
स्वर मंडल स्वर अभंग, विविध यंत्र जलतरंग, मधुर स्वर उपांगिया।
खेलि गोलाप अङ्गलाल, सुन्दरवर द्युति रसाल, रंगिणीगण संगिया॥
ब्रजवधूगण धरत ताल, गाओत पद नन्दलाल, राइ अङ्गे अंगिया।
हो हो होरि करत भाष, करतालि घन मन उल्लास, जय जय वर डंगिया॥
गोविन्दगुण करि प्रकाश, रचित गीत उद्धवदास होरि रस तरंगिया॥''

उसी समय आया था अति दुर्दान्त शंखचूड़। श्रीकृष्ण ने उसका बधकर उसके मस्तक की स्यमन्तक मणि ब्रजरमणियों के आगे प्रेमपूर्वक दादा (अग्रज) को सौंपी।

''शङ्खचूड़ं निहत्यैव मणिमादाय भास्वरम्।
अग्रजायाददात् प्रीत्या पश्यन्तीनाञ्च योषिताम्॥'' (भा०-१०/३४/३३)

दुरात्मा शंखचूड़ का वध कर श्रीकृष्ण जब उसके मस्तक की अति उज्ज्वल स्यमन्तक मणि हाथ में लेकर आ रहे थे, तो प्रेमगौरव से गर्विनी प्रत्येक ब्रजसुन्दरी सोच रही थी कि प्राणकान्त गोविन्द यह मणि उसी को समर्पित करेंगे। श्रीकृष्ण ने उनके मन की बात जानकर वह उज्ज्वल शिरोरत्न उनमें से किसी को न देकर उपहार-स्वरूप बलदेव को दिया। इस प्रसंग में वृहद्वैष्णवतोषणी टीका में लिखा है--''प्राणप्रियतमायै श्रीराधिकायै मणिरेषोऽवश्यमर्पयितुमिष्यते, साक्षान्मया दत्ते च खलु मह्यमसूया सम्भवेत्। अतोऽग्रजाय दत्तोऽप्ययं परमाभिज्ञेन मत्प्रीत्येकापेक्ष्यकेण तस्या एवानेन दातव्यः, ततो न रोषः कोऽपि शंकेत। गुरौ च तासां कथमप्यसूया न सम्भवेदेवेति।'' अर्थात् ''यह मणि प्राणप्रियतमा श्रीराधिका को समर्पित करने की इच्छा से श्रीकृष्ण ने मन में सोचा-'यदि मैं यह मणि सीधे-सीधे श्रीराधिका को देता हूँ, तो अन्यान्य ब्रजसुन्दरियाँ मेरे प्रति असूया (रोष, ईर्ष्या) दिखायेंगी; इसलिये इसे अग्रज श्रीबलदेवजी को ही देता हूँ। परम अभिज्ञ मेरे अग्रज (मेरे प्रति) प्रीतिवश इसे श्रीराधिका को ही देंगे। इससे कोई भी रोष प्रकट नहीं कर पायेगी। बलदेव गुरुजन हैं, इसलिये उनके प्रति किसी की असूया भी प्रकट नहीं होगी।''''सच महाविज्ञः कृष्णाभीप्सितस्थल एव तं मणिं न्यधादिति ज्ञेयम्।'' (सारार्थदर्शिनी टीका) ''महाविज्ञ श्रीबलदेव ने श्रीकृष्ण के मन की बात जानकर वह मणि मधुमंगल के हाथों श्रीराधिका को उपहार स्वरूप दे दी।'' आशीर्वाद स्वरूप वह मणि देकर भातृवधू की तरह ही स्नेह प्रकट किया। तुलसी श्रीबलदेव के स्नेह के मधुर स्पर्श से युक्त वह पदक धारण करा रही हैं। तुलसी छाया की तरह सर्वदा स्वामिनी के निकट हैं। सेवा के प्रति उनकी पूरी दृष्टि है। सेवा का चाव कितना मधुर है! उपास्य के आवेश में चित्त डग्मग् कर रहा है! यदि श्रवण-कीर्तन में भी श्रीचरण-सान्निध्य में रहा जाय, तो वह भी बड़ा मधुर होता है। 'श्रीकृष्ण-वक्ष पर विराजित कौस्तुभ तुम्हारे वक्षस्थल-स्थित स्वमन्तक की मित्र है। लीला के माध्यम से मित्रता; लीला को छोड़कर नहीं।' इस प्रकार तुलसी लीलारस का परिवेशन कर रही हैं। सुरसिका किंकरी का रहस्यालाप सुनकर श्रीमती के अधर-किशलयों पर मृदुमधुर हँसी की रेखा फूट उठती है।

स्यमन्तक और कौस्तुभ में मित्रता है। भक्त-भक्त में मित्रता होती है श्रीराधाकृष्ण को बीच में रखकर। किंकरियों का बन्धुत्व है सेवा को लेकर। रूप-रघुनाथ की कैसी अपूर्व मित्रता है! उसी प्रकार लीला के माध्यम से स्यमन्तक और कौस्तुभ की मित्रता है। राधाकिंकरीत्व के अभिमान के बिना इसका अनुभव संभव नहीं। मुझ-जैसे जीव को श्रीगुरुप्रदत्त निज स्वरूप का ज्ञान नहीं। देह-दैहिक आदि लेकर ही सब भूल! मन नाना दिशाओं में बिखरा है। सत्य वस्तु के प्रति लक्ष्य नहीं। जो पहले भी नहीं थे, पीछे भी नहीं रहेंगे, उन सबको लेकर ही सदा व्यस्त। अपना सर्वनाश कर रहा हूँ, भगवत्सेवा की उपेक्षा कर रहा हूँ-भगवान् जो मेरे सर्वस्व हैं। अनित्य वस्तु की उपेक्षा किये बिना नित्य वस्तु का सन्धान नहीं मिलता। रघुनाथ राजपुत्र हैं। इन्द्र के समान वैभव, अप्सरा जैसी स्त्री-सभी की उपेक्षा की। जिनकी आदर्श प्रेमभक्ति और अलौकिक विषय-वैराग्य देखकर सन्तुष्ट होकर महाप्रभु ने शिला-माला देकर श्रीगोवर्धन एवं श्रीराधारानी के चरणों में समर्पित किया। इसीलिये श्रीराधारानी उनके हृदय में जमकर बैठीं हैं। साधक भी विश्व के प्रति निद्रित और श्रीराधारानी की सेवा के प्रति जाग्रत हों-यही आचार्यो की शिक्षा है।

तुलसी सम्बोधित कर रही हैं 'सुमुखि' कहकर। किंकरी ने कौस्तुभ और स्यमन्तक की मित्रता की बात कहकर स्वामिनी के चित्त में जिस लीलारस की स्मृति जगाई है, उसी भाव की अभिव्यक्ति है उनके श्रीमुख

पर और नेत्रों में। भाव की मूर्ति की भाव-अभिव्यक्ति का द्वार है यह वदन, तभी 'सुमुखि' सम्बोधन की सार्थकता है। श्रीमत् रूपगोस्वामिपाद ने श्रीराधा के ''सुविलासा'' गुण का दृष्टान्त देकर श्रीवदन को ही सिन्धु की तरह अनन्त भावतरंगराजी का समाश्रय बताया है-

''तिर्यक्क्षिप्तचलद् दृगञ्चलरुचिर्लास्योल्लसद्भ्रूलता
कुन्दाभस्मितचन्द्रिकोज्ज्वलमुखी गण्डोच्छलत्कुण्डला।
कन्दर्पागमसिद्धमंत्रगहनामर्द्धं दुहाना गिरं,
हारिण्यद्य हरेर्जहार हृदयं राधा विलासोर्मिभिः॥'' ⁂

(उज्ज्वलनीलमणि श्रीराधा प्रा०-४१)

''श्रीराधा के वक्रभाव से निक्षिप्त चपल नयनांचल, भ्रूलताओं का मनोहर नृत्य, कुन्द-कुसुम-सी हास्यचन्द्रिका से उज्ज्वल वदनचन्द्र, चपल कुण्डलों की शोभा से प्रदीप्त उच्छलित गण्डस्थल, मदन के सिद्ध मंत्र की तरह अर्धस्फुट वचनमाधुरी इत्यादि विलास-तरंगों से श्रीकृष्ण का हृदय अपहृत हुआ है।'' राधारानी के उसी भावमय मुखचन्द्र की स्मृति में कहा है-'हे सुमुखि! स्यमन्तक और कौस्तुभ का मिलन-आलिंगन है। लगता है जैसे काला चाँद कमल के साथ खेल रहा है! चाँद को तुम्हारे मुखकमल से चूते मधु का आस्वादन करते देखा। कमल की सेवा परक चाँद धन्य है।' 'सुमुखि' सम्बोधन से स्वामिनी के मन को लीलारस में डुबाया जा रहा है। स्वामिनी मुख पर हँसी बिखेर कर कहती हैं-'तुझे यह सब भी याद रहता है?' तुलसी - 'तुम्हारे लिये ही याद रखती हूँ। तुम हो अनुरागवती-अनुराग की अतृप्ति में यदि भूल जाओ, तो याद तो दिलानी पड़ेगी न!' ललिता-विशाखा आदि के आगे इन सब विषयों को लेकर संकोच रहता है, किंकरी के आगे कुछ नहीं। श्रीराधारानी की विश्वासभूमि है किंकरी। वक्षस्थल पर स्यमन्तक पहनाने को हुईं तो कुछ हाथ नहीं आया। हाहाकार के साथ प्रार्थना जाग उठी।

''दुष्ट शंखचूड़ आसि, वृन्दावन परवेशि,
तोमा लये करे पलायन।
सेइ काले वनमाली, ताहार विनाश करि,
शिरोमणि करिला ग्रहण॥
दिला रामे हृष्ट हैया, (तिहों) मधुमंगलेरे दिया,
तोमारे दिलेन उपहार।
सेइ स्यमन्तक मणि, सकल शोभार खनि,
कौस्तुभेर सह मैत्री जार॥
मुकुतार माला गाँथि, मणिराज दिबो तथि,
पराइबो तोमार गलाय।
हे सुमुखि! कहो कबे, एइ सेवा मोरे दिबे,
दासी करि राखिबे गो पाय॥''३४॥

⁂ इस श्लोक की श्रील विश्वनाथ चक्रवर्तिपाद की आनन्दचन्द्रिका टीका का अपूर्व आस्वादन कीजिये।

प्रान्तद्वये परिविराजित - गुच्छयुग्म, - विभ्राजितेन नवकाञ्चनडोरकेण।
क्षीणं त्रुटत्यथ कृशोदरि चेदितीव, बन्धामि भोस्तव कदातिभयेन मध्यम्?३५॥

अन्वय-भो कृशोदरि! (हे क्षीणमध्ये!) तव मध्यं क्षीणम् अथ त्रुटति चेत् इतीव अतिभयेन कदा प्रान्तद्वये परिविराजित-गुच्छ-युग्म-विभ्राजितेन (प्रान्त द्वये अग्रद्वये परि सर्वतोभावेन विराजितं यद्गुच्छयुग्मं तेन विभ्राजितेन शोभितेन) नवकांचन-डोरकेण (कांचन-दाम्ना) बन्धामि॥३५॥

अनुवाद-हे कृशोदरि! तुम्हारा क्षीण कटिदेश कहीं टूट न जाय, इसलिये बड़े भय के साथ दोनों तरफ झब्बों से सुशोभित नयी स्वर्णडोरी से तुम्हारी कमर कब बाँधूँगा?३५॥

स्वर्णडोर से कटिबन्धन

परिमलकणा व्याख्या-पिछले श्लोक में स्यमन्तक पहनाने को हुए, तो स्फूर्ति में विराम आ गया था। रो रहे थे-'साक्षात् सेवा कब दोगी?' सहसा सेवारस का स्फुरण हुआ। स्यमन्तक सेवा के पश्चात् अब कटि-बन्धन। दोनों छोरों पर झब्बे हैं, ऐसी स्वर्णडोरी से कटि-बन्धन। 'हे कृशोदरि (पतली कमर वाली)! मैं अत्यन्त भय के साथ तुम्हारी क्षीण कटि कब बाँधूँगी? कहीं टूट न जाय, इसी डर से काँपकर डोरी से बाँध दूँगी।' श्रीमती की क्षीण कटि देखकर तुलसी को आशंका है उसके टूट जाने की। पदकर्ता महाजन कहते हैं-''केशरि जिनि, कृश माझखानि, मुठे करि जाय धरा।'' स्वरूप के आवेश में प्रार्थना और स्फूर्ति में साक्षात् सेवारस का उपभोग! डोरी कंचनसूत्रमय। जिनकी सेवा करनी है, उनके मन की खबर लेनी होगी। अभीष्ट के मन को समझे बिना प्राणवन्त सेवा कभी नहीं होगी। भक्ति के प्रभाव से भक्त के आगे भगवान् के मन का पर्दा खुल जाता है। राधाकिंकरियाँ सर्वोपरि हैं, इन जैसा सेवा-सौष्ठव भगवान् के सेवक भी नहीं जानते। श्रीमती का सेवा-सौष्ठव सीखने के लिये श्यामसुन्दर भी राधाकिंकरियों का आनुगत्य स्वीकार करते हैं। भगवान् प्रेम के उपासक हैं, प्रेम उनका आराध्य तत्त्व है। राधारानी श्रीकृष्ण प्रेम की ही घनीभूत मूर्ति हैं-अखण्ड मादनाख्य महाभाव ही उनका स्वरूप है। इस तत्त्व की आराधना में किंकरी-भाव का ही पूरा गौरव है। श्रीराधा की प्रेममाधुरी आस्वादन करने के लिये श्रीराधा की भाव-कान्ति लेकर (कृष्ण) जब गौर बने, तो राधा की प्रेममाधुरी आस्वादन करने के पश्चात् भी उनके मन में इस गौरवमय किंकरीभाव के आस्वादन का लोभ जगा। किंकरीभाव आस्वादन से ही वे कूर्माकृति हुए! इसी भाव की उन्मादना में उनकी अस्थियों का संधि-विच्छेद हुआ! कूर्माकृति भाव शान्त होने पर अर्धबाह्य अवस्था में उनका प्रलाप हुआ-

''इँहा हैते आजि मुइँ गेलुँ गोवर्द्धने।
देखों जदि कृष्ण करे गोधन-चारण॥
गोवर्द्धने चड़ि कृष्ण बाजाइला वेणु।
गोवर्द्धनेर चौदिके चरे सब धेनु॥
वेणुनाद शुनि आइला राधाठाकुराणी।
ताँर रूप भाव सखि! वर्णिते ना जानि॥
राधा लइया कृष्ण प्रवेशिला कन्दराते।
सखीगण कहे मोके फूल उठाइते॥'' (चै०च०अन्त्य०-परि० १४)

सखियाँ श्रीश्रीराधामाधव की सेवा के लिये फूल चयन करने के लिये किंकरियों को ही कहती हैं। इसलिये यहाँ श्रीमन्महाप्रभु का किंकरीभाव-आस्वादन स्पष्ट है। उधर अस्थिसंधि-वियोग लीला में वे जब श्रीश्रीराधामाधव की जलविहार-माधुरी का आस्वादन कर मछुए के जाल में तीर पर आये, तो अर्धबाह्य अवस्था में भक्तों के आगे प्रलाप करने लगे-

''कालिन्दी देखिया आमि गेलाम वृन्दावन।
देखि - जलक्रीड़ा करे व्रजेन्द्रनन्दन॥
राधिकादि गोपीगण संगे एकत्र मेलि।
यमुनार जले महारंगे करे केलि॥
तीरे रहि देखि आमि सखीगण - संगे।
एक सखी सखीगणे देखाय से रंगे॥'' (चै०च०अन्त्य०-परि० १८)

सखियों सहित श्रीश्रीराधामाधव के जलविहार के समय किंकरियाँ ही तीर से उस जलविहार-माधुरी का दर्शन करती हैं। इसलिये यहाँ भी श्रीमन्महाप्रभु का किंकरीभाव-आस्वादन समझ में आया। ''आपनि करि आस्वादने, शिखाइलो भक्तगणे'' (वही)। स्वयं आस्वादन कर श्रीचरणाश्रित भक्तों को किंकरीभाव का महत्व सिखाया है। सांसारिक भाव से व्रजरस समझ में नहीं आता। श्रीमन्महाप्रभु के श्रीचरणाश्रित भक्त ही व्रजरस-आस्वादन के योग्य अधिकारी है। व्रजप्रेम का आस्वादन करने के लिये ऐश्वर्य की उपेक्षा कर माधुर्य का आश्रय लेना पड़ता है। वृन्दावन माधुर्य का ही राज्य है। व्रजरस की उपासना माधुर्य की ही उपासना हैं। लौकिक सत् बन्धु-बुद्धि चाहिये। कटिदेश सहसा कभी नहीं टूटता, किन्तु स्नेह की मूर्ति किंकरी की वही आशंका है। प्रेम क्या खोजता है? विषय का (जिसे प्रेम करते हैं, उसका) सुख ही प्रेम का एकमात्र काम्य है। जो प्रेमी हैं, वे देकर ही सुखी, होते हैं। प्रेमी चाहेगा-'तुम सुख से रहो।' ''व्रजेर विशुद्ध प्रेम, जेनो जाम्बुनद हेम, आत्मसुखेर जाँहा नाहि गन्ध'' (चै० च०)। श्रीराधा-भाव में श्रीमन्महाप्रभु बोले-

''कृष्ण मोर जीवन, कृष्ण मोर प्राणधन,
कृष्ण मोर पराणेर पराण।
हृदय-उपरे धरों, सेवा करि सुखी करों,
एइ मोर सदा रहे ध्यान॥
मोर सुख सेवने, कृष्णेर सुख संगमे,
अतएव देह देओं दान।
कृष्ण मोरे 'कान्ता' करि, कहे 'तुमि प्राणेश्वरी',
मोर हय दासी अभिमान॥'' (चै०च०अन्त्य०-परि० २०)

किंकरी का ध्यान है युगलकिशोर का सुखसाधन। श्रीराधारानी और श्रीकृष्ण ने परस्पर आत्मसमर्पण किया है। लीला का भार सखी-मंजरियों पर है। लीलायित श्रीयुगल उन्हीं के आश्रित हैं। राइ हैं उन्मादिनी। अनुरागरूपी दूती द्वारा अभिसारिका बनी एकाकिनी कुंज-द्वार पर आई हैं। कुंज के भीतर हैं श्रीकृष्ण। सखियाँ बाद में आई। कुंज के भीतर श्याम को देखकर राधारानी कहती हैं-'तुम लोग मुझे यहाँ क्यों ले आईं?' वाम्यरस

का आस्वादन देकर श्याम को तृप्त कर रही हैं। उत्कण्ठावश नागर कातर हो रहे हैं। महाभाव की सेवा कर धन्य होंगे। सखियाँ कितना मना रही हैं, पर वे किसी तरह भी श्याम के साथ मिलना नहीं चाहतीं। श्रीकृष्ण का उत्कण्ठा-सिन्धु उच्छ्वसित है। सभी के प्राणों में व्यथा है। वृन्दावन ने सोचा-'एक बार मैं चेष्टा कर देखता हूँ।' वर्षाहर्ष वन! आकाश में गड़गड़ कर मेघ बोल उठे। स्वामिनी ने डरकर प्राणनाथ का गला जा पकड़ा। सखियाँ कहती हैं-'धन्य सखि कादम्बिनि! आज की युगल-सेवा में सखियों की अपेक्षा तुम ही सुदक्ष हो।' युगल-सेवा कर वृन्दावन का मेघ भी धन्य है। प्रथम मिलन है। महाकवि कर्णपूर ने श्रीमन्महाप्रभु के पैर का अङ्गूठा चूसकर वर्णन किया है। कभी असहाय होकर श्याम किंकरी के शरणापन्न होते हैं। युगलप्रेम का सौष्ठव किंकरियाँ ही जानती हैं।

तुलसी सेवाराज्य में हैं। श्रीमती की शृंगारसेवा की स्फूर्ति प्राप्त हुई है। ''तुम्हारा कटि-देश क्षीण है। ऊपर गुरुभार, नीचे नितम्बों का विशाल भार। यदि टूट गया। यदि नृत्य के समय टूट जाय। इसीलिये सदा ही डर है।' तुलसी 'कृशोदरि' सम्बोधन के माध्यम से पूर्व लीला की कितनी-कितनी स्मृतियाँ स्वामिनी के हृदय में जगा रही हैं। धन्य दासी! साक्षात् सेवारस की ही मूर्ति! एक समय की बात। कुंज के भीतर युगल विलसित हैं। स्वामिनी की चेष्टा से श्याम के साथ लीला चल रही है। कृशोदरी (क्षीण कटि वाली स्वामिनी) के कटिदेश की कैसी अपूर्व भंगिमा है! अप्राकृत नवीन मदन तो आनन्द में विवश हैं। मादनरस का भार वहन करने में आनन्दमय का चित्तमन असमर्थ है। तरंगायित राधामाधुर्य से नागर विवश हो गये हैं। और राधारानी? वे जब भी श्रीकृष्ण को प्राप्त करती हैं, तभी उनके दो शत्रु आ जाते हैं-'आनन्द' और 'मदन'।

''जेकाले वा सपने, देखिनु वंशीवदने,
सेइकाले आइला दुइ बैरी।
आनन्द आर मदन, हरि निलो मोर मन,
देखिते ना पाइनु नेत्र भरि॥
पुन जदि कोनो क्षण, कराय कृष्ण-दरशन,
तबे सेइ घटी क्षण पल।
दिया माल्य-चन्दन, नाना-रत्न-आभरण,
अलंकृत करिमु सकल॥'' (चै० चै० मध्य०-परि० २)

जिसके दुर्लभ दर्शन वाले क्षणों का भी अभिनन्दन करने का संकल्प जगता है, उसी दुर्लभ नायक को गोद में पाकर भी सेवा नहीं कर पा रहीं! श्रीमती के हृदय में अपार व्यथा है। श्रीराधारानी की चेष्टा से श्याम का आनन्द-वैवश्य बढ़ ही रहा है। किंकरी-तुलसी कुंज के द्वार पर सटकर बैठी हैं और एक मदनगान गा रही हैं। सुनकर आनन्द-मूर्छित नागर उद्बुद्ध! तुलसी के गीत ने नागर की आनन्दमूर्छा दूर कर दी है। विलास आरम्भ हो गया है। अङ्गहीन अनंग को सांग बनाकर सेवा। इन्हीं सब लीलारसों की स्मृति स्वामिनी के हृदय में जगा रही हैं।

दोनों ओर सुन्दर झब्बे हैं-ऐसी एक नवकांचन डोरी हाथ में लेकर क्षीण कटि को बाँधने को होती हैं कि स्फुरण में विराम आ जाता है। हाहाकार करते हुए इस शृंगार-सेवा के लिये प्रार्थना करने लगे।

कनकगुणिमुच्चैर्मौक्तिकं मत्कराक्ते, तिलकुसुमविजेत्री नासिका सा सुवृत्तम्।
मधुमथन-महालि-क्षोभकं हेमगौरि, प्रकटतरमरन्द-प्रायमादास्यते किम्? ३६ ॥

अन्वय-हेमगौरि! ते तिलकुसुमविजेत्री सा नासिका (कर्त्री) मत्करात् मधुमथनमहालि-क्षोभकं (कृष्णभ्रमर-क्षोभजनकं) कनकगुणितं (स्वर्णगुणयुतं) सुवृत्तं (सवर्तुलं) उच्चै (उत्कृष्टं) मौक्तिकं प्रकटतरमरन्द प्रायं किम् आदास्यते? ३६ ॥

अनुवाद-हे हेमगौरि! तिल-पुष्प को जीतने वाली तुम्हारी वह नासिका क्या मेरे हाथ से मुक्तालोलक को सुव्यक्त मकरन्द की तरह ग्रहण करेगी? मुक्ता लोलक-स्वर्णतारयुक्त, सुगोल, उत्कृष्ट मोती का लोलक, जो श्रीकृष्णरूपी भृंग के मन में क्षोभ (अस्थिरता, लोभ) उत्पन्न करता है! ३६ ॥

स्वर्णतारयुक्त मुक्ता-लोलक

परिमलकणा व्याख्या-स्फूर्ति के विराम में जब अभीष्ट की सेवा का अभाव आता है, तो वह दु:ख सहन करना बड़ा कठिन हो उठता है। कभी-कभी तो मूर्छा तक आ जाती है। अभीष्ट की आहट पाकर मूर्छा भंग! स्फूर्ति के अभाव में फिर हाहाकार और सेवा के लिये प्रार्थना। इसी प्रकार का क्रम चल रहा है। इस श्लोक में मूर्छा आई लगती है। तभी स्फूर्ति में स्वामिनी मानो पुकार रही हैं-'तुलसि! लोलक नहीं पहनायेगी?' विरहकातर मूर्छित दासी को आह्वान कर करुणामयी स्वामिनी सेवा दे रही हैं। स्वामिनी के करुण आह्वान ने श्रीपाद को उद्बुद्ध कर दिया (जगा दिया)। रघुनाथ सेवा की प्रतीक्षा में बैठे हुए हैं। लगता है अब मिली, अब मिली। कुछ न मिले, तो जीवित रहने का उपाय क्या है? स्वामिनी के विरह-दावानल में दग्ध देह-लतिका, उनके कृपाजल-सिंचन को छोड़ प्राणरक्षा का और उपाय नहीं।

बाह्य आवेश मुझ-जैसे जीव के लिये प्रतिबन्धक है। मन को अन्य दिशा में ले जाता है। स्वरूप के साथ कोई सम्बन्ध नहीं। सांसारिक सम्बन्ध कितना प्रगाढ़ है, भूलकर भी भुलाया नहीं जाता। जिन बातों को लेकर मुझ-जैसा जीव पागल है, वे सभी अनित्य हैं। सभी जायेंगे, किसके पास खड़ा होऊँगा? कोई थोड़ा-सा मन देह-देहिकादिको और थोड़ा-सा भगवान् को देने की इच्छा करता है। किन्तु हृदय को प्राणों के खिचाव (आकर्षण) को बाँटने से श्रीमती की करुणा नहीं मिलेगी। सम्पूर्ण हृदय राधारानी को ही देना पड़ेगा। अन्य आवेश राधारानी के सम्बन्ध में बाधक है-यही है श्रीपाद आचार्यों की शिक्षा। इस आदर्श के अनुसरण के लिये ही व्रज में वास होता है। श्रीपाद प्रबोधानन्द सरस्वती ने (राधारससुधानिधि-६०) लिखा है -

---

''शुनो देवि! आमार आशय।
अयि राधे! कृशोदरि, वृन्दावन-अधीश्वरि,
कटि तब क्षीण अतिशय॥
पाछे ताहा भांगि जाय, ए आशंका करि ताय,
बन्धन करिबो स्वर्णडोरे।
दुपाशे थोप्ना तार, किबा शोभा चमत्कार,
कटिदेश करिबे उजोरे॥''३५॥

''कालिन्दीसलिले च तत् कुचतटी-कस्तूरिका-पंकिले,
स्नायं स्नायमहो कुदेहजमलं जह्यां कदा निर्मलः?''

''श्रीराधा की कुचप्रान्तलग्न (वक्षस्थल से लगी) कस्तूरी से पंकिल हुए यमुनाजल में स्नान करते-करते मैं कुदेहजमल (प्राकृत शरीर का संस्कार) का विसर्जन कब करूँगा?'' पाँचभौतिक नश्वर देह-दैहिकादि के साथ सम्बन्ध रखकर अर्थात् जड़ीय अभिमान में मत्त रहकर राधादासीत्व का अभिमान चित्त में नहीं जगाया जाता।

रघुनाथ विरह में मूर्छित हैं। स्वामिनी पुकार रही हैं-'तुलसि!' आहा! कैसा मधुर आस्वादन है! कितना अमृत है इस कण्ठस्वर में! स्नेह-पात्र किंकरी को पुकार रही हैं नाम लेकर। राग-साधक के प्राणों में भी थोड़ी-बहुत लालसा जगनी चाहिये-'हा स्वामिनि! इस तरह नाम लेकर मुझे कब बुलाओगी? वही अनन्त प्रतीक्षा लिये बैठा हूँ।'' धन्य हैं श्रीपाद दासगोस्वामी, जो सब भूलकर श्रीराधारानी के प्रिय स्थान उनके कुण्डतट पर पड़े श्रीराधा के दर्शन और साक्षात् सेवा पाने के लिये हृदय-विदारक आर्तनाद कर रहे हैं। अहा! क्या मैं किसी जन्म में इस भाव-सिन्धु की एक बूँद पा सकूँगा? इस प्रकार रोते-रोते साधक जितना ही भावाकुल होगा श्रीपाद गोस्वामिगण के हृदय में उदित रागचन्द्र का आभास साधक के स्वच्छ स्फटिक-मणि-जैसे निर्मल चित्त में उतना ही उदित होकर चित्त को उसी भाव से अनुरंजित करेगा। रागमार्गीय साधकों के प्रति परम करुणा करके ही श्रीपाद दासगोस्वामी यह अतुलनीय भाव सम्पत्ति विश्व में रख गये हैं। जो लोग संसारातीत नित्य लीला-कुंज-कानन में अपनी भावदेह से श्रीश्रीराधामाधव की प्रेम सेवा की अभिलाषा रखते हैं, उन लोगों के रागमार्ग में मानसभजन को सुगम करने के लिये ही श्रीपाद दासगोस्वामी ने नित्य परिकर होते हुए भी यह विशाल भावोच्छासमय स्मरण-पद्धति प्रकट की है।

स्वामिनी पुकार रही हैं-'आ तुलसि! लोलक नहीं पहनायेगी?' तुलसी की चिन्ता है- 'सभी गहने मैंने पहनाये, लोलक बाकी हैं; स्वामिनी स्वयं माँगती हैं कि नहीं, देखती हूँ; सोने के तार में लगा मुक्ता लोलक। क्या मेरे हाथ से लोगी? यह तुम्हारा बढ़ी प्रिय है। लोलक पहनाना ही होगी। नाक में सोना न रहने से निःश्वास-प्रश्वास में प्रियतम का अमंगल हो सकता है, इसी आशंका के कारण तुम लोलक पहनने की इच्छुक हो। आज्ञा-सेवा के लिये प्राण रोते हैं।' धन्य हैं किंकरी! इस तरह मन की बात जानकर सेवा करने के लिये सामर्थ्य और किसी में नहीं। श्रीपाद शुकमुनि ने माता यशोदा को 'कृष्णहितैषिणी' आख्या दी है। जिनके नाम, गुण का श्रवण-कीर्तन-स्मरण आदि अखिल विश्व का परम कल्याण करता है, उनकी भी कल्याण-चिन्ता में यशोदा माँ निरन्तर अधीर रहती हैं। इस महान प्रेम के बल से ही तो उन्होंने उस विभु श्रीकृष्ण को दाम (रज्जु) से बाँधकर 'दामोदर' रूप से प्रकट किया है, जिनके नाम-कीर्तन मात्र से महापातकी भी संसार-बन्धन से मुक्त होकर प्रेमानन्द प्राप्तकर चिरकृतार्थ हो जाता है। श्रीराधारानी श्रीकृष्ण के मंगल के लिये रन्धन हेतु नित्य नन्दीश्वर जाती हैं, कारण दुर्वासा ऋषि के वर से वे अमृतहस्ता हैं। उनके बनाये अन्न-भोजन से आयु वृद्धि और स्वास्थ्य लाभ सुनिश्चित है। स्वामिनी प्रतिदिन सूर्यपूजा कर सूर्य से प्राणनाथ के निरोग स्वास्थ्य की कामना करती हैं। व्रजप्रेम का यही स्वभाव है। तभी स्वामिनी श्रीकृष्ण-मंगल हेतु स्वर्णतारयुक्त मोती का लोलक तुलसी से माँग

कर ले रही हैं। लोलक पहनाते समय तुलसी मधुर-मधुर बातों से स्वामिनी के मन को आनन्दरस में डुबा रही हैं। 'तुम्हारी नासिका ने तिलकुसुम को भी जीत लिया है। मधुमथन (श्रीकृष्ण) के मन में लोभ जगाने वाली! उस जैसा वीर भी स्वयं को संभाल नहीं पाता।' श्रीकृष्ण के पूर्वराग में आया है-

''जब करु खेलि आलि सऐं वाला। हेरलुँ पथे जनु चाँदकि माला॥
अपरूप रूप नयने मझु लागि। अनुखन माधुरी मरमहि जागि॥
ए सखि ए सखि मोहे हेरि राइ। विहसि रहलि धनि गीम मोड़ाइ॥
सो मुख झलमल निरमल ज्योति। लोलित नासिक वेशर मोति॥
रंगिम जाद बिथारल पीठ। चकित हि मझु मन लागल दीठ॥
ओइछे सुकेशिनी हाम नाहि पेखि। चित मूरति हिये रहलहि लेखि॥
पदनख अंगुली जाबक शोभा। दश भइ चाँद अरुण बहु लोभा॥
सो पद-कमल हृदय करि सेव। गोविन्ददास जब अनुमति देव॥''

'तुम्हारी नासिका की शोभा स्वभावत: श्याम-भ्रमर में क्षोभ जगाने वाली है। ऊपर से उसमें लोलक और पहना रही हूँ। मुक्ता-लोलक सोने में लगा। नासिका तिलकुसुम की विजेत्री है। फूल है, मधु नहीं; भ्रमर नहीं आता। मधु गिरने से पूर्व जैसे झूलता है, उसी तरह तुम्हारी नासिका के आगे मुक्ता की छवि है।' तुलसी ने लोलक पहना दिया है। शोभा देखकर तुलसी विस्मित है! यह क्या लावण्यलता का नवीन बीज है? श्रीकृष्ण के मनरूपी तोते में लोभ उत्पन्न करने वाला। अथवा माधुर्यामृत वंशी? श्रीकृष्ण की नयनरूपी शफरी (मछली) को आकर्षित करने वाली। अथवा कन्दर्प का शर (वाण) है? नासिकारूपी तरकस से निकलकर श्रीकृष्ण के धैर्य में विप्लव मचाने के लिये दर्प प्रकट कर रहा है! तुलसी कहती हैं-'लोलक पहना दिया। रस का अपूर्व संस्पर्श लेकर हिल रहा है। तुम्हारे नि:श्वास-प्रश्वास से चंचल हो उठा है। नृत्य के समय इसमें कैसा मधुर स्पन्दन होगा-मानो अब गिरा, गिरा। इसके भीतर शृंगार रस की शोभा है! रस से बाहर कोई वेश ही नहीं। परस्पर के आस्वादन को उच्छ्वसित करता है। मन को डुबाने से भोग समझ में आता है। जिस नासिका की शोभा श्याम आस्वादन करते हैं, उसमें लोलक न होने से नहीं चलता। मधु बाहर निकल आया है, भ्रमर के लिये एकान्तभाव से लोभनीय है।' तुलसी की बातें सुन-सुनकर स्वामिनी की स्वर्ण कान्ति रह-रहकर फूट उठती है, तभी सम्बोधन है 'हेमगौरि!' सहसा स्फूर्ति भंग हो गई। चक्षु मानो ज्योति-शून्य हो गये। 'हा हेमगौरि! तुम कहाँ हो? मेरे हाथ से लोलक माँगकर कब पहनोगी?'

''शुनो पुन हे राधिके! कनक-वरणाधिके!
तिलफूल-जिनि नासामूले।
निर्मल मुकुता वृत्ते, गाँथिया कनक-सूत्रे,
पराइबो निज करे तूले॥
हेरि से मुकुताफल मकरन्द ढल-ढल,
श्याम - अलि हइबे मोहित।

अङ्गदेन तव वामदोः-स्थले, स्वर्णगौरि नवरत्न-मालिकाम्।
पट्टगुच्छपरिशोभितामिमा, - माज्ञया परिणयामि ते कदा? ३७॥

अन्वय-स्वर्णगौरि! कदा ते (तव) आज्ञया (आदेशेन) पट्टगुच्छपरिशोभिताम् इमां नवरत्नमालिकां (रत्नमालां) अङ्गदेन (सह) तव वामदोःस्थले (वामभुजरूप स्थाने) परिणयामि? ३७॥

अनुवाद-हे स्वर्णगौरि! तुम्हारे आदेश से तुम्हारी बायीं भुजा में अङ्गद (बाजूबन्द) के साथ पट्टगुच्छपरिशोभित इस नवरत्नमाला का परिणय मैं कब कराऊँगा? ३७॥

नवरत्नमाला का परिणय

परिमलकणा व्याख्या-श्रीपाद की चित्त सेवा-रस में तन्मय है। वे कभी स्वेच्छा से, कभी आदेश की सेवा कर रहे हैं। महाप्रभु के परिकररूप में सेवारस का आस्वादन है। अपने साधनमय चरित्र से दिखा रहे हैं-आचार्यपादगण का आनुगत्यमय भजन। श्रीरघुनाथ श्रीरूप के अनुगत हैं।

''आभीरपल्लीपतिपुत्र-कान्ता, - दास्याभिलाषातिबलाश्ववारः।
श्रीरूपचिन्तामलसप्ति-संस्थो, मत्-स्वान्तदुर्दान्त-हयेच्छुरास्ताम्॥''

श्रीपाद ने अभीष्ट सूचनस्तव में लिखा है- ''श्रीराधादास्य-विषयक मेरी अभिलाषारूपी बलवान् अश्वारोही श्रीरूप के निर्मल चिन्तनरूपी महाघोटक (घोड़े) पर चढ़कर श्रीराधा के दास्यकर्म में नियुक्त रहे।'' तात्पर्य यही है कि श्रीरूप के आनुगत्य में ही उनकी अभिलाषा श्रीराधा के दास्य में विद्यमान रहे। जो श्रीचैतन्य-चरण सरोजों से निकले दिव्य प्रेम-मकरन्द पीने में मत्त मधुकर हैं, श्रीराधा का रहोदास्य पाने के लिये जो सदा व्याकुल हैं, उन्हीं व्रजरस के ऋषियों रूप-रघुनाथ के श्रीचरण-आनुगत्य के बिना इस वस्तु का मर्म नहीं जाना जा सकता। ''रूप रघुनाथ बलि हइबे आकूति। कबे हाम बुझब से युगल-पिरीति॥'' (ठाकुर महाशय)।

रघुनाथ स्वरूपाविष्ट अवस्था में स्वामिनी के श्रीअङ्ग में अलंकार पहना रहे हैं। साधना के जीवन में कितनी बड़ी वस्तु है! श्रीरूप-रघुनाथ की कृपा से ही साधक का मन इस रस के आस्वादन की योग्यता प्राप्त करेगा। सेवा पानी है, तो श्रीराधारानी को भी चिन्तन में पाना होगा। तीव्र उत्कण्ठा के बिना इसका माधुर्य नहीं समझा जा सकता। श्रीरूप-रघुनाथ की उत्कण्ठा कितनी सुतीव्र है! श्रीरूप की 'उत्कलिकावल्लरी' और श्रीरघुनाथ की 'विलापकुसुमांजलि' स्तव ही इसके प्रमाण हैं। उन्होंने किया है राधारानी के लिये विलाप; साधक यदि उनके लिये भी विलाप कर सके, तो उनके चित्त में उसके भाव का संक्रमण होगा। श्रील ठाकुर महाशय ने विलाप किया है-

''काँहा मोर स्वरूप-रूप काँहा सनातन।
काँहा दास रघुनाथ पतित-पावन॥

आर बा कहिबो किबा, एइ सेबा मोरे दिबा,
एइ मोर मनेर वांछित॥''३६॥

काँहा मोर भट्टयुग काँहा कविराज। एक काले कोथा गेला गोरा नटराज॥
पाषाणे कुटिबो माथा अनले पशिबो। गौरांग गुणेर निधि कोथा गेले पाबो॥
से सब संगीर संगे जे कैलो विलास। से संग ना पाइया कान्दे नरोत्तमदास॥''

यह विरह की ज्वाला है-हर्ष, विषाद, सुख, दु:ख-सिन्धु से निकली मृतसंजीवनी सुधा-सदृश! इस सुधा का आस्वादन, इस महाविरह की स्मृति रसिक-भागवतों के हृदय में चिर सजीव है। 'हा स्वामिनि! जीवन के विनिमय में बस इतना समझना चाहता हूँ कि तुम्हीं मेरी सर्वस्व हो। श्रीचरण-प्राप्ति के अयोग्य हूँ, फिर भी बस इतना ही समझा दो कि इस संसार में तुम्हें छोड़ मेरा और कोई नहीं।' रागसाधक के प्राणों में अन्तत: ऐसी प्रार्थना जगनी चाहिये।

रघुनाथ रो रहे हैं। कितनी आर्ति, कितनी वेदना! निष्ठा की सीमा नहीं। साक्षात् दर्शन चाहिये। श्रीकुण्डेश्वरी की दर्शन-लालसा लिये कुण्ड के तीर पर पड़े हैं। अचल अटल प्रतिज्ञा। कुण्डेश्वरी के दर्शन किये बिना कुण्डतीर त्याग कर कहीं नहीं जायेंगे। श्रीपादों की महावाणी की सेवा करते-करते ही भाग्यवान् साधक के प्राणों में भी उत्कण्ठा जगेगी। महाशक्तिशाली वाणी! रागसाधक को हाथ पकड़कर इष्ट के चरणों में ले जायेगी। वाणी ही हृदय में तीव्र स्वरूपाभिमान जगायेगी। मुझ-जैसे जीव में श्रीगुरु के कृपाप्रदत्त स्वरूप का जागरण कहाँ है? राधा-किंकरीत्व का अभिमान नहीं है। देह-दैहिकादि लेकर मौजमस्ती कर रहा हूँ। अपनी विद्या-बुद्धि की कितनी बड़ाई करता हूँ, किन्तु स्वयं को ही स्वयं नहीं पहचान पाया। ''मैं राधाकिंकरी हूँ'-यह बात मन में आते ही कितनी कोमलता, कितनी सरसता प्राणों में आ जाती है। तुम मेरा स्वरूप जगा दो स्वामिनी! और कुछ नहीं चाहता।

रघुनाथ लोलक पहनाकर चुपचाप बैठे हैं। गर्विनीदासी। स्वामिनी आज्ञा कर रही है-'और क्या पहनायेगी?''' 'हे स्वर्णगौरि! तुम्हारी आज्ञा से तुम्हारी बायीं भुजा में अङ्गद (बाजूबन्द) के साथ नवरत्नमाला का विवाह करा दूँगी।' माला स्वामिनी के लिये बड़ी लोभनीय है, वे इसे बड़ा पसन्द करती हैं। श्यामसुन्दर के मंगल के लिये नवरत्नमाला धारण करती हैं। 'प्रियतम का मंगल होगा।' प्रियतम के मंगल के लिये सर्वदा व्याकुल हैं। सूर्यपूजा व्रतादि करती हैं-'श्यामसुन्दर का आपद् विपद् नष्ट हो। धीरलालित्यादि बुद्धि बढ़े। मेरे साथ सदा ही शृंगाररस का खेल खेले।' पट्टडोर में गुँथी है नवरत्नमाला। कोने में पुष्प की तरह सुन्दर झब्बा झूल रहा है। 'बायीं भुजा के अङ्गद के साथ नवरत्नमाला का विवाह कराऊँगी' कहकर तुलसी एक संकेत कर रही हैं। स्वामिनी हैं भावमयी। भाव और मूर्ति एक ही वस्तु है। तुलसी अङ्गद के साथ नवरत्नमाला का मिलन करा रही हैं या श्यामसुन्दर के साथ उनका मिलन करा रही हैं-समझ नहीं पा रहीं। द्रवित (पिछले) स्वर्ण को भी लज्जित करने वाली कान्तिमाला श्रीअङ्ग से रह-रहकर निकल रही है! तभी 'स्वर्णगौरि' सम्बोधन किया है। जो (राधारानी) अपनी स्वाभाविक अङ्ग-छटा से वृक्षलताओं की सुषमा से श्यामल वृन्दावन को स्वर्ण आलोक में रंग देती हैं! श्रील प्रबोधानन्द सरस्वती पाद ने लिखा है-''नवचम्पक-गौरकान्तिभि: कृत वृन्दावन हेमरूपताम्। भज कामपि विश्वमोहिनीं मधुरप्रेमरसाधिदेवताम्॥'' (संगीतमाधव) - ''जो नवचम्पक-गौरकान्ति से हरे रंग के वृन्दावन को स्वर्णिम वृन्दावन में परिणत कर रही हैं, उन्हीं प्रेमरसाधिदेवी विश्वमोहिनी श्रीराधारानी का भजन करो।'' किंकरी तुलसी उसी स्वभावसुन्दर रूप में श्याम-अनुराग का उच्छ्वास जगा रही हैं!

कर्णयोरुपरिचक्रशलाके, चंचलाक्षि निहिते मयका ते।
क्षोभकं निखिल-गोपबधूनां, चक्रवद्भ्रमयतां मुरशत्रुम्॥३८॥

अन्वय-चंचलाक्षि! (श्रीकृष्णभ्रान्ति दर्शनाय चंचले ईक्षणे यस्याः हे तथाविधे!) ते (तव) कर्णयोः उपरि मयका निहिते (अल्पेन मया निहिते दत्ते) चक्रशलाके (शलाकायुक्त-चक्राकार-कर्णाभरणविशेषौ) निखिलगोपबधूनां क्षोभकं मुरशत्रुं (श्रीकृष्णं) चक्रवत् भ्रमयताम् (भ्रान्तं कारयताम्) ॥३८॥

अनुवाद-हे चंचल नेत्रे! श्रीराधे! मुझ अयोग्य ने तुम्हारे कानों को जो चक्रशलाकायें अर्पित की हैं, वे समस्त गोपबधुओं के क्षोभकारी श्रीकृष्ण को भी घुमायेंगी॥३८॥

चक्रशलाका धारण

परिमलकणा व्याख्या-क्रमानुसार सेवा का स्फुरण, फिर स्फूर्ति में विराम-इसी प्रकार चल रहा है। एक साथ अपूर्व तृप्ति और वेदना का आस्वादन। आस्वाद्य वेदना। यह आनन्द की ही घनीभूत परिपक्वता है।

अनुरागिणी स्वामिनी ने नवरत्नमाला ग्रहण करने की इच्छुक होकर बायीं भुजा बढ़ा दी है। आहा! बाहु की कैसी अपूर्व शोभा है! तुलसी विमोहित है। महाभाव की बाहु-कैसी कोमलता, कैसी सरसता! ललित-लावण्यशाली बाहु! प्राकृत बाहु नहीं। कोई-कोई स्वर्णमृणालिनी से तुलना करते हैं। कोई कहते हैं-''नैते स्वर्णमृणाल के रतिपतेर्ये पाशतामागते'' (गोविन्दलीलामृतम्)-यह स्वर्णमृणाल नहीं, यह मानो कन्दर्प का पाश है। श्रीकृष्णरूपी तमालतरु को लपेटने के लिये सुदक्ष लतापाश-स्वरूप। तुलसी स्वामिनी के चित्त में अतीत लीला की कितनी-कितनी स्मृतियाँ जगा रही हैं। धन्य दासी! प्रेम की ही मूर्ति! कितना प्रेम कर अलंकार पहना रही हैं। स्मरणनिष्ठ साधक भी सेवा-काल में प्रिय ईश्वरी को कोटि प्राणों से भी अधिक प्रेमकर सभी सेवायें अनुराग के साथ करे। सेवा-स्मरण का नियम किया है, लीलायें कण्ठस्थ कर एक के बाद एक सेवा का स्मरण कर लिया। नियम-पूर्ति की ओर ही लक्ष्य है, इस बात की ओर नहीं कि सेवायें प्रीतिरस-वासित हुई कि नहीं। इस प्रकार का स्मरण रागानुगा भजन नहीं, कारण-रागभक्ति लोभमूलक है, शास्त्रशासन का भजन नहीं। लोभ ही रागभक्ति की प्रवृत्ति लाती है। नित्यसिद्ध परिकरों की भाव परिपाटी का श्रवण करने से इस प्रकार की भाव-प्राप्ति के लिये जो लोभ उत्पन्न होता है, वही रागभक्ति का अधिकार प्रदान करता है। जो लोग भाव-प्राप्ति चाहते हैं, वे अपने भाव के परमाश्रय-स्वरूप व्रजजनों के आनुगत्य में ही सेवा-चिन्तन करते हैं। ''तद्भावलिप्सुना कार्या व्रजलोकानुसारतः'' (भ० र० सि०)। गौड़ीय वैष्णवों के परमाश्रय व्रजजन रूप-रघुनाथ ही हैं। इसलिये इन लोगों की सेवा प्रार्थना की भावपरिपाटी का श्रवण छोड़ लीलास्मरण-साधन के सुचारुरूप से सफल होने की सम्भावना नहीं।

स्वामिनी का हाथ पकड़ने को होती हैं कि अभाव-बोध। तीव्र यातना। हाहाकार के साथ सेवा-प्रार्थना।

''कबे स्वर्णगौरि! कहो, कनक-अङ्गद सह,
तुया बाम बाहुके बेड़िया।
नवरत्नमाला गाँथि, पट्टगुच्छ दिया तथि,
पराइबो तब आज्ञा पाइया॥''३७॥

यद्यपि नित्यकिंकरी हैं, तथापि जिस अवस्था में विद्यमान हैं, वह मानो ठीक पूर्वराग की तरह है। साक्षात् प्राप्ति का अभाव प्रतिमुहूर्त जगता है। कैसी विपुल आर्ति है! 'तुम्हारे ही कुण्डतट पर पड़ा हुआ हूँ। दीन जानकर चरणों में खींच लो।' व्याकुलता इन लोगों से सीखनी होगी। अभीष्ट छोड़ कहीं मन नहीं। साधन-जीवन का स्वभाव ही ऐसा है। मन केवल उन्हीं (इष्ट) को चाहेगा, और कुछ नहीं चाहेगा। व्यावहारिक राज्य में आवेश रहेगा, तो उस आवेश को लेकर श्रीराधारानी के साथ घनिष्टता नहीं होगी। मुझ-जैसा जीव वास्तविक निजजन को दूर रखकर अनित्य को लेकर व्यस्त है। वृन्दावन वास करते हुए भी यह अनुभूति कहाँ है? भावुकभक्त व्रज का प्रकृत स्वरूप अनुभव करते हैं। भक्तिहीन को व्रजधाम प्राकृत-जैसा ही दीखता है। साधक को प्राकृत संस्कार दूर कर अप्राकृत रस के संस्कार ग्रहण करने होंगे। आत्मा की खुराक है प्रेमरस, उसका आस्वादन प्राप्त करना होगा, और प्राप्त करना होगा उन लोगों का मधुमय संग।

साक्षात् सेवा के अभाव में श्रीपाद कुण्डतीर पर रोदन कर रहे हैं। सम्पूर्ण मन राधारानी को ही अर्पित है। अन्य दिशा में मन देने से स्वामिनी भाग जाती हैं, श्रीपादगण की यही आदर्श शिक्षा है। 'तुम में ही आविष्ट क्यों नहीं होऊँगा? क्यों नहीं कर पाऊँगा पूर्ण कृतार्थता-सम्पादन? पंकिल मन को महावाणी ही विशुद्ध बनायेगी।' जिसका ऐसा भाव है, वही भक्तवीर है। श्रीपाद की विरह-वेदना की तीव्रता से प्राण कण्ठ में आ गये हैं। इसी समय स्फूर्ति! तीव्र स्फुरण। साक्षात्कारबत् ही निविड़ अनुभूति। अब वे रघुनाथ नहीं, तुलसी मंजरी हैं। 'स्वामिनि! तुम्हारे कानों में चक्रशलाका (टौप) पहना दीं।' 'स्वामिनी के चेहरे पर मृदुमन्द हँसी! कैसी अपूर्व है उसकी माधुरी। ''निरमल वदन, हासरस परिमले, मलिन सुधाकर अम्बरे रोइ'' (पदकर्ता)। तुलसी बिना संकोच सेवा कर रही हैं। स्वामिनी उनकी सेवा ग्रहण भी कर रही हैं। यह क्या केवल मनः कल्पना है? वे भावना की सभी सेवा ग्रहण करती हैं। सेवा की रसमाधुरी स्वयं आस्वादन कर शिक्षा दी है-''व्रजे राधाकृष्ण-प्रचुरपरिचर्यामिह तनु'' (मनःशिक्षा)। श्रीराधा के प्राणबन्धु की भावना (स्मरण) द्वारा सेवा करो। वे (श्रीश्रीराधाकृष्ण) समस्त मानस-सेवा ग्रहण करते हैं। मानससेवा बाह्यसेवा का प्राण है।

''मानसेनोपचारेण परिचर्य हरिं सदा।
परे वाङ्मनसाऽगम्यं तं साक्षात् प्रतिपेदिरे॥''
(भ० र० सि० में पुराण वचन)

अर्थात् किसी-किसी भक्त ने मानसोपचार द्वारा श्रीहरि की निरन्तर सेवा करके भी श्रीहरि के साक्षात् दर्शन किये हैं। इस श्लोक की व्याख्या में श्रीमत् जीवगोस्वामिपाद ने ब्रह्मवैवर्तपुराण से प्रतिष्ठानपुर के मानस सेवा निष्ठ ब्राह्मण के चरित्र का उल्लेख किया है, जिनकी स्मरण में पकायी खीर से साक्षात् हाथ की अँगुली जल गई थी। स्मरण के प्रगाढ़ होने पर ध्यान होता है, और ध्यान परिपक्व होते ही स्फुरण होता है। तीव्र स्फुरण की अवस्था में तुलसी ने स्वामिनी के कानों में चक्रशलाका पहनाई। तब स्वामिनी थीं आवेश में। बायें हाथ से रत्नमाला पहनने का आवेश उन्हें अभी भी है। जाने किसे खोज रही हैं। भावमयी हैं, भाव का ही विग्रह हैं। स्वामिनी का मन वही हैं। वे चंचल नेत्रों से जाने किसका अन्वेषण कर रही हैं। तुलसी उनका मनोयोग आकर्षित करती हैं-'हे चंचलाक्षि (चंचल नेत्रों वाली)!' स्वामिनी कहती हैं-'अलंकार तो पहना दिये। क्यों पहनाये? किसकी आशा में?'' तुलसी उनकी बात का उत्तर देती हैं-'अखिल गोप-बन्धुओं के मन में क्षोभ,

उत्पन्न करने वाले मुर-शत्रु (श्रीकृष्ण) को चक्र की तरह घुमायेगी (यह चक्रशलाका)-इसलिये!' अर्थात् निरुपम सौन्दर्य-माधुर्यवती समस्त गोप-सुन्दरियाँ भुवनमोहन श्यामसुन्दर को चाहती हैं, फिर भी वे राधाविरही अपनी अभीष्ट वस्तु कहीं न पाकर घूम-घूमकर राधारानी के साथ मिलित होते हैं। दूती ने पूर्वराग की अवस्था में राधाविरही श्यामसुन्दर की दशा का वर्णन श्रीमती के आगे किया था-

''चम्पक-दाम हेरि चित अति कम्पित
लोचने बहे अनुराग।
तुया रूप अन्तरे जागये निरन्तर
धनि धनि तोहारि सोहाग॥
वृषभानु-नन्दिनी जपये राति दिनि
भरमे ना बोलयेआन।
लाख-लाख धनि बोलये मधुर वाणि
स्वप्ने ना पातये कान॥
''रा'' कहि 'धा' पहुँ कहइ ना पारइ
धारा धरि बहे लोर।
सोइ पुरुषमणि लोटाय धरणी पुन
को कह आरति ओर॥
गोविन्ददास तुया चरणे निवेदल
कानुक एतहुँ सम्वाद।
नीचये जानह तछु दुख-खण्डक
केवल तुया परसाद॥''

तुलसी कहती हैं-'सामान्य अलंकार ही है, फिर भी मैं चाहती हूँ कि मेरा पहनाया अलंकार उसे घुमाये। यही आकांक्षा लेकर पहनाया है। कृष्ण को क्षुब्ध करे तुम्हारे लिये चक्कर कटाये। तुम्हें खोजते-खोजते तुमसे आ मिले।' मंजरियों को राधारानी के लिये उत्कण्ठित कृष्ण बड़े ही प्रिय हैं। दासी गर्विनी है। राधारानी के रूपमाधुर्य के गौरव से किंकरी का हृदय भरा है। कहती हैं-'तुम्हारी यह चक्रशलाका चक्र की तरह ही मुरशत्रु को घुमायेगी। उसे तुम्हारे पास लायेगी ही।' तुलसी श्रीकृष्ण के शत-शत अनुभव देकर राधारानी की सेवा कर रही हैं। 'मयका' दैन्य का सूचक है। 'मैं तुम्हारी सेवा के योग्य नहीं। तुम करुणामयी हो, अपने गुणों से सेविका मान स्वीकार किया है। तुम श्याम के लिये कातर हो। तुम्हारे प्रिय को नहीं ला पाई। हाय! मैं हतभागिनी हूँ। मैं नहीं ला पाई, फिर भी तुम प्रेममयी हो। तुम्हारे कानों में यह जो चक्रशलाका पहनाई हैं, यही तुम्हारे श्याम को घुमा-घुमाकर तुम्हारे पास खींच लायेंगी। समस्त गोपबधुओं के क्षोभकारी मुरशत्रु को भी क्षुब्ध (अस्थिर) कर देंगी।' गोपबालाओं ने श्रीकृष्ण के सौन्दर्य-माधुर्य पर अपने क्षोभ की बात रासरजनी में स्वयं ही बताई है-

''वीक्ष्यालकावृतमुखं तव कुण्डलश्रीगण्डस्थलाधरसुधं हसितावलोकम्।
दत्ताभयंच भुजदण्डयुगं विलोक्य वक्षःश्रियैकरमणंच भवाम दास्यः॥''

(भा० - २०/२९/३९)

''हे सुन्दर! तुम्हारे अलकावृत मुखकमल पर कुण्डलों की शोभा बढ़ाने वाले गण्डस्थल, सुधामय अधर और ईषत हास्य युक्त सुशोभन दृष्टि देखकर एवं अभयप्रद बाहुदण्डयुगल तथा अखिल शोभा का आधार परम रमणीय तुम्हारा वक्षस्थल देखकर हम लोग तुम्हारी दासी हो गईं हैं।'' श्रीमन्महाप्रभु ने गोपीभाव से इस श्लोक का आस्वादन कर जो रसोद्‌गार प्रकट किया है, वह सत्य ही अपूर्व है!

''कृष्ण जिति पद्‌मचान्द, पातियाछे मुख-फाँद, ताते अधर-मधुस्मित चार।
व्रजनारी आसि-आसि, फान्दे पड़ि हय दासी, छाड़ि निज पति-घर-द्वार॥
बान्धव! कृष्ण करे व्याघ्रेर आचार।
नाहि गणे धर्माधर्म, हरे नारी-मृगी-मर्म, करे नाना उपाय ताहार॥
गण्डस्थल झलमल, नाचे मकर-कुण्डल, सेइ नृत्य हरे नारीचय।
सस्मित-कटाक्ष-वाणे, ता सभार हृदये हाने, नारीबधे नाहि किछु भय॥
अति उच्च सुविस्तार, लक्ष्मी-श्रीवत्स-अलंकार, कृष्णेर जे डाकातिया वक्ष।
व्रजदेवी लक्ष लक्ष, ता सभार मनोवक्ष हरिदासी करिबारे दक्ष॥
सुबलित दीर्घार्गल, कृष्णभुज-युगल, भुज नहे - कृष्णसर्प-काय।
दुइ शैलछिद्रे पैशे, नारीर हृदये दंशे, मरे नारी से विषज्वालाय॥
कृष्ण - कर पद - तल, कोटिचन्द्र सुशीतल, जिति कर्पूर वेणामूल चन्दन।
एकबार जारे स्पर्शे, स्मर ज्वाला विषनाशे, जार स्पर्शे लुब्ध नारीर मन॥''

(चै० च० अन्त्य० - परि० १५)

'इस प्रकार व्रजनारियों को मोहने वाले श्याम को भी मोहित कर तुम्हारे पास खींच लायेगा मेरा पहनाया अलंकार।' आचार्यपादगण ने भजन भी किया है, प्रचार भी किया है। दोनों ही विषयों में आदर्श। कमरे का द्वार बन्द कर रो रहे हैं। कभी कुंज-कुंज में रोते घूम रहे हैं। पदकर्ता ने गाया है-

''छेंड़ा काँथा मात्र गाय, मुखे राधाकृष्ण गाय, परिधाने छेंड़ा बहिर्वास।
कभु काँदे कभु हासे; कभु प्रेमानन्दे भासे, कभु भिक्षा कभु उपवास॥
व्रजपुरे घरे-घरे, माधुकरी भिक्षा करे, एइ रूप कथोदिन थाके।
गौरांगेर जतो गुण, कहे रूप-सनातन, ''हा नाथ! हा नाथ!'' बोलि डाके॥
ताहा छाड़ि कुंजे-कुंजे, प्रेमे राधाकृष्णे खोजे, फलमूल करये भक्षण।
उच्चैःस्वरे आर्तनादे, राधाकृष्ण बोलि काँदे, एइरूप थाके कथोदिन॥
कतो दिन अन्तर्मना, छापान्न दण्ड भावना, चारिदण्ड निद्रा वृक्षतले।
स्वप्ने राधाकृष्णे देखे, नामगाने सदा थाके, अवसर नाहि एकतिले॥''

कदा ते मृगशावाक्षि चिबुके मृगनाभिना।
बिन्दुमुल्लासयिष्यामि मुकुन्दामोदमन्दिरे ? ३९ ॥

अन्वय–मृगशावाक्षि ! (मृगशावस्य अक्षिणी इव कृष्ण–वशीकारयोग्ये कर्णमूल–निकटा–लम्बिनी अक्षिणो यस्या: हे तथाविधे) कदा ते (तव) मुकुन्दामोदमन्दिरे (मुकुन्दस्य आमोदमन्दिरे हर्षगृहे) चिबुके (अधरस्याधो देशे) मृगनाभिना (कस्तूर्या कृत्वा) बिन्दुमुल्लासयिष्यामि ? ३६ ॥

अनुवाद–हे मृगनयने ! श्रीकृष्ण के आमोद–मन्दिर रूपी तुम्हारे चिबुक पर मैं कस्तूरी से बिन्दु–रचना कब करूँगा ? ३९ ॥

चिबुक पर कस्तूरी बिन्दु

परिमलकणा व्याख्या–श्रीपाद ने स्फूर्ति में स्वरूपावेश में श्रीमती के कानों में चक्रशलाकायें पहनाई हैं। अब चिबुक (ठोड़ी) पर कस्तूरी बिन्दु लगायेंगे। चक्रशलाका पहनाने के बाद स्फूर्ति में विराम आ जाने से हाहाकार करने लगे थे। जातप्रेम भक्त की विरह–वेदना की तीव्रता ही निविड़ होती है, फिर श्रीपाद तो महाभावाराज्य में हैं। रति दशा में भगवत रूप–गुण आदि की स्फूर्ति में साधक अपार आनन्द का अनुभव किया करते हैं। किन्तु प्रेम के स्तर पर रूप–गुणादि की स्फूर्ति में भी पूर्ववत् आनन्द नहीं होता, तब तो और भी कुछ विशेष के लिये मन लालायित हो उठता है–वह है साक्षात् दर्शन। श्रीपाद महाभाव के स्तर पर हैं, अतएव साक्षात् दर्शन के लिये हृदय भरा है आर्ति और उत्कंठा से। स्फूर्ति और साक्षात् दर्शन के बीच की एक अवस्था है, उसे साक्षात्कारकल्प या विस्फूर्ति (विशेष भाव से या प्रगाढ़ भाव से स्फूर्ति) कहा जाता है। श्रीपाद का स्फुरण पूरा–पूरा विस्फूर्ति है। उनकी क्या बाह्य दशा और क्या स्फूर्ति, चित्त ने एकान्त भाव से श्रीराधाचरणों को केन्द्र बना रखा है। जहाँ सम्पूर्ण आत्मसमर्पण है, वहाँ बाँटा बाँटि नहीं होती। कुछ संसार को या देह–दैहिकादि को

ऐसे आचार्य महापुरुषों को पाकर (हम लोग) किस प्रकार दिन काट रहे हैं ! मन लगाकर भजन करने से कुछ न कुछ अनुभव होगा ही। रूप–गुण–लीला का आभास प्राप्त होगा, और प्राप्त होगा उन लोगों की करुणा का अनुभूतिरस ! गोस्वामिपाद ने कहा, अपने अभीष्ट की लीलाकथा में आसक्ति श्रेष्ठ साधना है। इस कथा के श्रवण–कीर्तन से मन धीरे–धीरे स्वामिनी के चरणों में चला जायेगा। चक्रशलाका पहनाने के पश्चात् श्रीपाद के स्फुरण में विराम आ गया, फिर क्रन्दन और विलाप।

''चंचलनयनि ! राधे ! एइ मोर मनोसाधे,
तुया पदे करि निवेदन।
कर्णद्वये चमत्कार, चक्रशाला अलंकार,
करेछि जे सुखे समर्पण॥
निखिल गोपीर मन, करे जेइ विमोहन,
सेइ श्यामचाँदे अनायासे।
सर्वदा चक्रेर न्याय, भ्रमण कराबे हाय !
से शोभार दरश पियासे॥''३८॥

दिया, जो बचा इष्ट को दे दिया-इस प्रकार प्रेमसिद्धि नहीं होती। सभी इष्ट-चरणों को देना पड़ेगा। निष्कपट भाव से आश्रय लेना होगा। ''निष्पकटे ना भजिनु तोमा'' (ठाकुर महाशय)। अन्य वासना रखना ही हृदय की कपटता है। अन्य अभिलाषा-शून्य हुए बिना प्रेम की साधना नहीं होती। प्रतिष्ठाशा साधक का महाशत्रु है। सर्वत्यागी को भी प्रतिष्ठारूपी शूकरी-विष्ठा को स्पर्श करने की इच्छा होती है। ''मैं ज्ञानी हूँ, गुणी-पण्डित-भजनानन्दी हूँ, मैं यशोभोगी होकर सबके ऊपर प्रभुत्व रखकर सुखी होऊँगा''- ऐसी आकांक्षामयी मनोवृत्ति को ही 'प्रतिष्ठाशा' कहा जाता है। इस जैसा भक्तिसाधना का विघातक (बाधक) और कुछ नहीं। साधन की तरणी (नाव) को चोराबालि (पोली बालू) की तरह रसातल में ले जाती है। श्रीपाद ने मनःशिक्षा में लिखा है-

''प्रतिष्ठाशा धृष्टा श्वपचरमणी मे हृदि नटेत्,
कथं साधु-प्रेमा स्पृशति शुचिरेतन्ननु मनः।
सदा त्वं सेवस्व प्रभुदयित - सामन्तमतुलं
यथा तां निष्काश्य त्वरितमिह तं वेशयति सः॥''

''हे मन! प्रतिष्ठाशारूपी धृष्ट श्वपचरमणी मेरे हृदय में नृत्य कर रही है, अतएव शुचि निर्मल साधुप्रेम मेरे हृदय को कैसे स्पर्श करेगा? तुम कृष्णभक्तरूपी सामन्तों की सेवा करो, वे लोग इस कुलटा रमणी को हृदय से निकालकर साधुप्रेम को स्थापित करेगें।''

''ना करिहो असत् चेष्टा, लाभ पूजा प्रतिष्ठा,
सदा चिन्तो गोविन्दचरण।
सकल विपत्ति जाबे, महानन्द सुख पाबे,
प्रेमभक्ति परम कारण॥'' (प्रे० भ० च०)

कर्तव्य की खातिर खींचातानी में पड़े रहने से निष्कपट भाव से आश्रय नहीं लिया जायेगा। मैं श्रीराधा की किंकरी हूँ; मेरा किसी से कोई सम्बन्ध नहीं-निरपेक्ष भजनशील व्यक्ति के हृदय में इस प्रकार की निष्ठा उत्पन्न होगी। रघुनाथ राधाकुण्ड-तीर पर पड़े रो रहे हैं। क्या करने से, कैसा बनने से राधारानी का प्रिय हुआ जाता है-यह आचार्यपादगण से सीखना होगा।

तुलसी लीलाराज्य में है। कस्तूरीद्रव की कटोरी बायें हाथ में है। दाहिने हाथ में तूलिका है। उज्ज्वल नील वस्त्र पहने हैं। सब स्वामिनी का प्रसादी, सभी उनका दान। सेवा से सन्तुष्ट होकर उन्होंने दिया है। स्वामिनी सामने खड़ी हैं। कैसी शोभा है! कैसा भ्रू विलास!! नेत्र देखकर सम्बोधन - 'हे मृगशावाक्षि' नेत्रों में चंचलता हैं। तुलसी ने मृगमद उनकी नासिका के पास रखा है और वे कृष्ण की अङ्ग-गन्ध पा रही हैं। 'ऐसी गन्ध कहाँ से आ रही है!' मृगशावक की तरह आकर्ण विस्तृत चंचल नयनों से चारों ओर देख रही हैं। 'लगता है प्रियतम आ रहे हैं।' श्रीराधाभावाविष्ट महाप्रभु की उक्तिः -

''कस्तूरीलिप्त नीलोत्पल, तार जेइ परिमल, ताहा जिनि कृष्ण-अङ्गगंध।
व्यापे चौद्द भुवने, करे सर्व आकर्षणे, नारीगणेर आँखि करे अन्ध॥
सखि हे! कृष्णगन्ध जगत माताय।
नारीर नासाय पैशे, सर्वकाल ताँहा वैसे, कृष्ण-पाशे धरि लइया जाय॥

हरे नारीर तनु-मन, नासा करे घूर्णन, खसाय नीवी, छुटाय केशबन्ध।
करि आगे बाउरि, नाचाय जगत्-नारी, हेनो डाकाति कृष्ण-अङ्गगंध॥'' (चै० च०)

मृगमद की गंध से श्रीमती अधीर हैं। कैसी-कैसी भावमाधुरी वदन पर और नेत्रों में प्रकाशित हो रही है! तुलसी कहती हैं-'हे मृगशावाक्षि! यह कस्तूरीद्रव है। जिसके लिये चंचल हो, वह नहीं आया।' स्वामिनी की छाती जैसे फट गई! 'वह आया नहीं' सुनकर व्याकुल हैं। तुलसी अपनी वाणी से श्याम को मूर्त कर चिबुक पर कस्तूरी-बिन्दु लगा रही हैं। 'जानती हो, तुम्हारा चिबुक कैसा है? मुकुन्द का आनन्द-मन्दिर। जो लोग तुम्हारे हैं, उनके मुक्तिदाता इसीलिये मुकुन्द।' सुनकर स्वामिनी विभोर हैं। स्थिर होकर बैठी हैं। समय जानकर किंकरी ने चिबुक पर कस्तूरीबिन्दु अंकित कर दिया। मनोरम चिबुक पर वह झिलमिला उठा! लगा जैसे स्वर्णकमल पर बैठा भृंग-शिशु मधुपान कर रहा है! तुलसी कहती है-'वह भी काला, बिन्दु भी काला। उसकी जगह पर अधिकार कर लिया। उसे ईर्ष्या होगी। मन्दिर का मालिक आकर इसे उठा दे, मैं यही चाहती हूँ।' स्वामिनी के चरणों में प्राण उत्सर्ग किये हैं दासी ने; उनका मन जानकर सेवा कर रही हैं। स्वामिनी की कृपा से उनकी आश्रित दासी महाभाव का मन समझेगी। हम लोग स्वयं को उनकी दासी कहते हैं मुँह से, तभी स्वामिनी की आहट नहीं मिलती। मन-प्राण उनकी सेवा के योग्य होंगे तो वे अवश्य ही उत्तर देंगी। आहार नहीं, निद्रा नहीं, दिवानिशि व्याकुल प्राणों से उनके लिये रोदन-यह सब देखकर भी क्या करुणामयी स्वामिनी नीरव रह सकती हैं? श्रीभागवत में श्रीनारायण ने दुर्वासा ऋषि से कहा-'जिन लोगों ने सब छोड़कर मेरी शरण ली है, मैं उनका त्याग करने के लिये उत्साही कैसे हो सकता हूँ?''

''ये दारागार-पुत्राप्त-प्राणान्-वित्तमिमं परम्।
हित्वा मां शरणं याताः कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे॥'' (भा० - ९/४/६५)

फिर स्वामिनी तो साक्षात् कृपा की ही मूर्ति हैं। पुरुष विचार कर करुणा करता है, स्वामिनी अपार दयावती हैं, निर्विचार होकर करुणा करती हैं। 'मेरा हृदय मोहान्ध है, कृपाकर शुद्ध कर चरणों में आश्रय दो'-इस प्रकार व्याकुल प्राणों से प्रार्थना करने से उनकी करुणा का अवतरण होगा ही। श्रीराधा की भाव-कान्ति लेकर ही गौर इतने करुणामय हैं। निर्विचार होकर विश्व को प्रेम देकर धन्य किया। उन्हीं गौर के एकान्त कृपापात्र हैं रघुनाथ। थोड़ा-सा जल नहीं निगल पा रहे। 'स्वामिनी के दर्शन नहीं कर पाया, इस जीवन को रखकर क्या लाभ?''

''काँदे गोसाँइ रात्रि दिने, पुड़ि जाय तनु मने,
क्षणे अङ्ग धूलाय धूसर।
चक्षु अन्ध अनाहार, आपनार देह भार,
विरहे होइलो जर जर॥''

आचार्य की वाणियों का अनुवाद करने से भी स्वामिनी के चरणों में खरी प्रार्थना होगी। इससे अधिक उपादेय और कोई साधना है, ऐसा नहीं लगता। जिन लोगों की वासना है भजन कर कृतार्थ होने की, उनका अवलम्बन यही वाणी है। इस वाणी के अक्षर-अक्षर में राधाचरणैक निष्ठा मूर्त है।

दशनांस्ते कदा रक्तरेखाभिर्भूषयाम्यहम्।
देवि मुक्ताफलानीह पद्मरागगुणैरिव?४०॥

अन्वय-देवि! कदा अहं ते दशनान् (दन्तान्) पद्मरागगुणैः मुक्ताफलान् इव (पद्मरागस्य मणिविशेषस्य गुणैः सूत्राकार-विकार-विशेषैः मुक्ताफलान् इव) रक्तरेखाभिः भूषयामि? ४०॥

अनुवाद-हे देवि! मैं तुम्हारी दन्त-पंक्ति को रक्तवर्ण रेखा द्वारा कब सजाऊँगा-ठीक उसी तरह जैसे पद्मरागमणि की तरह वर्णविशिष्ट सूत्र से मुक्ता ग्रथित होती है?४०॥

दशन-रंजन सेवा

परिमलकणा व्याख्या-श्रीपाद की स्फुरण धारा निरन्तर प्रवाहित है! इस बार श्रीमती की दशन-पंक्ति की सेवा। 'हे देवि! जैसे मुक्ताफल को पद्मरागमणि के (लाल) धागे से शोभित किया जाता है, उसी तरह तुम्हारी दन्त-पंक्ति को मैं रक्तरेखा द्वारा कब भूषित करूँगा?' स्वामिनी जी की अपूर्व सेवा की उत्कण्ठा से श्रीपाद का हृदय भरा है। जैसे क्षुधा के बिना अन्न-व्यंजन का आस्वादन मधुर नहीं होता, वैसे ही उत्कण्ठा के बिना सेवारस-आस्वादन का चमत्कारित्व नहीं। स्वामिनी पीछे खड़ी होकर रघुनाथ की व्याकुलता की माधुरी का आस्वादन कर रही हैं, पर सामने आकर दर्शन नहीं देतीं। व्याकुलता की भोक्ता हैं इष्टदेव (राधारानी)।

''भक्तेर प्रेमविकार देखि कृष्णेर चमत्कार।
कृष्ण जार ना पाय अन्त केबा छार आर॥'' (चै० च०)

प्रेमपूर्ण सरस परिहास करते हुए तुलसी ने श्रीमती के चिबुक पर मृदमद-बिन्दु लगाया। स्वाभाविकरूप से सुन्दर वदनमाधुरी और भी प्रदीप्त हो उठी!

''मधुरिमाब्धिभवास्य-सुधानिधौ यदिह कृष्णरुचिः पृषतोऽङ्कितः।
तदवगम्य स कृष्ण इमं निजं सरसयन् रसयन् रमयेन्मुहुः॥''
(कृष्णभावनामृत-४/७४)

''अहा! मैंने माधुर्य-सागर से निकले मुख-चन्द्रमण्डल पर यह जो कृष्णवर्ण कस्तूरी-बिन्दु अंकित किया, इसे देखकर श्रीकृष्ण अपनी मुद्रा (मुहर) से अंकित द्रव्य (वस्तु) समझकर श्रीमुखचन्द्र को अपना द्रव्य मानकर अवश्य ही सरस करेंगे और स्वयं रस-अनुभव कर धन्य होंगे।'' तुलसी स्वामिनी के विरह-विधुर हृदय में उच्छ्वास ले आती हैं। धन्य है सेवा-परिपाटी! चित्त में कितनी-कितनी लीला-स्मृतियाँ जगा रही हैं। चिबुक पकड़ने को हुईं, तो कुछ हाथ न आया। विरह-सागर में मग्न चित्त लेकर आर्तस्वर में विलाप करते हुए बोले-'और कब साक्षात् भाव से कस्तूरी-बिन्दु अंकित करूँगा?'

''कुरंगनयनि! राधे! चिबुक तोमार।
श्रीकृष्णेर लोभनीय प्रमोद-आगार॥
मृगमद-बिन्दु ताहे करिबो रचना।
कतो दिने हाय! मोर पूरिबे वासना॥''३९॥

इसीलिये स्वामिनी इतनी उत्कण्ठा देकर, आर्ति देकर रघुनाथ के प्रेमसिन्धु को उच्छ्वासित कर रही हैं। श्रीराधा की साक्षात् सेवा-प्राप्ति के अभाव में श्रीपाद के हृदय की तीव्र उत्कण्ठा ने, स्वामिनी के लिये हृदय-विदारक रोदन ने श्रीरूप के हृदय को विगलित कर दिया था। तभी उन्होंने दानकेलि-कौमुदी के अन्त में श्रीरघुनाथ के लिये युगल के चरणों में प्रार्थना की थी-

''राधाकुण्डतटीकुटिरवसतिस्तक्तान्यकर्मा जनः
सेवामेव समक्षमत्र युवयोर्यः कर्तुमुत्कण्ठते।
वृन्दारण्यसमृद्धिदोऽदपदक्रीड़ाकटाक्षद्युते
तर्षाख्यतरुरस्य माधव फली तूर्णं विधेयस्त्वया।''

''हे माधव! मेरे प्रिय सुहृदयवर श्रीमान् रघुनाथ दास अन्य सभी कर्मों का परित्याग कर श्रीराधाकुण्ड-तट स्थित कुटीर में रहते हुए तुम दोनों की साक्षात् प्रेमसेवा की प्राप्ति के लिये सम्यक् रूप से उत्कण्ठित हैं, (और तुम वृन्दावनवासियों की अभीष्ट पूर्ति के लिये क्रीड़ाकटाक्ष निक्षेप किया करते हो)-इसलिये उनके तृष्णारूपी वृक्ष को शीघ्र सफल कीजिये।'' विलापकुसुमांजलि में श्रीपाद ने श्रीमती के चरणों में विलापकुसुम अर्पित कर उनकी प्रेमसेवा की है। इसमें अहर्निश विरहिणी दासी की जिस तीव्र विरहाकुल दशा का भावचित्र अंकित हुआ है, वह प्रेमविभावित मानस-नेत्रों से रागानुगीय साधक के लिये आस्वाद्य है, देखने योग्य है। इस विरह-विलाप में कितना आस्वादन है और शत-शत भावों की कैसी वैचित्री प्रकाशित हो सकती है-यह बात गम्भीरा लीला में श्रीमन्महाप्रभु के विलाप से पता चलती है-

''करिते ओइछे विलाप, उठिलो उद्वेगभाव,
मने काँहो नाहि आलम्बन।
उद्वेग विषाद मति, औत्सुक्य त्रास धृतिस्मृति
नाना भावेर होइलो मिलन॥''

(चै० च० अन्त्य०-परि० १७)

राधाभावाविष्ट प्रभु के मन में उद्वेग, विषाद, मति, त्रास आदि नाना संचारी भावों का उदय हुआ। भावनिधि प्रभु के चित्त में भाव-शावल्य या भावों का परस्पर सम्मर्द (घर्षण जमघट) उपस्थित हुआ। किन्तु जैसे ही चित्त में श्रीकृष्ण की स्फूर्ति हुई, कृष्ण-प्राप्ति की प्रबल उत्कण्ठा अन्य भावों को पराजित कर राजा की तरह प्रभु के चित्त में विराज करने लगी।

''औत्सुक्येर प्रावीण्ये, जिति अन्य भावसैन्ये, उदय कोइलो निजराज्य मने।
मने होइलो लालस, ना हय आपन वश, दुःखे मने करेन भर्त्सने॥
मन मोर बाम दीन, जल बिनु जेनो मीन, कृष्ण बिनु क्षणे मरि जाय।
मधुर हास्य वदने, मनो नेत्र-रसायने, कृष्णतृष्णा द्विगुण बाड़ाय॥
हा हा कृष्ण प्राणधन, हा पद्मलोचन, हा हा दिव्य सद्गुणसागर।
हा हा श्याम सुन्दर, हा हा पीताम्बरधर, हा हा रासविलास नागर॥
काँहा गेले तोमा पाइ, तुमि कहो ताँहा जाइ, एतो कहि चलिलो धाइया।
स्वरूप उठि कोले करि, प्रभुरे आनिलो धरि, निज स्थाने बसाइलो लैया॥'' (वही)

श्रीमन्महाप्रभु के ऐकान्तिक करुणापात्र श्रीपाद रघुनाथ दास गोस्वामी में भी उत्कण्ठा प्रधान विविध भावतरंगों का उदय देखने को मिलता है।

स्फूर्ति में श्रीपाद कहते हैं-'देवि!' श्रीमती के चिबुक पर मृगमद-बिन्दु अंकित कर तुलसी ने स्वामिनी के हृदय में लीलारस का आस्वादन जगाया है, उसकी स्मृति से उत्पन्न उच्छलित रूपमाधुर्य देखकर ही यह 'देवि' सम्बोधन है। 'देवी कहि द्योतमाना परमा सुन्दरी'' (चै० च०)। अब तुलसी स्वामिनी के दाँतों पर रक्तरेखा अंकित करेंगी। श्रीराधा कनक-आसन पर बैठी हैं। निरूपम अङ्ग-शोभा उछल रही है। तुलसी स्वामिनी के सिर पर बाँया हाथ रखकर मुखचन्द्र थोड़ा-सा उठाकर दायें हाथ में तूलिका लेकर परम मनोयोग के साथ रक्तरेखा अंकित कर रही है। 'तुम्हारे दाँत ठीक मुक्ता-फल की तरह हैं-वृन्दावन के शुकपक्षी के लिये आस्वाद्य! दशन-आलोक का थोड़ा-सा विकास उसका नैराश्य-तिमिर दूर कर देता है।' तुलसी की बात से स्वामिनी को लगता है जैसे श्याम उनके श्रीचरणमूल में बैठकर गले में वस्त्र लपेट कर (विनय प्रकाशनार्थ) आँखों में आँसू भरकर प्रार्थना कर रहे हैं-

''वदसि यदि किञ्चिदपि दन्तरुचिकौमुदी हरति दरतिमिरमतिघोरम्।
स्फुरदधरसीधवे तव वदनचन्द्रमा रोचयति लोचन-चकोरम्॥
प्रिये! चारुशीले! मुञ्च मयि माननिदानम्।
सपदि मदनानलो दहति मम मानसं देहि मुखकमलमधुपानम्॥''

(गीतगोविन्दम्)

तुलसी की बातों से श्याम मूर्त हो गये हैं। कितनी-कितनी लीला-स्मृतियाँ मन में जग रही हैं! इस समय तो स्वामिनी मानो ''कृष्ण-क्रीड़ापूजार बसति नगरी'' (चै० च०) हैं, तभी 'देवि!' तुलसी ने दाँतों पर रक्तरेखा अंकित की। शोभा देखकर विस्मित। 'आहा! तुम्हारे दाँतों की कैसी शोभा! ठीक मानो (लाल) पद्मरागमणि के धागे से मुक्ताफल को शोभित किया हो। उसी शुक-पक्षी का लोभ बढ़ाने के लिये ही इतनी प्रचेष्टा है। वह आस्वादन करे तो सारी चेष्टा सफल हो जायेगी।' निरूपम सेवा-सौष्ठव इन लोगों से सीखना होगा। महाभाव की सेवा, महाभाव के माध्यम से ही समझनी होगी। कहाँ क्षुद्र जीव, और कहाँ वह प्रेम का सार महाभाव! किन्तु इस विशेष कलियुग में श्रीमन्महाप्रभु की करुणा से कलिहत जीव को भी इस दुर्गम महाभावराज्य में प्रवेश का सौभाग्य मिल गया है। आचार्यपादगण ने उसे प्रकट किया है, इसलिये इन लोगों का आनुगत्य ही स्वामिनी के सेवारस आस्वादन का सौभाग्य पाने का एकमात्र उपाय है। रस अपने अनुभव से जानी जाने वाली वस्तु है, वह एकमात्र रसिकों की कृपा से प्राप्त होता है। अभिलषित लीलाकथा रसिक भक्तों के संग के बिना संभव नहीं। भगवान् भी रसिक भक्तों के संग में लीलारस के आस्वादन के लोलुप हैं। श्रीरामानन्द के प्रति श्रीमन्महाप्रभु की उक्ति-

''तुमि आमि नीलाचले रहिबो एकसंगे।
सुखे काटाइबो काल कृष्णकथा रंगे॥'' (चै० च०)

आचार्यपादगण असामान्य रसज्ञ हैं। उन लोगों की वाणी का संग ही उनका संग है। स्वजातीयाशयस्निग्ध

उत्खादिरेण नवचन्द्रविराजितेन,
रागेण ते वर सुधाधरबिम्बयुग्मे।
गाङ्गेयगात्रि मयका परिरञ्जितेऽस्मिन्,
दंशं विधास्यति हठात् किमु कृष्णकीरः? ॥४१॥

अन्वय-गाङ्गेयगात्रि! (गाङ्गेयं सुवर्णं तद्वत् श्रीकृष्णा-कर्षणशीलं गात्रं यस्याः हे तथा-भूते!) नवचन्द्र-विराजितेन (नवचन्द्रेन नूतनकर्पूरेण विराजितेन मिलितेन) उत्खादिरेण रागेण (उत्कृष्टखादिर सम्बन्धि रागेण) मयका परिरंजिते (कृतातिशयरागे) ते (तव) वर सुधाधरबिम्बयुग्मे (वरा श्रेष्ठा या सुधा अमृतं तद्वन्मादकौ स्वादु वा यौ अधरौ तावेव) किम् उ (भो) कृष्णकीरः (श्रीकृष्ण रूप शुको) हठात् दंशं विधास्यति (करिष्यति) ?४१॥

अनुवाद-हे गांगेयगात्रि (स्वर्णवर्णी)! मुझ दीन दासी द्वारा नये कपूर-मिले उत्कृष्ट खदिर-राग (कत्थे) से रँगे तुम्हारे श्रेष्ठ अमृत-से और स्वादु अधरोष्ठ क्या कृष्णरूपी शुक पक्षी हठात् दंशन करेगा?४१॥

भक्तों के साथ इस वाणी की रसमाधुरी का आस्वादन करना ही साध्य-साधन सब कुछ है। योगियों के लिये भगवान् के वचन है-

''योगी यूञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः॥'' (गीता-६/१०)

योगी व्यक्ति एकाकी सतत निर्जन में रहकर देह और चित्त को संयम में रख आकांक्षा एवं परिग्रह रहित होकर मन को समाधियुक्त करे। सांख्य-दर्शन में एक सूत्र है, ''बहुभिर्योगे विरोधो रागादिभिः कुमारीशङ्खवत्''-अर्थात्-बहुत लोगों के साथ वास करने से रागादि की उत्पत्ति होती है और उससे योगभ्रंश करने वाला कलह होता है-कुमारी के हस्त-संचालन से शंख बज उठते हैं, उसी तरह! किन्तु भक्तों की भक्तिसाधना की बात करते हुए भगवान् कहते हैं-

''मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥''

''मुझे समर्पित चित्त और प्राण वाले भक्त नित्य परस्पर मेरी तत्त्व-चर्चा और कीतन करते-करते साधनदशा में भजनानन्द एवं सिद्धावस्था में सेवानन्द प्राप्त कर धन्य होते हैं।''

निविड़ प्रेम और लाड़ की मूर्ति हैं तुलसी। महाभावमयी के सेवारस में डूबी हैं। सहसा स्फूर्ति में विराम आ गया। उत्कण्ठा से भरकर उसी सेवा की प्रार्थना करते हैं।

''पद्मरागमणि सूत्रे गाँथा मुक्तामाला।
अरुण रेखाय यथा अधिक उजला॥
तेमति तोमार देवि! दशन शोभित।
अरुण रेखाय कबे करिबो भूषित॥''४०॥

उत्कृष्ट खदिर-राग

परिमलकणा व्याख्या-श्रीपाद रघुनाथ की हृदयनिहित भावोच्छ्वासपूर्ण सेवा-प्रार्थना निर्मल झरने की तरह प्रवाहित हो रही है। राधारानी मानो उनके हृदय में जमकर बैठी हैं। प्रियाजी के कुण्डतट पर राधादास्य के माध्यम से अपूर्व कृष्णप्रेमरस का आस्वादन हो रहा है। राधारानी के धाम का आश्रय लेकर उनके पादपद्मों की आराधना को छोड़ कृष्ण-रसमाधुरी आस्वादन करने का और उपाय नहीं। श्रीपाद ने स्वसंकल्पप्रकाश स्तोत्र में लिखा है-

''अनाराध्य राधापदाम्भोजरेणु,-मनाश्रित्य वृन्दाटवीं तत्पदाङ्काम्।
असम्भाष्य तद्भाव-गम्भीरचित्तान्, कुतः श्यामसिन्धोरसस्यावगाहः?''

''जिसने श्रीराधा के पादपद्मराग की आराधना नहीं की, उनके श्रीचरणचिन्हों से सुशोभित वृन्दावन का आश्रय नहीं लिया, जिन लोगों का चित्त उनके भावों से गम्भीर है-अर्थात् जो लोग श्रीराधा का रहोदास्य (एकान्त रहस्यपूर्ण दास्य) प्राप्त करने की लालसा लिये हैं, उन भाव-गम्भीर रसिक भागवतों का जिसने संग नहीं किया, वह श्यामसिन्धु में अवगाहन कैसे करेगा?'' श्रीपाद प्रबोधानन्द सरस्वती ने लिखा है-''जो लोग राधादास्य छोड़कर श्रीकृष्ण-रसमाधुरी आस्वादन का प्रयत्न करते हैं, वे लोग सिन्धु में बिन्दु मात्र ही प्राप्त करते हैं।'' ⁂ कहा गया है कि विश्व विख्यात वेदान्ती श्रीपाद मधुसूदन सरस्वती ने व्रज में आये किसी परिव्राजक को एक कागज पर 'कृष्णसिन्धु' लिखकर दिया और कहा-'व्रज के श्रेष्ठ पण्डित को यह कागज देना और वे इसका कोई उत्तर दें, तो लाना।' उस समय व्रज में श्रीमत् जीवगोस्वामिपाद प्रधान पण्डित थे। परिव्राजक ने वह कागज उन्हें दिया, तो उन्होंने उस पर एक श्लोक लिख दिया। श्लोक का भावार्थ यह था-'श्रीराधा की चरण-सेवा के बिना और उनकी श्रीपदांकित व्रजरज-सेवा के बिना कृष्णसिन्धु का क्या करना?' राधादास्य के माध्यम से श्रीकृष्णप्रेममाधुरी आस्वादन की परिपाटी गोस्वामिपादों ने दिखाई है।

श्रीपाद स्फूर्ति में कहते हैं-'हे गांगेयगात्रि! सुन्दर नवीन कपूर द्वारा सुवासित खदिर राग (कत्थे) से तुम्हारे सुधाधर-बिम्बों को रंजित कब करूँगी?' श्रीराधा के अधरबिम्ब स्वाभाविक रूप से ही रक्तवर्ण हैं, उन पर यह खदिर राग क्यों? सेव्य का मनोभाव जानने की आवश्यकता है। श्रीराधा हैं महाभावमयी, जिनका स्वभाव है श्रीकृष्ण को शृंगाररस का आस्वादन कराना ही। ''कृष्ण के कराय श्यामरस-मधुपान। निरन्तर पूर्ण करे कृष्णेर सर्वकाम॥'' (चै० च०)। गोस्वामिपादगण ने प्रार्थना की है-'अपनी सेवा की वैदग्धी तुम स्वयं ही सिखा देना।'

'हरिपदनखकोटी पृष्ठपर्यन्तसीमा, -तटमपि कलयन्तीं प्राणकोटेरभीष्टाम्।
प्रमुदितमदिराक्षीवृन्दवैदग्धदीक्षा,-गुरुमतिगुरुकीर्तिं राधिकामर्चयामि॥''

(स्तवमाला)

''जो श्रीकृष्ण के पदनखप्रान्त को कोटि प्राणों से भी अधिक प्रिय समझती हैं, समस्त व्रजसुन्दरियों की वैदग्धी-शिक्षा की जो गुरु हैं, उन्हीं विपुल यशवाली श्रीराधा की मैं अर्चना करता हूँ।'' साधक को यह बात पता

⁂ श्रीराधारससुधानिधि श्लोक ८० और मेरी रसवर्षिणी व्याख्या देखें।

करनी चाहिये कि मैं जो सेवा कर रहा हूँ, उसे उन्होंने ग्रहण किया कि नहीं। भजन कर आनन्द पाता हूँ, इसीलिये करता हूँ। नियम किया है, किये बिना नहीं चलेगा। किन्तु प्रकृत भजन का सौष्ठव ऐसा नहीं (होता)। भजन का सौष्ठव है इस भाव में कि 'खो रहा हूँ, खो रहा हूँ।' हृदय में अभीष्ट के लिये अभाव-बोध जगना चाहिये। खाना, पीना, सजना-धजना, आमोद-प्रमोद सभी कुछ हैं; साथ में यन्त्रवत् भजन चल रहा है। मुझ-जैसा जीव विश्व में अर्थ, यश, लाभ, पूजा-प्रतिष्ठा आदि कितनी वस्तुओं के लिये सदा ही अभाव-बोध करता है, किन्तु राधारानी के लिये प्राणों में एक बिन्दु भी अभाव-बोध नहीं। महाजनों ने सन्निपात के रोगी की पिपासा के साथ भक्त की इष्टप्राप्ति की प्यास की तुलना की है। ''परम नागर कृष्ण, ताहे हओ अति तृष्ण, भजो ताँरे व्रजभाव लैया'' (ठाकुर महाशय)। भजन की निपुणता में अन्य बातों की अपेक्षा नहीं रहेगी। ज्ञान कर्म की गन्ध, अन्य अभिलाषा, लाभ-पूजा, प्रतिष्ठाशा आदि नहीं रहेंगी। अन्याभिलाष मन को रूखा कर देती है-निर्मल व्रजरस का आस्वादन कैसे मिलेगा? यह अन्याभिलाष हम लोगों को नाना प्रकार से वंचित करती है। प्रकृत तत्त्व जानकर भी नहीं जानने देती। श्रीपाद प्रेमानन्द ठाकुर ने अपनी मनःशिक्षा में लिखा है-

''ओरे मन! ए तोर बुझिबार भूल।
कहिछो वेदेर पार करिछो निषिद्धाचार
भावो देखि आपनार मूल॥
मुक्ति के ऐश्वर्य बोलि दूरेते दियेछो फेलि
इंगिते बुझाओ एइ तत्त्व।
अनित्य असारअर्थ से भालो सदाइ प्रार्थ्य
जा लागि रजनी दिवा मत्त॥
निर्हेतु याजन करो हेतु से छाड़िते नारो
कथाय विरक्त ए संसार।
सर्वस्व बलिछो जार दिते एकबट तार
से चाहिले कहो आपनार॥
कहो भजि वृन्दावन घरे सुखवास मन
भालो बासो वसनभूषणे।
सन्तुष्ट मानिछो माने महा क्रोध अपमाने
आत्मसुख घुचिलो केमने॥
कहिछो गोपीर धर्म कि बुझिछो तार मर्म
स्वभाब छाड़िते नारो तिले।
देखिया पाइछो सुख प्रकृति बाघिनी - मुख
सर्वात्मा सहित जेइ गिले॥
शुनो कहे प्रेमानन्द बिचारिले सब धन्ध
कहिले शुनिले किबा हय।
'हरि हरि' अविरत कहो एइ प्रेमपथ
निर्मल होइबे सुनिश्चय॥''

यत् - प्रान्तदेश - लवलेश - विधूर्णितेन,
बद्धः क्षणाद्भवति कृष्ण-करीन्द्र उच्चैः।
तत्खञ्जरीट - जयिनेत्र - युगं कदायं,
सम्पूजयिष्यति जनस्तव कज्जलेन?४२॥

अनन्य भाव से श्रीहरिनाम का आश्रय लेने से माया दूर होती है। मैंने नामाश्रय लिया है-माया क्या करेगी'-मन की ऐसी निर्भीक अवस्था होनी चाहिये।

श्रीरघुनाथ लीलाराज्य में हैं। 'हे स्वर्णगात्रि! तुम्हारे अधर परिरंजित कर दिये। जानती हो, कैसे अधर हैं? मानो जमी हुई श्रेष्ठ सुधा हो!' स्वामिनी कहती हैं-'अधर कोई गली-पिघली वस्तु तो नहीं, फिर सुधा क्यों कहा?' तुलसी-मैंने स्वयं नहीं समझा। जिसने समझा है, उसकी समझ (अनुभव) पाई है। तुम्हारे वदनचन्द्र की जमी हुई सुधा पान किये बिना चकोर नहीं बचता। (वह) पान नहीं करता, चबाता है। तुमने सुधा-चर्वण करा उसे बचा रखा है।' सुन-सुनकर स्वामिनी के अङ्ग से स्वर्णज्योति फूट-फूट कर निकल रही है! तभी सम्बोधन है- 'स्वर्णगात्रि!' धन्य दासी। उनकी बात उन्हें सुनकर आस्वादन देकर पागल करना! स्वामिनी कहती हैं-'रंग क्यों लगाया? रंग तो स्वाभाविक रूप से ही है।' तुलसी-'मैंने तो रंग लगा दिया, कोई काला शुकपक्षी आकर (इन अधरों का) हठात् दंशन करेगा क्या? 'हठात्' अर्थात् जबरन। जब तुम्हारा इंगित पायेगा। इंगित (संकेत) पाये बिना नहीं। तुम मुँह फेरकर 'ना-ना' कहोगी, तब भी करेगा। तुम जब भ्रूविलास के साथ मुँह फेरकर 'ना-ना' करती हो, लोलक (नथ) हिलाती; कैसी अपूर्व शोभा! तब 'ना' में और ना नहीं (रहती)। मानो 'हाँ' 'ना' को निगल जाती है।' तुलसी की बातें सुनते-सुनते स्वामिनी आनन्द-वैवश्य की स्थिति में पहुँच जाती हैं! मानो लीला आँखों के आगे मूर्त हो उठती है! लीला-श्रवण कर जातप्रेम भक्त की आँखों के सामने ही सुनी हुई लीला प्रत्यक्ष की तरह फूट उठती है! स्वामिनी तो साक्षात् महाभावस्वरूपिणी है। तुलसी कहती हैं-'हे गांगेयगात्रि (स्वर्णवर्णी)! इन स्वाभाविक रूप से सुरंजित अधरों को खदिर राग (कत्थे) से रँगा है, जानती हो क्यों? अधरों का स्वाभाविक रंग अधरों में ही रहेगा। जो लगाया है, वह पक्का रंग नहीं है। तुम्हारे यहाँ से (अधरों से) काली जगह में पहुँचकर अच्छा लगेगा।' परिहास के माध्यम से रस का आस्वादन दे रही हैं। 'उस कालिया के काले गण्डस्थल पर लगेगा, देखकर हम लोग कृतार्थ होंगी। सेवा की सार्थकता होगी। श्रीपाद की स्फुरणधारा यथावत् रही।

''कनकवरणि राधे! कबे आमि मनसाधे,
सुधाधार अधर तोमार।
कर्पूरेर सुसंयोगे, उत्कृष्ट खदिर रागे,
रंजित करिबो चमत्कार॥
अतुलित सुषमाय, पक्व बिम्बफल प्राय,
हबे ताहा अति सुशोभन।
निरखिया श्याम-शुक, हइबेन समुत्सुक,
मनसुखे करिबे दंशन॥''४१॥

अन्वय-(अयि सुवर्णांगि!) यत् प्रान्तदेश-लवलेश-विघूर्णितेन (यस्य नेत्रयुगलस्य प्रान्त-देशस्यापांग स्थानस्य लवो विलास इतस्ततः प्रसर्पण तस्य लेशः कला तस्य विघूर्णितेन। कृष्ण-करीन्द्रः (कृष्णरूपः हस्तीश्रेष्ठः) क्षणात् उच्चैः बद्धः भवति (वशीभवति), तव तत्खञ्जरीट जयिनेत्रयुगं (खञ्जरीटः खञ्जनस्तं परमचांचल्येन (जेतुं शीलं यस्य तत्) कदा अयं जनः कज्जलेन सम्पूजयिष्यति (योग्यालंकारेण परम पूज्यमिवात्थादरेण भूषयिष्यति) ?४२॥

अनुवाद-हे कांचनांगि (कंचनवर्णी)! तुम्हारे जिन नयनप्रान्तों के लेशमात्र घूर्णन से श्रीकृष्णकरीन्द्र तत्क्षणात् दृढ़भाव से बद्ध हो जाते हैं-एकान्त वशीभूत होते हैं, उन्हीं खंजन-जयी नेत्रों की मैं काजल से सादर सम्यक्रूप से कब पूजा करूँगा ?४२॥

कज्जल से नेत्रपूजा

परिमलकणा व्याख्या-श्रीमत् रघुनाथ दास गोस्वामिपाद अपने स्फुरण में स्वामिनी के सेवारस का आस्वादन कर रहे हैं। आस्वादन की परम्परा चल रही है। स्मरणनिष्ठ साधक भी अपने चिन्तन में सेवारस का आस्वादन करते हैं। स्मरण गाढ़ा होता है, तो 'ध्यान' कहलाता है। यह ध्यान या निदिध्यासन ही भगवत् साक्षात्कार की निर्बाध अथवा प्रकृष्ट साधना है। पातंजल दर्शन में लिखा है-''तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानं'', अर्थात् 'एक ही विषय का अवलम्बन करने पर जब चित्त की चिन्तनधारा अविच्छेद रूप से प्रवाहित होती है, उसमें किसी अन्य चिन्तन का व्यवधान नहीं आता, तब वही चिन्तन ध्यान कहा जाता है।' श्रीमत् जीवगोस्वामिपाद के मत में यह प्रगाढ़ ध्यान है, इसका नाम 'ध्रवानुस्मृति' है। श्रीपाद आचार्य शंकर ने अपनी छान्दोग्यश्रुति की भाष्यभूमिका में ऐसे प्रगाढ़ ध्यान या ध्रुवानुस्मृति को ही 'उपासना' कहा है-''उपासनं तु यथा-शास्त्र समापितं किंचिदा-लम्बनमुपादाय तस्मिन् समान चित्तवृत्ति-सन्तानकरणं-तदविलक्षणप्रत्ययान्तरितम्'', अर्थात् 'उपासना में शास्त्रों द्वारा व्यवस्थित किसी एक ध्यान के विषय का अवलम्बन कर उसमें चित्तवृत्ति का एकाकार प्रवाह इस प्रकार उत्पन्न करना होता है कि उसमें अन्य वस्तु का ज्ञान व्यवधान के रूप में न आ सके।' भक्तसाधक सर्वश्रेष्ठ साधनांग श्रीनामसंकीर्तन के साथ स्मरण का अभ्यास करते हैं। नाम-कीर्तन के प्रभाव से जैसे-जैसे चित्त-दर्पण स्वच्छ होता है और भक्तिदेवी का आविर्भाव होता है, तैसे-तैसे साधक ध्यान या ध्रुवानुस्मृति के राज्य में पहुँचकर विमल आनन्द प्राप्त कर धन्य होते हैं।

श्रीपाद दासगोस्वामी गाढ़ स्फूर्ति में स्वामिनी की शृंगार-सेवा कर रहे हैं। इस श्लोक में कज्जल (काजल)-सेवा का स्फुरण है। 'जिन नेत्रों के प्रान्तदेश के थोड़े से घूमने से कृष्णरूपी करी (हाथी) बँध जाता है, उन्हीं नेत्रों की मैं काजल से कब पूजा करूँगा ?'' प्रार्थना में भाव का परिचय है। वे स्वामिनी को 'जयश्री' के रूप में अनुभव कर रहे हैं। ''द्युतनर्मजलकेलिसुरतादिषु च जयेनोत्कर्षेण श्रीः शोभा यस्याः'' - ऐसी-ऐसी क्रीड़ाओं के समय नेत्रों की शोभा से कृष्णरूपी करीन्द्र बद्ध हो जाते हैं। राधारानी का उत्कर्ष व्यक्त हुआ है। श्यामसुन्दर का एकमात्र अवलम्बन है श्रीमती का वही दृष्टिविलास! नेत्र अच्छी तरह घुमाने नहीं पड़ते, थोड़े-से घूर्णन से ही कृष्ण-करी वशीभूत हो जाते हैं। दृष्टिविलास में प्रचुर मादनरस निहित है। अप्राकृत नवीनमदन पर तभी उसका ऐसा प्रभाव है। पूर्वराग की अवस्था में श्रीकृष्ण ने श्रीराधा की सखी से कहा था-

''निरमल वदन- कमलवर-माधुरी
हेरइते भैगेलुँ भोर!
अलखिते रंगिणी भांग भुजंगिनी
मरमहि दंशल मोर॥''(पदकल्पतरु)

इस अपूर्व भ्रूधनु से जब कटाक्षशर निकलते हैं, तो आनन्दमय की आनन्दमूर्छा तक उदित हो जाती है। श्रीमत् प्रबोधानन्द सरस्वतीपाद ने लिखा है-

''वेणुः करान्निपतितः स्खलितं शिखण्डं, भ्रष्टं च पीतवसनं व्रजराजसूनोः।
यस्याः कटाक्षशरघात-विमूर्छितस्य, तां राधिकां परिचरामि कदा रसेन?''
(राधारससुधानिधि-३९)

''जिनके कटाक्ष-शराघात से विमूर्छित श्रीनन्दनदन के हाथ से वेणु गिर जाता है, शिखण्डचूड़ास्खलित हो जाता है और पीत उत्तरीय भ्रष्ट हो जाता है, उन श्रीराधा की मैं रस पूर्वक कब परिचर्या करूँगा?'' ⁂राधारानी के नयनों की अपूर्व शोभा का आस्वादन कर श्याम विभोर हैं। इतने सुन्दर हैं तुम्हारे नयन!

''आँखि-तारा दुटि विरले बसिया
सृजन करेछे बिधि।
नील-पद्म भावि लुबध भ्रमरा
छुटितेछे निरवधि॥'' (पदकल्पतरु)

नयनों के सौन्दर्य ने श्रीकृष्ण को अनुगत बना दिया है। करीन्द्र (हाथी) की तरह स्वच्छन्द विलासी कृष्ण, किसी प्रकार का नियंत्रण नहीं-उन्हें भी नियंत्रित किया है श्रीराधा के ईषत् दृष्टि-विलास ने! तात्पर्य यही है-अपने अलौकिक सौन्दर्य-माधुर्य से वे समस्त जीवों का चित्त-मन हरण करते हैं, तभी उनका नाम 'हरि' है, और (अपने) आनन्द द्वारा सभी का चित्त अपनी ओर आकर्षित करते हैं, तभी उनका नाम है 'कृष्ण'-उनकी वश्यता (वशीकरण) का हेतु एकमात्र कृष्णेन्द्रिय-सुख-तात्पर्यमय प्रेम ही है। (श्रीकृष्ण को वही प्रेम वश में कर सकता है, जिसका उद्देश्य-लक्ष्य एकमात्र श्रीकृष्ण का सुख है)। उस प्रेम की जाति और परिमाण के तारतम्य (कमी-वेशी) के अनुसार वश्यता भी कम या अधिक होती है। प्रेम चार प्रकार का है-अणु, आपेक्षिक न्यूनाधिकपूर्ण, महान् और परम महान्। यह प्रेम साधकजीव में अणु बराबर, नारद आदि में आपेक्षिक न्यूनाधिकमय, व्रजवासियों में महान् और एकमात्र राधारानी में परम महान् है। इस चार प्रकार के प्रेम के आगे श्रीकृष्ण की वश्यता भी भिन्न-भिन्न होती है। यही कारण है कि राधारानी के परम महान् प्रेम के आगे परम स्वतन्त्र श्रीकृष्ण की ऐसी वश्यता होती है। मदनमोहन करीन्द्र स्वामिनी के ईषत् नयन-घूर्णन से बँध जाते हैं।

उत्तर गोष्ठ। स्वामिनी चन्द्रशालिका (चौबारे) में हैं। श्रीकृष्ण की विरह-ज्वाला से अधीर। कृण-दर्शन के अभाव में एक-एक क्षण कोटि-कोटि युगों की तरह लग रहा है। सखी दिखा रही है-'सुन्दरि! पश्य मिलति वनमाली।' नागर नहीं देख रहे, सो स्वामिनी मुक्तभाव से देख रही हैं। हृदय में पुंजीभूत है विरहव्यथा।

⁂ श्रीराधारससुधानिधि के इस श्लोक की रसवर्षिणी टीका देखिये।

नयन-चषकों से उस असीम रूपसुधा को पिये ले रही हैं। कितने-कितने भावों की अभिव्यक्ति हो रही है! विरह का दावानल दर्शन मात्र से शान्त हो गया। इस बार श्यामसुन्दर ने देखा। साथ ही साथ लजा गई। घूंघट खींचकर चली जा रही हैं। जाते-जाते भी मुड़कर खड़ी हो जाती हैं। 'जाने से पहले एकबार देख लूँ।' नयन-प्रान्तों में लेशमात्र दृष्टि! ईषत् अपांग मोक्षण (थोड़ा-सा कटाक्षपात)! लज्जा है, इसलिये दृष्टि चंचल है। आँखों की कोरों में कैसी अद्‌भुत दृष्टि है! लज्जा से दृष्टि की शोभा कितनी सुन्दर हो गई है! हर्ष जनित ईषत् हँसी। दृष्टि में सुशोभन लज्जा के साथ विनय मिला है। श्याम स्वामिनी के दृष्टिपिपासु हैं। और स्वामिनी का भाव है-'मैं तो कुछ दे नहीं पाई' तभी नयन-कोरों में विनय है। 'एकबार तो' देख पाई', इसीलिये हर्ष है। दृष्टि-विलास कितना-कुछ कह गया। स्वामिनी का दृष्टिविलास विरही श्याम की प्राणरक्षा की महौषधि है। ध्यान का धन है! श्याम ने वह दृष्टिमाधुरी हृदयपटल पर अंकित कर रख ली। वह सत्कार न पाते, तो बचते नहीं। 'क्षणभर की दृष्टि से कितना-कुछ कहा था।' श्याम हैं ध्यानकारी। पूर्वराग की अवस्था में इसी दृष्टि-विलास ने उन्हें उन्मत्त कर सारी रात जगाये रखा है। जो सर्वनियन्ता है।, उन्हें नियंत्रित किया है-इन नेत्रों के कटाक्षपात ने! जिनकी जरा-सी कृपा-दृष्टि पाने के लिये कोटि-कोटि व्रजसुन्दरियाँ व्याकुल हैं, वे राधारानी की लेशमात्र दृष्टि-सुषमा से इतने आकुल, इतने विह्वल हैं! नेत्रों के इशारे से कृष्ण-करीन्द्र मुग्ध हैं। उन्हें विवश कर दिया है इस नयन-माधुरी ने! इतने-इतने लीलारस का आस्वादन प्रदान करते-करते किंकरी तुलसी सेवा कर रही हैं। कहती हैं-'स्वामिनी! तुम्हारे जिन नयनों के ईषत् घूर्णन से कृष्णकरी वशीभूत हो जाते हैं, यह दासी उन नयनों की पूजा नहीं करेगी? ऐसे देवता की क्या पूजा नहीं की जाती?' महाजन कहते हैं- दृष्टि-विनिमय में रहो लीला (गुप्त, एकान्त, रहस्यमयी लीला) से भी अधिक रसास्वादन होता है। यही कारण हैं कि श्रीराधा की भावमय दृष्टि की इतनी अर्चना होती है।

''एइ भावयुक्त देखि राधास्य-नयन।
संगम हइते सुख पाय कोटिगुण॥'' (चै० च०)

'तुम्हारे नयन-देवता की पूजा किये बिना मैं नहीं रह सकती। किससे पूजा करूँगी, जानती हो? काजल से। काजल नहीं-गरल! ईषत् दृष्टिमात्र से उनका हृदय विषज्वाला से जर्जरित हो जायेगा। और केवल पूजा नहीं, सम्यक् पूजा। 'सम्पूजयिष्यति'। अर्थात् केवल तुम्हारे नयनों की ही पूजा नहीं होगी-निर्माल्य कालिया के अधरों पर भी लगेगा।' ⁂ तुलसी ने किशोरीमणि के आकर्ण विस्तृत नेत्रों में काजल लगाया। कज्जललिप्त नेत्रों की कैसी अपूर्व शोभा!

''नयन नलिनी दउ अंजने रंजल,
भाङ्-विभंगि विलास।
चकित चकोर - जोर बिधि बान्धल
केवल काजर-पाश॥'' (विद्यापति)

⁂ नेत्रों की सुषमा देखकर नागर नायिकामणि के नेत्र-चुम्बन करेंगे, तो श्रीमती के नयनों का काजल उनके अधारों पर लगेगा।

यस्याङ्करञ्जित-शिरास्तव मानभङ्गे, गोष्ठेन्द्रसूनुरधिकां सुषमामुपैति।
लाक्षारसः स च कदा पदयोरधस्ते, न्यस्तो मयाप्यतितरां छविमाप्स्यतीह?४३॥

अन्वय-(अयि सुवर्णाङ्गि!) तव मानभंगे (मानभंगनिमित्ते) गोष्ठेन्द्रसूनुः (श्रीकृष्णः) यस्याङ्क-रञ्जितशिराः (यस्य लाक्षारसस्यालक्तकस्य अंकरञ्जितशिराः अंकेन चिन्हेन रञ्जितमारक्तं शिरो यस्य एवम्भूतः) सन् अधिकां सुषमाम् उपैति (परमां शोभां प्राप्नोति) स च लाक्षारसः मया ते इह पदयो अधः न्यस्त (सन्) अतितरां छविम् आप्स्यति (प्राप्स्यति)॥४३॥

अनुवाद-हे सुवर्णांगि! श्रीराधिके! तुम्हारे मानभंजन के समय व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण जिस महावर-चिन्ह से रंजितमस्तक होकर और अधिक शोभा को प्राप्त हुए थे, वही आलता (महावर) मेरे द्वारा तुम्हारे पदतलों में अर्पित होकर अतिशय कान्ति का विस्तार कब करेगी?४३॥

जावकराग (आलता) रंजन

परिमलकणा व्याख्या-श्रीपाद का स्वरूपावेश अति सान्द्र (सघन) है। आवेश में स्वामिनी की सेवा के लिये प्रार्थना कर रहे हैं। स्फुरणगत आस्वादन अति विचित्र है। फिर अभीष्ट वस्तु के अनुभव का अभाव होने पर चित्त का विक्षेप। जो लोग सिद्ध हैं, उनके पास अनुभूति को छोड़ और कुछ नहीं रहता। जो लोग भजन में किंचित् अग्रसर हुए हैं, उनके पास भी कुछ अनुभव परम्परा रहती है, अन्यथा वे क्या लेकर रहेंगे? प्रेमी के जीवन का अवलम्बन है स्वप्न और स्फूर्तिगत आस्वादन एवं अनुभव परम्परा। श्रीपाद के पास है स्वाभाविक, स्वरूपावेश, उसमें कोई कृत्रिमता नहीं। साधक को पहले चेष्टा करनी पड़ती है, फिर स्वाभाविक हो जाता है।

''किरणमालिनि न प्रभुतेति तत् प्रियतमे नलिने यदिमे तमः।
स्वमहसा - वृणुर्तेव तदप्यहो रुचिरता चिरतावलतैतयोः॥''

(कृष्णभावनामृत-४/५५)

''श्रीराधा के अंजन-रंजित कंजनयनों की शोभामाधुरी देखकर लगता है, सूर्य-वैरी सघन तिमिर (अन्धकार) ने यह सोचा कि किरणमाली सूर्य का अब उतना प्रभाव नहीं रहा, और यह सोचकर ही तिमिर ने अपने कृष्णकानित-जाल में सूर्य-सुहागिनी दोनों नलिनियों को लपेट लिया। किन्तु कैसा आश्चर्य! इससे नलिनीद्वय की कमनीय कान्ति मलिन नहीं हुई, और भी सुन्दर हो गई।'' तुलसी स्वामिनी को सुना-सुनाकर उन कज्जलयुक्त नेत्रों से कह रही हैं-'हे नयन! अन्य अङ्गों को स्वर्ण-मुक्ता आदि से भूषित कर मैंने सभी इन्द्रियों में श्रेष्ठ तुम्हें कज्जललिप्त कर कलंकित क्यों किया? यदि तुम्हारे मन में ऐसी बात आये, तो मेरा उत्तर सुनो-तुम दोनों कृष्ण-दर्शन को छोड़ और कुछ नहीं चाहते, और इसके लिये सदा ही व्याकुल रहते हो, तभी मैंने कृष्णरुचि (कृष्णकान्ति वाले) अंजन द्वारा तुम दोनों की पूजा की।' सहसा स्फूर्ति भंग हो गई। विलाप करने लगे।

''खंजन नयनि! राइ! क्षण नेत्रकोणे चाइ,
बद्ध करो कृष्णकरिराजे!
से नयन कबे मरि, कज्जले रंजित करि,
साजाइबो सुमोहन-साजे॥''४२॥

जातरति भक्त के पास स्वाभाविक है। जब चिन्मय आवेश में स्वामिनी के निकट रहना होता है, तो कितना मधुर! अनुभवीजन उसी रस में निरन्तर डूबे रहते हैं।

स्फूर्ति के विराम में श्रीपाद के हृदय में विपुल आर्ति जगी थी। प्रार्थना-तरंगों में डूबा चित्त पुनः लीलाराज्य में चला गया। इस बार श्रीचरणों में आलता लगायेंगी। कहती हैं-'हे स्वामिनी! यह जो अलक्तकराग (महावर) है, इसकी महिमा जानती हो?' मन ही मन सही, उनसे बातें करना कितना मधुर है! प्रगाढ़ स्मृति में लगता है जैसे साक्षात् भाव से ही बात कर रहा हूँ और परिचर्या कर रहा हूँ। स्मरण कर रहा हूँ-यह तो मन में ही नहीं आता। श्रीपाद को विस्फूर्ति हुई है। स्वामिनी के निकट कटोरी में महावर और तूलिका लिये बैठे हैं, बातें कर रहे हैं-'तुम्हारे मान-भंजन के समय व्रजराज-नन्दन जब इस महावर से रंजित-मस्तक हो जाते हैं, तो और अधिक शोभा धारण करते हैं।' यह उनका अपकर्ष नहीं, इससे उनका उत्कर्ष ही बढ़ता है। श्रीगोस्वामिपाद कहते हैं-श्रीकृष्ण के अखिल गुणों में प्रेमवश्यता और प्रेमार्द्रचित्तता ये दो गुण श्रेष्ठ हैं। ये दोनों समस्त गुणों के संजीवक हैं। प्रेम की घनीभूत मूर्ति हैं श्रीराधा। इसीलिये श्रीकृष्ण श्रीराधा के इतने वशीभूत रहते हैं और यह वश्यता ही श्रीकृष्ण के उन दो महागुणों का परम उत्कर्ष है। अपना उत्कर्ष आविष्कार करना सभी चाहते हैं। तभी तो कवि जयदेव का रूप धारण कर उनके गीतगोविन्द का अधूरा चरण पूरा किया था-''देहि पदपल्लवमुदारम्''। ⁂ श्रीराधा के अनुगत कृष्ण ही हम लोगों के उपास्य हैं। श्रीराधा के चरणों से लगा अलक्तक (आलता) चिन्ह श्रीकृष्ण का शिरोभूषण है। सिर की जो शोभा मयूरपुच्छ से नहीं होती, वह अलक्तक-चिन्ह से होती है। इसका मर्म भलीभाँति राधा-किंकरी ही जानती है। श्रीश्रीलीलाशुक ने कहा है-तुम्हारा अनन्यसाधारण परिचय यही है कि तुम ''शिखि-पिच्छमौलि'' हो। मयूरपुच्छ सिर पर क्यों? श्रीकृष्ण गोचारण को जाते हैं, तो उनकी नव-जलधर कान्ति देखकर वृन्दावन के मयूर आनन्द में आत्महारा होकर नृत्य करने लगते है। उन सबका नृत्य देखकर नटराज गोविन्द भी अपने पीठ वाले कटि वस्त्र को मोरपुच्छ की तरह दोनों हाथों से उठाकर मयूर की तरह ही नाच उठते हैं। उन्हें देखकर मोर और हर्ष के साथ नाचने लगते हैं; ऐसा करने से उनके दो-चार पंख झड़ जाते हैं। श्रीकृष्ण को लगता है जैसे मोर कह रहे हैं-'हे प्रेम के देवता! विधाता हम लोगों को मनुष्य देह देते, तो इन वनफूल-फलों से तुम्हारी सेवा करते। हाय! वह सौभाग्य हमें प्राप्त नहीं। हम हैं पक्षिजाति, हमारे ये रंगीन पंख सभी पसन्द करते हैं। यदि तुम हमारा यह तुच्छ उपहार सप्रेम ग्रहण करो, तो हम धन्य हो जायें।' जो भक्त के एक तुलसीपत्र और एक अंजलि जल के विनिमय में आत्मदान करते हैं, वे उन सबके प्रेम उपहार नित्य सादर मस्तकभूषण के रूप में ग्रहण करते हैं। श्रीकृष्ण हैं शृंगाररस-मूर्ति। महाभावमयी श्रीराधा के श्रीचरणों का जावक (जो उनके श्रीचरणों से निकले प्रचुर महाभावरस से भावित है) श्रेष्ठतम प्रेम उपहार है। इसीलिये इसे मस्तक पर धारण कर श्रीकृष्ण का इतना शोभाधिक्य है! यहाँ रस ने स्वयं उन्हें सजाया है। सच्चिदानन्द के ऊपर प्रेम का रंग चढ़ाया है। कर्णपूर श्रीगोविन्द के अङ्ग पर श्रीमती के अलक्तक चिन्ह की शोभा वर्णन करने में सुदक्ष हैं-

---

⁂ कहते हैं, गीतगोविन्द की रचना चल रही थी; श्रीकृष्ण के शिरोभूषणरूप में मानिनी श्रीराधा के चरण वे मस्तक पर धारण करना चाहते थे, पर कवि को यह लिखने में संकोच हुआ। जयदेव स्नान करने गये, तो उनका रूप धारण कर कृष्ण ने वही बात लिखकर चरण पूरा कर दिया।

''श्रीवत्सस्य च कौस्तुभस्य च रमादेव्याश्च गर्हाकरो
राधापादसरोज-यावकरसो वक्षःस्थलस्थो हरेः।
बालार्कद्युतिमण्डलीव तिमिरैश्छन्देन बन्दीकृता
कालिन्द्याः पयसीव पीवविकचं रक्तोत्पलं पातु वः॥''

(अलंकार कौस्तुभ-९/५९)

''एकबार स्वाधीनभर्तृका कान्ता श्रीराधा के चरणों में यावक (महावर) लगाते समय श्रीहरि ने श्रीचरण माधुर्य से आकृष्ट होकर श्रीचरण वक्ष पर रख लिये, तो शक्त अलक्तक उनके वक्ष से लग गया। तब वह उनके हृदय पर स्थित श्रीवत्स, कौस्तुभ और स्वर्ण रेखारूपी रमादेवी की निन्दा कर उनके श्यामल वक्ष पर शोभा पाने लगा! लगता है जैसे सघन अन्धकार यह देखकर कि प्रातःकालीन उदीयमान सूर्य की छटा से अब मैं नष्ट होने वाला हूँ उसकी स्तुत कर रहा है। अथवा कालिन्दी के काले जल में रक्तकोकनद (कमल) फूटा है! वही यावकरस तुम लोगों की रक्षा करे।'' इस प्रकार मानमयी की महावर श्रीहरि के मस्तक पर लगकर उनकी शोभा विस्तार करती है। कुँज में श्रीमती मानिनी हैं। नागर उनके पैरों में नत हैं। 'थोड़ा देखोगी नहीं, थोड़ी बात नहीं करोगी, तो मैं क्या लेकर रहूँगा?' सखियों को हाथ में कर (फुसलाकर, प्रभावित कर) श्रीचरण सिर पर रख लिये हैं। मान पलायन कर चुका है। श्रीचरण घर्माक्त (पसीने से युक्त) हैं। सिर पर महावर लग गई। मयूर मुकुट सरक गया! श्याम रसराज्य के सम्राट हैं इसी से। ये श्रीचरण मस्तक पर धारण करके ही वे रसिकशेखर हैं-रसिकेन्द्रमौलि!

''रसघनमोहनमूर्ति, विचित्रकेलिमहोत्सवोल्लसितम्!
राधाचरणविलोड़ित, रुचिरशिखण्डं हरिं वन्दे॥''

(राधारससुधानिधि-२०१)

''जिनका सुन्दर मोरपुच्छ चूड़ा श्रीराधा-चरणों में विलुण्ठित है-उन्हीं रसघनमोहनमूर्ति विचित्र केलि-महोत्सव में उल्लसित श्रीहरि की मैं वन्दना करता हूँ।'' सब भूलकर माधुर्यरस में मग्न हैं, इसीलिये वे 'रसघनमोहनमूर्ति' हैं। ऐश्वर्य की आँच रहने से रस नहीं होता। कितनी-कितनी लीलाओं के रस का आस्वादन देते हुए तुलसी स्वामिनी के चरण वक्ष पर रखकर महावर लगा रही हैं। फूँक मारकर सुखा भी रही हैं। ऐसी सेवा-परिपाटी किंकरी को छोड़ और कौन जानता है? श्रीचरणों में लाल जावक (महावर) की कैसी शोभा है! लगता है जैसे अरुणदेव ने सूर्यप्रिया नलिनीद्वय की सेवा के लिये ही महावर के रूप में श्रीपादपद्मों में आश्रय लिया है। अनुरागिणी किंकरी श्रीचरणों की रमणीय सुषमा देखकर अभिभूत होकर कहती हैं-'अरी महावर! इन प्रवाल (मूँगे)-जैसे लाल-लाल चरणों के सौन्दर्य-विकास में अपने को अयोग्य समझकर खेद मत करना। इन चरणों का आश्रय कम सौभाग्य से नहीं मिलता। इस चरणाश्रय के फलस्वरूप तुम्हारे और अधिक सौभाग्य का उदय होगा। तुम श्याम के घुंघराले केशों तक को परिशोभित कर सकोगी। धन्य है तुम्हारा शुभ अदृष्ट (भाग्य)! महाभावमयी के चरणकमलों में आश्रय पाया।' तुलसी मन ही मन कितनी ही बातें कर रही हैं! स्वामिनी अन्यमनस्क हैं। तुलसी द्वारा परोसे गये रस में मन डूब गया है! तुलसी ध्यान आकर्षित कर कहती हैं-'स्वामिनी! चरणों में जावक लगा दिया, श्यामसुन्दर के मस्तक पर चला जाय, तो देखकर हम लोग कृतार्थ हों। यह

अलक्तकराग कृष्ण के घने केशकलाप की शोभा बढ़ायेगा।' गौड़ीय वैष्णवों को राधाचरणाश्रय की महिमा गोस्वामिपादगण के श्रीचरणानुगत्य में समझनी होगी। उन लोगों की प्रीति है राधा-स्नेहाधिका। महाप्रभु का महादान। महाप्रभु के युग में जो श्रीकृष्णचरणाश्रय लेकर भी श्रीराधाचरणाश्रय से वंचित हैं, उनके लिये श्रील गोस्वामिपादगण ने आक्षेप किया है-

''नृपो न हरिसेविता व्ययकृती न हर्यर्पक:
कविर्न हरिवर्णक: श्रितगुरुर्न हर्याश्रित:।
गुणी न हरितत्पर: सरलधीर्न कृष्णाश्रय:
स न व्रजरमानुग: स्वहृदि सप्तशल्यानि मे॥''

(गोपालचम्पू-पू० ३३ पू०)

''जो राजा होकर हरिसेवा नहीं करता, जो अर्थ व्यय करता है पर भगवत्कार्य में कुछ नहीं लगाता, जो कवि होकर भगवान् का रूप-गुण-लीला का वर्णन नहीं करता, जो गुरुआश्रय लेकर भी वैष्णवगुरु का चरणाश्रय नहीं लेता, जो गुणी है किन्तु भगवद्भक्त नहीं, जो सरलचित्त है पर कृष्णाश्रय नहीं लेता और जो कृष्णाश्रय लेकर भी व्रजसुन्दरियों के आनुगत्य में भजन नहीं करता-ये सात प्रकार के व्यक्ति मेरे हृदय के शूलसदृश, अर्थात् अतिशय दु:खप्रद हैं।''

तुलसी स्वामिनी के जावक सेवारस में भोर हैं। यह सेवा इतनी लोभनीय है कि श्रीहरि भी स्वेच्छा से इस सेवा की आकांक्षा से नाइन के वेश में जटिला के घर जाकर श्रीराधा के चरणों में महावर लगाते हैं।

''धरि नापितानी-वेश महलेते परवेश
जेखाने बसिया आछे राइ।
हाते दिया दरपनी खोले नख-रंजनी
बोले वैसो देइ कामाइ॥
बसिया जे रसवती नारी।
खुलिलो कनकबाटी आनिया विमल घटी
ढालिलो सुवासित वारि॥
करे नख-रंजनी चाँचये नखेर कणी
शोभित करलो जेनो चाँन्दे।
नापितानी एके श्यामा ननीर पुतली झामा
बुलाइछे मनेर आनन्दे॥
घसि घसि रांगा पाय आल्ता लागाय ताय
निरखि निरखि अविराम।
रचये विचित्र करि चरण हृदये धरि
तले लेखे आपनार नाम॥

कलावति नतांसयोः प्रचुर - कामपुञ्जोज्ज्वलत्-
कलानिधि-मुरद्विषः प्रकटरास-सम्भावयोः।
भ्रमद्भ्रमरझंकृतैर्मधुर मल्लिमालां मुदा
कदा तव तयोः समर्पयति देवि दासीजनः?४४॥

अन्वय-कलावति! देवि! दासीजनः कदा प्रचुरकामपुंजोज्ज्वलत् (प्रचुरो यथेष्टो यः कामः तस्य पुंजोराशिस्तेनोज्ज्वलन्) कलानिधि-मुरद्विषः (कलानां निधिर्योमुरद्विट् श्रीकृष्णस्तस्य) प्रकटराससम्भावयोः (प्रकटं यथास्यात्तथा रासे सम्भावनं मिलन ययोः) तयो तव नतांसयोः भ्रमद्-भ्रमरझंकृतैः मधुरमल्लिमालां समर्पयति?४४॥

अनुवाद-हे कलावति! हे देवि! जिस (कन्धे) पर प्रचुर कामपुंज से उज्ज्वल कलानिधि श्रीकृष्ण का प्रकट रासलीलारूपी रस-सम्मेलन हुआ करता है, तुम्हारे उसी नत स्कन्धदेश को यह दासी भ्राम्यमान (मडराते) भ्रमर की झंकार से युक्त मधुर मल्लिकामाला कब अर्पित करेगी?४४॥

नापितानी बोले धनी देखहो चरणखानि
भालो मन्द करहो विचार।
देखि सुवदनी कहे कि नाम लिखिला ओहे
परिचय देहो आपनार॥
नापितानी कहे धनी श्यामा नाम धरि आमि
बसति ए तोमार नगरे।
द्विज चण्डीदासे कय एइ नापितानी नय
कामाइला जाहो निजघरे॥'' (पदकल्पतरु)

'कामाइला' में श्लेष है। एक ओर चरण सँवार दिये, तो दूसरी ओर कमाई कर ली। प्रेममयी की श्रीचरण-सेवा में ही रसिकराज का चरम अभ्युदय है। ''बुझिबे रसिकभक्त ना दुझिबे मूढ़।'' यावक-रंजन करते-करते स्फूर्ति में विराम। हाहाकार के साथ उसी सेवा के लिये प्रार्थना।

''भांगिते दुर्जय मान, चरणे लुटाय कान,
लाक्षारसे शिर रंजे ताँर।
ताहाते से शिरोशोभा, अधिक बाड़ये किबा,
अनुपम सौन्दर्य विस्तार॥
कबे सेइ लाक्षारसे, तव पदे-अधोदेशे,
रंजित करिबो निज करे।
सर्व कान्ति गर्व टुटि, उठिबे माधुरी फुटि,
निरखिबो दुनयन भरे॥''४३॥

मधुर मल्लिकामाला

परिमलकणा व्याख्या-स्फूर्ति के विराम में साक्षात् सेवा के लिये प्रार्थना। श्रीचरणों में महावर लगा दी। अब एक मल्लिका-माला गले में पहनायेंगे-भ्राम्यमान् (मडराते) भ्रमर की झंकार से झंकृत मधुर माला! पहले स्फूर्ति में अर्पण! स्फूर्ति भंग होने पर साक्षात् सेवा के लिये प्रार्थना। माला पहनाने बैठती हैं, तो कितनी ही लीला-स्मृतियाँ मन में जगती हैं! 'कलावति' सम्बोधन में रासलीला की स्फूर्ति है। 'तुम कलावति हो, रासलीला में कलानिधि के साथ कितनी कलायें प्रकट की थीं?'

''रसवती संगे रसिकवर राय।
अपरूप रास-, विलास कलारसे, कतो मनमथ मुरछाय॥
कुसुमितकेलि -, कदम्ब कदम्बक-, सुरभित शीतल छाय।
बाँधुली बन्धु मधुर, अधरे धरि, मोहन मुरली बाजाय॥
कामिनी कोटि, नयन-नील उतपल, परिपूजिते मुखचन्द।''

रास में शतकोटि गोपियों का समावेश है, किन्तु कलावती के प्रति ही विशेष लक्ष्य है। रासलीला की एक मधुर स्मृति तुलसी के मन में जगी है। उसी का आस्वादन स्वामिनी को करा रही हैं। एक का भाव दूसरे के हृदय में संचारित होता है-जैसे भक्त के साथ अन्य के चित्त में भी भक्ति-भाव का संचार होता है। भावमयी को भाव-तरंगों में डुबा कर सेवा करनी होगी। चित्त-मन उस तरह योग्य न हो, तो भाव की सेवा कैसे होगी? महाभाव के हृदय में सुख का संचार करना होगा। महाभाव से शृंगार की, और शृंगार से महाभाव की सेवा!

''राधाकृष्ण दुहुँ प्रेम, लक्षवाण जेनो हेम, जाहार हिलोल रससिन्धु।
चकोर नयन प्रेम, काम रति करे ध्यान, पिरीति सुखेर दुहुँ बन्धु॥
राधिका प्रेयसीवरा, वामदिके मनोहरा, कनक केशर कान्ति धरे।
अनुरागे रक्त शाड़ी, नीलपट्ट मनोहारी, मणिमय आभरण परे॥
करये लोचन पान, रूप-लीला दुहुँ गान, आनन्दे मगन सहचरी।
वेदविधि अगोचर, रतन-वेदीर पर, सेबो निति किशोर-किशोरी॥'' (प्रे० भ० च०)

आचार्य की महावाणी की सेवा करते-करते ही चित्त में योग्यता आयेगी। वह वाणी ही योग्यता ला देगी। ''केवल भकत संग, प्रेमभक्ति रसरंग, लीलाकथा व्रजरसपूरे'' (वही)। व्रजरस से पूर्ण लीलाकथा के श्रवण-कीर्तन-स्मरण से और सर्वश्रेष्ठ साधनांग नाम-संकीर्तन से (चित्त) उज्ज्वल हो उठेगा।

''तद्धि तत्तद्व्रज क्रीड़ा-ध्यानगानप्रधानया।
भक्त्या सम्पद्यते प्रेष्ठ-नामसंकीर्तनोज्ज्वलम्॥''(वृ०भा०-२/५/२१८)

अर्थात् ''जिसमें व्रजलीला का ध्यान और गायन प्रमुख रूप से विद्यमान है, और जो प्रेष्ठ नाम-संकीर्तन से उज्ज्वल है, उसी भक्ति से व्रज जातीय प्रेम उदय होता है।'' ''गानेत्युक्त्वा नाम-संकीर्तने प्राप्तेऽपि निजप्रियतम-नामसंकीर्तनस्य प्रेमान्तरंगतरसाधनत्वेन पुनर्विशेषेण निर्देशः। किम्वा तत् सम्पत्तिलक्षणज्ञानाय।'' -यद्यपि गान कहने से नामसंकीर्तन का भी बोध होता है, तथापि निज प्रियतम-नामसंकीर्तन को प्रेम का

अन्तरंगतम साधन मानकर पुनः विशेषरूप से उल्लेख किया गया है। यह भी कह सकते हैं कि प्रियतम नामसंकीर्तन को ही प्रेमसम्पत्ति का लक्षण मानकर पृथक् उल्लेख किया है।

'नतांसयोः' शब्द से स्वामिनी के स्कन्धदेश की शोभा स्मृतिपथ पर उदित हुई है। रास-विलास में राधारानी के कन्धों की कैसी माधुरी! रास-विलासी श्यामसुन्दर के विशाल बाहुदण्ड द्वारा आलिंगित हैं, इसीलिये नतस्कन्ध। श्यामसुन्दर की कितनी कलायें प्रकट हो रही हैं! कलावती श्रीराधा, कलानिधि श्रीकृष्ण। मिलन-परिपाटी कितनी सुन्दर! दासी के भाव के बिना सौन्दर्य को समझना कठिन है। श्रीपाद शुकमुनि ने महारास में प्रधानतः नायिकाभाव का ही वर्णन किया हैं, किन्तु सखी-भाव की बात बिल्कुल न की हो, सो नहीं। ''अप्येण पत्न्युपगतः'' इत्यादि (१०/३०/११)। इस श्लोक की लघुतोषणी टीका में श्रीमत् जीव गोस्वामिपाद ने लिखा है-''अत्राखण्डस्य वाक्यस्य निखिल-पदानामप्यनुमोदनव्यंजक एवार्थः प्रतिपद्यते। ततः सख्यमेवासां तन्मिथुनमनुलक्ष्यते तद्दर्शनोत्कण्ठा च तत्र वाक्यार्थः।'' अर्थात् ''इस श्लोक की सभी बातें अनुमोदन व्यंजक हैं। समझना होगा कि श्रीराधा की सखियाँ श्रीराधाकृष्ण की दर्शन-उत्कण्ठावश हरिणियों से श्रीराधाकृष्ण के विषय में पूछ रही हैं।'' मंजरियाँ भी एक प्रकार की सखियाँ हैं। वे सेवापरायण और सेवाप्राण हैं। भागवत को देखकर जोर देकर यह कहना कठिन है कि रासलीला में मंजरियाँ थीं कि नहीं। श्रीपाद कर्णपूर के आनन्दवृन्दावनचम्पू में रासवर्णन में 'अनुचरी' शब्द का उल्लेख है। उधर श्रीमत् रूपगोस्वामिपाद ने उत्कलिकावल्लरी स्तव में श्लोक ४२ में महारास में मंजरियों की स्थिति और सखियों से भी अधिक उनके विलक्षण सौभाग्य की बात कही है।

''रासारम्भे विलसति परित्यज्य गोष्ठाम्बुजाक्षी,
वृन्दं वृन्दावनभुवि रहः केशवेनोपनीय।
त्वां स्वाधीनप्रियतमपदप्रापणेनार्चितांगीं, दूरे
दृष्ट्वा हृदि किमचिरादर्पयिष्यामि दर्पम्॥''

''हे श्रीमती राधिके! वृन्दावन में रासक्रीड़ा आरम्भ होने पर श्रीकृष्ण अन्यान्य व्रज-सुन्दरियों का परित्याग कर तुम्हें लेकर निर्जन में चले जायेंगे और एकान्तभाव से तुम्हारे वशीभूत होकर नाना प्रकार के पुष्पों से तुम्हारी विविध वेशरचना करेंगे। मैं दूर से यह देखकर गौरव से आत्महारा होकर हृदय में अपार आनन्द कब अनुभव करूँगी?'' इससे महारास में मंजरियों की एक विशेष भूमिका का पता चला। किंकरियाँ श्रीमती की अभिन्न प्राण हैं, अभिन्न देह हैं-इसलिये उनसे श्रीमती की कोई बात छिपी नहीं।

श्रीपाद कहते हैं-''प्रचुरकामपुंजोज्ज्वलं''-प्रचुर कामपुंज से उज्ज्वल कलानिधि श्यामसुन्दर! इससे विलास-लालसा की तीव्रता समझ में आती है। प्रति अङ्ग श्रीराधा के प्रति अङ्ग से मिलने की आकांक्षा में व्याकुल है! साक्षात् शृंगार अथवा उज्ज्वलरस की ही मूर्ति! श्रीपाद शुक मुनि ने ''रन्तुं मनश्चक्रे'' इस आत्मनेपद का प्रयोग कर यही तत्त्व समझाना चाहा है। ''सर्वातिशयप्रेमवतीनां श्रीब्रजसुन्दरीणां मनोरथपरिपूरणमेव प्रियमात्रसुखार्थं सर्वं कुर्वतः श्रीभगवतो मुख्यतर प्रयोजनमिति दर्शयंस्तदेव तस्य सर्वातिशायिमुख्यसुखमिति प्रकटयन्.....ताभिः सह रासक्रीड़ां पंचेन्द्रियतुल्यप्रियै पंचभिरध्यायैर्वर्णयति'' (वैष्णवतोषणी टीका)। भगवान् की रमण-वासना का तत्त्व प्रकट करते हुए श्रील गोस्वामिपाद कहते हैं-'भगवान् आत्माराम या आप्तकाम हैं,

फिर भी प्रेम ही उनके हृदय में कामना जगाने में सक्षम है। प्रेमिक का आनन्द-वर्धन करने के लिये वे कोई भी काम कर लेते हैं। अतएव महाप्रेमवती व्रजसुन्दरियों का मनोरथ पूर्ण करना ही उनका मुख्यतम प्रयोजन है और यही उनका सर्वश्रेष्ठ आनन्द-आस्वादन है। इस परम तत्त्व को प्रकट करने के लिये ही श्रीमद्भागवत के पंचेन्द्रियतुल्य पाँच अध्यायों में भगवान् के साथ व्रजसुन्दरियों की रासक्रीड़ा का वर्णन किया गया है। ''किन्तु यह मनोरथ-पूर्ति और आनन्दास्वादन जैसा व्रजसुन्दरी-शिरोमणि श्रीराधा के साथ है, वैसा और कहीं नहीं। उज्ज्वल कृष्ण, प्रचुर काम द्वारा श्रीराधा के साथ खेलने की प्रबल आकांक्षा रखते हैं। कान्तायें और भी हैं, पर उनका मन राधारानी में ही मग्न रहता है। कोटि-कोटि गोपसुन्दरियाँ रास में अद्भुत नृत्य कर रही हैं, किन्तु श्रीकृष्ण की दृष्टि निबद्ध है श्रीराधा में ही। वे सभी के मन को सन्तोष प्रदान कर रहे हैं, किन्तु स्वयं आस्वादन पा रहे हैं राधारानी से। कैसी अपूर्व लीला-माधुरी है! कोई यह नहीं सोच पा रही कि उसका अनादर किया जा रहा है। ''श्लिष्यति कामपि चुम्बति कामपि कामपि रमयति रामाम्'' (जयदेव)। सभी के मन को रंजित कर रहे हैं, पर स्वयं रंजित हो रहे हैं राधारानी के साथ खेल कर। यहीं राधारानी की विशिष्टता है।

कलावती ही हैं! उनके नत स्कन्ध श्यामसुन्दर के मिलन के द्योतक हैं। श्यामसुन्दर का बाँया हाथ श्रीराधा के स्कन्धदेश पर है। तुलसी की वर्णन-शैली से मानो रासलीलारस महाभावमयी के आगे मूर्तिमान् हो उठा है! अपने स्कन्ध पर श्याम के बाहु-स्पर्श का निविड़ आनन्द उपभोग कर रही हैं। उनका भाव जानकर तुलसी किशोरीमणि के चित्त को लीलारस में डुबा रही हैं। 'अभी तो स्कन्ध पर उसकी बाहु है। अभी मल्लिकामाला पहनाऊँ तो सम्भव है वह टूट जाय। छोड़ो न!' धन्य किंकरी। इस तरह कौन आनन्द देता है! जिस-तिस की बात वे नहीं सुनतीं। रसानुकूल होती है तो सुनती हैं, अन्यथा नहीं। महाप्रभु सभी की बात नहीं सुनते थे।

''गीत श्लोक ग्रन्थ किबा जेइ करि आने।
प्रथमे शुनाय सेइ स्वरूपेर स्थाने॥
स्वरूप ठाँइ उत्तरे जदि, लइया तार मन।
तबे महाप्रभु-स्थाने कराय श्रवण॥
रसाभास हय जदि सिद्धान्त - विरोध।
सहिते ना पारे प्रभु, मने हय क्रोध॥'' (चै०च० अन्त्य० - परि० ५)

भावुक के आगे बात करना कठिन। इष्टकथा समालोचना में भी भावानुकूल प्रसंग होना चाहिये। भजन करना है, तो आचार्य के मन के साथ मन मिलाना होगा। संसार में मन रखकर उनकी सेवा नहीं होती। परस्पर के मनोभाव का विनिमय होना चाहिये। मन बड़ा पवित्र हो। जीवन का सम्पूर्ण भार जिन्हें दिया है, उनके मनोमत नहीं होंगे? 'हा स्वामिनि! तुम्हारे मन का भाव मुझसे कतई छिपा न रहेगा।' राधारानी की सेवा करने के लिये अन्य सभी आवेशों को छोड़कर सम्पूर्ण मन उन्हीं को देना होगा।

श्रीपाद रघुनाथ का मन लीलाराज्य में है। स्वामिनी आगे खड़ी हैं। कह रही हैं-''यह देखो, मल्लिका की माला। तुम्हारे नत स्कन्ध पर पहनाऊँगी।' दोनों एक-दूसरे की बाहुओं द्वारा आलिंगित हैं, तभी नतस्कन्ध।

सूर्याय सूर्यमणिनिर्मित वेदि-मध्ये, मुग्धाङ्गि भावत इहालिकुलैर्वृतायाः।
अर्घ्यं समर्पयितुमुत्कधियस्तवारात्, सज्जानि किं सुमुखि दास्यति दासिकेयम्?४५॥

अन्वय-सुमुखि! मुग्धाङ्गि! इयं दासिका किम् इह (वृन्दावने) सूर्यमणिनिर्मित वेदिमध्ये सूर्याय अर्घ्य समर्पयितुम् उत्कधियः (उत्कमते) भावतः (प्रेम्णा) आलिकुलैः वृतायाः तव आरात् (समीपे) सज्जानि (पूजोपहार द्रव्याणि) दास्यति?४५॥

अनुवाद-हे सुमुखि! हे मुग्धांगि श्रीराधिके! सूर्यकान्तमणि-जड़ित वेदी पर सूर्यदेव को अर्घ्य प्रदान करने के लिये अत्यन्त उत्कण्ठित और प्रिय सखियों से वेष्टित तुम्हारे निकट यह दीन दासी क्या पूजोपहार द्रव्य आदि अर्पित करेगी?४५॥

चरण-विन्यास की परिपाटी कितनी सुन्दर है। श्याम की बायीं बाहु ने स्वामिनी के बायें स्कन्ध पर होते हुए वक्ष तक पहुँचकर अपनी आकांक्षा पूरी की थी। आजानुलम्बित बाहु। बाहु आई थी आकांक्षापूर्ति के अनुकूल भाव से। दोनों आँखों की कोरों से एक-दूसरे का लेहन (चाटना) कर रहे थे। एक-एक बाहु द्वारा आलिंगित, प्रचुर पुलकयुक्त। गोरी स्वामिनी, साँवले श्यामसुन्दर। उसी मिलन से नतस्कन्ध।'काम-पुंज से जल गया था श्याम, तुमने उसे निर्वापित किया था (शान्त किया था, बुझाया था)।' ''शतकोटि गोपीते नहे काम-निर्वापण। इहातेइ अनुमान श्रीराधार गुण॥'' (चै० च०)। धन्य दासी। रस का कितना-कितना आस्वादन देकर सेवा। रूप-रघुनाथ के आनुगत्य के बिना इस रस की उपलब्धि नहीं होगी। 'जय सनातन रूप, प्रेमभक्ति रसकूप'-इस कूँए में मन को डुबाना होगा।

तुलसी ने स्वामिनी के गले में मल्लिका-माला पहना दी। एक बड़ा मणिदर्पण सामने रखा। 'अब देखो, कैसी सजी हो!' प्रतिबिम्बित रूप की माधुरी देखकर स्वामिनी व्याकुल हैं। 'तुलसि! उसे भोग करा सकेगी। असंस्कृत रूप देखकर ही वह इतना मुग्ध होता है। यह अपरूप रूपलावण्य देखकर उसकी न जाने क्या अवस्था होगी! तृषित नागर को इस रूप का आस्वादन न देकर तो सब व्यर्थ ही हुआ।' इस प्रकार तुलसी के साथ स्वामिनी की कितनी-कितनी मन की बातें हो रही हैं। सहसा स्फूर्ति में विराम आ गया हाहाकार करते हुए प्रार्थना-

''तुमि कलावती, कृष्ण पूर्ण कलानिधि।
सुप्रचुर कामपुंज-उज्ज्वल-अवधि॥
प्रकट मधुर रास-रस सम्भावेते।
नतस्कन्धदेश तव कृष्णे सुख दिते॥
सेइ नतस्कन्धे फुल्लमल्लिकार माला।
जाहाते भ्रमरकुल लोभे करे खेला॥
कबे एइ दासीजन करिबे अर्पण।
पुलके भरिबे तनु आनन्दे मगन॥''४४॥

सूर्यदेव को अर्घ्य

परिमलकणा व्याख्या-श्रीपाद ने स्फूर्ति में स्वामिनी की शृंगार-सेवा का रसास्वादन किया है और स्फूर्ति के विराम में की है प्रार्थना। प्रार्थना के माध्यम से रागानुगीय साधकों के लिये शृंगार-सेवा को परिपाटी अभिव्यक्त कर दी है। साधक के अपने मन के अनुरूप सेवा करने से काम नहीं चलेगा। राधारानी के मन के अनुरूप करनी होगी। जिन लोगों ने उनका मन समझ लिया है, उनका अनुगमन करना होगा। श्रील ठाकुर महाशय ने अपनी प्रेमभक्तिचन्द्रिका में महत्-आनुगत्य की बात इस प्रकार लिखी है-''महाजनेर जेइ पथ, ताते हेबो अनुरत, पूर्वापर करिया विचार।'' श्रीयुगल-भजनाश्रयी गौड़ीय-वैष्णवों के लिये है श्रीरूप-रघुनाथ का आनुगत्य। ये व्रज की मंजरियाँ हैं, श्रीमन्महाप्रभु के साथ विश्व में आई हैं-युगल उपासना की परिपाटी सिखाने। साक्षात् सेवाधिकारिणी किंकरियाँ यह सिखाने के लिये व्याकुल है कि सेवा कैसे करनी होगी। स्तवमाला और स्तवावली आस्वाद्य हैं। ये भजन-अनुभव और भजन-परिपाटी से पूर्ण हैं। भजन की निगूढ़ सम्पद् उत्कण्ठा, आर्ति, सेवाकांक्षा इन्हीं से ज्ञात होती है। श्रीरूप-रघुनाथ का विरह कितना तीव्र है। यह दु:ख संसार के दु:ख की तरह नहीं, यह दु:ख है सुख से गठित। राधारानी का अभाव मर्म-मर्म में अनुभव करना क्या इतना सहज है? चित्त के किंकरी-अभिमान से विभावित हुए बिना यह नहीं होता। आचार्य पादगण की शिक्षा से पता चलता है कि अभाव जगाकर भजन करना होगा। विरह जागने पर सभी छूट जाता है, त्याग जबरन नहीं करना पड़ता। ''कबे कृष्णधन पाबो, हियार माझारे थोबो, जुड़ाइबे ए पाप पराण'' (प्रार्थना)। प्राणों को शान्ति पहुँचाने का और कोई उपाय नहीं। विश्व की सभी वस्तुओं में अरुचि हो जायेगी। क्षुधा के समय क्या माला-चन्दन तृप्ति दे सकते हैं? जिसके हृदय में शूल बिंधा है, वह कभी निश्चिन्त होकर आहार-निद्रा का सुख नहीं भोग सकता। ''पाबो राधाकृष्ण-पा, घुचिबे मनेर घा, दूरे जाबे ए सब विकल'' (वही)। मैं आज तक अपने को पहचान नहीं पाया। राधारानी की दासी के रूप में परिचय कहाँ दे पाया? यह तो केवल प्रेम की उपासना है। सारी प्रेम-प्रीति हार मान गई-राधारानी की किंकरियों की प्रेमप्रीति के आगे। श्रीपाद प्रबोधानन्द सरस्वती ने लिखा है-

''राधाकृष्ण - पदारविन्दमकरन्दास्वाद - माद्यन्मनो-
भृंगा: सन्ततमुद्गताश्रुपुलकास्तत्प्रेम - तीव्रौघत:।
अत्यानन्दभरात् कदाप्यतिलये शोचन्त्य आत्मेशयो:
सेवाया विहते: स्फुरन्तु मम ता: श्रीराधिकाराधिका:॥''

(वृन्दावनमहिमामृतम्-६/८१)

''जिनके मनोभृंग श्रीराधाकृष्ण के पादपद्म-मकरन्द आस्वादन में मत्त है, जो युगलप्रेम के तीव्र प्रवाह में डूबी हैं, जिनकी देहों में सतत अश्रु-पुलकादि प्रकट होते हैं और प्राणेश्वरयुगल के अति आनन्द पूर्वक छिप जाने पर जो सेवा-विघ्न के कारण अनुताप करती हैं-वही राधाकिंकरियाँ मेरे हृदय में स्फुरित हों।''

श्रीमती की वेश रचना हो गई है। अब सूर्यकान्तमणि-निर्मित वेदी पर सूर्यदेव को अर्घ्य दिया जायेगा। वेश रचना के पश्चात् नन्दीश्वर जाने से पूर्व एक बार सूर्य को अर्घ्य देती हैं। श्यामसुन्दर की कल्याण-कामना से यह अनुष्ठान होता है। इस श्लोक के बाद ही सन्ध्या-समय नन्दीश्वर को भोज्य-सामग्री भेजने की बात है,

अतएव मध्याह्न लीला के अन्त में सूर्यकुण्ड पर सूर्यपूजा यह अर्थ भी किया जा सकता है। भाव के आवेश में जब जो लीला या सेवा स्फुरण में प्राप्त हुई है, बाहर उसी के लिये प्रार्थना की है।

सूर्यपूजा में सभी सखियाँ हैं। पुरोहित हैं विश्वशर्मा ब्रह्मचारी। प्रशान्तमूर्ति, गेरुआ वस्त्रधारी। ब्रह्मचर्य की ज्योति अङ्ग से छिटक रही है। जटिला हैं। ब्रह्मचारी स्त्री स्पर्श नहीं करेंगे। कुश से स्पर्श कर पुरोहित-वरण करना होगा। वरणमन्त्र भी कैसा अद्‌भुत है। ''जगन्मङ्गलकृद्‌गोत्रं शुचिवित् प्रवरं शुचिम्। भवन्तं विश्वशर्माणं पुरोहिततया वृणे''-''जगत्-मंगलकारी भगवान् ही जिनका गोत्र है और शुचिवित् जिनके प्रवर (गोत्र प्रवर्तनकारी मुनि) हैं, विशुद्ध ज्ञानशाली शुद्धचेता उन्हीं विश्वशर्मा को मैं पुरोहितरूप में वरण करती हूँ।'' पक्षान्तर से ''जिनका गोत्र (नाम) विश्व के लिये मंगलप्रद है, शुचिवित् अर्थात् शृंगाररसवेत्ताओं में प्रवर या श्रेष्ठ (रसिक चूड़ामणि) हैं, विश्वशर्मा अर्थात् विश्व के लिये सुखप्रद हैं, पुरोहित अर्थात् आगे हितकारी हैं-ऐसे तुम को अभीष्ट के रूप में वरण करती हूँ।'' गुरुजन सामने हैं। स्वामिनी सभी समझती हैं। वदन की कैसी सुषमा है! तभी 'सुमुखि' सम्बोधन। पुरोहित-वरण के पश्चात् अर्चना का मन्त्रपाठ करा रहे हैं-''श्रीभास्वतेऽतनुतमः संहन्त्रेत्यनुरागिणे। पुरः सतेऽस्मै मित्राय पद्‌मिनीबन्धवे नमः।''-''जो अतनुतम संहर्ता अर्थात् घोर अन्धकार के विनाशकारी हैं, जो सायं और प्रभातकाल में अनुरागी अर्थात् अरुणवर्ण हैं, जो पद्‌मिनीपति हैं, सम्मुखस्थित उन्हीं मित्र नामक भास्वर या दीप्तिमान् सूर्य को प्रणाम करती हूँ।'' (पक्षान्तर से 'मित्र (प्रिय) श्रीकृष्ण के प्रति मैं प्रदत्ता होती हूँ। जो श्रीअर्थात् वक्षस्थलस्थित स्वर्णरेखा की कान्ति से युक्त हैं, अतनु अथवा कन्दर्पजनित दुःख के विनाशक हैं, अतिशय अनुरागयुक्त पद्‌मिनियों के पति हैं-उन्हीं अग्रवर्ती श्रीकृष्ण को मैं प्रणाम करती हूँ।' इस प्रकार दोहरे अर्थ वाले मन्त्रों से ब्रह्मचारी पाद्य, अर्घ्य, पुष्पांजलि सभी दिलवा रहे हैं। स्वामिनी अर्घ्य आदि देने के लिये उत्कण्ठित हैं। सामने हैं जटिला। प्रिय सखियों से घिरी स्वामिनी की खड़ी होने की कैसी भंगिमा! तभी सम्बोधन है 'मुग्धांगि'! रस-किंकरी अर्घ्य आदि पूजोपचार सूर्यकान्तमणि-निर्मित वेदी पर सजा देती हैं। मुग्धांगी कामना जगाकर अर्घ्यादि दे रही हैं। सभी का चित्तमन विचित्र रस के आस्वादन-स्रोत में असीम की ओर तैरता जा रहा है! सभी के प्राणों में विपुल कौतूहल है। ब्रह्मचारी दक्षिणा, नैवेद्य कुछ नहीं लेंगे। गर्गशिष्य। एकान्ती। ज्योतिष, सामुद्रिक अनेक विद्याओं में पारदर्शी। वृद्धा से कहते हैं-'मैं तुम लोगों के प्रेम-मूल्य में ही बिका हूँ।' वृद्धा की वासना है-'बहू का हाथ देखकर यदि ज्योतिषीजी फलाफल बता दें, तो धन्य होऊँ।' वृद्धा की प्रार्थना पर श्रीराधा का हाथ देखकर ब्रह्मचारीजी को तो सात्त्विक विकार। उसे विस्मयरस से ढककर कहते हैं-''क्या आश्चर्य! उनके हाथ में जो सब शुभ चिह्न देख रहा हूँ, उनसे निश्चय ही पता चलता है कि ये साक्षात् कमलास्वरूप हैं। जहाँ ये रहती हैं, वहाँ समस्त सम्पद्, अखिल मंगल विद्यमान रहते हैं।' राधारानी के प्रति अङ्ग में महाभाव की तरंग है। हृदय में कैसा आलोड़न!! 'लगता है श्यामसुन्दर हैं। नहीं यह मन ऐसा क्यों कर रहा है? यदि ब्रह्मचारी का संग मिलता, तो ठीक होता।' स्वामिनी की कामना की तरंग अभिन्नप्राण किंकरी के हृदय में उठ रही है। तुलसी सोच रही हैं-'यदि इसी समय ब्रह्मचारी-वेशधारी कृष्ण के साथ स्वामिनी का मिलन करा पाती, तो मनोमत सेवा होती। किन्तु सामने हैं गुरुजन, इसकी संभावना नहीं।' तभी तो खेदसहित कहा है-'इयं दासिका'-मैं तुम्हारी अति दीन, अति अयोग्य दासी हूँ। तुम्हारे मन के माफिक सेवा नहीं कर पाई। तुम्हारे प्राण जो चाहते हैं, वह तो नहीं दे पाई।' हाहाकार कर उठीं। स्फूर्ति में विराम आया। बाह्यावेश में उसी सेवा के लिये स्वामिनी के चरणों में प्रार्थना प्रस्तुत की।

व्रजपुरपतिराग्या आज्ञया मिष्टमन्नं, बहुविधमतियत्नात् स्वेन पक्वं वरोरु।
सपदि निजसखीनां मद्विधानांच हस्तै,-र्मधुमथननिमित्तं किं त्वया सन्निधाप्यम्॥४६॥

अन्वय-वरोरु! (वरा चासौ पाकचर्यादिना उरु महती पूज्याचेति हे तथाविधे) व्रजपुर-पतिराग्या (यशोदाया) आज्ञया (आदेशेन) अतियत्नात् स्वेन पक्वं (स्वेन आत्मना अतियत्नात् पक्वं) बहुविधं मिष्टम् अन्नं (खण्डलड्डुकादिकं) सपदि मद्विधानां (तुलसीमंजर्यादीनां) च निजसखीनां हस्तैः (कृत्वा) मधुमथन निमित्तं किं त्वया सन्निधाप्यम्?४६॥

अनुवाद-हे वरोरु श्रीराधे! नन्दरानी माँ यशोदा के आदेश से अति यत्नपूर्वक अपने हाथों तैयार किये नाना प्रकार के खण्डलड्डुक (खांड के लड्डू) आदि मिष्टान्न क्या तुम मुझ तुलसी-मंजरी-जैसी किंकरियों के हाथ श्रीकृष्ण के भोजन के लिये यशोदादेवी के पास भेजोगी?४६॥

नन्दीश्वर को मिष्टान्न प्रेषण

परिमलकणा व्याख्या-श्रीपाद स्वरूपावेश में स्वामिनी की सेवा कर रहे हैं। सेवारस की सुस्पष्ट अनुभूति है। पिछले श्लोक में पूजा की स्फूर्ति थी। इस श्लोक में तुलसी स्वामिनी द्वारा प्रेरित होकर नन्दालय जायेंगी। स्वामिनी ने यशोदा माँ के आदेश से मधुमथन श्रीकृष्ण के लिये अपने हाथों अति यत्न से खाँड के लड्डू आदि तैयार किये हैं-तुलसी वही सब लेकर जायेंगी। स्फूर्ति में लीलारसास्वादन के माध्यम से सेवा। सूर्यपूजा के पश्चात् ब्रह्मचारी वेशधारी श्रीकृष्ण के चले जाने से स्वामिनी घर आकर श्रीकृष्ण की विरहविष-ज्वाला से विवर्ण होकर पड़ गईं।

''हृदयदयित-लीला स्निग्धदुग्धैः प्रपूर्णा तनुकनकघटी या सुभ्रुवोऽस्याः सखीनाम्।
नयनमुदमतानीत् साशु वैरस्यमाप्ता विरहविषविवर्णा नेत्रसन्तप्तयेऽभूत्॥'' (गो०ली०)

''सुभ्रू (सुन्दर भौंहोवाली, सुन्दर कांतिवाली) श्रीराधा की जो देहरूपी स्वर्णघटी (घड़ा) श्रीकृष्ण के लीलामृतरूपी सुस्निग्ध दूध से परिपूण होकर सखियों का नयनानन्द विस्तार कर रही थी, अब वही तनुघटी विरहविष से विवर्ण होकर सखियों को नेत्र-सन्ताप देने लगी।'' सखियों द्वारा विरहतापित श्रीराधा के अङ्ग पर चन्दन लगाते ही वह सूखकर धूल-सा होने लगा। सखियाँ बार-बार चन्दन-लेप, मृणाल और किसलय द्वारा श्रीराधा का अङ्ग ढकने लगी। इसी समय चन्दनकला सखी ने आकर श्रीकृष्ण के लिये मिष्टान्न आदि भेजने

'हे सुमुखि! सेवाप्राणा सखीगण-प्रति।
सर्वदा प्रसन्नमुखी देखि तोमा अति॥
सखीगण परिवृता सूर्येर मन्दिरे।
उत्कण्ठिता होइबे जबे सूर्यपूजा-तरे॥
सूर्यमणि विनिर्मित अरुण-वेदिते।
भक्तिभावे बसिबे गो सूर्ये-अर्घ्य दिते॥
हे मुग्धांगि! हेनो काले पूजार सम्भार।
कबे जोगाइबो आमि इंगिते तोमार॥''४५॥

हेतु यशोदा का आदेश सुनाया और श्रीकृष्ण की मधुमयी लीला का वर्णन किया। तब श्रीमती धैर्य धारण कर श्रीकृष्ण के लिये मिष्टान्न आदि प्रस्तुत करने लगीं। पदकर्ता महाजन ने प्रार्थना की है–

''हा हा गान्धर्विके ! व्रजेश्वरीर प्रेरित। आसिया चन्दनकला कहिबे त्वरित॥
सायंकाले गोविन्देर भोजन–निमित्ते। बटक निर्माण करि पाठाइया दिते॥
से वचनामृत तुमि कर्णे पान करि। पक्वान्नशालाते जाबे संगे सहचरी॥
हा हा कृपामयि ! मोर हेनो दशा हबो। पक्बान्नेर शाला कवे मार्जन करिबो॥
चुल्लिर माझेते दावानल विरचिबो। कटाह मार्जन करि तापरे धरिबो॥
नीर, नारिकेल, घृत, चाँपाकला, चिनि। गोधूमेर सूक्ष्मचूर्ण धरि दिबो आनि॥
मरिचादि चूर्ण करि दिबो तुया पाशे। चौकीते बसिबे तुमि परम हरिषे॥
अमृत केलिका आदि करिबे निर्माण। ता देखि दासीर कबे जुड़ाबे नयान॥''

(प्रार्थनामृततरंगिणी)

माँ यशोदा के निर्देश से स्वामिनी प्राणनाथ के सन्ध्याकालीन भोजन के लिये कुछ चीजें भेज देती हैं। अपने हाथों उत्कृष्ट भोज्यद्रव्य बनाती हैं। अङ्ग पर बहुत अलंकार नहीं, एकान्त में पाक–कार्य करती हैं। और कोई नहीं, इसलिये अङ्ग पर अधिक वस्त्रादि नहीं। अनावृत अङ्ग की माधुरी आस्वादन करती हैं किंकरी। परिहास करते हुए कहती हैं–

''तुया अङ्गे विलेपिनु सुचन्द्र चन्दन।
से सब हइया गेलो धूलिर समान॥
ए ताप – बटकावली साधन अग्निते।
ए अति आश्चर्य शीतल हइलो त्वरिते॥
ए वचन शुनि धनि मोर गण्डस्थले।
करिबे अंगुलिघात अति स्नेहरभरे॥'' (वही)

स्वामिनी पक्वान्न–मिष्टान्न आदि स्वर्णपात्र में रखकर वस्त्र से ढककर भेजती हैं। तुलसी आदि किंकरियों पर विश्वास है, वे लोग अपनी तरह ही खिलायेंगी। 'मद्विधानां निजसखीनां'–साधक को भी इसी रस में डूबना होगा। महाजन कहते हैं–'देहे ना करिहो आस्था।' स्वरूप के प्रति दृढ़ आस्था रखनी होगी। 'मैं तुम्हारी किंकरी हूँ'–कैसा सुन्दर परिचय है। ''कृष्णदास अभिमाने जे आनन्दसिन्धु। कोटि ब्रह्मसुख नहे तार एकबिन्दु॥'' (चै० च०)। राधादासी होने का अभिमान उससे भी अधिक आनन्दरस पूर्ण है। एक प्रकार का अधिकार–सा समझती हैं ये लोग। इन लोगों को लेकर राधारानी के मन में निजत्व अभिमान रहता है। वे इन्हें अपना माने बिना रह नहीं सकतीं। 'मेरा रूप' 'मेरी तुलसी', 'मेरी दासी' इत्यादि रूपों में पूरी तरह से अपना बना लिया है। यह बात स्वरूप जाग्रत कर समझनी होगी। 'कुछ भी नहीं चाहता स्वामिनि ! तुम मुझे अपना बना लो।' साधक के प्राणों में भी इस प्रकार की आकांक्षा का थोड़ा–बहुत जगना उचित है।

श्रीमती श्यामसुन्दर की सेवा के द्रव्य भेज रही हैं। तुलसी को वक्ष से कसकर चिपटा कर कहती हैं–'तुलसि ! तू जा। मैं तो जा नहीं पाई। मेरी ओर से खिलाना। मुझे स्वयं खिलाकर जो तृप्ति होती है, तुम लोगों

नीतान्न-मद्विधललाटतटे ललाटं, प्रीत्या प्रदाय मुदिता व्रजराजराज्ञी।
प्रेम्णा प्रसूरिव भवत्कुशलस्य पृच्छां, भव्ये विधास्यति कदा मयि ताबकत्वात्?४७॥

अन्वय-भव्ये (हे मंगलस्वरूपे!) कदा तावकत्वात् (तवाहमिति हेतो) व्रजराजराज्ञी मुदिता (हृष्टा सती) नीतान्न-मद्विधललाट तटे (नीतानि प्रापितानि अन्नानि मिष्टान्नानि यैस्ते च मद्विधाश्चेति तेषां ललाटतटे) प्रीत्या (हर्षेण) ललाटं प्रदाय प्रसूः इव (मातेव) प्रेम्णा भवत् कुशलस्य पृच्छां मयि विधास्यति?४७॥

अनुवाद-हे मंगलमयि श्रीराधिके! मैं तुम्हारी दासी हूँ इसलिये, नन्दरानी माँ यशोदा आनन्दित होकर मिष्टान्न लाने वाली हम किंकरियों के ललाट पर अपना ललाट रखकर माता की तरह स्नेह से तुम्हारी कुशल पूछेंगी-ऐसा कब होगा?४७॥

के खिलोने से भी वही तृप्ति होती है।' तुलसी के प्रति स्वामिनी का कैसा प्यार है! 'जीवन में क्या एक दिन भी तुम्हारा लाड़-प्यार नहीं पाऊँगा?! - स्वरूपाविष्ट साधक के मन में भी यह लालसा जगनी चाहिये। वह लाड़-प्यार पाने के लिये प्राण रोने चाहिये!' तुम्हारे रूप-तुलसी के चरणों में पड़े रहना चाहता हूँ; तुम मुझ पर यही कृपा करो।' साधक रोते-रोते (जब) विवश हो जाता है, स्वामिनी की कृपा-धारा उतरती है। साधक धन्य होता है। स्वामिनी ने कैसी करुणा से दासी को वक्ष से लगा लिया है! ऐसी करुणा अन्यत्र कहीं नहीं। इस करुणा का आस्वादन दासियाँ ही करती हैं! 'स्वामिनी! मैं तुम्हारी दासी हूँ, इसी आवेश में सारा जीवन काटने की इच्छा है'-यह भाव लेकर सारा जीवन काट सकें, तो भी लाभ।

स्वामिनी के अङ्ग पर पतली साड़ी है। माथे पर घूँघट नहीं। अपने घर में हैं। कहती हैं-'तुलसि! तू जा। अच्छी तरह खिलाकर आना। तू तो सभी जानती है, यह जीवन पराधीन है। स्वयं नहीं ले जा सकी। तू मेरे वक्ष से वक्ष मिलाकर समझेगी। एक बार मेरी आँखों में देख।' तुलसी को वक्ष के निकट खींचकर कितना लाड़-प्यार कर उसके हाथों में प्राणनाथ की सेवा के द्रव्य थमा देती हैं। यही वरदास्य है। इस दास्य को प्राप्त करने के लिये ही गोस्वामिचरण का हृदयविदारक विलाप है। स्वामिनी के हृदय से हृदय मिलाकर, नेत्रों से नेत्र मिलाकर श्याम की सेवा करनी होगी। ऐसा मधुर दास्य और कहीं नहीं। स्वामिनी के हाथों से द्रव्य लेने को होती हैं, कुछ हाथ नहीं पड़ता। स्फूर्ति में विराम आने से कैसी मर्मान्तिक यातना। हाहाकार के साथ प्रार्थना की- 'हा स्वामिनि! मेरे हाथों सेवा-द्रव्य कब भेजोगी?'

''नन्दरानी यशोदार अनुमति पेये।
आपनि करिबे पाक हर्षयुक्त हये॥
मिष्ट अन्न बहुविध पायसादि करि।
कृष्ण-प्रीतिकर जतो स्वादु सुमाधुरी॥
पाठाइबे आमा हेनो सखीहस्ते दिया।
(कबे) यशोदार स्थाने कृष्ण-सेवार लागिया॥''४६॥

श्रीराधा का कुशल प्रश्न

परिमलकणा व्याख्या-स्फूर्ति में श्रीपाद लीलारस के साथ सेवा-रस का आस्वादन करते हैं; स्फूर्ति में विराम आता है तो प्रार्थना। इसी प्रकार अविराम चल रहा है। राधारानी ने तुलसी को कृष्ण-सेवा के मिष्टान्नादि देकर नन्दीश्वर भेजा है। तुलसी उपयुक्त स्थान पर मिष्टान्न-पात्र रखकर माँ यशोदा को प्रणाम करती हैं, तो माँ उन्हें वक्ष से लगाकर स्नेह से भरकर उनके ललाट से ललाट लगाकर श्रीराधा की कुशल पूछती हैं। 'भव्ये'- 'हे कल्याणि! मंगलमयि श्रीराधिके! कीर्तिदा माँ की ही तरह माँ व्रजेश्वरी का स्नेह तुम्हें प्राप्त है।' श्रीपाद ने श्रीराधा के शतनामस्तोत्र में लिखा है-''व्रजेन्द्रगृहिणी-कृष्णप्रायस्नेहनिकेतनम्''- 'श्रीमती राधारानी व्रजेन्द्रमहिषी यशोदा के लिये कृष्ण की तरह ही स्नेहास्पद हैं। माँ राधारानी को कितना प्यार करती हैं।' श्रीरूपगोस्वामिपाद ने लिखा है-''वत्सलाच्युतमृतका''-''जो यशोदा के वात्सल्यरस में सदा अभिषिक्त हैं।''

श्यामसुन्दर के गोचारण को जाने के पश्चात् राधारानी नन्दालय से जावट आ गई हैं। देर ही कितनी हुई है? फिर भी कुशल पूछ रही हैं। ''अनिष्टाशंकिनी बन्धुहृदयानि भवन्ति हि।'' राधारानी की दासी है, इसलिये तुलसी को कितना प्यार किया! माँ की तरह व्रजेश्वरी इतना स्नेह करती हैं। विपुल आर्ति से भरी प्रार्थना की तरंगों में तैरते श्रीपाद के चित्त में स्फूर्ति में लीला साक्षात् अनुभव हो रही है। आचार्यपादगण की आदर्श शिक्षा से पता चलता है कि इसी प्रकार जीवन काटने से साधक का काम नहीं चलेगा। अभीष्ट वस्तु पाने के लिये तीव्र उत्कण्ठा की आवश्यकता है। थोड़ा-सा जो भी कर रहा हूँ, उसी से तृप्त हूँ। भक्ति का स्वभाव है, तृप्ति कभी नहीं आने देगी। श्रीवृहद्भागवतामृत में आया है, देवर्षि नारद ने भगवान् से भक्ति में अतृप्ति का वर माँगा, तो श्रीकृष्ण बोले-

''विदग्धनिकराचार्य को नामाय वरो मतः।
स्वभावो-मत्कृपाभक्ति-प्रेम्णां व्यक्तोऽयमेव यत्॥
प्रयागतीर्थमारभ्य भ्रामं भ्राममितस्ततः।
अत्रागत्य च ये दृष्टाः श्रुताश्च भवता मुने॥
सर्वे समस्तसर्वार्था जगन्निस्तारकाश्च ते।
मत्कृपाविषयाः किञ्चित् तारतम्यं श्रिताः परम्॥
तथापि तेषामेकोऽपि न तृप्यति कथञ्चन।
तद्गृहाण वरानन्यान्मत्तोऽभीष्टतरान् वरान्॥'' (१/७/१३६-३९)

''हे विदग्धचूड़ामणि श्रीनारद! आपने यह क्या वर माँगा? मेरी कृपा का, भक्ति और प्रेम का तो अतृप्ति स्वभाव है, सभी जानते हैं। हे मुने! आप प्रयाग से आरम्भ कर इधर-उधर भ्रमण करते हुए आये हैं, जिन-जिन भक्तों के विषय में सुना है और जिन-जिन के दर्शन किये हैं, वे सभी मेरे कृपापात्र होने से सर्वार्थ प्राप्त और जगन्निस्तारक हुए हैं-हाँ, उनकी भक्ति की जाति और तारतम्य के अनुसार किंचित् तारतम्य है। फिर भी उनमें से एक भी किसी प्रकार भी तृप्त नहीं हुआ, इसलिये आप अन्य कोई वर माँगिये।''

भजन में तृप्ति आते ही समझना होगा कि भजन की परमायु ह्रास हो गया। अतृप्ति और उत्कण्ठा ही भजन के परिमापक हैं। श्रीरूप-रघुनाथ की कैसी आर्ति है। पाषाण-हृदय भी गल जाता है। श्रीरूप ने कहा

है-'तुम दोनों तो सुखमय सुखमयी हो, निरन्तर लीलारस में मत्त हो। सोचा था, हृदय की ज्वाला की बात तुम्हें नहीं बताऊँगा; पर बिना बताये और न रह सका। देखो, तुम्हारे रूप के हृदय में कैसी ज्वाला!' ''उद्घाटयामि ज्वलतः कठोरां वाष्पस्य मुद्रां हृदि मुद्रितस्य।''' सभी लीलास्थान आँखों के सामने हैं, अब भी लीला हो रही है। क्यों, कहीं कोई आहट सुनाई नहीं देती। तुम्हारी लीला आँखों के आगे तो नहीं तैरती।' पागल होकर घूमना होगा। श्रीरूप-सनातन ने एक-एक वृक्ष के नीचे एक-एक दिन वास किया है, उस-उस स्थान को लीला का थोड़ा अनुभव पाने के लिये। 'क्या लीला हुई है, थोड़ा संकेत करो। थोड़ा देखने का सौभाग्य दो। वृन्दावन साक्षात् लीलाभूमि है, दर्शन क्यों नहीं पाऊँगा!' श्रीरघुनाथ ने श्रीराधा के सर्वाधिक प्रिय लीलास्थान श्रीकुण्ड-तट को ही भजनस्थली के रूप में छाँट लिया है! श्रीकुण्ड की करुणा से साक्षात्कार की तरह ही लीला का स्फुरण हो रहा है! इस समय वे रघुनाथ नहीं, तुलसीमंजरी हैं। 'मैं माँ को प्रणाम करूँगी, तो वे मेरे माथे से माथा लगाकर पूछेंगी-''मेरी राधारानी कैसी हैं?'' इस लाड़-प्यार का एक कण भी अनुभव नहीं होगा?'- स्वरूपाविष्ट साधक के प्राणों में भी ऐसा आक्षेप जगना चाहिये। वे राधारानी की दासी हैं, तभी तो उनके प्रति माँ का इतना स्नेह है। राधारानी का स्नेह ही उनकी दासियों में संचारित हुआ है। राधा-किंकरी को देखकर माँ राधा-दर्शन की तरह ही आनन्द पाती हैं। धन्य राधादास्य!''हे वृन्दावन! वृन्दावन के अधिवासियों! वृन्दावन के आकाश, वायु, तरु-लता, पशु-पक्षियों! तुम सभी समझा दो कि मैं राधादासी हूँ। सभी मुझ पर कृपा करो। मेरा राधादासी होने का अभिमान दृढ़ कर दो।''

''अधम दुर्गतजने, केवल करुणा मने,
त्रिभुवने ए यशः खेयाति।
शुनिया साधुर मुखे, शरण लइनु सुखे,
उपेखिले नाहि मोर गति॥'' (प्रार्थना)

इस उत्कण्ठा-राज्य वृन्दावन में वास कर देह-दैहिकादि लेकर मत्त हो रहे हैं-यह है हम लोगों की अवस्था। कैसा दुर्दैव! आचार्यपादगण की महावाणी का श्रवण-कीर्तन करने से अवश्य ही उत्कण्ठामय भजनजीवन प्राप्त होगा। तब रोते-रोते व्रज के वन-वन में पुकारेंगे-'कहाँ हो राधारानि!' जिनकी हेमकान्ति से वृन्दावन जगमग है! उसी छटा का एक बिन्दु मेरे नयन-मन का जीवातु होगा। तब अहर्निश प्राणों में यही प्रार्थना जगेगी-

''हरि हरि! हेनो दिन हइवे आमार?

दोंहो अङ्ग परशिबो, दुँहु अङ्ग निरखिबो, सेवन करिबो दोंहाकार॥
ललिता विशाखा संगे, सेबन करिबो रंगे, माला गाँथि दिबो नाना फूले।
कनकसम्पुट करि, कर्पूर ताम्बूल भरि, जोगाइबो अधर-युगले॥
राधाकृष्ण वृन्दावन, सेइ मोर प्राणधन, सेइ मोर जीवन-उपाय।
जय पतितपावन, देहो मोरे एइ धन, तुया बिने अन्य नाहि भाय॥'' (प्रार्थना)

आचार्य महाजन की विमल अनुभूति है-'तुया विने अन्य नाहि भाय'। किन्तु मुझ-जैसे जीव को अच्छा लगा-लाभ, पूजा, प्रतिष्ठा, शिष्य, अर्थ, सम्पद् आदि। कृपा बिना गति नहीं।

कृष्णवक्त्राम्बुजोच्छिष्टं प्रसादं परमादरात्।
दत्तं धनिष्ठया देवि किमानेष्यामि तेऽग्रतः ?४८॥

अन्वय-देवि! धनिष्ठया परमादरात् दत्तं कृष्णवक्त्राम्बुजोच्छिष्टं (अर्द्धं भुक्त्वा मुखात् त्यक्तं अतएवोच्छिष्ट पदस्य भृक्तावशेष-वाचकत्वेन वक्त्राम्बुजादिति न पुनरुक्तदोषः) प्रसादं किं ते (तव) अग्रतः आनेष्यामि ?४८॥

अनुवाद-हे देवि श्रीराधिके! धनिष्ठा द्वारा बड़े प्यार से दिया श्रीकृष्ण-अधरामृत प्रसाद क्या मैं तुम्हारे आगे लाकर रखूँगा ?४८॥

श्रीकृष्ण-अधरामृत लाना

परिमलकणा व्याख्या-परिपूर्ण स्वरूपावेश में श्रीपाद की कैसी अपूर्व सेवा! स्वामिनी के आदेश से तुलसी नन्दीश्वर गईं। स्वामिनी ने अपने हाथों तैयार किये द्रव्य श्यामसुन्दर की सेवा के लिये भेजे हैं। श्यामसुन्दर के खा लेने के पश्चात् माँ यशोदा बड़े स्नेह से तुलसी के हाथों राधारानी के लिये विविध मिष्टान्न-पक्वान्न भेजती हैं। धनिष्ठा गुप्तरूप से उनमें श्रीकृष्ण का अधरामृत मिला देती हैं। ''कृष्णवक्त्राम्बुजोच्छिष्टं प्रसादं''-'उच्छिष्टं' पद ही भुक्तावेश-वाचक है, अतएव 'कृष्ण-वक्त्राम्बुजात्' से पुनरुक्ति दोष होता है। इसलिये भुक्तावशेष नहीं। राधारानी का मन जानकर श्रीकृष्ण धनिष्ठा की ओर देखकर खाते-खाते इस भंगिमा से 'मानो अच्छा नहीं बना' आधा चबाया प्रसाद श्रीमुखचन्द्र से निकाल देते हैं। धनिष्ठा ने वही थोड़ा-सा मिला दिया है। उसे तुलसी ले आती है। नन्दीश्वर में सेवा का सारा भार धनिष्ठा पर है। जैसी धनिष्ठा, वैसी ही कुन्दलता। दोनों ही युगल के प्रति आसक्त। मर्म जानकर दूसरों की दृष्टि से बचकर निगूढ़ सेवा करती हैं। स्वरूप जगाकर समझना होगा। देहाविष्ट मन से युगल की निगूढ़ सेवा के चिन्तन का अधिकार

तुलसी ने माँ का लाड़-प्यार प्राप्त किया। राधारानी के तैयार किये द्रव्यों से श्यामसुन्दर को स्वास्थ्य और दीर्घायु प्राप्त होगी। माँ बड़े ही प्यार और यत्न से उस मिष्टान्न आदि का निरीक्षण कर रही हैं। राधारानी के हाथों बनाये गये द्रव्यों पर माँ का कैसा ममत्व है! उनके श्यामसुन्दर की आयु, बल, सौन्दर्य के वर्धक। उनके गोपाल के कल्याणकारी। माँ के नेत्रों में उसी भाव की अभिव्यक्ति है। तुलसी ने माँ के उसी भाव की उपलब्धि कर कहा है-'हे भव्ये!' श्यामसुन्दर की मंगलकारिणि! माँ के स्नेह-करुणा और राधारानी के गौरव से दासी तुलसी का हृदय परिपूर्ण है! सहसा स्फूर्ति भंग हो गई! व्याकुल प्राणों से विलाप करते हुए कुण्डतट पर पड़े सेवा के लिये प्रार्थना की-

''हे राधिके मंगलरूपिणि!
तोमार आदेश पेये, विविध मिष्टान्न लये,
जाबो कबे जथा नन्दराणी॥
आनन्दे से सब थुइया, ललाटे ललाट दिया,
जननीर मत स्नेहभरे।
तोमार कुशल-कथा, जिज्ञासिबे श्रीयशोदा,
तव निज सखी जानि मोरे॥''४७॥

नहीं। श्रीपाद दासगोस्वामी का कैसा निविड़ स्वरूपावेश है! अपूर्व सेवानन्द-रस का उपभोग! इस जाति के सेवानन्दरस का आस्वादन किंचित् भी न हो, तो साधक क्या लेकर रहेगा? ऐसा पवित्र जीवन नष्ट किया। बाहर के व्यवहार से कदर्थित (बिगड़ा) जीवन। स्वामिनी के लिये हृदय चीरता क्रन्दन कब निकलेगा?

''तोमार से आमि, आमि आर कारु नइ।
तोमा बिने नाहि जीए निवेदिये ताइ॥
इहा जानि देवि! तुमि मोरे कृपा करि।
निजपादपद्म - पाशे करो अनुचरी॥'' (महाजन)

हृदय सर्वदा ही रिक्त है। वे सत्य ही कोटि-कोटि प्राणों से भी अधिक प्रियतम हैं। उनकी आहट अवश्य ही प्राप्त करनी होगी। मन की बात किससे कहें? इस विश्व में तो हमारा और कोई नहीं। आकांक्षा तीव्र होनी चाहिये। आचार्यपादगण का चरित्र आदर्श लक्ष्य है। श्रीरूप गोस्वामिपाद रो रहे हैं-''तुम दोनों की हृदयरसी करुणा-निर्झर से भरी है! थोड़ा प्रसन्न होओ। अपनी रति का थोड़ा-सा रंग दो। अधम कहकर उपेक्षा मत करना। रति ही प्रतिभू है, तुम दोनों के दर्शन अवश्य करायेगी।''

''हन्त सान्द्रकरुणासुधाझरी, - पूर्णमानसह्रदौ प्रसीदतम्।
दुर्जनेऽत्र दिशतं रतेर्निज, - प्रेक्षणप्रतिभुवश्छटामपि॥''

(उत्कलिकावल्लरी-१६)

रति ही प्रतिभू क्यों? ''अहन्ता च प्राप्स्यमाने सेवोपयोगिनि सिद्धदेहे प्रविशन्तीव साधक-शरीरं प्रायो जहातीव विराजेत ममता च तच्चरणारविन्दमकरन्द एव मधुकरीभवितुमुपक्रमेतेति।'' (माधुर्यकादम्बिनी वृष्टि-७) -''जब रति का आविर्भाव होता है, तो अहन्ता (मैं-भाव) अभीप्सित सेवापयोगी सिद्धदेह में प्रवेशकर इस साधक-शरीर को मानो त्यागकर ही रहने लगती है। तब ममता (मेरा-भाव) इष्ट के श्रीचरणारबिन्दों के मकरन्द-पान की लालसा से मधुकरी बनने लगती है।''

आचार्यपादगण महाभावराज्य में रहते हैं। दाँतों में तृण दबाकर उच्चस्वर में रोदन कर रहे हैं-'अब और प्रतीक्षा सहन नहीं होती। शीघ्र आशा-तरु सफलित करो।''कुरुष्व क्षिप्रं में फलतु नितरां तर्षविटपी।' रोते-रोते स्वामिनी को पुकारा है। अपनी अनुभूति ग्रन्थरूप में रख गये हैं। कितनी करुणा है उन लोगों की? यदि उन लोगों के स्मरण-अनुभव के माध्यम से स्वामिनी की करुणा आती है, तो प्राण उन चरणों में बिक जायेंगे। श्रीरघुनाथ ''हा हा प्रभु रूप-सनातन'' कहकर रोकर व्याकुल हो रहे हैं। आनुगत्यमय व्रजरस का भजन! आनुगत्य के बिना वैकुण्ठेश्वरी कमलादेवी व्रत धारणकर व्रज में तपस्या करके भी गोविन्द सेवा प्राप्त नहीं कर सकीं। ''तप करे तबु नाहि पाय।'' और आनुगत्य का अवलम्बन कर श्रुतियों और दण्डकारण्यवासी ऋषियों ने गोपीभाव से कृष्ण-सेवा पाई है।

''श्रुति सब गोपीगणेर अनुगत हइया। व्रजेश्वरी-सुत भजे गोपीभाव लइया॥
व्यूहान्तरे गोपीदेह व्रजे जबे पाइलो। सेइ देहे कृष्णसंगे रासक्रीड़ा कोइलो॥
गोपजाति कृष्ण-गोपी प्रेयसी ताँहार। देवी वा अन्य स्त्री कृष्ण ना करे अङ्गीकार॥

लक्ष्मी चाहे सेइ देहे कृष्णेर संगम। गोपिका-अनुगा हइया ना कोइलो भजन॥
अन्यदेहे ना पाये रास - विलास। अतएव ''नायं'' श्लोक कहे वेदव्यास॥
(चै० च० मध्य०, परि० ९)

आचार्यपादगण की उत्कण्ठामय वाणी के श्रवण-कीर्तन-स्मरण से उनका आनुगत्य सिद्ध होगा। तभी इसे स्वाभीष्ट-अंतरंग-साधना कहा गया है।

इधर तुलसी को नन्दीश्वर भेजकर स्वामिनी कृष्ण-विरह में कातर हैं। प्रबल विरह की अतिशयता से मूर्छित। सखियाँ नाना उपायों से भी मूर्छा दूर करने में सफल नहीं हो रहीं। इसी समय तुलसी आ पहुँचती हैं।

''तद्विश्लेषज्बरशमलवेऽप्यक्षमा यर्ह्यभूवन्
गान्धर्वाया विसकिशलयोशीर-चन्द्राम्बुजाद्याः।
काप्यागत्य व्यधित ललितादेशतस्तर्हि
तस्यास्तद्वृत्तान्तामृतरसपृषत् सेचनं कर्णरन्ध्रे॥''
(श्रीकृष्णभावनामृतम्-१७/७)

''प्रिय सखियों द्वारा प्रयुक्त विस (मृणाल) किशलय, उशीर (खस), कपूर, चन्दन, कमल आदि भी श्रीराधा के कृष्ण-विरहजनित ज्वर-सन्ताप को लेशमात्र भी प्रशमित न कर सके। उसी समय नन्दीश्वर से एक सखी (तुलसी) वहाँ आईं, उन्होंने ललिता के आदेश से श्रीराधा के कर्णरन्ध्रों में श्रीकृष्णलीलामृतबिन्दु सेचन किया।'' श्रीराधा उसी क्षण संज्ञा लाभकर उठ बैठीं और बोलीं- 'सखि! मैंने स्वप्न में श्रवण-मरुभूमि में एक अपूर्व अमृतवृष्टि का अनुभव किया।' सुनकर ललिता ने कहा-''आयातेयं सुमुखि! तुलसीमंजरी गोष्ठराज्ञागेहात् सख्युस्तव यदवदद्वृत्तमस्मादजागः'' (वही)-'हे सुमुखि! यह स्वप्न नहीं। अभी-अभी तुलसीमंजरी ने व्रजमहिषी के घर से आकर तुम्हारे प्राण-सखा व्रजेन्द्रनन्दन का वृत्तान्त तुम्हें सुनाया है, उसी से तुम्हें चैतन्य हुआ है।' तुलसी को सामने देख स्वामिनी ने उन्हें वक्ष से चिपटा लिया। तुलसी के प्रति उनका असाधारण स्नेह है। जानती हैं, अवश्य ही मेरे प्राण देकर तुलसी सेवा कर आई है। तुलसी ने भी श्रीमती के कानों मैं सन्ध्याकालीन कृष्ण-लीलामृतरस डालकर स्वामिनी की अपूर्व सेवा की। स्वामिनी तुलसी से पूछ रही हैं-'माँ क्या बोली?' तुलसी-'माँ व्रजेश्वरी के स्नेह की और क्या कहूँ स्वामिनि! मैं तुम्हारी दासी हूँ, इसी नाते मेरे माथे से माथा लगाकर कितना स्नेह किया!'

''आमार ललाटेते ललाट प्रीते दिया।
प्रेमे मत्त होइया तोमार कुशल पुछिया॥
तोमारइ आमि इहा जानि व्रजराणी।
स्नेह करि कतो प्रीत करिला आपनि॥'' (प्रार्थनामृततरंगिणी)

स्वामिनी तुलसी को अपनी गोद में खींच लेती हैं। बार-बार पूछ रही हैं-'उसने ठीक से खाया तो? ठीक से रसोई नहीं कर पाई। मिष्टान्न आदि निश्चय ही उसे उतने रुचिकर नहीं लगे। तू पास बैठी थी न!' सब छानबीन कर रही हैं। तुलसी भी हर बात का सरस उत्तर दे रही हैं। भाग्यवती तुलसी कृष्णकथामृतरस में

नानाविधैरमृतसार - रसायनैस्तैः, कृष्णप्रसादमिलितैरिह भौज्यपेयैः।
हा कुंकुमाङ्गि ललितादि-सखीवृता त्वां, यत्नामन्या किमुतरामुपभोजनीया?४९॥

अन्वय-हा कुंकुमाङ्गि! (श्रीराधिके!) किमुतराम् यत्नात् इह (जावटाये) ललितादिसखीवृता त्वं तैः कृष्णप्रसादमिलितैः नानाविधैः अमृतसाररसायनैः (अमृतानीव साराणि श्रेष्ठानि यानि रसायनद्रव्याणि तैर्भोजनयोग्यैर्द्रव्यविशेषैः) मया उपभोजनीया (भोजयिष्यसे)? ॥४९॥

अनुवाद-हा कुंकुमाङ्गि! श्रीराधिके! क्या मैं अतिशय यत्न के साथ ललितादि सखियों से परिवेष्टित तुम्हें धनिष्ठा द्वारा दिये उस कृष्ण-प्रसाद से युक्त नाना प्रकार के अमृततुल्य रसायन भोज्य पदार्थ खिलाऊँगा?४९॥

सखियों सहित श्रीराधा का भोजन

परिमलकणा व्याख्या-श्रीपाद स्फूर्ति में स्वामिनी की मधुर भोजन-लीला का आस्वादन कर रहे हैं। तुलसी नन्दीश्वर से श्याम का अधरामृत लाई हैं। ''सुकृतिलभ्य फेलालव'' मदनमोहन का अधरामृत।

''कृष्णेर जे भुक्तशेष तार 'फेला' नाम।
तार एक लव पाय सेइ भाग्यवान्॥
सामान्य भाग्य हैते तार प्राप्ति नाहि हय।
कृष्णेर जाते पूर्ण कृपा सेइ ताहा पाय॥

स्वामिनी को डुबाकर अपूर्व सेवा कर रही हैं। 'धनिष्ठा ने कृष्ण अधरामृत दिया है, लाई हूँ' राधा-चातकी कृष्णाधरामृत छोड़ और कुछ नहीं खातीं। अतएव अधरामृत की बात सुनते ही पिपासित कर्ण और प्राण सुशीतल हो गये। 'तुझसे कोई बातचीत नहीं हुई?'-स्वामिनी प्रश्न करती हैं। तुलसी-'गुरुजनों के सामने कैसे बोलेगा? देखा था-इंगित से समझाया था-''राधा के साथ रात्रि में वृन्दावन में मिलन हो (ऐसा कुछ करो)।'' मैंने भी आँखों ही आँखों उत्तर दिया ''अवश्य ही होगा''। 'श्रीराधा-'तुलसि! तू एक बार मेरी ओर देख। मैं हतभागिनी उसे नहीं देख सकी। देखती हूँ, तेरी आँखों में वह छिपा है कि नहीं।' स्वामिनी अपलक नेत्रों से तुलसी की आँखों में देख रही हैं। नयनों में अश्रु, देह में पुलक-कम्प। 'तेरी आँखें देखकर समझ गई, तू देखकर आई है। उसे देखे बिना आँखें इतनी सुन्दर कभी नहीं हो सकतीं।' इस प्रकार तुलसी ने अपनी आँखों में कृष्ण की छवि वहन कर स्वामिनी की अपूर्व सेवा की। धन्य दासी! अब भोजन होगा। तुलसी की सेवा की कैसी अपूर्व परिपाटी है!

''कृष्णमुखाम्बुजोच्छिष्ट परम आदरे।
धनिष्ठा आनिया परे दिबे तुया तरे॥
से प्रसाद आनि तव अग्रे दिबो कबे।
ए दासीर अभिलाष कबे वा पूरिबे॥''४८॥

सुकृति - शब्दे कहे - कृष्णकृपाहेतु पुण्य।
सेइ जार हय, फेला पाय सेइ धन्य॥''
(चै० च० अन्त्य०-परि० १६)

प्रेम के अनुसार ही फेलालव (भुक्तावशेष का कण) का आस्वादन और आकर्षण होता है। राधारानी हैं सर्वोपरि। अधरामृत के प्रति उनका आकर्षण सर्वाधिक है। ''स मे मदनमोहनः सखि! तनोति जिह्वास्पृहाम्''। श्रीजगन्नाथदेव के गोपालवल्लभ-भोग के आस्वादन से राधाभावाविष्ट श्रीमन्महाप्रभु को कैसी प्रेमोन्मादना हुई!

''कोटि-अमृत-स्वादु पाइया प्रभुर चमत्कार।
सर्वाङ्गे पुलक, नेत्रे बहे अश्रुधार॥
एइ द्रव्ये एतो स्वादु काँहा हैते आइलो?
कृष्णेर अधरामृत इहाँ संचारिलो॥'' (वही)

महाप्रभु ने किंचित् आस्वादन कर गोविन्द से वस्त्रांचल में प्रसाद बाँध लेने के लिये कहा। दिनभर प्रभु को कृष्ण-अधरामृत का सघन आवेश रहा। सन्ध्या होने पर सन्ध्याकालीन आकाश के तारों की तरह भक्तजन एक-एक कर आकर गौर-शशि को घेरकर बैठ गये। कृष्णकथा का प्रवाह दौड़ पड़ा। प्रभु के इंगित पर गोविन्द प्रसाद लाये, तो प्रभु ने सभी में बाँट दिया और प्रसाद के गुण के सन्दर्भ में सारगर्भित बातें आरम्भ कीं-

''प्रभु कहे - एइ सब प्राकृत द्रव्य। ऐक्षव कर्पूर एलाचि लवंग गव्य॥
रसवास गुड़त्वक् आदि जतो सब। प्राकृत वस्तुर स्वादु, सभार अनुभव॥
सेइ द्रव्येर एइ स्वादु, गन्ध लोकातीत। आस्वाद करिया देखो सभार प्रतीत॥
आस्वाद दूरे रहु, जार गन्धे माते मन। आपना बिनु अन्य माधुर्य कराय विस्मारण॥
ताते एइ द्रव्ये कृष्णाधर स्पर्श होइलो। अधरेर गुण सब इहाते संचारिलो॥
अलौकिक गन्ध स्वादु-अन्य विस्मारण। महामादक एइ कृष्णाधरेर गुण॥'' (वही)

जैसे राधारानी ललितादि सखियों के साथ एकान्त में कृष्ण-अधरामृत का अपूर्व आस्वादन करती हैं, वैसे ही बाद में एकान्त में स्वरूप-रामानन्द के साथ अधरामृत का आस्वादन-माधुर्य उपभोग किया श्रीमन्महाप्रभु ने!

''तनु-मन करे क्षोभ, बाढ़ाय सुरत-लोभ, हर्ष-शोकादि-भाव विनाशय।
पासराय अन्य रस, जगत् करे आत्मवश, लज्जा धर्म धैर्य करे क्षय॥
नागर! शुनो तोमार अधर-चरित।
माताय नारीर मन, जिह्वा करे आकर्षण, विचारिते सब विपरीत॥
आछुक नारीर काज, कहिते बासिये लाज, तोमार अधर बड़ो धृष्टराय।
पुरुषे करे आकर्षण, अपना पियाइते मन, अन्य रस सब पासराय॥
सचेतन रहु दूरे, अचेतन सचेतन करे, तोमार अधर बड़ो बाजिकर।
तोमार वेणु शुष्केन्धन, तार जन्माय इन्द्रिय-मन, तारे आपना पियाय निरन्तर॥

वेणु धृष्टपुरुष हइया, पुरुषाधर पिञा पिञा, गोपीगणे जानाय निज पान।
अहो शुनो गोपीगण! बले पिउँ तोमार धन, तोमार यदि थाके अभिमान॥
तबे मोरे क्रोध करि, लज्जा भय धर्म छाड़ि, छाड़ि दिमु करसिइया पान।
नहे पिमु निरन्तर, तोमारे मोर नाहि डर, अन्य देखों तृणेर समान॥
× × × ×
अधरेर एइ रीति, आर शुनहो कुनीति, से - अधरसने जार मेला।
सेइ भक्ष्य भोज्य पान, हय अमृत - समान, नाम तार हय 'कृष्ण-फेला'॥
से फेलार एक लव, ना पाय देवता सब, ए दम्भे केबा पातियाय।
बहु जन्म पुण्य करे, तबे सुकृति नाम धरे, से सुकृति तार लव पाय॥''

भाग्यवती तुलसी ससखी भावमयी को कृष्ण-अधरामृत का आस्वादन करा रही हैं। साधक अपने स्मरण में रस का आस्वादन करेंगे। लीला-स्मरण से आस्वादन मिलता है। अनुभव के आये बिना आस्वादन ठीक तरह नहीं होता। आचार्यपादगण का अनुसरण करते हुए भजन करने से स्मरण और अनुभव साधक को क्रमशः आगे बढ़ाते हैं। नाम, रूप, गुण, लीला की सर्वमनोहरता ही माधुर्य का अनुभव है, यही चित्त को आगे बढ़ाता रहता है। तब इष्ट का रूप-गुण आदि ही जीवन का सार-सर्वस्व लगने लगता है।

श्रीलीलाशुक ने श्यामसुन्दर के माधुर्य-अनुभव में मग्न होकर उनसे कहा था-

''प्रेमदञ्च मे कामदञ्च मे वेदनञ्च मे वैभवञ्च मे।
जीवनञ्च मे जीवितञ्च मे दैवतञ्च मे देव नापरम्॥''

(कृष्णकर्णामृतम्-१०४)

'हे देव! तुम्हीं मेरे प्रेमद, कामद (गोपीप्रेमानुसारी प्रेमदाता), वेदन (शिक्षागुरु या भजनज्ञान), वैभव (सम्पत्ति), जीवन, जीवित और दैवत (परमाश्रय) हो।' श्रीकृष्ण ने कहा- 'साधु, लीलाशुक साधु! मेरे प्रति तुम्हारी निष्ठा से मैं परम प्रसन्न हुआ, मेरा दर्शन कभी विफल नहीं होता। तुम वांछित वर माँगो।' तब लीलाशुक ने वर माँगा-

''माधुर्येण विवर्द्धन्तां वाचो नस्वत वैभवे।
चापल्येन विवर्द्धन्तां चिन्ता नस्तव शैशवे॥'' (वही-१०५)

'हे प्रभो! मेरा वाक्यसमूह तुम्हारे माधुर्य-वर्णन में समर्थ हो और तुम मेरे चिन्तनस्रोत को पुष्ट करो, जिससे वह चपलता के साथ तुम्हारे कैशोर-माधुर्य के स्मरण में सक्षम हो-यही मेरा वर है।' आचार्यपादगण की महावाणी दुर्बल सधक का अवलम्बन है। वह देहावेश नष्ट कर निविड़ स्वरूपावेश स्थापित करेगी। इसी से गौड़ीय वैष्णव-साधक को युगल-माधुर्य का आस्वादन प्राप्त होगा।

तुलसी कहती हैं-'हे कुंकुम-अंगि! मैं सखियों से घिरी तुम्हें श्रीकृष्ण-अधरामृत-मिले नाना प्रकार के अमृतसार-रसायन भोज्यपदार्थ खिलाऊँगी।' स्वामिनी की अङ्ग-कान्ति है थोड़ा-सा चन्दन का स्पर्श लिये नवीन काश्मीर (केसर) की तरह! तभी यहाँ सम्बोधन है 'कुंकुमांगि'। प्रत्येक भोज्यद्रव्य में अधरामृत का आस्वादन

पानाय वारि मधुरं नवपाटलादि, - कर्पूर - वासिततरं तरलाक्षि दत्त्वा।
काले कदा तव मयाऽऽचमनीयं-दन्त,-काष्ठादिकं प्रणयतः परमर्पणीयम्? युग्मकम्॥५०॥

अन्वय-तरलाक्षि! (तरले चंचले अक्षिणी यस्याः हे तथाविधे!) कदा मया प्रणयतः काले (तदुपयोग्य समये) पानाय नवपाटलादि-कर्पूर वासित तरं (नवपाटलादिभिः पुष्पविशेषैः कर्पूरेण च वासिततरं) मधुरं वारि दत्त्वा तव परं (श्रेष्ठं) आचमनीयं दन्तकाष्ठादिकम् अर्पणीयम्?५०॥

अनुवाद-हे चंचल-नयने! मैं प्रेम से भरकर तुम्हें पीने के लिये नवपाटल (गुलाब) आदि पुष्पों और कपूर से अति सुवासित एवं सुमिष्ट जल देकर आचमन हेतु जल तथा दाँतुन कब अर्पित करूँगा?५०॥

भोज्यद्रव्य में अधरामृत का आस्वादन पा रही हैं। भोज्य में अधरों का गुण संक्रमित हो गया है। मानो साक्षात् अधरों का ही आस्वादन मिल रहा है। पूर्व लीला की कितनी-कितनी स्मृतियाँ मन में जग रही हैं। चित्त लीलारस में डूबा है। हृदय का अनुराग देहकान्ति को उद्दीप्त कर रहा है! तभी 'कुंकुमांगि' सम्बोधन। आस्वादन की अतिशयता से स्वामिनी के चक्षु बन्द हुए जाते हैं! कृष्णप्रेमोन्मादिनी को खिलाना। मन कहीं चला गया है! किंकरी अनुरूप भाव का आस्वादन प्रदान कर रही हैं। ललितादि सखियाँ भी परिहास के माध्यम से स्वामिनी के चित्त को श्याम-रससिन्धु में डुबाये दे रही हैं। इस भाव का विषय बनकर नागर की भी सार्थकता हो रही है। वे ऐसा क्या और पायेंगे? राधारानी क्या वस्तु हैं, व्यक्त करने के लिये कोई भाषा नहीं। कितनी सुन्दर, कितनी उज्ज्वल, कितनी मधुर! श्रीकृष्ण के प्राणों को भी सफलता देने वाली। तभी तो लोभ जगा था। उस लोभनीय वस्तु के आस्वादन के लिये ही गौररूप में आकर उस रस में स्वयं डूबे और विश्व को भी डुबाया।

ऐसी प्रेममयी को भोज्य द्रव्य का आस्वाद नहीं, आस्वादन केवल अधरामृत का है। अपूर्व लीला में मन डूबा है। मानो कुंजलीला साक्षात् अधरामृत का आस्वादन कर रही हैं! उनके श्रीमुख पर, श्रीनयनों में शत-शत भावों की अभिव्यक्ति है। तुलसी यत्नपूर्वक खिला रही हैं-'यत्नात्'। किंकरी जानती हैं कि श्यामसुन्दर का अनुभव हो रहा है। अनुरूप रस का आस्वादन देते-देते भोजन करा रही हैं। कृष्ण-प्रेमोन्मादिनी स्वामिनी, उनकी सेवा करना क्या इतना सहज है? राधाभावलुब्ध भगवान् ने जब गम्भीरा में इस लीला का आस्वादन किया- स्वरूप रामानन्द के मुँहों की ओर देखकर बोले-'तुम (दोनों) मुझे कहाँ ले आईं?' मुख पर, नेत्रों में किस अपूर्व भाव की अभिव्यक्ति! वे दोनों प्रभु के मन को जानकर लीलारस का आस्वादन दे रहे हैं- ''स्वरूप गाय विद्यापति, गीतगोविन्द गीति, शुनि प्रभुर जुड़ाइलो कान'' (चै० च०)। तुलसी स्वामिनी के मन की बात सब समझती हैं; उसी भाव से यत्नपूर्वक खिला रही हैं। करुणा कर साधकों के लिये अपने अनुभव का अवशेष रख दिया है। ऐसे आचार्य महाजन पाकर जो समझने का था वह नहीं समझा, जो हृदय में रखने का था वही नहीं रखा। श्रीरघुनाथ ने स्वामिनी के चरणों में स्वयं को सौंप दिया है! कृष्णप्रेम-पगली को कृष्ण-अधरामृत का आस्वादन मिल गया है। सहसा स्फूर्ति में विराम आ गया। हाहाकार के साथ प्रार्थना।

''नानाविध भोज्य पेय स्वादु रसायन।
श्रीकृष्ण प्रसाद सह अमृत उपम॥
ललितादि सखीवृता अयि कुंकमांगि!
भोजन कराबो यत्ने होये कबे रंगी?''४९॥

मधुर जल सेवा

परिमलकणा व्याख्या–श्रीपाद तीव्र स्फूर्ति में साक्षात्कार की तरह की सेवा–माधुर्य आस्वादन कर रहे हैं। स्फूर्ति में विराम आता है, तो स्फुरण में प्राप्त लीला का स्मरण कर हाहाकार करते हैं। विगत सुखस्मृति की कैसी तीव्र ज्वाला! सुख चला जाता है, सुख के स्थान पर दु:ख आ बैठता है। उसके साथ–साथ सुख की स्मृति घनीभूत होकर दु:ख की तीव्रता बढ़ा देती है। पुन: स्फुरण होता है, तो सुख के सागर में तैरने लगते हैं। प्रेमी भक्त की जीवनधारा इसी प्रकार मिलन–विरह की धूप–छाया से युक्त होती है! सखियों के साथ श्रीराधा ने श्रीकृष्ण–अधरामृत का आस्वादन कर लिया है। अब पीने के लिये जल। गुलाब–कपूर आदि से सुवासित सुमधुर जल। अभी तक नयन चंचल है। प्रसाद पा रही हूँ अथवा साक्षात् कृष्ण–अधर आस्वादन कर रही हूँ–समझ नहीं पा रहीं। मिलन में रस–उल्लास में और विरह में भाव–उल्लास में आस्वादन होता है। विरह का भावोल्लास साक्षात् मिलन से भी अधिक निविड़ और स्पष्ट आनन्द का अनुभव कराता है। श्रीरूपगोस्वामिपाद ने लिखा है–

''द्विगुणा विरहार्ति: स्यात् स्फुरणे वेणुरागजे।
प्रादुर्भावे भवत्यत्र सर्वाभीष्ट सुखोत्सव:॥''

(उ० नी० शृंगारभेद–२०५)

''विरह में प्रबल दुख या आर्ति का भोग होता है, किन्तु उसमें 'अनुराग जनित स्फूर्ति या प्रादुर्भाव घटित होने पर सर्वाभीष्ट–सुखोत्सव का आस्वादन हुआ करता है'।'' इसलिए जब वियोगिनी, तब संयोगिनी। सभी समय कृष्णमयी। ''अरुण नयानेर कोणे, चेयेछिलो आमा पाने, पराणे बँड़शि दिया टाने''–यह आकर्षण दु:ख का है या सुख का, सो समझने का उपाय नहीं। विरह की अवस्था में शुद्ध सूक्ष्म माधुर्य को पीसकूट कर निकालकर भोग करती हैं। श्याम के शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध मानो मूर्तिमान हो उठते हैं। धीरे–धीरे तोड़–तोड़कर आस्वादन! मानो सोचने श्याम मूर्त हो उठे हैं। तभी सम्बोधन है 'तरलाक्षि'। आँखों में कृष्णदर्शन की माधुरी सजीव, सुस्पष्ट हैं! उनके (श्रीराधा के) नयनों की स्वाभाविक कटाक्ष–माधुरी देखकर ही अनन्त मधुर श्यामसुन्दर एकान्तभाव से वशीभूत हुए रहते हैं।

''निजमधुरिम–मुद्राग्लापितेन्दीवरश्रीर्जयति परमजैत्र: कोऽपि राधाकटाक्ष:।
त्रिभुवन–जय लक्ष्मीवर्यया दत्तदामा मधुरिपुरपि येन क्रीड़या निर्जितोऽभूत्॥''

(ललितमाधवनाटकम्–४/१२)

''जिसने अपनी माधुर्यमुद्रा से प्रफुल्लित नीलकमल की शोभा को पराजित किया है, वही परम जयशील श्रीराधा–कटाक्ष जययुक्त हो। अधिक क्या (कहें), त्रैलोक्यविजयिनी लक्ष्मी ने भी स्वयम्बरा होकर माल्यदान कर जिन्हें वरण किया है, वे अनन्त मधुर श्रीकृष्ण भी उस कटाक्ष की सुषमा से सहज ही पराभूत हुए रहते हैं।

सखी मंजरियाँ सभी जानती हैं। तरलाक्षी की नयन–सुषमा देखर सखियाँ परिहास कर रही हैं। जैसे पूर्वराग की दशा में करती हैं। 'सखि राधे! तुम्हारा मन किसने चुराया है, सच–सच बताओ। पहले की तरह

तुम्हारा वह अध्ययन कौतूहल नहीं, शुक-सारिका का पाठ नहीं, प्रिय सखियों के साथ बातचीत, हास-परिहास नहीं। कैसी सुन्दर वीणा बजाती थीं। अब वह सब कहाँ गया! अब तो-

''घरेर बाहिरे, दण्डे शतबारे, तिले-तिले आइस जाओ।
मन उचाटन, नि:श्वास सघन, कदम्ब-कानने चाओ॥
राइ! एमन केने बा हइले।
गुरु-दुरुजने, भय नाहि मने, कोथा बा कि देव पाइले॥
सदाइ चंचल, वसन-अंचल, सम्वरण नाहि करो।
वसि थाकि थाकि, उठहो चमकि, भूषण खसाया परो॥
वयसे किशोरी, राजार कुमारी, ताहे कुलवधू बाला।
किबा अभिलाषे, बाढ़ाले लालसे, ना बुझि तोमार छला॥
तोमर चरिते, हेनो बुझि चिते, हात बाड़ाइले चाँदे।
चंडीदास भणे-करि अनुमाने, ठेकिले कालिया फाँदे॥'' (पदकल्पतरु)

'सखि! लगता है तुम्हारी मन-मणि उस वनमाली ने चुरा ली। इस प्रकार तरलाक्षी की नयन-सुषमा देखकर सखियों का तरह-तरह से हास-परिहास चला। भावमयी की सखियों सहित कृष्ण-अधरामृत का आस्वादन समाप्त हो गया। तुलसी पीने का जल दे रही हैं। गुलाब-कपूर आदि से सुवासित मधुर जल। तुलसी के प्रेम ने मिलकर उसे और भी मधुर बना दिया है। साक्षात् प्रणय की मूर्ति किंकरी। राधाकिंकरी की तो बात ही क्या, व्रजधाम ही प्रणय या प्रेम का राज्य है। इसीलिये, ठाकुर विल्वमंगल ने भगवान् को सम्बोधित कर कहा है-

''गोपालाङ्गन - कर्दमेषु विहरन् विप्राध्वरे लज्जसे,
व्रुषे गोवृषहुंकृतैस्तुतिशतैमौनं विधत्से सताम्।
दास्यं गोकुलपुंश्चलिषु कुरुषे स्वाम्यं न दान्तात्मषु,
ज्ञातं कृष्ण तवाङघ्रि-पंकज-युगं प्रेमैकलभ्यं मुहु:॥''

''हे भगवन्! तुम्हारे श्रीपादपद्म एकमात्र प्रेम से ही वशीभूत होते हैं। व्रजवासी गोपालों के कीचड़युक्त आँगन में परमानन्द से लोटपोट करने में तुम्हें कितना सुख मिलता है, उधर याज्ञिक ब्राह्मणों की पवित्र यज्ञवेदी पर क्षणभर के लिये भी दिखाई देने में तुम्हें लज्जा होती है। वृन्दावन में वन-वन में गायों के रंभाने पर पुलकितचित्त हो, उनके पीछे-पीछे दौड़ा करते हो, उधर तपोवन में मुनियों के कण्ठ से अविराम साममन्त्र झंकृत होने पर भी तुम्हारा कण्ठ नीरव रहता है। संयमी और शान्तात्मा मनीषी तुम्हें स्वामीरूप से प्राप्त करने के लिये कितनी ही प्रार्थना कर रहे हैं, वहाँ तो तुम्हारे श्रवण मानो वधिर हैं; दूसरी ओर गोपबालायें मानिनी होकर भर्त्सना कर भगा देती हैं, तो उनके पैरों में आँसुओं से भीगते हुए 'देहि पदपल्लवमुदारम्' कहकर दासपत्र लिखकर देने में भी संकोच नहीं होता। इसी से समझा जा सकता है-हे कृष्ण! तुम्हारे मनोरम पादपद्म एकमात्र शुद्ध व्रजप्रेम से ही सर्वाधिक वशीभूत होते हैं।''

स्वामिनी सखियों के साथ प्रसाद पाकर उठ जाती हैं। हाथ-मुँह धोने के लिये सुगन्धि जल, चौकी, जलपात्र, दाँतुन, सुगन्धि मिट्टी सभी सजी रखी हैं। कोई जल उड़ेल रही है। भाग्यवती तुलसी स्वामिनी के हाथ

भोजनस्य समये तव यत्ना,-द्देवि धूपनिवहान् वरगन्धान्।
वीजनाद्यमपि तत्क्षणयोग्यं, हा कदा प्रणयतः प्रणयामि?५१॥

अन्वय-देवि! हा कदा (अहं) तव भोजनस्य समय यत्नात् वरगन्धान् धूपनिवहान् प्रणयतः तत्क्षणयोग्यं वीजनाद्यम् अपि प्रणयामि (करोमि) ?५१॥

अनुवाद-हे देवि श्रीराधिके! तुम्हारे भोजन के समय मैं अति यत्नपूर्वक सुगन्धि धूप-समूह कब प्रदान करूँगा और प्रणय के साथ तत्कालोचित वीजनादि कब करूँगा?५१॥

धूपदान और वीजनसेवा

परिमलकणा व्याख्या-श्रीपाद के प्रेम-सागर में आलोड़न जगा है, तभी तो सेवारस का विचित्र आस्वादन है और उसी का परिणाम है आकुलता एवं विलाप। प्रेम की गति अति विचित्र है।

''भक्तप्रेमेर जतो दशा जे गति प्रकार।
जतो सुख जतो दुःख जतेक विकार॥
कृष्ण ताहा सम्यक् ना पारे जानिते।
भक्तभाव अङ्गीकारे ताहा आस्वादिते॥
कृष्णेरे नाचाय प्रेमा भक्तेरे नाचाय।
आपने नाचये-तिने नाचे एकठाँय॥''
(चै० च० अन्त्य०, परि० १८)

भोजन के समय बड़े यत्न से सुगन्धि धूप दी है। समयोपयोगी वीजन (पंखे से हवा) आदि भी किया है। शीत-ग्रीष्म के भेद से सेवा में अन्तर आता है। स्फूर्ति में सेवा का साक्षाद्भाव से आस्वादन करते हैं, स्फूर्ति के विराम में व्याकुलतायुक्त प्रार्थना। आचार्यपादगण के चरित्र से पता चलता है कि स्वप्न, स्मरण और स्फुरण साक्षात् प्राप्ति की लालसा को तीव्रतर भाव से जगाये रखते हैं। इष्ट की साक्षात् सेवा-प्राप्ति के बिना प्राण धारण करना कठिन हो जाता है। रोते-रोते प्रार्थना करते हैं-

''जनोऽयं याचते दुःखी रुदन्नुच्चैरिदं मुहुः।
तत्पदाम्भोजयुग्मैक-गतिः कातरतां गतः॥

धुला रही हैं। आचार्यपादगण की सेवा-परिपाटी के श्रवण-कीर्तन से साधक का स्मरण और मानस-सेवा सुचारुरूप से सम्पन्न होगी। साधक इन लोगों की चिन्तनधारा के साथ अपना चिन्तन (स्मरण) मिलाकर सेवा-भावना करें। स्फूति में विराम, सेवा के लिये प्रार्थना।

''पाटलादि पुष्प आर कर्पूर वासित।
सुमधुर जल दिबो पानेर निमित्त॥
आचमन दन्तकाष्ठ आदि यत्न करे।
समर्पिबो तरलाक्षि! कबे प्रीतिभरे?''५०॥

कृत्वा निजगणस्यान्तः कारुण्यान्निजसेवने।
नियोजयतु मां साक्षात् सेयं वृन्दावनेश्वरी॥''

(श्रीविशाखानन्ददस्त्रोत्रम्-१२९/३०)

''वृन्दावनेश्वरी श्रीराधा के श्रीपादपद्मों में एकान्त भाव से आश्रित यह दीनजन कातर प्राणों से उच्च स्वर में रोते-रोते प्रार्थना करता है कि वे करुणा कर निज जनों में सम्मिलित कर निज पादपद्मों की साक्षात् सेवा में इसे नियुक्त करें।'' उत्कट तृष्णा ही रागभजन की प्राणवस्तु है। ''परम नागर कृष्ण, ताहे हओ अति तृष्ण, भजो ताँरे व्रजभाव लैया'' (ठाकुर महाशय)। प्राप्ति की इच्छा होने से भजन के प्रतिकूल विषयों के प्रति उपेक्षा आयेगी। भजन के प्रतिकूल यदि दया भी हो, तो उसे छोड़ना होगा। यदि इष्टदेव भी भजन के प्रतिकूल बात कहें, तो इसे परीक्षा समझकर उसे भी नहीं सुनूँगा। कहा जाता है कि एकबार हरिवासर (एकादशी पर राधारानी ने श्रीपाद गोपालभट्ट गोस्वामी के किन्हीं शिष्य को प्रसादी ताम्बूल दिया। वह ताम्बूल भक्षण कर गुरुदेव के निकट आये, तो गोस्वामिपाद ने हरिवासर पर ताम्बूल खाने के कारण उन्हें त्याग दिया। राधारानी ने भट्ट गोस्वामी से कहा-'मेरी कृपा के ऊपर भी तुम्हारा शास्त्रशासन? इसके उत्तर में श्रीपाद ने राधारानी के चरणों में निवेदन किया-उनकी प्रकृत करुणा कभी भी सदाचार का लंघन कर नहीं आ सकती; इसमें निश्चय ही उनकी कोई परीक्षा विशेष निहित है, ऐसा मानकर मैंने शिष्य का त्याग किया है। इस पर राधारानी ने कहा-'समझी, तुमने यथार्थ आचार्यपद की योग्यता प्राप्त की है।' भजन बिगड़ने से सभी बिगड़ेगा। ''कृष्ण प्राप्तिर उपाय आर नाहि भजन बिने'' (महाप्रभु की श्रीमुखोक्ति)। भजन ही उपाय, भजन ही उपेय (साध्य)। श्रीमन्महाप्रभु श्रवणांग भक्ति में निरन्तर डूबे रहते थे।

''चण्डीदास विद्यापति, रायेर नाटक गीति,
कर्णामृत श्रीगीतगोविन्द।
स्वरूप रामानन्द सने, महाप्रभु रात्रि दिने,
गाय शुने परम आनन्द॥'' (चै० च०)

आचार्यपादगण असाधारण रसज्ञ हैं। उनके रचे ग्रन्थादि का रसास्वादन ही उन सबका संगलाभ है, कारण-इसी में उन लोगों की प्रिय वस्तु निहित है। उन लोगों की बात कहते-सुनते, उन लोगों के भाव की भावना करते-करते उसी भाव में चित्त तन्मय होगा। तब ''महद्भावे रस हबे आस्वादन।''

पिछले श्लोक में श्रीपाद ने सखीवृन्द सहित राधारानी द्वारा श्रीकृष्ण-अधरामृत आस्वादन करने के पश्चात् जल-आचमन आदि सेवाओं का स्फुरण प्राप्त किया था। उन्होंने राधारानी के भोजन के समय जो धूपदान और वीजनादि सेवा की थी - उसका स्फुरण इस श्लोक में हुआ है। जिस समय श्रीमती श्रीकृष्ण-अधरामृत का आस्वादन कर रही थीं, उस समय उनका मन स्वामिनी में इस प्रकार आविष्ट हुआ कि जल और आचमन आदि सेवाओं के पश्चात् धूपदान आदि सेवाओं की स्फूर्ति हुई। सेवा यथायोग्य समय पर ठीक ही की है। प्रेम के आवेश में स्फूर्ति का क्रम-भंग हो गया। जब जिस सेवा का स्फुरण हुआ है, तब उसी का ज्ञापन स्वामिनी के चरणों में किया है। प्रेमावेश में वर्णन करने में थोड़ा-सा क्रम-भंग होता है। जैसे-महाराज परीक्षित प्रायोपवेशन (बिना खाये-पीये धरना देना; एक प्रकार से आमरण अनशन) की स्थिति में आविष्ट होकर भागवत-कथा सुन रहे हैं। शुकदेवजी भी कथारस में डूबकर वर्णन किये जा रहे हैं। प्रेमावेश में वर्णन में स्थान-स्थान पर क्रम-भंग

हो जाता है। पहले अनुष्ठित लीला पीछे और पीछे की लीला पहले बता डालते हैं। इससे वर्णन-उत्कर्ष का ही पता चलता है। ऐसे स्थल पर स्वत:स्फूर्त लीला का ही कर्तत्व है, वर्णन करने वाला का कोई कर्तृत्व नहीं। लीलारस मन्दाकिनी-धारा की तरह ऐसे महत् पुरुष की जिह्वा पर स्वयं ही प्रवाहित होता है। ऐसे प्रेमाविष्ट चित्त से स्वत:स्फूर्त लीला का श्रवण सौभाग्य से ही होता है।

''तस्मिन् महन्मुखरिता मधुभिच्चरित्र, - पीयूषशेषसरित: परित: श्रवन्ति।
ता ये पिबन्त्यवितृषो नृप गाढ़कर्णै,-स्तान्न स्पृशन्त्यशनतृङ्भ भयशोकमोहा:॥''

(भा०-४/२९/४१)

नारदजी ने प्राचीनवर्हि से कहा-'हे राजन्! साधुसंग में महत् के मुख से निकली कृष्ण-चरित्र की अमृतसार नदी चारों ओर प्रवाहित हुआ करती है। जो लोग अलम्बुद्धिशून्य होकर अतृप्त कानों से उस चरितामृत का पान करते हैं, उन्हें क्षुधा-तृष्णा, भय, शोक, मोह कतई स्पर्श नहीं कर सकते।'' ''तानेतान् महत्कीर्त्यमानानि भगवद्यशांसि स्वमाहात्म्येन दूरीकृत्य स्वसुखमनुभावयन्तीति'' (टीका श्रीजीवपाद), अर्थात् ''महत् के श्रीमुख से स्वत:स्फूर्त भगवद्यशसमूह अपने माहात्म्य के बल से भूख-प्यास, भय-शोक आदि धर्मों को दूर कर स्त्रोता को अपना सुख (कथामृत का आस्वादन) अनुभव कराते हैं।'' आचार्यपादगण की हृदयतन्त्री को स्वरलहरी की झंकार उनके ग्रन्थों में विद्यमान है। साधक उसी स्वर के साथ अपनी हृदयतन्त्री की स्वरलहरी की झंकार उस स्वर के साथ मिलायें। शुकदेवजी ने कहा-''उद्धवजी से गोपिकाओं ने निर्जन में कृष्णवार्ता पूछी''-''रहस्यपृच्छत्'' (भा०-१०/४७/३) ''रहसि विजातीयभावागोचरे'' (वैष्णवतोषणी टीका)। शतकोटि गोपियों का वासस्थल निर्जन कैसे? सभी की हृदय-तन्त्रियों में एक ही स्वर की झंकार! विजातीयभाव से युक्त व्यक्ति के लिये अगोचर है वह स्थान, इसलिये निर्जन। भजननिष्ठा के फलस्वरूप साधक के चित्त से समस्त विजातीय भाव दूर होंगे और वह क्रमश: आचार्यगण का समवासन (आचार्यों के भाव और रस के अनुरूप भाव-रस वाला) हो सकेगा। श्रीरूप-रघुनाथ भजनरस में तन्मय हैं।

''छापान्न दण्ड रात्रिदिने, राधाकृष्ण गुणगाने,
स्मरणेते सदाइ गोंयाय।
चारि दण्ड शुति थाके, स्वप्ने राधाकृष्ण देखे,
एककाल व्यर्थ नाहि जाय॥''

श्रीमत् जीवगोस्वामिपाद ने भजनशैथिल्य को भक्ति का महान् अन्तराय (बाधक) बताया है। ''यत: कौटिल्यम् अश्रद्धा भगवन्निष्ठाच्यावकवस्त्वन्तराभिनिवेशो भक्तिशैथिल्यं स्वभक्तादिकृत-मानित्वमित्येवमादिनी महत्सङ्गादिलक्षणभक्त्यापि निवर्तयितुं दुष्कराणि चेत्तर्हि तस्यापराधस्यैव कार्याणि तान्येव च प्राचीनस्य तस्य लिङ्गानि।'' अर्थात् ''कौटिल्य, अश्रद्धा, भगवन्निष्ठा में च्युति लाने वाली कृष्णेर वस्तुओं में अभिनिवेश, भजन में शिथिलता और अपने भजन आदि का अभिमान इत्यादि जब महत्संग के लक्षण महाशक्तिशाली भजन के प्रभाव से भी दूर न किये जान सकें, तब समझना होगा कि नामापराध के कारण उक्त कौटिल्य आदि की सत्ता हृदय में विद्यमान है। इस जन्म में वैसा कोई अपराध न हो, तो पूर्वजन्म के अपराधों के परिचायकरूप में वे विद्यमान हैं, ऐसा समझना होगा।'' तभी नरोत्तम ठाकुर महाशय ने लिखा है-''साधुमुखे कथामृत, शुनिया

कर्पूरपूरपरिपूरित - नागवल्ली, - पर्णादिपूगपरिकल्पित - वीटिकां ते।
वक्त्राम्बुजे मधुरगात्रि मुदा कदाहं, प्रोत्फुल्लरोमनिकरैः परमर्पयामि ?५२॥

अन्वय-मधुरगात्रि! (कृष्णमनोहरं गात्रमंग यस्या हे तथाविधे!) अहं कदा ते (तव) वक्त्राम्बुजे मुदा (हर्षेण) प्रोत्फुल्लरोमनिकरैः (उपलक्षितः सन्) कर्पूरपूरपरिपूरित-नागवल्ली-पर्णादि-पूग-परिकल्पितवीटिकां परं (श्रेष्ठं यथास्यात्तथा) अर्पयामि (ददामि) ?५२॥

अनुवाद-हे मधुरांगि! श्रीराधिके! परमानन्द के कारण रोमांचित देह लेकर मैं तुम्हारे मुखपद्म में कपूर आदि सुगन्धि द्रव्यों से युक्त ताम्बूल-सुपारी, कत्था आदि से सज्जित श्रेष्ठ पान कब अर्पित करूँगा ?५२॥

श्रेष्ठ ताम्बूल अर्पण

परिमलकणा व्याख्या-स्वरूपावेश में श्रीपाद सेवारस का अपूर्व आस्वादन करते हैं। जैसे मायिक जीव की जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति की अवस्थाओं में माया, वैसे ही साधक का इन अवस्थाओं में भजन। भजन का अर्थ है मन लगाये रखना। श्रीयुगल में मन को रमा देना। ''राधाकृष्ण दुहुँ पाय, तनु मन रहु ताय, आर दूरे जाउक वासना'' (प्रार्थना)। श्रीपाद लीलाशुक ने श्रीकृष्णमाधुर्य से आकृष्ट होकर कहा था-

''माधुर्यवारिधि-मदाम्बु-तरंगभंगी शृंगार-संकुलितशीतकिशोरवेशम्।
आमन्दहासललिताननचन्द्रबिम्बमानन्दसंप्लवमनुप्लवतां मनो मे॥''

(कृष्णकर्णामृतम्)

''जिसमें माधुर्य-सागर का मदमत्त अनन्त उच्छ्वास है, जिसका श्रृंगाररस-परिपूर्ण शीतल किशोरवेश है, जिसका सुललित वदनचन्द्र मृदुमन्द हास्य से सुशोभित है-उसी आनन्दवन्या (कृष्ण) में मेरा मन डूब जाय।'' जो मन रस-सागर में डूब गया है, वह अन्यत्र जायेगा कैसे? स्वामिनी के किंकरीत्व का आवेश और भी प्रगाढ़ है। ऐसे गोविन्द भी जिनके रूप-गुण-माधुर्य में खो जाते हैं, मैं उन्हीं की किंकरी हूँ। माया क्या करेगी मेरा? भजन करते-करते चित्त जब सरस हो जायेगा, तब निष्ठावान् साधक का इष्टदेव के प्रति वैसे ही स्वाभाविक भाव हो जायेगा जैसे मायिक जीव का स्त्री-पुत्रादि के प्रति स्वाभाविक रूप से होता है। तभी गोस्वामिपाद कहते हैं-सासंग (आसिक्तयुक्त) भजन चाहिये। अनासंग भजन से काम नहीं चलेगा। नाम करने

विमलचित, नाहि भेलो अपराध कारण।'' महत्कृपाप्राप्त अपराध आदि चित्तकालिमाशून्य साधक भजनरस का किंचित् आस्वादन पाकर भजन छोड़ और नहीं रह सकता। तब भजन अनायास सम्पन्न होगा। ''आनन्द करि हृदय, रिपु करि पराजय, अनायासे गोविन्द भजिबो'' (वही)। श्रीपाद ने प्रेम से भरकर यथासमय धूपदान-वीजनादि सेवा की है। स्फुरण में विराम आया, तो करने लगे प्रार्थना।

''आनन्दित हैया जबे करिबे भोजन।
सुवासित धूप दिया करिबो बीजन॥
हे श्रीराधिके! मोर प्राणेर ईश्वरि।
एइ कृपा करो जेनो निति इहा करि॥''५१॥

का नियम है, इसलिये कर रहा हूँ, नाम-माधुर्य का आस्वादन नहीं। श्रीमन्महाप्रभु 'जगन्नाथ' शब्द उच्चारण नहीं कर पा रहे। ''जज गग गद्‌गद वचन'' (चै० च०)। उस समय प्रभु 'प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनम्'-इसका भोग करते हैं। श्रीपाद दासगोस्वामी ने भी कहा है-

''राधेति नाम नवसुन्दर-सीधु मुग्धं, कृष्णेति नाम मधुराद्‌भुत-गाढ़दुग्धम्।
सर्वक्षणं सुरभिराग-हिमेन रम्यं, कृत्वा तदेव पिव मे रसने क्षुधार्ते॥''

(अभीष्टसूचनम्-१०)

'' 'राधा' नाम अभिनव सुन्दर अमृत-जैसा मनोहर है, 'कृष्ण' नाम अद्‌भत गाढ़े दूध की तरह अतिशय स्वादिष्ट है; हे मेरी क्षुधार्त रसने! तुम इन दोनों वस्तुओं को सुरभित अनुरागरूपी हिम (बर्फ) से रमणीय बनाकर सदा उसी का पान करो।''

आस्वादन के साथ प्रत्येक भजनांग का अनुष्ठान करना होगा-यही श्रीपादगण की शिक्षा है। विषयस्पृहा से लेकर मुक्ति की स्पृहा (आकांक्षा) तक कपटता है। इन कपटताओं के रहते शुद्धा भक्ति ही नहीं होगी, राग भक्ति की बात तो बहुत दूर। श्रीपाद लीलाशुक ने कहा है-

''भक्तिस्त्वयि - स्थिरतरा भगवन् यदि स्या-
दैवेन नः फलति दिव्यकिशोरमूर्तिः।
मुक्तिः स्वयं मुकुलितांजलि सेवतेऽस्मान्
धर्मार्थकामगतयः समयप्रतीक्षाः॥''

(श्रीकृष्णकर्णामृतम्-१०७)

''हे देव! यदि आपमें हम लोगों की भक्ति स्थिर रहे, तो उसके फलस्वरूप आपकी यह दिव्य किशोरमूर्ति ही हमें प्राप्त होगी। मुक्ति स्वयं हाथ जोड़कर हमारी सेवा करेगी और धर्म-अर्थ-काम हम लोगों की सेवा के समय की प्रतीक्षा करेंगे।'' जिनके हृदय में राधारानी की चरण-नखकान्ति छिटकी है, वे अकुतोभय (पूर्णतः निर्भीक) हैं। इन श्रीचरणों में जिसका मन रमा है, वही त्यागी है। वे चरण जिसके हृदय में नहीं है, उसका सब कुछ व्यर्थ है। किंकरीभावापन्न साधक को हर समय राधारानी के सान्निध्य की उपलब्धि होती है। उनके निकट हूँ, यह सोचकर ही कितना आनन्द!

स्वामिनी श्रीकृष्ण-अधरामृत पा चुकी हैं। सखियों के हास-परिहास से आस्वादन का माधुर्य मूर्तिमन्त हो गया था। चौकी पर बिठाकर तुलसी ने मुँह धुला दिया है। स्वामिनी-सखियों के साथ दरबार लगाये बैठी हैं। मणि-प्रदीप जल रहा हैं। तुलसी एक मणिमय तश्तरी में सुसज्जित पान लिये स्वामिनी के आगे खड़ी हैं। पान के बीड़े में कत्था, चूना, इलायची, लौंग, जायफल और सुपारी है। कपूर आदि सुगन्धि द्रव्यों से सुवासित पान का बीड़ा। स्वामिनी तो सखियों के साथ श्यामरस की चर्चा में मग्न हैं! तुलसी उनका ध्यान आकर्षित करती हैं-'मधुरगात्रि!' ऐसा सम्बोधन क्यों? वे सखी-मंजरियों के निकट मधुर अंगवाली कब होती हैं? जब श्याम के संग विराजती हैं! ऐसी मधुरता अन्यत्र नहीं। रहस्य है। तुलसी जो पान लाई हैं, वह 'परं' या श्रेष्ठ पान है। श्रीकृष्ण का चबाया पान उस बीड़े में मिलाकर स्वामिनी के आगे रखा है। धनिष्ठा ने मर्म जानकर वह भी

आरात्रिकेण भवतीं किमु देवि देवीं, निर्मञ्छयिष्यतितरां ललिता प्रमोदात्।
अन्यालयश्च नवमङ्गलगानपुष्पैः, प्राणार्वुदैरपि कचैरपि दासिकेयम्॥५३॥

तुलसी को दिया है। गन्ध पाकर स्वामिनी लुब्ध हैं। मदनमोहन का चर्वित ताम्बूल! सुधा से भी अधिक स्वादिष्ट। गन्ध ही स्वामिनी की जिह्वा की लालसा बढ़ाती है!

''सुधाजिदहिवल्लिकासुदलवीटिकाचर्वितः।
स मे मदनमोहनः सखि! तनोति जिह्वास्पृहाम्॥''

(गोविन्दलीलामृतम्-८/८)

''कृष्ण जे खाय ताम्बूल, कहे तार नाहि मूल,
ताहे आर दम्भपरिपाटी।
तार जेबा उद्गार, तारे कय अमृतसार,
गोपीर मुख करे आलबाटि॥'' (चै० च०)

परम रसायन है वह ताम्बूल। आघ्राण पाकर स्वामिनी विभोर हैं! मानो श्यामसुन्दर मूर्त हो गये हैं। इस समय उनकी भंगिमा देखकर लगता है जैसे वे और किसी के साथ बैठी हैं। मानो अङ्ग से अङ्ग लगाये बैठी हैं। कितना मधुर, कितना सुन्दर, कितना उज्ज्वल! भावमयी की भाव की सेवा है। और किंकरी भी भाव-भरी हैं। भाव का ही राज्य है। अभाव से पकड़ में नहीं आता। रसशास्त्र के मौलिक उपजीव्य (स्रोत, आधारग्रन्थ) महर्षि भरतमुनि-प्रणीत रसशास्त्र के अनुसार ''भावा एवाभिसम्पन्नाः प्रयान्ति रसरूपताम्''-भाव ही अभिसम्पन्न (समृद्ध या पुष्ट) होकर रसरूपता को प्राप्त होता है। 'भाव' मनोवृत्ति को ही कहते हैं। ये मनोवृत्तिरूप भावसमूह प्रकट-अप्रकट दो रूपों में रहते हैं। जब ये प्रकट रूप से मन में होते हैं, तो इन्हें मनोवृत्ति ही कहते हैं। फिर जब ये अप्रकटरूप से चित्त में रहते हैं, तो इन्हें 'संस्कार', 'वासना', 'भाव' या 'भावना' कहा जाता है। महत्कृपाजनित वैसे 'संस्कार' जिसके चित्त में हैं, वही इसे समझेगा और आस्वादन भी करेगा। तुलसी स्वामिनी का ध्यान आकर्षित कर रही हैं। इस समय वे लीलाराज्य में हैं न! मन जाने कहाँ चला गया है! सखियाँ मर्म को जानने वाली हैं। सखियों के साथ उसी भाव की बात कर रही हैं, तभी 'वक्त्राम्बुज' शब्द का उल्लेख है। जो बात करता है, वह 'वक्तृ' (वक्ता)। तुलसी पुकार रही हैं-'हे! मधुरगात्रि!' गन्ध लुब्ध स्वामिनी ने मुख आगे कर तुलसी के हाथ से ताम्बूल-वीटिका ग्रहण की। सेवा की कैसी अपूर्व परिपाटी! मेरी सेवा ग्रहण करने के लिये स्वामिनी ने सखियों के साथ वार्ता बन्द कर मुख बढ़ाकर ताम्बूल-वीटि ली! अर्पण करने को होती है कि श्रीमुख दिखाई नहीं देता। स्फूर्ति रुक जाती है। हाहाकर करते हुए प्रार्थना की-

''सुगन्धि कर्पूरपूर्ण नागवल्लीपर्ण।
गुवाकादि विमिश्रित वीटिका सम्पूर्ण॥
कबे मुखाम्बुजे तव अर्पण करिबो।
कबे बा आनन्दे तनु पुलकित हबो?''५२॥

अन्वय–देवि! देवीं (श्रीकृष्णस्य प्रेयसीं भवतीं) ललिता प्रमोदात् किम् उ (भो) आरात्रिकेण (किर्मञ्छन साधनदीपेन) निर्मञ्छयिष्यतितरां, अन्यालयश्च (सख्यो) नवमङ्गलगान–पुष्पैः (निर्मञ्छयिष्यन्ति) इयं दासिकाअपि प्राणार्वुदैरपि कचैः निर्मञ्छयिष्यति ?५३॥

अनुवाद–हे देवि! ललिता सखी परमानन्द पूर्वक आरति–दीप से, अन्यान्य सखियाँ नवमंगलगान और पुष्पों से, और यह दीन दासी कोटि प्राणों के साथ केशों से क्या कृष्णप्रेयसी तुम्हारी आरति करेंगी ?५३॥

श्रीराधा की आरति

परिमलकणा व्याख्या–श्रीपाद का स्वरूपावेश निविड़ है। वे स्मरण, स्वप्न और स्फुरण में जैसा–जैसा अनुभव करते हैं, वैसी–वैसी सेवा प्राप्त करने की अभिलाषा व्यक्त करते हैं। भोजन के पश्चात् स्वामिनी सखियों के साथ दरबार लगाये दिव्य सिंहासन पर बैठी हैं। ताम्बूल चर्बण कर रही हैं। अब आरति होगी। आरति का साज लाई हैं कोई किंकरी। सर्वप्रधान सखी श्रीललिता आरति करेंगी। एक के बाद एक सेवा की तरंग चल रही है। राधाकिंकरी के अतिरिक्त ऐसी सेवा–परिपाटी और कोई नहीं जानता। परिपूर्ण आत्मसमर्पण बिना राधारानी की सेवा का स्फुरण नहीं होगा। श्रीमत् प्रबोधानन्द सरस्वतीपाद ने लिखा है–

''राधानामसुधारसं रसयितुं जिह्वास्तु मे विह्वला
पादौ तत्पदकाङ्कितासु चरतां वृन्दाटवीवीथिषु।
तत् कर्मैव करः करोतु हृदयं तस्याः पदं ध्यायता–
त्तद् भावोत्सवतः परं भवतु मे तत्प्राणनाथे रतिः॥''

(राधारससुधानिधि–१४२)

''मेरी जिह्वा राधानाम–सुधारस के आस्वादन में विह्वल हो, मेरे पैर श्रीराधा के चरण–चिन्हों से भूषित वृन्दावन की राह–राह पर विचरण करें। हाथ श्रीराधा के कार्यों में ही नियुक्त रहें, हृदय उनके श्रीचरणों का ध्यान करे और उनके भावोत्सव से उनके प्राणनाथ में मेरी परमारति उत्पन्न हो।

आचार्यपादगण ने अपने ग्रन्थों में राधारानी के पादपद्मों में शरणागति का प्रकार भली–भाँति दिखाया है। श्रीरूप–रघुनाथ की कृपा होने पर इसका अनुभव होगा। स्वामिनी रत्नपर्यङ्क पर बैठी हैं। कैसे चिन्तन (ध्यान) करना होगा? ''निजांगसौरभालये गर्व–पर्यङ्क। ताते बसि आछे सदा चिन्ते कृष्णसंग॥'' (चै० च०)। गर्व ही पलंग है, उस पर बैठी हैं। 'कृष्ण मेरे हैं–यह मदीयता भरा भाव ही गर्व की उत्पत्ति भूमि है। साधक अपनी भावना में इस माधुरी का आस्वादन करेंगे। यदि सहज–स्वाभाविक रूप से जलप्रवाह की तरह स्मरण द्वारा साधक अपने जीवन को धन्य करना चाहते हैं, तो स्तवमाला, स्तवावली आदि ग्रन्थों की चर्चा एकान्त आवश्यक है। रसमयी मार्मिक सेवा की उपलब्धि इसी से होगी। इसके आस्वादन को निकालकर जबरदस्ती करेंगे, तो स्वामिनी के चरणों में मन नहीं डूबेगा। सिद्धस्वरूप की अहर्निश स्फूर्ति के बिना उन्हें नहीं समझा जा सकेगा। जड़ीय स्त्री–पुरुषादि के अभिमान के रहते राधारानी की सेवा के स्मरण का अधिकार नहीं। श्रीगुरु–प्रदत्त मंजरी स्वरूप के अभिमान में डूबे रहना होगा। सदा ही प्राणों में लालसा जगेगी–

''हरि हरि! आर कि एमन दशा हबो।
कबे वृषभानुपुरे, आहीरी गोपेर घरे, तनया हइया जनमिबो॥
जावटे आमार कबे, ए पाणिग्रहण हबे, बसति करिबो कबे ताय।
सखीर परम श्रेष्ठ, जे हय ताहार प्रेष्ठ, सेवन करिबो ताँर पाय॥
तेंहो कृपावान् हैया, रातुल चरणे लैया, आमारे करिबे समर्पण।
सफल हइबे दशा, पूरिबे मनेर आशा, सेबि दुँहार युगल चरण॥'' (प्रार्थना)

देह के बन्धन से मुक्त होना सहज नहीं। 'मैं पण्डित हूँ', 'मैं गोस्वामी हूँ', 'मैं भजनानन्दी हूँ' इत्यादि भावों के मन में रहने से काम नहीं चलेगा। कृपा बिना ये सब अभिमान दूर नहीं होते। उनकी कृपा मिलती है तीव्र भजन से। फिर भजन है, उत्कण्ठा नहीं–इससे प्राप्ति नहीं होगी। जैसे दम्पति के मिलन से ही सन्तान उत्पन्न होती है, वैसे ही प्रेम के साथ उत्कण्ठा का मिलन होने से ही भगवत् साक्षात्कार होता है। उत्कण्ठामय भजन से कैसे प्राप्ति होगी, वे ही बता देंगे। ''ददामि बुद्धि–योगं तं येन मामुपयान्ति ते'' (गीता)। श्रीरूप–रघुनाथ की कैसी उत्कण्ठा! उसे बताने के लिये भाषा है क्या! उन लोगों के भाव का आनुगत्य होने पर कुछ–कुछ अनुभव होगा। श्रीरघुनाथ राधाकुण्ड नहीं देख रहे, देख रहे हैं स्वामिनी का वही रत्नपर्यङ्क। बैठने की क्या भंगिमा है! ताम्बूल चबा रही हैं। सखियों के साथ हास–परिहास रस में डूबी हैं। आरति होगी। शीतकाल में प्रदीप की आरति। ग्रीष्म में मणिप्रदीप की आरति। 'आरात्रिक' शब्द का अपभ्रंश 'आरति'। आरति, निर्मञ्छन, नीराजन आदि एक पर्यायवाची शब्द हैं। इसका उद्देश्य है–अमंगल या विघ्नादि दूर करना। व्रज के मधुर रस में श्रीराधा आदि कृष्णप्रियाओं के अमंगल या विघ्न की बात श्रील कविराज गोस्वामिपाद ने राधारानी की उक्ति के माध्यम से व्यक्त की है–

''ननन्दा विद्वेष्ट्री पतिरतिकटुः सापि कुटिला
धवाम्बा मे पद्माप्रभृतिरिपुपक्षश्च बलवान्।
वन व्याप्तं सर्वं व्रज–धनजनैरह्नि सखिभि–
र्वृतः कृष्णो लभ्यः कथमिह भवेद्विघ्नबहुले॥''
(गोविन्दलीलामृतम्–८/१८)

''हाय! ननद मेरे प्रति सदा द्वेष रखती है, पति अति कटुभाषी है, सास जटिला कुटिल–भाव से युक्त हैं, पद्मा आदि गोपियाँ–मेरा शत्रुपक्ष अतिशय बलवान् है, दिन में समस्त वन प्रदेश गोधन और जनसमूह से घिरा रहता है, विशेष रूप से श्रीकृष्ण सदा सखाओं से मण्डित रहते हैं, अतएव ऐसे अनेक विघ्नों के होते दिन में मुझे श्रीकृष्ण कैसे मिल सकते हैं?'' रात्रि में निर्विघ्न रूप से गोविन्दस्थली में या अन्यान्य संकेतस्थलियों में मिलन वनभ्रमण रासनृत्य, मधुपान, जलकेलि इत्यादि राधाकृष्ण और सखियों को परस्पर आनन्ददायक लीलायें सम्पन्न हों, इसी मंगलकामना को लेकर आरात्रिक (आरति) की जाती है। ललिता आरति करेगी। यह बड़ी ही प्रीति का अनुष्ठान है। सामने खड़ी हैं। तुलसी आरति का सम्भार दे रही हैं। (ललिता) गोरोचना वर्ण की हैं। अवस्था में थोड़ी बड़ी हैं। प्रखर और प्रगल्भ हैं। कोई सेवा में इधर–उधर कर दे, तो शासन करती हैं। आरति करने के लिये सामने खड़ी हैं। स्वामिनी नवविद्युतलता की तरह अपूर्व भंगिमा के साथ स्थिर होकर बैठी हैं। अङ्ग से अपूर्व ज्योति फूट रही है। तभी 'देवि' सम्बोधन। 'द्योतमाना परमासुन्दरी।' श्याम का सान्निध्य अनुभव

करने पर अनेक छवियाँ हृदय में उतर आती हैं। श्याम हृदय में खेल रहे हैं। भावोल्लास में क्रीड़ा की वास-नगरी, तभी 'देवि'। आरति के समय पूर्वलीला की कितनी-कितनी स्मृतियाँ छवि की तरह उनके मन में उदित हो रही हैं! इसी प्रकार कुंज में सखी-मंजरियों के आगे ललिता युगल की आरति करती हैं। कितनी सुन्दर! कितनी मधुर! स्मृतिरस के प्रवाह में स्वामिनी की चित्त-तरी (नौका) डगमगा रही है। स्वामिनी के मुख पर मृदुमन्द हँसी है। किस भाव की हँसी? श्रीभागवत में आता है-''हसत्यथो रोदिति रौति गायतयुन्मादवन्नृत्यति लोकबाह्यः''-प्रेमी भावावेश में उन्मत्त की तरह कभी हँसता है, कभी रोता है, कभी चीखता-चिल्लाता है, कभी गाता है, कभी नृत्य करता है। जब प्रेमी की ऐसी अवस्था होती है, तो महाभावमयी की कैसी होगी, सहज ही अनुमान किया जा सकता है।

आरति के समय घण्टा नहीं बज रहा। गुन-गुन स्वर में सुकण्ठी सखियाँ स्वामिनी का मंगलगान कर रही हैं। यह आरति नहीं-'निर्मञ्छन' है। आपद-विपद-विघ्नादि को दग्ध किया जा रहा है। प्रदीप को लेकर ललिता कैसे प्रेम से हाथ घुमा रही हैं। बड़े ही प्रेम का अनुष्ठान है यह आरति! अला-बला सब ली जा रही है। प्रदीप की दीप्ति में स्वामिनी की गलित-स्वर्णकान्ति को लज्जित करने वाली मुखज्योति झिलमिला रही है। सभी सखियाँ घूम-घूम कर नृत्य-गायन कर रही हैं। कोई-कोई पुष्प वर्षण कर रही हैं। कोई उलुध्वनि, जयध्वनि। आरति के साथ-साथ स्वामिनी की दीप्ति का कैसा प्रकाश! तभी 'देवि' सम्बोधन की सार्थकता है। ललिता ने शंख से आरति की। साफी से अला-बला पौंछ दी। चँवर से भी सब मिटा दी। प्रीति की मूर्ति हैं ललिता। कितनी प्रीति से निर्मञ्छन किया। साधक अपनी भावना में रसास्वादन करें। भावना का आस्वादन बड़ा ही मधुर है। ''स्मरण मनेर प्राण, मधुर-मधुर धाम'' (प्रे० भ० च०)। अन्त में तुलसी ने कोटि प्राणों से निर्मञ्छन किया। वेणी खोलकर हाथ में लेकर वक्ष पर रखकर उसमें कोटि प्राण मिलाकर तुलसी ने स्वामिनी की आपद-विपद अला-बला सब पौंछपाँछ दी। प्रेम की ही मूर्ति हैं किंकरी। केश काले, कृष्ण भी काले! स्वामिनी को कैसा अपूर्व उद्दीपन! वे अकेली पलंग पर बैठी हैं, किंकरी उनके स्मृति-पथ पर श्याम को ले आईं। मानो श्याम के वामभाग में ही बैठी हैं, स्वामिनी को ऐसी स्फूर्ति हुई। तत्पश्चात् सखी-समाज में गानशिक्षा, गायन की परीक्षा, नृत्यादि की परीक्षा हुईं। आनन्द की सीमा नहीं। सहसा श्रीपाद की स्फूर्ति भंग। हाहाकार और प्रार्थना।

''श्रीकृष्ण-प्रेयसी तुमि हे देवि! राधिके!
आनन्दे ललिता सखी हइया प्रफुल्लमुखी,
निर्मञ्छलन करिबे तोमाके॥
सुगन्धि प्रदीप ज्वालि, अपर सकल आलि,
महानन्दे हये एकप्राण।
पुष्पाञ्जलि दिया जबे, आरति करिबे सबे,
गाहिबे मंगल स्तुतिगान॥
ए दासीर अभिलाष, हाते लइया केशपाश,
आरति करिबो कोटि प्राणे।
तुया प्रिय एइ सेवा, कबे बा आमारे दिवा,
किछु नाहि भाय इहा बिने॥''५३॥

आलीकुलेन ललिताप्रमुखेन सार्द्धं,-मातन्वती त्वमिह निर्भरनर्मगोष्ठीम्।
मत्पाणि कल्पित-मनोहर-केलितल्प,-माभूषयिष्यसि कदा स्वपनेन देवि?५४॥

अन्वय-देवि! (हे क्रीड़ावति!) कदा त्वम् इह (जावटालये) ललिता प्रमुखेन (आदिना) आलिकुलेन (सखीसमूहेन) सार्द्धं निर्भरनर्मगोष्ठीम् आतन्वती (अतिशय कौतुकसमूहं विस्तारयन्ती सती) मत्पाणिकल्पित-मनोहरकेलितल्पं (मत् पाणिना कल्पितं यन्मनोहरं केलितल्पं तत्) स्वपनेन आभूषयिष्यसि (अलंकरिष्यसि) ?५४॥

अनुवाद-हे देवि! तुम ललितादि सखियों के साथ हास्य-परिहास कौतुकादि विस्तार करते-करते मेरे द्वारा तैयार की गई विलास-शय्या पर लेटकर उसे कब विभूषित करोगी?५४॥

मनोहर केलितल्प

परिमलकणा व्याख्या-किंकरीभाव से युक्त साधक के प्राणों का अवलम्बन है अभीष्ट वस्तु की सुस्पष्ट अनुभूति-स्मरण में, स्वप्न में, स्फुरण में। अन्यथा प्रपंच ही आकर्षित करेंगे। मुझ-जैसे जीव का तो अभी तक अभीष्ट वस्तु के साथ परिचय नहीं हुआ। जो सबसे अधिक अपनी है, उसे छोड़कर नगण्य वस्तु में ही मनोनिवेश किया। भगवान् के लिये एक कौड़ी की उपेक्षा नहीं कर सकता, किन्तु एक कौड़ी के लिये भगवान् की उपेक्षा कर सकता हूँ। विश्व को पराया मान उन्हें हृदय से लगाकर अग्रसर होना होगा। भक्त के निकट उन्हें आना ही होगा। प्यासा जल चाहता है। भक्ति-पिपासु भगवान् भक्ति की गन्ध पाकर दौड़े आते हैं। आत्मा ही निरुपाधि प्रेमास्पद (प्रेमपात्र) है, वे तो आत्मा के आत्मा हैं, अतएव बड़े ही प्रियतम हैं। ब्रह्माजी ने कहा था-'हे प्रभो! सभी के हृदय का राग तुम्हें चाहता है। जब तुम्हें नहीं पाता, तो चोर बन जाता है। तब घर कारागार और मोह पैर की बेड़ी बन जाती है।'

''तावद्रागादयस्तेनास्तावत् कारागृहं गृहम्।
तावन्मोहोऽङ्घ्रिनिगड़ो यावत् कृष्ण न ते जनाः॥'' (भा०-१०/१४/३६)

''तत्र निरुपाधि प्रेमास्पदस्यात्मनोऽप्यात्मत्वेन रागस्य स्वाभाविक परमयोग्याश्रयः। अतस्तल्लक्षणनिज-स्वामिनमनुपलभ्यैव भ्रमन्नसौ जनानां शुभवासनारूपां त्वद् भजनसामग्रीं हरंश्चौर एव, ततस्तदनुवर्तिनोऽपि तादृशाः।'' (वैष्णवतोषणी टीका)। ''हे भगवन्! निरुपाधि प्रेमास्पद जो आत्मा है, तुम उसके भी आत्मा हो, इसलिये तुम्हीं राग के स्वाभाविक परम योग्य आश्रय-स्थल हो, कारण-प्रिय वस्तु के प्रति प्रेम स्वाभाविक होता है। जब हृदय का राग उस लक्षण से युक्त अपने आश्रय या स्वामी को नहीं पाता, तो वह चोर की तरह भगवद्भजन-सामग्री की चोरी करने लगता है। तब हृदय के लोभ मोह आदि भी उसी का अनुसरण करते हैं।'' हाय, ऐसी वस्तु को भूलकर नश्वर देह-दैहिकादि को लेकर मत्त हुआ रहता हूँ। साधक के प्राणों में यह आक्षेप जगना आवश्यक है। आत्मशुद्धि के लिये गुरुचरणाश्रय, वही चिरविस्मृत इष्ट वस्तु को स्मृतिपथ पर ले आता है।

विरह की मूर्ति रघुनाथ। इस विश्व में स्वामिनी को छोड़ और कोई उनका नहीं। ''अतिकदन-समुद्रे मज्जती हा कृपार्द्रे क्षणमपि मम राधे! नेत्रमानन्दय त्वम्''-'हा राधे! हा कृपामयी! दुःख-समुद्र में डूब-उतरा रहा

हूँ, एकबार क्षणभर को दर्शन देकर नेत्रों को आनन्दित करो। बिना देखे मरने की भी इच्छा नहीं होती, एकबार तुम्हारे चरणों के दर्शन कर मर सकूँ।' साधक के हृदय में भी इस प्रकार थोड़ी-बहुत आर्ति जगनी चाहिये। 'हा स्वामिनि! तुम्हारे चरणों में ही तो गुरुदेव ने समर्पित किया हूँ। विश्व के साथ मिलकर नहीं चलूँगा। स्वामिनी के मनोमत होऊँगा। तभी तो वे ग्रहण करेंगी?' आरति हो गई है। चारों ओर सखियाँ हैं, बीच में स्वामिनी। मणिजड़ित रत्नपर्यङ्क पर बैठी हैं। सखियों के साथ हास्य-परिहास कौतुक चल रहा है। साधारण कौतुक नहीं। ''निर्भर-नर्मगोष्ठीम्''-अतिशय कौतुक। एक सखी के साथ श्यामला आई हैं। देखते ही स्वामिनी कहती हैं- ''सखि, श्यामले! आओ, आओ, तुम्हारे साथ यह कौन है?'' श्यामला- 'मेरी एक नई सखी है। तुम्हारे साथ परिचय नहीं है। तुमसे मिलने की इसकी बड़ी इच्छा थी।' नई सखी को देखकर स्वामिनी मुग्ध हैं। विस्मित नेत्रों से देख रही हैं। कहती हैं-'आहा, कितनी सुन्दर है! श्यामला की सखी है, तो मेरी भी सखी है। तुम्हारा क्या नाम है? घर कहाँ है?' वह कहती है-'मैं नवीना हूँ। श्यामला से परिचय है। उसके साथ तुम्हें देखने आई हूँ। श्यामला के मुँह से तुम्हारे अतुलनीय रूप-गुण की बात सुनकर देखने की बड़ी इच्छा हुई।' नवीना के स्वर में कैसी सरसता है! स्वामिनी का हृदय द्रवीभूत है। कहती है-'गाना-बजाना जानती हो? नाचना जानती हो?' नवीना-'थोड़ा-थोड़ा जानती हूँ।''आहा! तुम्हार चेहरा कितना सुन्दर है। कैसी सरस मीठी हँसी है! बातें कितनी प्यारी हैं। आओ, आओ पास आओ।' कहकर स्वामिनी ने नवीना सखी को पास बिठाया। 'तुम्हें कहीं देखा है, ऐसा लगता है', स्वामिनी कहती हैं। तब नवीना ने गाना और नृत्य करना आरम्भ किया। आहा! कैसा अद्‌भुत नृत्य! कैसी मीठा गला! नेत्रों की कैसी भंगिमा! हाथों का कैसा संचालन! सखियाँ आनन्द में मूर्छित हैं। स्वामिनी बार-बार शाबासी दे रही हैं। उठकर जाकर प्रगाढ़ आलिंगन देती हैं। 'ओ माँ! यह क्या, यह तो श्याम हैं! श्यामले! तुम इतनी दुष्ट हो!' इस प्रकार खूब हास्य-परिहास चला। सखियाँ हँस-हँसकर लोटपोट हो रही हैं। अपूर्व कौतुक। बाद में श्याम घर चले गये। तुलसी स्वामिनी के विश्राम के लिये शय्या तैयार करने लगीं। इतनी निर्भर (तीव्र, प्रगाढ़) नर्म गोष्ठी (हास्यकौतुक पूर्ण परिवेश), किन्तु तुलसी सेवा की बाते नहीं भूलतीं। भक्ति का स्वरूप ही है सेवा। 'भज् इत्येष वै धातुः सेवायां परिकीर्तितः।' साधनभक्ति, भावभक्ति, प्रेमभक्ति सभी अवस्थाओं में सेवारस का आस्वादन। यह आस्वादन विश्व की सभी वस्तुओं को नीरस कर देता है। भुक्ति-मुक्ति सभी तुच्छ हो जाते हैं। विश्व में चाहना-पाना और कुछ भी नहीं रहता। चाहना है केवल 'तुम्हारे चरणतल में पड़ा रहूँगा और तुम्हारी सेवा करूँगा।' सेवारस की मूर्ति किंकरी। श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् हैं, किन्तु राधाकिंकरी के आगे पाने के लिये व्यग्र रहते हैं। विश्वपति उन लोगों के आगे हाथ फैलाते हैं। ऐसी महिमा, ऐसा भाग्य और कहीं नहीं। श्रीरूपपाद कहते हैं-

''करुणां मुहुरर्थये परं तब वृन्दावनचक्रवर्तिनि।
अपि केशिरिपोर्यथा भवेत्, स चटुप्रार्थनभाजनं जनः॥''

(चाटुपुष्पांजलि-२३)

''हे वृन्दावनचक्रवर्तिनि! श्रीराधे! तुम यही करुणा करो कि केशिरिपु-जैसा वीर.....वह मेरे आगे चाटु वचनों का विस्तार कर (चापलूसी कर) प्रार्थना करे।'' कामना की गन्ध रहने से राधादास्य नहीं मिलता। किंकरियों की निष्कामता है चरम! स्वप्न में भी किसी स्वार्थ की गन्ध नहीं। सेवारस की मूर्ति किंकरी।

स्वामिनी और श्याम को सेवारस में डुबोये रखती हैं। एकबार की बात। कुंज में युगल बैठे हैं। एक-दूसरे की ओर पीठ कर बैठै हैं। प्रणयमान। दोनों के मन में है-'मुझे पहले नहीं बोलना।' दोनों मिलन के अभाव में कष्ट पा रहे हैं, पर अपनी जिद के कारण मिल नहीं रहे। हठात् रूपमंजरी बोलीं-'तुम आँखों की कोरों से मुझसे क्या कह रहे हो, मैं तुम्हारे लिये स्वामिनी से अनुरोध नहीं कर सकती।' दोनों ने सोचा-'काम हो गया।' हँसकर बातें करने लगे। रूप ने एक मनगढ़न्त युक्ति द्वारा दोनों की अपूर्व सेवा की। 'तुम दोनों के सुख के लिये हम लोग सब कर सकती हैं।'

''परस्परमपश्यतोः प्रणयमानिनोर्वा कदा,
धृतोत्कलिकयोरपि स्वमभिरक्षतोराग्रहम्।
द्वयोः स्मितमुदंचये नुदसि किं मुकुन्दामुना,
दृगन्तनटनेन मामुपरमेत्यलीकोक्तिभिः॥''
(उत्कलिकावल्लरी-६३)

अभीष्ट वस्तु को शास्त्रों ने 'अधोक्षज' या इन्द्रियातीत कहा है। तो फिर भक्ति की सिद्धि कैसी होगी? इन्द्रियों द्वारा भगवान् की साक्षात् सेवा का नाम ही भक्ति है। ''हृषीकेण हृषीकेश-सेवनं भक्तिरच्यते'' (नारद पंचरात्र)। इसका उत्तर यह है-भक्ति-भावित इन्द्रियों द्वारा ग्राह्य! ''भक्तिरेवैनं नयति भक्तिरेवैनं दर्शयति भक्तिवशः पुरुषः भक्तिरेव भूयसी'' श्रुति ''परामदृश्यं दूरे पथि-पथि मुनीनां व्रजबधूदृशा दृश्यम्'' (कर्णामृतम्)- मुनिजन भी ध्यानपथ पर जिनका अन्वेषण करते घूमते हैं, फिर भी पकड़ नहीं पाते, वे ही अधोक्षज गोविन्द कितनी लालसा से व्रजबधुओं के नयनगोचर हो जाते हैं। अर्थात् व्रजबधुएं उनकी रूपमाधुरी देखते ही उन्हें प्रेम करेंगी और वे उन लोगों का मधुर संग प्राप्त करेंगे-इसी लालसा से वे उन लोगों के जल-आहरण आदि के स्थानों में यमुना के तट-तट पर घूमा करते हैं। भक्ति या सेवानिष्ठा की ऐसी भक्ति है। राधाकिंकरी की सेवानिष्ठा की तुलना नहीं। उन लोगों का तो सर्वस्व ही राधारानी की श्रीचरण-सेवा है। देह-दैहिकादि का प्रचण्ड आवेश लेकर ऐसी स्वामिनी को हम लोग कैसे मुँह दिखायेंगे? यह उच्छिष्ट जीवन उनके चरणों में समर्पित करने में लज्जा आती है। सेवा कर रहे हैं, सेव्य सुखी होते हैं, तभी तो कृतार्थता है। यदि उनकी अङ्ग-गन्ध की, उनकी अङ्गच्छटा की, उनके फेला-लव (अधरामृत कण) की थोड़ी सी भी अनुभूति नहीं होती, तो भजन क्या हुआ?

तुलसी स्वामिनी के निकट आईं। उनके विश्राम के लिये तुलसी ने विचित्र पलंग पर दुग्धफेन को लजाने वाली शय्या प्रस्तुत की है। 'स्वामिनि! बहुत देर हो गई, चलो, थोड़ा विश्राम करो।' कैसी ममता है! कितने प्यार से भरी है दासी। सखियाँ कहती हैं-'तुलसी की तरह प्यार करना हम लोग नहीं जानतीं। तुम्हारे विश्राम की बात ही भूल गई थीं। जाओ सखि! थोड़ा विश्राम कर लो।' तुलसी ने हाथ पकड़कर स्वामिनि को ले जाकर शय्या पर लिटा दिया। नीली बत्ती जल रही है। वही सादृश्य है, सो नेत्रों को शान्ति मिलती है। तुलसी की रची केलिशय्या पर लेटकर स्वामिनी सुखी हैं। केलितल्प कुंज में होता है, यहाँ जावट में केलिशय्या क्यों? तन्द्रा में स्वामिनी देख रही हैं-श्यामसुन्दर आये है। स्वप्न-विलास। 'स्वपनेन-नतु निन्द्रया।' स्वप्न में रूपदर्शन कर स्वामिनी मुग्ध हैं। 'रूपे गुणे रससिन्धु, मुखच्छटाजिनि इन्दु, मालतीर माला गले दोले।'

सम्वाहयिष्यति पदौ तव किङ्करीयं, हा रूपमञ्जरिरसौ च कराम्बुजे द्वे।
यस्मिन् मनोज्ञहृदये सदयेऽनयोः किं, श्रीमान् भविष्यतितरां शुभवासरः सः?५५॥

अन्वय-मनोज्ञहृदये! (मनोज्ञं परकातर्यासहनेन मनोहरं हृदयं मानसं यस्याः हे तथाविधे!) सदये! यस्मिन् (वासरे) इयं किंकरी तव पदौ (चरणौ) असौ रूपमंजरिः च द्वे कराम्बुजे सम्वाहयिष्यति हा! अनयोः किं सः श्रीमान् शुभवासरः भविष्यतितराम्?५५॥

अनुवाद-हे मनोज्ञ हृदये श्रीराधिके! हे कृपामयि! जिस दिन यह किंकरी तुम्हारे पाद-पद्मों का, और श्रीरूपमंजरी तुम्हारे कर-कमलों का सम्वाहन करेंगी-हम दोनों का वह सौभाग्यशाली शुभ दिन क्या विशेषरूप से समागत होगा?५५॥

श्रीपादपद्म संवाहन

परिमलकणा व्याख्या-श्रीपाद रघुनाथ विरह-व्याकुल हैं। अति निविड़ है स्वरूपावेश। स्वामिनीजी के श्रीचरणों को छोड़ और कहीं लक्ष्य नहीं। श्रीपाद ने कहा है-'यन्माधुरी-दिव्य-सुधारसाब्धेः, स्मृते कणेनाप्यतिलोलितात्मा'' (व्रजविलासस्तव)-''जिनका माधुर्य सुदिव्य अमृतरस का पारावार है, उनके एक कणा की स्मृति मात्र से ही मैं अत्यन्त लुब्ध हो उठा हूँ।'' आचार्यपादगण हम लोगों के आदर्श हैं। इनके आनुगत्य में भजनजीवन गठित करना होगा। प्रकृत लोभ लुब्धव्यक्ति की वस्तु की प्राप्ति से पूर्व तक किसी भी

स्वप्नावेश में लीला-भोग करते हुए उनकी कैसी अपूर्व शयन-भंगिमा है! कैसा मधुर चरण-विन्यास! स्वप्न में ही बातें कर रही हैं। मुख पर कैसी मधुर हँसी छिटकी है! स्वामिनी के प्रेम के आकर्षण से श्याम किसी भी अवस्था को नहीं छोड़ते। पीछे जब वृन्दावन में मिलन होगा, श्याम स्वामिनी से कहेंगे-'तुमने, मुझे स्वप्न में देखा था? मैंने भी देखा था।' धन्य हैं श्याम, धन्य हमारी स्वामिनी।

तुलसी देख रही हैं-उनकी रची शय्या को सम्यक् रूप से विभूषित कर स्वामिनी अँगड़ाई ले रही हैं। मानो माधुर्य निचूड़-निचूड़ कर छिटक रहा है। तुलसी का चित्त उसी माधुर्यरस में डूबा है। सहसा स्फूर्ति में विराम आ गया। कुण्डतट पर पड़े श्रीपाद आर्तनाद करते हुए प्रार्थना करने लगे-

''ललितादि सखीसने, प्रिय नर्म आलापने,
जबे तुमि हइबे मगन।
केलिविलासेर तरे, बिछाइबो निज करे,
मनोहर कुसुम-शयन॥
ताहाते शयन करि, स्वपने श्यामेरे हेरि,
प्रिय-संगे होबे विलसित।
तोमार अङ्ग माधुरी, हेरिबो नयन भरि,
केलितल्प होइबे भूषित॥''५४॥

प्रकार स्थिर नहीं होने देता। दूसरे शब्दों में जो क्षणप्रभा (बिजली) की तरह चित्त में उदित होकर अगले ही क्षण अन्य वस्तु के लिये हड़बड़ी मचाता है, वह यथार्थ लोभ नहीं कहा जा सकता। गोस्वामिपादगण के आनुगत्य में भजन करने से उनके हृदय के विशाल लोभ की एक कणिका साधक के चित्त में भी संक्रमित होगी। श्रीमन्महाप्रभु के परिकरों का चरित्र कितना मधुर है! क्या गृहस्थ, क्या त्यागी- सभी विषय-आसक्ति से शून्य! विषय-वैराग्य और अनुभवयुक्त भक्तियोग के वितरण के लिये ही विश्व में उनका कल्याण अवतार है। आज भजन करेंगे, कुछ दिन पश्चात् अनुभव होगा, ऐसा नहीं। जब भजन, तभी अनुभव, तभी विषय-वैराग्य। भोजन के प्रत्येक ग्रास से तुष्टि-पुष्टि और क्षुधा-निवृत्ति, ठीक उसी तरह। देहावेश के रहने से ही तो हम समझ नहीं पा रहे है कि हम राधाकिंकरी हैं। माया का सम्पर्क ही अच्छा लगता है।

''देहे बैसे रिपुगण, जतेक इन्द्रियगण,
केहो कारो बाध्य नाहि हय।
शुनिले ना शुने कान, जानिले ना जाने प्राण,
दड़ाइते ना पारे निश्चय॥'' (प्रे० भ० च०)

''ऊँट की तरह विषय-कण्टक चबाते-चबाते मुँह क्षत-विक्षत है, फिर भी भक्त-कोकिल की तरह प्रेमाद्र-मुकुल (कलियाँ) नहीं खाऊँगा। माया के प्रभाव से जलमर रहा हूँ, फिर भी भक्ति रसास्वादन नहीं करूँगा।' महाजन शिक्षा दे रहे हैं-

''विषय गरलमय, ताते मानो सुखचय,
सेइ सुख दु:ख करि मानो।
गोविन्द-विषय-रस, संग करो ताँर दास,
प्रेमभक्ति सत्य करि जानो॥'' (वही)

उनकी सेवा ही सुख हैं, सेवा का अभाव ही दु:ख है। ''सखीगण चारिपाशे, सेवा करि अभिलाषें, से सेवा परमसुख धरे'' (वही)। भगवान् से प्रेम करने पर वही प्रेम प्रसादी होकर सारे जगत् में छिटक जायेगा। तभी होगा यथार्थ विश्वप्रेम का अनुभव। तब चित्जगत् मधुर, जड़-जगत् मधुर, मधुर कृष्ण और भी मधुर। भीतर-बाहर मधुरता से भर उठेंगे।

स्वामिनीजी उत्तम शय्या पर लेटी हैं। श्याम-वर्ण ओढ़नी शरीर पर धारण किये हैं। श्यामवर्ण मात्र में स्वामिनी की अत्यधिक प्रीति है। लेटी-लेटी श्याम को स्वप्न में देख रही हैं। श्याम-माधुर्य से भावमयी का भीतर-बाहर उल्लसित है! श्रीरूप और तुलसी दोनों ही स्वामिनी की उस समय की शोभा देख रही हैं और श्रीअङ्ग-सेवा कर रही हैं। दोनों का कैसा निरुपम सौहार्द्य है। जैसा यहाँ, वैसा वहाँ भी। श्रीरघुनाथ ने विशाखानन्दद स्तव के अन्त में अपना परिचय देते हुए लिखा है-''श्रीमद्रूपपदाम्भोज-धूलीमात्रैक-सेविना। केनचिद्ग्रथिता- पद्यैर्मालाघ्रेया तदाश्रयै:।'''' श्रीमद् रूप गोस्वामिपाद के पादपद्म-पराग के सेवन करने वाले मुझ-जैसे किसी व्यक्ति ने पद्य द्वारा यह माला गूँथी है, श्रीरूपगोस्वामी के पादपद्माश्रित श्रीराधाकृष्ण-भक्त इसका आघ्राण लें।'' श्रीरूप का ललित-माधव नाटक पढ़कर विरह-मूर्ति श्रीरघुनाथ राधा-विरह की महा-स्मृति में अत्यन्त व्याकुल हो उठे हैं। प्राण अब निकले, अब निकले। तब श्रीरूप उनकी प्राणरक्षा के लिये

'दानकेलिकौमुदी' की रचना कर मिलनरस का आस्वादन देकर उन्हें सान्त्वना देते हैं और दानकेलिकौमुदी के अन्त में श्रीरघुनाथ के आशा-तरु के सफलित होने के लिये श्रीगोविन्दचरणों में प्रार्थना करते हैं।

श्रीरूप और तुलसी शय्या पर बैठकर स्वामिनी की सेवा कर रही हैं। कोई संकोच नहीं। सख्यरस-मिश्रित दास्य। सखी होकर भी दासी, दास्यरस की पात्र। सम्बोधन कर रही हैं-'हे मनोज्ञहृदये!' ''मनः जानातीति मनोज्ञ''-जो मन जानती हैं, वे ही मनोज्ञ। मन जानकर सेवा-दान करती हैं। अथवा, मनोज्ञ का अर्थ है सुन्दरी। असीम सौन्दर्य से गृह, शय्या आदि और किंकरी के प्राण उज्ज्वल हो रहे हैं! कान्ति की छटा से श्यामसुन्दर को गौर बना दिया है। महाभाव के सारांश से पूर्ण मूर्ति! विश्व की किसी भी वस्तु से तुलना नहीं हो सकती। कृष्णप्रेममयी श्रीराधा का माधुर्य भाव-भाषा-छन्द से परे है। उनका सौन्दर्य है श्रीकृष्णविलास में। वह निरूपम सौन्दर्य समस्त सौन्दर्यों का सार है। यदि विशुद्ध सत्त्व का हृदय लेकर उस रूप की साधना कर सकें, तो स्वयं प्रकाश उस रूप की एक बूँद का अनुभव संभव है। चन्द्र से बढ़कर मुख, पद्म से बढ़कर चक्षु तिलपुष्प से बढ़कर नासिका-ऐसा वर्णन वहाँ निरर्थक है। महाभाव को भाव से ही समझना होता है, अन्य उपाय नहीं। जो अमृत के सिन्धु में गिर जाता है, वही अमृतमय हो जाता है-उसी प्रकार महाभावमय विग्रह के वस्त्र-भूषण-अनुलेपन आदि सभी भावमय हैं। महाजन आस्वादन करते हैं। हम लोग उनका उच्छिष्ट खाने वाले हैं। श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामिपाद ने लिखा है-

''राधाप्रति कृष्णस्नेह सुगन्धि उद्धर्तन। ताते अति सुगन्धि देह उज्ज्वल वरण॥
कारुण्यामृत - धाराय स्नान प्रथम। तारुण्यामृत - धाराय स्नान मध्यम॥
लावण्यामृत - धाराय तदुपरि स्नान। निजलज्जा-श्याम-पट्टशाटी परिधान॥
कृष्ण-अनुराग द्वितीय अरुण वसन। प्रणय-मान-कंचुलिकाय वक्ष आच्छादन॥
सौन्दर्य-कुंकुम, सखीप्रणय चन्दन। स्मित-कान्तिकर्पूर-तिने अङ्ग-विलेपन॥
कृष्णेर उज्ज्वलरस मृगमदभर। सेइ मृगमदे विचित्रित कलेवर॥
प्रच्छन्न-मान-वाम्य धम्मिल्य विन्यास। धीराधीरात्मक गुण अगे पटवास॥
राग ताम्बूलरागे अधर उज्ज्वल। प्रेमकौटिल्य नेत्रयुगले कज्जल॥
सूदीप्त सात्त्विकभाव-हर्षादि संचारी। एइ सब भाव-भूषण सब अङ्गे भरि॥
किलकिंचितादि भाव-विशंति-भूषित। गुणश्रेणी पुष्पमाला सर्वांगे पूरित॥
सौभाग्यतिलक चारुललाटे उज्ज्वल। प्रेमवैचित्त्य रत्न, हृदये तरल॥
मध्यवयस्थिति सखीस्कन्धे करन्यास। कृष्णलीला-मनोवृत्ति सखी आश-पाश॥
निजांग-सौरभालये गर्व - पर्यङ्क। ताते बसि आछे सदा चिन्ते कृष्णसंग॥
कृष्णनाम-गुण-यश अवतंस काने। कृष्णनाम-गुण-यशः प्रवाह वचने॥
कृष्णके कराय श्यामरस-मधुपान। निरन्तर पूर्ण करे कृष्णेर सर्वकाम॥
कृष्णेर विशुद्ध प्रेम रत्नेर आकर। अनुपम-गुणगण-पूर्ण कलेवर॥''

(चै० च० मध्य०-परि० ८)

भावुक भक्तवृन्द! प्रेम की मूर्ति का यही परिचय है। तभी 'मनोज्ञहृदये' सम्बोधन की सार्थकता है। तुलसी की रची शय्या पर स्वामिनी ने शयन किया है-मानो क्षीरसागर में राजहंसी! स्वप्न के भीतर स्वप्न-विलास।

तवोद्गीर्णं भोज्यं सुमुखि किल कल्लोलसलिलं
तथा पादाम्भोजामृतमिह मया भक्तिलतया।
अयि प्रेम्णा सार्द्धं प्रणयिजनवर्गैर्बहुविधै-
रहो लब्धव्यं किं प्रचुरतर-भाग्योदयबलैः?५६॥

अन्वय-सुमुखि! (शोभनं निसर्ग-सुगन्धिमुखं यस्या हे तथाविधे!) अहो! इह (अनुभूतस्थले) भक्तिलतया मया किं बहुविधैः प्रणयिजनवर्गैः प्रचुरतरभाग्योदयबलैः तव उद्गीर्णं भोज्यं कल्लोलसलिलं तथा पादाम्भोजामृतं किल (सम्भावनायां) प्रेम्णा लब्धव्यम्?५६॥

अनुवाद-हे सुमुखि! क्या मैं प्रचुरतर भाग्योदय के बल पर प्रणयीवर्ग के साथ तुम्हारा उद्गीर्ण भोज्य, कल्लोल सलिल और पादपद्म-प्रक्षालन जल भक्तिलता की तरह प्रेमपूर्वक प्राप्त करूँगा?५६॥

श्रीराधा की भक्तिलता

परिमलकणा व्याख्या-श्रीतुलसी ने स्वामिनी के श्रीचरण और श्रीरूप ने दोनों हाथ संवाहन किये हैं।

बात कर रही हैं, हँस रही हैं, करवट बदल रही हैं। श्रीरूप की ही चरणसेवा है। फिर भी तुलसी के प्रति उनका इतना सौहार्द्य है-उन्हें श्रीचरण-संवाहन का भार देकर स्वयं (श्रीरूपमंजरी) करकमल संवाहन कर रही हैं। स्वामिनी स्वयं तुलसी की गोद में चरण रख देती हैं। 'भक्तानां हृत्सरोजे मधुररससुधास्यन्दिपादारविन्दा' (राधारससुधानिधि-१२७)-'जो भक्तों के हृदयकमल में मधुररस-सुधास्रावी (चुआने-बरसाने वाले) पदारविन्दों से युक्त हैं', उन्हीं पाद्पद्मों को वक्ष पर रखकर तुलसी कृतार्थ हैं। तुलसी के प्रति स्वामिनी की कितनी करुणा! ''मनोज्ञं परकात्रर्यासहनेन मनोहरं हृदयं मानसं स्याः सा''- तुलसी का मन जानकर स्वामिनी ने अपने चरण उनकी गोद में उठाकर रख दिये हैं। ममता की कैसी सघनता है! 'मेरी रूप' 'मेरी तुलसी', इसी ने किंकरी को सभी प्रकार से अपना कर लिया है, यह बात सुनकर ही कितना आनन्द आता है, फिर जिन्हें इसकी सत्य ही प्राप्ति हुई है, उन्हें कितना आनन्द होगा, कौन कहे? ऐसी करुणामयी स्वामिनी ने तुलसी की गोद में चरण रख दिये हैं। इसकी उपलब्धि के कारण ही 'सदये' सम्बोधन किया है। स्वामिनी के प्रति अङ्ग में कितनी शोभा है! स्वप्न में रसराज को देख रही हैं। स्वामिनी के स्वप्नमय श्याम। स्वप्न के भीतर अपूर्व आस्वादन। उस आस्वादन की रसमाधुरी अङ्ग-प्रत्यंग में फूट रही है! भाग्यवती किंकरी रस-सरोवर में तैर रही हैं। सहसा स्फूर्ति में विराम आ जाता है। हाहाकार और प्रार्थना!

''एमन सुदिन हाय! कबे हबे मोर।
कबे पाद-सम्वाहने, नियोजिबे दासीजने,
आनन्दे बहिबे प्रेम - लोर॥
श्रीरूपमंजरी सइ, श्रीकरकमल दुइ,
सम्वाहन करिबे हरषे।
मनोज्ञहृदये अयि! कबे राधे! कृपामयि!
आनि दिबे से शुभ दिवसे॥''५५॥

स्वामिनी विचित्र पलंग पर निद्रित हैं। स्फुरण-विराम में हाहाकार करने लगे थे। रघुनाथ ने आर्ति से भरकर स्वामिनी के चरणों में हृदय की वेदना जताई है। पुनः स्फूर्ति हुई है। स्फुरण में स्वयं की कोई चेष्टा नहीं। ''भक्तिमृष्टचित्तवृत्तिषु, स्वतएव स्फुरितेषु''-हृदय योग्य होने पर लीलाप्रवाह स्वयं ही हृदय में उदित होता है। लीला का ही कर्तृत्व है, स्मरणकर्ता का कोई कर्तृत्व नहीं। गुणमय अन्तःकरण में स्वच्छन्दभाव से लीला का स्फुरण नहीं होता। तमोगुण, रजोगुण-यहाँ तक कि सत्त्वगुण भी स्मरण का बाधक है। भक्ति साधक के अन्तःकरण को क्रमशः गुणातीत बनाती है। जड़ीय अहंकार-ग्रन्थि को खोलकर भगवद्दास-अभिमान से चित्त को भर देती है।

''यत्पादपंकजपलाशविलासभक्त्या कर्माशयं ग्रथितमुद्ग्रथयन्ति सन्तः।
तद्वन्न रिक्तमतयो यतयो निरुद्धस्रोतोगणास्तमरणं भज वासुदेवम्॥''

(भा०-४/२२/३९)

''जिनके पादपद्मों के अंगुलीदलों की कान्ति के स्मरणमात्र से कर्मों द्वारा बनी अहंकार-रूपी हृदयग्रन्थि को जिस प्रकार भक्तजन अनायास छिन्न कर सकते हैं, उस प्रकार विषय-निवृत्त संयतइन्द्रिय यतिजन नहीं कर सकते। अतएव शरणागतवत्सल श्रीवासुदेव का भजन करो।'' भक्ति के माधुर्य से भक्त का चित्त-मन अपहृत होता है (भक्ति का माधुर्य भक्त का चित्त-मन हर लेता है)। तब भूलना चाहे, तब भी (भगवान् को) नहीं भूल सकता। जिन्हें कुछ आस्वादन मिल गया है, वे ही इस बात को समझेंगे। माया से मन रूखा होता है। अभीष्ट के चरणों में रहने से मन की निर्मलता, कोमलता और सरसता समझ में आती है। ''धौतात्मा पुरुषः कृष्णपादमूलं न मुंचति'' (भा०-२/८/५)। मुझ-जैसे जीव की इसके ठीक विपरीत अवस्था। संसार को भूलना चाहे, तो भी नहीं भूल सके। भावपूत अन्तःकरण में पवित्रता आती है। राधाकिंकरी-भाव वाले साधक के प्राणों में कैसी कोमलता (होती है)! कितना मधुमय उन लोगों का हृदय!

''राधाकृष्ण-सेवन, एकान्त करिया मन, चरण-कमल बलि जाँउ।
दोंहार नाम-गुण शुनि, भक्तमुखे पुनि-पुनि, परम आनन्द सुख पाँउ॥
हेम-गौरी तनु-राइ, आँखि दरशन चाइ, रोदन करिबो अभिलाष।
जलधर ढरढर, अङ्ग अति मनोहर, रूपे भुवन परकाश॥
सखीगण चारिपाशे, सेवा करि अभिलाषे, से सेवा परम सुख धरे।
एइ मन तनु मोर, एइ रसे सदा भोर, नरोत्तम सदाइ विहरे॥'' (प्रे० भ० च०)

चित्त-मन अमृतसागर में डूबकर मानो अमृतमय हो गये हैं। श्रीमन्महाप्रभु की विशेष कृपा से रघुनाथ डूबे हैं। आत्मा में राधा-किंकरीत्व का पूर्णतम अभिमान है। स्फुरण प्राप्त हो गया है। स्वामिनी निद्रित हैं। अब दासियाँ भोजन करेंगी। स्वामिनी का भोजन-अवशेष खायेंगी। क्या सौभाग्य! कुल्लों का (राधारानी का कुल्ला किया) जल पीयेंगी; चरणकमल धोये हैं, वह जल रखा है-उसे पीयेंगी। स्वामिनी खाते-खाते दासी का मन जानकर उसकी ओर देखकर करुणावश अपना चबाये भोज्य पदार्थ थोड़े-थोड़े छोड़ देती हैं। यही उद्गीर्ण भोज्य! सम्बोधन है 'सुमुखि!' मानो 'अच्छा नहीं बना' इस भंगिमा से डाल देती हैं। कैसा ममत्व है! करुणामूला (जिसका आधार करुणा है, जिसका गठन ही करुणा को लेकर है) वह भंगिमा किंकरी को कितनी अच्छी

लगती है, इसीलिये 'सुमुखि'। श्रीमुख के सुवास से कितना सुवासित है वह उद्‌गीर्ण भोज्य! किंकरी जानती हैं। तभी सम्बोधन किया है 'सुमुखि'। दासियाँ वही उद्‌गीर्ण भोज्य खायेंगी। कुल्ले का जल और चरण-प्रक्षालन का जल पीयेंगी। यह सौभाग्य सखियों को भी दुर्लभ है। प्रणय मानो यहाँ दासियों के रूप में उपस्थित है और ये दासियाँ अपूर्व अमृत को बाँटकर खा रही हैं। जो परिवेशन कर रही हैं, उन्हें भी खिलाती जा रही हैं। साधक को भी अपने स्मरण में नित्य किंकरियों की प्रसाद-कणिका पानी होगी। राधा-किंकरीत्व का अभिमान चाहिये, अन्यथा इसके माधुर्य की उपलब्धि नहीं होगी। क्षणभंगुर देह को लेकर कितनी आपाधापी मौजमस्ती कर रहे हैं। देहावेश ही अनर्थ है, मन को अन्य दिशा में सरका देता है। इसीलिये साधक में यह संकल्प जगना चाहिये-

''आन कथा न बलिबो, आन कथा ना शुनिबो,
सकलि करिबो परमार्थ।
प्रार्थना करिबो सदा लालसा अभीष्ट कथा,
इहा बिना सकलि अनर्थ॥'' (प्रे० भ० च०)

थोड़ी अनुभूति प्राप्त करने के लिये प्राण रोने चाहिये। मेरी ऐसी दुरावस्था, उत्तम जानकर भी ग्रहण नहीं कर सका। शरणागत हुए बिना पथ पर नहीं मिलता। कोई-कोई 'उद्‌गीर्ण भोज्य' का अर्थ चर्बित ताम्बूल बताते हैं। स्वामिनी का चर्बित ताम्बूल दासियाँ बाँटकर खाती हैं। करुणामयी स्वामिनी किस-किस प्रकार से किंकरियों पर करुणा करती हैं। श्रीरूपगोस्वामिपाद ने लिखा है-

''आस्ये देव्याः कथमपि मुदा न्यस्तमास्यात्त्वयेश,
क्षिप्तं पर्णे प्रणयजनिताद्देवि वाम्यात्त्वयाग्रे।
आकूतज्ञस्तदतिनिभृतं चर्वितं खर्विताङ्ग,-
स्ताम्बूलीयं रसयति जनः फुल्लरोमा कदायम्?''
(उत्कलिकावल्लरी-६२)

श्रीरूपमंजरी ने कुंज में युगल को मिलाया है। इसके लिये युगल किंकरी रूप पर अतिशय प्रसन्न हैं। कुछ पुरस्कार देंगे। दासी के योग्य पुरस्कार देना होगा। श्याम ने स्वामिनी का मुँह पकड़कर चर्वित ताम्बूल उनके मुँह में रख दिया। स्वामिनी ने भंगिमा के साथ 'तुम्हारा जूठा नहीं खाऊँगी' कहकर दासी की ओर देखकर वह ताम्बूल एक पात्र में डाल दिया। अशेष करुणा की पात्र किंकरी इस रस-पुरस्कार से कृतार्थ हुई! साधक को भी लीला-स्मरण के समय अपने प्रति स्वामिनी के स्नेह-करुणा का आस्वादन पाना होगा। ध्यान मानो मूर्त हो जाता है। स्वामिनी की स्मृति सर्वोपरि आनन्दमय है। जगत् का सभी कुछ दुःखदायक है। भक्त-कण्ठ की कातर प्रार्थना रहती है-'मुझे संसार में और डाले मत रखो। अब तो ''तुया पादपद्‌म-पाशे करो अनुचरी।'' जगत् की आवर्जना (कूड़े-कचरे) में और कब तक पड़ा रहूँगा? स्वामिनी की पदनखज्योति में माया को भूल जाऊँगा।' सोने का कटोरा है। दासी आचमन करा रही हैं, स्वामिनी कुल्ला कर रही हैं। वही जल कटोरे में रखा है। स्वामिनी कहती हैं-'पैर धुला दे।' चरण-प्रक्षालन का जल पात्र में है। अपना परिचय दे रही हैं-'मैं तुम्हारी भक्तिलता हूँ। तुम्हारा अधरामृत, चरणामृत छोड़ और कुछ नहीं लूँगी। भोज्य-पेय सब यही है। ⁎

⁎ यह बात प्रसिद्ध है कि कोई-कोई लता उच्छिष्ट जल से और पग-शौचादि के जल से ही अधिक पुष्ट होती है।

भोजनावसरे देवि स्नेहेन स्वमुखाम्बुजात्।
मह्यं त्वद्गतचित्तायै किं सुधास्त्वं प्रदास्यसि?५७॥

अन्वय-देवि! भोजनावसरे (भोजन-समये) त्वं किं त्वद्गतचित्तायै मह्यं (त्वत् सुखसाधनाय गतं मनो यस्या स्तस्यै) स्नेहेन (हेतुना) स्वमुखाम्बुजात् सुधाः (इष्टद्रव्यानि) प्रदास्यसि?५७॥

अनुवाद-हे देवि! श्रीराधिके! तुम क्या भोजन के समय त्वद्गतचित्त मुझे स्नेहवश अपने मुखपद्म से मेरा अभिलषित अधरामृत दोगी?५७॥

अभिलषित सुधा

परिमलकणा व्याख्या-श्रीपाद दासगोस्वामी कुण्डतट पर पड़े आर्ति से भरकर विलाप कर रहे हैं। हा स्वामिनि! आशा-प्रदीप जलाये अति कष्ट से समय बिता रहा हूँ। तुम दया नहीं करोगी, तो इस व्रजवास से और इस विरह-तापित प्राण के रखने से क्या लाभ? कृष्ण को पाकर ही क्या होगा!' वस्तुतः राधारानी की करुणा के बिना कभी कृष्ण-प्राप्ति नहीं होती। ''बिना राधा-प्रसादेन कृष्णप्राप्तिर्न जायते।''

''राधिका-चरण-रेणु, भूषण करिया तनु, अनायासे पाबे गिरिधारी।
राधिकाचरणाश्रय, जे करे से महाशय, तारे मुइ जाइ बलिहारी॥
जय जय राधानाम, वृन्दावन जार धाम, कृष्ण-सुख-विलासेर निधि।
हेनो राधा-गुण-गान, ना शुनिलो मोर कान, वंचित करिलो मोरे बिधि॥
तार भक्त संग सदा, रसलीला प्रेमकथा, जे करे से पाय घनश्याम।
इहाते विमुख जेइ, तार कभु सिद्धि नाइ, ना शुनिये जेनो तार नाम॥
कृष्णनाम गाने भाइ, राधिका-चरण पाइ, राधानाम-गाने कृष्णचन्द्र।
संक्षेपे कहिनु कथा, घुचाओ मनेर व्यथा, दुःखमय अन्यकथा धन्द॥'' (प्रे०भ०च०)

तुम्हारी सेविका तुम्हारे सम्बन्ध को छोड़ और कुछ नहीं चाहती।' सहसा स्फूर्ति में विराम। वेदनार्त प्राणों से प्रार्थना-

''हे सुमुखि! कहो कबे, हेनो भाग्योदय हबे,
बंधुजन सहित मिलिया।
ए ब्रजमण्डल-भूमे,- एइ प्रेमशान्तिधामे,
भक्तिलताप्रय नत हैया॥
उद्गीर्ण भोज्य तव, लभिबो ताहार लव,
तव पाद - प्रक्षालन जल।
तव कुल्लोल सलिल, सुधाधारा अनर्गल,
(प्रेमे) पान करि हइबो सफल॥''५६॥

श्रीमन्महाप्रभु द्वारा उपदिष्ट 'हरे कृष्णेति' बत्तीस अक्षरों वाला तारकब्रह्म नाम ही आठ जोड़ा आह्वानमूलक राधाकृष्ण नाम है। युगलोपासक के लिये अभीष्ट-प्राप्ति का अथवा निकुंज-मन्दिर में राधा-किंकरी रूप से युगल की प्रेमसेवा-प्राप्ति का परम उपाय है-यही 'हरे कृष्णेति' सम्बोधनात्मक नामसंकीर्तन।

''नामसंकीर्तन प्रोक्तं कृष्णस्य प्रेमसम्पदि।
बलिष्ठं साधनं श्रेष्ठं परमाकर्षमंत्रवत्॥'' (वृ० भ०-२/३/१६४)

प्रेमसम्पत्ति प्राप्त करने का अति अन्तरंग साधन होने से श्रीकृष्ण नामसंकीर्तन अति बलिष्ठ और श्रेष्ठ साधनांग है। यह महामन्त्र की तरह भगवान् को आकर्षित करने वाला है। सरल-प्राण होकर व्याकुलचित्त से श्रीकृष्ण का नामसंकीर्तन करने से भक्त के आह्वान पर भगवान् उसके आगे स्वयं ही आविर्भूत हो जाते हैं। श्रीनामसंकीर्तन सिद्धमन्त्र की तरह दुर्लभतर वस्तु को दूर से आकर्षित कर लाता है।

''तदेव मन्यते भक्तेः फलं तद्रसिकैर्जनैः।
भगवत्-प्रेमसम्पत्तौ सदैवाव्यभिचारतः॥'' (वही)

इसीलिये भक्तिरसिकों ने नामसंकीर्तन को ही साध्य के रूप में निश्चित किया है। यदि कोई कहे कि सभी प्रकार की साधनभक्ति का साध्य या फल तो प्रेम है, नामसंकीर्तन तो उसका साधन है; साध्य कैसे? तो इसका उत्तर यह है-सही है, नामसंकीर्तन ही उस प्रेमसम्पत्ति को प्रकट करता है। नामसंकीर्तन से प्रेमोदय अवश्यम्भावी है, इसलिये उपचार रूप से नामसंकीर्तन को ही भक्ति का फल माना गया है। और इस नियम का कभी व्यभिचार (अतिक्रम) नहीं होता। तभी साधुजन इस नामसंकीर्तन को ही भक्ति का फल या साध्य कहते हैं। नामसंकीर्तन के साथ स्मरणांग की साधना कर साधक शीघ्र ही युगलमाधुरी आस्वादन का सौभाग्य प्राप्त करता है।

श्रीराधामाधुरी ने श्रीपाद के चित्त में विचित्र रस की अनुभूति जगाई है। परम रमणीय वस्तु देखकर दर्शक के मन में आनन्द और विस्मय उत्पन्न होते हैं। उससे चित्त का संकोच दूर होता है और चित्त में स्फारता (विस्तार, प्रचुरता) या चमत्कारिता आती है। अलंकारशास्त्र में इस चमत्कारित्व को ही रस का प्राण कहा गया है। ''इसे सारश्चमत्कारो यं बिना न रसो रस''। एक ओर विश्वविमोहन कृष्ण को भी मोहने वाली राधामधुरिमा, श्रीमत् दूसरी ओर दासगोस्वामिपाद का विपुल राधानुराग-दोनों ने मिलकर श्रीपाद के चित्त में अद्भुत चमत्कारिता जगा कर श्रीमती की साक्षात् सेवा-प्राप्ति की प्यास से उन्हें अधीर बना दिया है! श्रीमत् रूपगोस्वामिपाद ने अनुराग के लक्षण बताते हुए लिखा है-

''सदानुभूतमपि यः कुर्यान्नवनवं प्रियम्।
रागो भवन्नवनवः सोऽनुराग इतीर्यते॥'' (उ० नी० स्थायी-१४६)

जो राग सर्वदा तृष्णा की अधिकता के कारण अनुभूत प्रियजन का प्रतिक्षण नये-नये रूप में अनुभव कराता है और राग भी नया-नया होता है, उसे अनुराग करते हैं। इस तृष्णामय अनुराग की सुस्पष्ट छवि श्रीपाद के विलापयुक्त प्रत्येक श्लोक में देखी जाती है। अप्रकट होने से पूर्व की अवस्था में विरहविधुर श्रीपाद का यह विलाप अत्यन्त मर्मस्पर्शी, भक्तों का हृदय-विदारक है।

स्वरूपाविष्ट श्रीपाद ने स्फूर्ति में तुलसीमंजरी के रूप में स्वरचित शय्या पर स्वामिनी को लिटाकर उनके पैर दबाने का सौभाग्य प्राप्त किया है। स्वामिनी के निद्रित होने पर समप्राण किंकरियों के साथ श्रीमती का अधरामृत खाया है और चरणामृत, कुल्ले का जल पिया है। इस श्लोक में किसी और अनिर्वचनीय कृपा की कामना है। स्फुरण में सिद्धस्वरूप में प्रसाद-प्राप्ति, स्फूर्ति के विराम में प्रार्थना। भोजन करते-करते किसी अवसर पर अर्थात् गुप्तरूप में परिवेशन के समय तुलसी को पास बुलाकर स्नेहवश अपने मुखकमल से अधरामृत दे रही हैं। कैसी ममता है! स्नेहमयी किंकरी राधाचरणों को छोड़, उनका सुख छोड़ विश्व में और कुछ भी तो नहीं जानती। तभी इतनी करुणा। तुलसी राधागत प्राण जो हैं! दासी का मन जानकर दे रही हैं। कितना प्रेम करती हैं, कितना स्नेह-एकबार सोचकर देखना चाहिये। किसी-किसी पुस्तक में 'तद्गतचित्तायै' पढ़ने को मिलता है, अर्थात् ''तस्या मुखाम्बुजस्थ सुधायां गतः मग्नं चित्तं यस्या या''-स्वामिनी भोजन कर रही हैं, किंकरी तुलसी का मन वहीं है, स्वामिनी के मुखकमल पर स्थित सुधा में! यदि किंचित् मिल जाय! स्वामिनी उसका मन जानकर गुप्तरूप से पास बुलाकर देती हैं। सेवा कर रही हूँ, पास में हूँ, हो सके तो स्वामिनी अपने वक्ष के पास खींचकर चूम लें, चर्बित ताम्बूल दे दें! कितनी करुणा। 'हा प्रेममयि, करुणामयि राधे! तुम्हारी ऐसी कृपाकण को पाकर कब धन्य होऊँगा? उस शुभ दिन की अनन्त प्रतीक्षा लिये बैठा हूँ।' साधक के प्राणों में भी इस अनिर्वचनीय प्रसाद के लिये किंचित् लोभ जगना चाहिये। रागभक्ति लोभमूला है। लोभ कभी भी योग्यायोग्य पात्रापात्र विचार नहीं करता। वह सब विचार-बुद्धि लुप्त कर लोभनीय वस्तु की प्राप्ति के लिये लुब्धव्यक्ति के हृदय में अनन्त कामना जगाता है। श्रील गोस्वामिपाद ने रागानुगाभक्ति के अधिकारी का निर्णय करते हुए लिखा है-

''रागात्मिकैकनिष्ठा ये व्रजवासिजनादयः।
तेषां भावाप्तये लुब्धो भवेदत्राधिकारवान्॥
तत्तद्भावादिमाधुर्ये श्रुते धीर्यदपेक्षते।
नात्र शास्त्रं न युक्तिञ्च तल्लोभोत्पत्तिलक्षणम्॥''

(भ० र० सि० - १/२/२९१-२९२)

नित्यसिद्ध व्रजवासियों की रागात्मिकाभक्ति प्रसिद्ध है; उनकी भावमाधुरी का श्रवण कर उस भाव की प्राप्ति के लिये श्रवणकर्ता का शास्त्रयुक्ति-निरपेक्ष जो लोभ है, वही रागभजन का अधिकार लाता है। तुलसीमंजरी की सेवानिष्ठा और सौभाग्य की बात सुनते-सुनते साधकभक्त के हृदय में भी उस सेवा-सौभाग्य-सिन्धु की एक बूँद पाने की वासना जगेगी। तुलसी के प्रति स्वामिनी का कितना स्नेह है। तुलसी त्वद्गतप्राण है। उन्हें छोड़कर जिसका और कोई नहीं, उसके प्रति स्नेह तो स्वाभाविक है। श्रीपाद कहते हैं-''निष्कपटभाव से कहती हूँ-मन तुम्हारे ही चरणों में बिका है। तुम्हें छोड़ इस विश्व में और कोई नहीं। स्नेहाधीन होकर अपना चर्वित अधरामृत मुँह में रखा है। वह परमामृत है, तभी मैं अमर हो गई।'' समर्पण सिद्ध होता है ग्रहण करने से, अङ्गीकार करने से। देह की चेष्टा से ही वह समझ जाता है। सुधापान करने से अटूट आवेश कभी भी नष्ट नहीं होता। स्फूर्ति में विराम आया, तो उसी सुधा को प्राप्त करने की अनन्त कामना आरम्भ हुई!

''भोजनेर अवसरे हे देवि! राधिके।
तद्गतचित्ता एइ सुदीना दासीके॥

अपि वत रसवत्याः सिद्धये माधवस्य,
व्रजपतिपुरमुद्यद्रोमरोमा व्रजन्ती।
स्खलित गतिरुदञ्चत्-स्वान्त-सौख्येन किं मे,
क्वचिदपि नयनाभ्यां लप्स्यसे स्वामिनि त्वम्?५८॥

अन्वय-स्वामिनि! क्वचित् (कुत्रचित् समये) माधवस्य (श्रीकृष्णस्य) रसवत्याः सिद्धये (रन्धन व्यापारस्य सिद्धये) व्रजपतिपुरं (नन्दीश्वरं) व्रजन्ती (गच्छन्ती सती) उदञ्चत् स्वान्तसौख्येन उद्यद्रोमरोमा (उद्यन्ति प्रफुल्लानि रोमानि आपादमस्तकस्थ सकलानि यस्याः सा) स्खलितगतिः त्वं किं मे नयनाभ्यां लप्स्यसे (प्राप्ता संभाव्यसे) ?५८॥

अनुवाद-हे स्वामिनि! श्रीकृष्ण के लिये रन्धन हेतु नन्दालय जाते समय हृदय में उठे आनन्द-आवेग से तुम्हारा सर्वांग रोमांचित होगा और पैर स्खलित होंगे-क्या कभी वह दृश्य मेरे नयनगोचर होगा?५८॥

नन्दालय गमन

परिमलकणा व्याख्या-अनुभव जितना बढ़ता है, उत्तरोत्तर आशा उतनी ही बलवती होती है। स्वरूपावेश में आशा अति प्रबल होती है। भक्ति उदित होने पर एक ओर अपनी अयोग्यता, दूसरी ओर महती आशा प्रेमिक को चंचल कर डालती है।

''क्व जनोऽयमतीव-पामरः, क्व दुरापं रतिभाग्भिरप्यदः?
इयमुल्ललयत्यजर्जरा, गुरुरुत्तर्यधुरा तथापि माम्॥''

(उत्कलिकावल्लरी-२६)

'कहाँ अति पामर मैं, और कहाँ भक्तजनदुर्लभ वह प्रेमसेवा? फिर भी अति महती आशा मुझे चंचल कर रही है।'' आशा ही अमृत, जीवन का अवलम्बन है। स्वरूप के आवेश में वह प्रबल होगी ही। यह अति सुन्दर वस्तु है। 'मैं राधाकिंकरी हूँ'-इस आवेश से बहुत अनर्थ दूर हो जाते हैं। स्वरूपावेश के आगे काम-क्रोधादि खड़े नहीं हो सकते। उन सबके घर में आग! मिलन का सुख अनुभव करने की शक्ति मुझ में नहीं, विरह ही तुम्हारा साधन है-यह वृहद्भागवतामृत ग्रन्थ से पता चलता है। जिसे विरह की अनुभूति नहीं, उसमें मिलन की आकांक्षा भी नहीं। स्वरूपावेश में विरह का अनुभव होगा ही। देहाविष्ट मन में उसका अनुभव नहीं। स्वरूपाविष्ट साधक के मन में निरन्तर यह आयेगा-'कब पाऊँगा?' ''जल बिना जेनो मीन, दुःख पाय आयुहीन''-ऐसी अवस्था हो जायेगी। वे तो कृपा की दुकान लगाये बैठी हैं, विरह या अभाव-बोधरूपी मूल्य देकर लेनी होगी। विरह या अभावबोध का ही स्थान है यह व्रजधाम। यहीं विरही-साधक हाहाकार के साथ अभीष्ट वस्तु खोजता घूमता है। भौमव्रज में आकर गोपकुमार की क्या अवस्था हुई थी-''सदा महार्त्या करुणस्वरैरुदन्नयापि रात्रीर्दिवसांश्च

स्नेहभरे मुखाम्भोज हते आपनार।
दान करिबे कि सुधाराशि चमत्कार॥''५७॥

कातरः''- 'वहाँ मैं परम आर्ति के साथ करुणस्वर में रातदिन रोकर काटता था।' ''प्रपंच जगत् में पुत्रादि के विरह में ऐसी अवस्था होती है; किसी से बात नहीं, निर्जन में बैठे-बैठे रोना। अर्थाभाव से आदमी पागल हो जाता है। हा राधे! तुम्हारे लिये मेरी ऐसी अवस्था कब होगी?'' वह अवस्था होने पर स्वामिनी और दूर नहीं रह सकेंगी। प्रश्न हो सकता है। पुत्र-धन आदि का अनुभव तो स्पष्ट है, किन्तु राधारानी का अनुभव इतना स्पष्ट नहीं; फिर उनमें इतना मन कैसे लगायें? किसी दिन भी तो अनुभव नहीं किया। मन तो लगता नहीं? उत्तर में कहा जा रहा है-स्वयं को उनकी दासी के रूप में पहचान नहीं सकते, तभी। सम्बन्ध के अनुभव से सभी जगेगा। भजन अनायास सम्पन्न होगा। ''आनन्द करि हृदय, रिपु करि पराजय, अनायासे गोविन्द भजिबो'' (प्रे० भ० च०)। स्वरूपाविष्ट साधक संसार का काम करता है, फिर भी उसका मन इष्ट के चरणों में पड़ा रहता है। श्रीमन्महाप्रभु ने ऐसे भक्त के मन की तुलना परव्यसनिनी रमणी के मन से की है। वह संसार का काम ही करती है, पर उसका मन वहीं रहता है। किसी प्रकार काम पूरा कर वहीं भागती है। उसी तरह भक्त भी चट्पट् संसार का काम पूरा कर राधापादपद्म हृदय में लेकर निर्जन में बैठ जाता है। जगत् में सभी मुझे 'मेरा' 'मेरा' कहेंगे, पर मैं उधर ध्यान ही नहीं दूँगा। स्वामिनी के चरणों का, उनके रूप-गुण-लीलादि का ध्यान करूँगा। भक्ति प्रसन्न हो रही हैं या नहीं, उसी ओर मेरा ध्यान रहेगा। श्रील रूपगोस्वामिपाद ने सार उपदेश किया है-

''तन्नामरूपचरितादि सुकीर्तनानुस्मृतयोः क्रमेण रसनामनसी नियोज्य।
तिष्ठन् व्रजे तदनुरागि-जनानुगामी कालं नयेदखिलमित्युपदेशसारम्॥''

(उपदेशामृतम्-८)

''क्रमोन्नत प्रणाली से श्रीश्रीराधाकृष्ण के नाम-रूप-गुण-लीलादि के कीर्तन और स्मरण योग में रसना एवं मन को नियुक्त कर व्रजवास करते हुए व्रजरसानुरागी महाजनों का अनुगत होकर भजन-जीवन यापन करो-यही समस्त उपदेशों का सार है।''

श्रीपाद को इस श्लोक में श्रीराधा की कृष्ण-रन्धन हेतु नन्दीश्वर गमन-लीला की स्फूर्ति हुई है। स्फुरण में अपना कोई कर्तृत्व नहीं। स्वप्रकाश लीला, जब जो स्फुरण में आई है, उसी का आस्वादन किया है और स्फूर्ति भंग होने पर प्रार्थना की है। इसलिये इसमें क्रम-रक्षा संभव नहीं। स्वामिनि दुर्वासा ऋषि के वर से अमृतहस्त हैं। वे जो भी रन्धन करती हैं, वही अमृत से बढ़कर स्वादिष्ट, व्याधिनाशक, पुष्टिकर और आयुवर्द्धक होता है। तभी पुत्रस्नेहातुरा यशोदामाँ कुन्दलता को भेज राधारानी को सखियों सहित कृष्ण के लिये रन्धन हेतु नित्य नन्दीश्वर बुलवाती हैं। वस्तुतः गर्गाचार्य, दुर्वासा आदि ऋषियों ने व्रज के मधुर रस की पुष्टि में मात्र पुरोहिताई की है। राधारानी श्रीकृष्णप्रियाओं में मुख्य हैं और स्वयं भगवती हैं, उनके इन सब गुणों के लिये ऋषिवर के कोई वर की आवश्यकता नहीं। कुन्दलता सास जटिला की आज्ञा लेकर सखियों सहित राधारानी को नन्दीश्वर ले जा रही हैं। सभी कुन्दलता के साथ चली जा रही हैं-मानो चाँद का बाजार हो। गाँव के भीतर से जाते समय घूँघट था। बाहर आकर घूँघट खोल दिया। स्वामिनी के उच्छ्वसित माधुर्य से वनपथ आलोकित हो उठा! तुलसी सम्बोधित कर रही हैं-'स्वामिनि! सम्बोधन कैसा मधुर है! देहावेश की गन्ध नहीं। 'तुम प्राणनाथ के लिये रसोई करने जा रही हो, तभी आनन्द में विह्वल हो। आनन्द की अतिशयता से बीच-बीच में गति-स्खलन हो रहा है।(पैर लड़खड़ा उठते हैं) वह मैं देखूँगी और समझूँगी। तुम्हारे मन का पर्दा मेरे आगे खुल

पार्श्व-द्वये ललितयाथ विशाखया च, त्वां सर्वतः परिजनैश्च परैः परीताम्।
पश्चान्मया विभृत-भंगुर-मध्यभागां, किं रूपमंजिरियं पथि नेष्यतीह?५९॥

अन्वय-(हे स्वामिनि!) अथ पार्श्वद्वये ललितया विशाखया च सर्वतः परैः परिजनैः परीतां (चतुर्दिक्षु: अन्यैः सखीजनैः वेष्टितां) विभृतभंगुरमध्यभागां त्वां (विभृतोधृतो भंगुरमध्यभागो यया तां) इयं रूपमंजरिः किं इह पथि नेष्यति?५९॥

अनुवाद-हे स्वामिनि! दोनों ओर ललिता और विशाखा, चारों ओर अन्यान्य सखियों से घिरी, पीछे भंगुर कटिदेश पकड़े मैं-इस रूप में कंधे का सहारा दिये क्या रूपमंजरी सखी तुम्हें लेकर आयेंगी?५९॥

जायेगा, कुछ भी छिपा न रहेगा।' आचार्य के मन के माध्यम से समझना होगा। स्मरणनिष्ठ साधक किस प्रकार लीलास्मरण करेंगे, एकबार सोचकर देखिये। स्वामिनी के अङ्गप्रत्यंग का, प्रत्येक चेष्टा का माधुर्य स्मरणकर्ता के हृदय में निविड़ आनन्द पुलक जगा देगा। स्वामिनी का सुख किंकरी के अन्तःकरण में जगेगा। वैसा योग्य अन्तःकरण होना चाहिये। ''श्रीश्वरी-दृष्टि-वागादि-सर्वेङ्गित- विचक्षणाम्''- प्राणेश्वरी की दृष्टि, वाक्य आदि सभी इंगित समझने में समर्थ होना चाहिये। राधापादपद्मसेवा के अतिरिक्त अन्य स्पृहाओं से शून्य चित्त न हो, तो यह संभव नहीं। श्रीराधा के प्रीतिसुख-सिन्धु में नित्य- निमग्नचित्त होना चाहिये। ''राधा-पदाब्ज-सेवान्यस्पृहा-कालत्रयोज्झिताम्। राधा प्रीतिसुखाम्भोधावपारे बूड़तां सदा'' (वृन्दावन-महिमामृतम्-शतक ८)।

स्वामिनी व्रजपति श्रीनन्दराज के पुर की ओर चल पड़ी हैं। जिनके लिये रसोई करने जा रही हैं, वे हैं माधव-व्रजराजकुमार। स्वच्छन्द-विलासी। नित्य लीलारस में डूबे हैं। लीला द्वारा पुरुषोत्तम। खेल इतना अच्छा लगता है कि नित नवीन खेल में मत्त। स्वामिनी लीलामय के लीला-रससिन्धु में डूबी चल रही हैं। गमन कैसा मधुर है! श्रीचरणों में रसनूपुर झंकृत हो रहे हैं! आनन्द के आवेग में सखियों के साथ वाग्विलास रंग में ऐसी तन्मय होकर चल रही हैं कि 'कहाँ से कहाँ जा रही हूँ'-इसका भी ध्यान नहीं। हृदय-दर्पण में प्रियतम के प्राण-उन्मत्तकारी मधुर रूप की स्फूर्ति हो रही है! कुन्दलता कहती हैं-'तुम्हारे नयनचातकों की अभिलाष अभी पूरी होगी।' सुनकर देह-लतिका में कम्प-पुलक जड़ता आदि भावकुसुम विकसित हो रहे हैं। किंकरी तुलसी की चित्तभृंगी उसके मकरन्द-आस्वादन में विभोर है! सहसा स्फूर्ति-भंग। क्रन्दन के साथ प्रार्थना-'इतनी मधुर तुम्हें कब देख पाऊँगा?'

''हे स्वामिनि! आहा तुमि आनन्दित मने।
माधवेर भोज्यद्रव्य पाकेर कारणे॥
रोमांचित कलेवरे, स्खलित गतिते।
चारु - तनुवल्लरीर मृदुल भंगीते॥
व्रजपति - पुरे जबे करिबे गमन।
से समये कभु तव पाबो कि दर्शन?''५८॥

नन्दालय गमन प्रकार

परिमलकणा व्याख्या–स्मरण, स्वप्न, स्फूर्ति सभी स्थितियों में श्रीपाद को राधारानी का सान्निध्य मिल रहा है। परम आकांक्षित श्रीमती का रूप–रस–शब्द–स्पर्श–गन्ध अनुभव कर रहे हैं। श्रीकृष्ण के लिये रन्धन हेतु स्वामिनी नन्दीश्वर जा रही हैं–यह स्फुरण हो रहा है। जो सिद्ध हैं, उनका अनुभव कितना सुस्पष्ट है। गोवर्धन–निवासी सिद्ध कृष्णदास बाबा ने लिखा है–

''हा हा प्राणेश्वरि! कुन्दलता करे धरि।
ललितादि सखी संगे, गमन करिबे रंगे, पाछे लैया जाबो जलझारि॥
कतो रंग–रस–कथा, पुछिबेन कुन्दलता, सखिसंगे हरिषे कहिते।
अङ्ग पुलकित अति, स्खलित हइबे गति, कृष्ण–सुख अनुभवि चिते॥''

(प्रार्थनामृततरंगिणी)

बड़ा ही आनन्द। श्रीकृष्ण के सुख–सेवन हेतु जा रही हैं। प्रेम का स्वभाव ही यही है–श्रीकृष्ण सुखैक तात्पर्य! श्रीमत् जीवगोस्वामिपाद ने प्रीति की तीन भूमियों की बात कही है–''विषयानुकूल्यात्मकस्तदानुकूल्या–नुगततस्पृहातदनुभवहेतुकोल्लासमयज्ञानविशेषः प्रियताः'' (प्रीतिसन्दर्भः– अनु० ६१)। (१) श्रीकृष्ण की अनुकूलता या सुखविधान–इच्छा ही प्रीति की आत्मा है, (२) श्रीकृष्ण–सुख के अनुगत रूप में प्रीतिमान् की विविध स्पृहा का उद्‌गम होता है, (३) श्रीकृष्ण के सुखी होने से ही प्रीतिमान् को सुख होता है। इनमें 'विषयानुकूल्यात्मकः'–यही प्रीति या प्रेम का स्वरूप–लक्षण है; अन्य दो 'तदानुकूल्यानुगत–तत्स्पृहा'' और ''तदनुभवहेतु–कोल्लासमय–ज्ञान विशेषः'' उसके तटस्थलक्षण हैं। एकमात्र विषय (श्रीकृष्ण) का आनुकूल्य या सुख ही प्रेम का असाधारण धर्म या स्वरूप है। जिस बात से श्रीकृष्ण को सुख हो, उसके अनुरूप ही उन्हें प्राप्त करने की अथवा उसकी सुखमय विविध सेवाओं की वांछा या अभिलाषा प्रेमिक के चित्त में उदित होती है, और श्रीकृष्ण सुखी हो रहे हैं यह जानकर स्वयं की सुख–वांछा न होते हुए भी अपार आनन्द का उद्रेक होता है।

''प्रीतिविषयानन्दे तदाश्रयानन्द।
ताँहा नाहि निजसुख–वांछार सम्बन्ध॥
निरुपाधि प्रेम जाँहा–ताँहा एइ रीति।
प्रतिविषयसुखे आश्रयेर प्रीति॥'' (चै० च०–आदि०, परि० ४)

स्वामिनीजी सुखमय श्रीकृष्ण को सुखास्वादन कराती हैं। ऐसे लोग बहुत ही कम हैं, जो उन्हें सुखी करना चाहते हैं। व्रज से बाहर सब सुखी होना चाहते हैं। समस्त व्रजसुन्दरियों की सर्वोपरि हैं श्रीराधारानी। श्रीकृष्ण की स्वयं की उक्ति है–

''आमा हैते आनन्दित हय त्रिभुवन।
आमाके आनन्द दिबे ओइछे कोन् जन॥
आमा हैते जार हय शत–शत गुण।
सेइ जन आह्लादिते पारे मोर मन॥
आमा हैते गुणी बड़ो जगते असम्भव।
एकलि राधाते ताहा करि अनुभव॥'' (वही)

व्रज में अनेक प्रेमी थे, पर एकमात्र श्रीराधा के प्रेम की महिमा जानने का लोभ जगा था श्रीकृष्ण के चित्त में। गौर बनकर भी वे सब समझ पाये, यह नहीं कहा जा सकता। स्वयं भगवान् को भी सीमा न मिली। अनन्तकाल तक आस्वादन करेंगे, कारण–गौर लीला भी नित्य है। गौर–सुन्दर ने श्रीराधाप्रेम वक्ष में धारण कर विश्व को दिखा दिया कि ऐसा प्रेम जगत् में और कहीं नहीं। फिर भी न समझा, इस बार भी वंचित रहा। प्रेम की मूर्ति स्वामिनीजी, उनके श्रीचरणों में आत्म–समर्पण करने से ही कृतार्थता। तत्त्व–अनुशीलन से भी पता चलता है कि शक्तिमान् शक्ति के अधीन हैं, सम्पूर्ण रूप से। ''राधा पूर्णशक्ति कृष्ण पूर्ण–शक्तिमान्। दुइ वस्तु भेद नाहि शास्त्र–परमाण॥'' (वही) श्रीराधा के किसी भी प्रकार के सम्पर्क में आते ही श्रीकृष्ण की एकान्त वश्यता स्वत: सिद्ध होती है। प्रेमघन मूर्ति हैं श्रीराधा। श्यामसुन्दर की सेवा के लिये कैसी व्याकुलता! शत–शत सखी–मंजरियों के होते हुए भी स्वयं सेवा करने के लिये उल्लासवती। दुर्वासा के वर से स्वामिनी के हाथों तैयार हुए द्रव्य की कैसी स्वादुना! एकबार कीर्तिदामाँ ने सपरिकर श्रीनन्द–यशोदा को निमन्त्रण देकर राधारानी के पकाये अन्न–व्यंजनादि खिलाये थे। वह सब स्वयं खाकर और उसमें श्रीकृष्ण की प्रीति या आसक्ति देखकर माँ यशोदा कह गईं–'मेरा कृष्ण आज से तुम्हारी लाली के बनाये द्रव्य छोड़ और किसी के हाथ से खाकर सुख नहीं पायेगा।' तभी से श्रीराधा सखियों के साथ प्रतिदिन नन्दीश्वर आती हैं श्रीकृष्ण के लिये रन्धन करने। प्रेमी अपने हाथ से प्रियजन की सेवा करके ही सुखी होता है। अन्य किसी पर भार छोड़कर मर्म की सेवा नहीं होती। शत–सहस्र दास–दासियों के होते यशोदामाँ स्वयं दधिमन्थन करती हैं। और नन्दमहाराज अपने हाथों करते हैं गौ–दोहन। स्वयं रसोई कर भोजन करायेंगी–इसी आनन्द में विभोर हैं (स्वामिनी), तभी गति स्खलित है।

कुन्दलता के साथ जा रही हैं। दोनों ओर हैं ललिता और विशाखा। चारों ओर अन्यान्य सखियाँ स्वामिनी को घेरे चल रही हैं। कितना–कितना रहस्यमय रसभरा हास–परिहास चल रहा है। तुलसी स्वामिनी के पीछे–पीछे उनका क्षीण और भंगुर कटिप्रदेश पकड़े चल रही हैं। क्षीण कटिदेश यदि टूट जाय–यही आशंका है। कितनी प्रीति की मूर्ति है किंकरी। ममता का कितना आतिशय्य! पथश्रम से क्लान्त श्रीमती श्रीरूपमंजरी के कन्धे का सहारा लिये चल रही हैं। साधक भी इस लीला का स्मरण कर स्वरूपावेश में स्वामिनी के पीछे–पीछे चलेंगे। सेव्य का सान्निध्य चाहिये। स्मरण का अर्थ ही है मानस–संग। राग–द्वेषादि दोषों से शून्य, भगवदनुभूति से युक्त चित्त में ही ऐसा स्मरण आता है। स्मरण गाढ़ा होने पर मानससंग प्रत्यक्ष की तरह ही अनुभव होता है। ''भवति च स्मृतेर्भावना प्रकर्षाद्दर्शनरूपता'' (श्रीभाष्य में श्रीपाद रामानुज), अर्थात् ''जब स्मृति प्रगाढ़ होती है, जब स्वजातीय प्रत्यय विजातीय प्रत्यय–प्रवाह से शून्य होकर एकतानता प्राप्त करता है, तब स्मरणात्मक ज्ञान प्रत्यक्षज्ञान के रूप में परिणत होता है।''''नाम कर रहा हूँ, नाम–पागल श्रीगौरसुन्दर सुन रहे हैं'–ऐसी अनुभूति चाहिये। ''भाविते–भाविते कृष्ण स्फुरये अन्तरे''–आचार्यपादगण की वाणी के श्रवण–कीर्तन से सान्निध्य की अनुभूति जगेगी। श्रीविल्वमंगल से श्रीकृष्ण ने कहा था–'मैंने तुम्हारा वर्णन सब सुना है और मैं तुम्हारे साथ–साथ ही हूँ। तुम्हारा वर्णन मेरे कानों को अमृत–सा लगा है, इसलिये इसका नाम होगा श्रीकृष्णकर्णामृतम्।' इन लोगों की वाणी के निकट उन्हें आना ही पड़ेगा। इष्टदेव साधक के प्रत्येक भजनांग का माधुर्य आस्वादन कर सुखी होंगे। तभी साधना की सार्थकता। स्फुरण में श्रीपाद को श्रीमती की नन्दीश्वर गमनलीला की निविड़ अनुभूति हुई है। उसमें विराम आया, तो प्रार्थना।

हम्बारवैरिह गवामपि वल्लवानां, कोलाहलैर्विविध-वन्दिकलावतां तैः।
सम्भ्राजते प्रियतया व्रजराजसूनो,-र्गोवर्द्धनादपि गुरुर्व्रजवन्दिताद्यः॥६०॥

अन्वय-यः (नन्दीश्वरः) व्रजराजसूनोः (नन्दनन्दनस्य) प्रियतया व्रजवन्दितात् गोवर्द्धनात् अपि गुरुः (पूज्यः सन्) इह (व्रजे) गवाम् हम्बारवैः अपि वल्लवानां कोलाहलैः विविधवन्दि-कलावतां तैः (नानाप्रकार स्तुतिपाठकलैः पुण्यवतां तत्तुल्यामिति यावत् तैः कोलाहलैः) सम्भ्राजते (सम्यक् शोभते) ॥६०॥

अनुवाद-जो नन्दीश्वर गिरि श्रीनन्दनन्दन का प्रिय होने के कारण व्रजजन-पूज्य गोवर्धन से भी अधिक श्रेष्ठ है, वह गायों के हम्बारव (रंभाना) से और गोपों स्तुतिपाठकों (वन्दीजनों) आदि विविध कलाकुशलों के कोलाहल से शोभा पा रहा है॥६०॥

नन्दीश्वर-शोभा

परिमलकणा व्याख्या-स्वरूपाविष्ट श्रीपाद की स्फूर्ति में स्वामिनी के सेवारस की आस्वादन धारा चल रही है। स्वामिनी नन्दीश्वर जा रही हैं। व्रजराज का भवन, श्रीकृष्ण का वासस्थान स्वामिनी को कितना प्रिय है। गायों के हम्बारव से (रंभाने की आवाज से), गोपों, स्तुति-पाठ करने वालों (वन्दीजनों) इत्यादि कलाविदों के कोलाहल से सदा मुखरित। व्रजवन्दित गिरिराज श्रीगोवर्धन से भी श्रेष्ठ। शत-शत अमरावतियों की शोभासम्पदा से नित्य-परिसेवित नन्दीश्वर गिरि! गिरि-दर्शन कर स्वामिनी की असमोर्ध्व शोभामाधुरी शत-शत धाराओं में उच्छ्वसित हो उठती है। भाव की मूर्ति में शत-शत भावों की अभिव्यक्ति! सखियों के साथ भावमयी की कैसी मधुर गति! उपासकों के लिये नित्य ध्यान की वस्तु है यह छवि। महाजन गाते हैं-

''सुन्दरी सखीसंगे करल पयाण।
रंगपटाम्बरे, झाँपल सब तनु, काजरे उजर नयान॥
दशनक ज्योति:; मोति नह समतुल, हसइते खसे मणि जानि।
काँचन किरण, वरण नह समतुल, वचन जिनिया पिकवाणी॥
कर पदतल, थल-कमलदलारुण, मंजीर रुनुझुनु बाज।
गोविन्ददास कह, रमणी-शिरोमणि, जितल मनमथराज॥'' (पदकल्पतरु)

सभी गोपुरद्वार के निकट आ पहुँची हैं। सखियाँ दिखा रही हैं। जैसी उत्कण्ठित स्वामिनी, वैसे ही श्याम। गो-दोहन के पश्चात् सखायों के साथ खेलकर पुरद्वार पर खड़े हैं। भगवान् के हृदय में प्रेमी की प्रेमसेवा

''दुइ पार्श्वे ललिता विशाखा दुइजन।
चौदिके वेष्टित आर सब सखीगण॥
कटिदेश धरि आमि जाबो तव पाछे।
पथश्रमे क्षीणकटि भांगि पड़े पाछे॥
श्रीरूपमंजरी तोमा सजत्ने धरिया।
जावेन कि व्रजपथे तोमारे लइया?''५९॥

ग्रहण करने के लिये कैसी उत्कण्ठा! परब्रह्म की यह व्याकुलता केवल भक्त-हृदय ही जान सकता है। भगवान् मुझे चाहते हैं, यह विचार कितना मधुर है। तत्त्वत: भगवान् हैं आत्माराम, आप्तकाम, पूर्णानन्दस्वरूप, निर्विकार, उनकी कोई इच्छा नहीं। किन्तु लीला में वे विलासी हैं, सुख के प्यासे हैं। विशेषत: गोपिकाओं का प्रेम उनके हृदय में अनन्त कामना जगा देता है, उन्हें सुन्दर वेश से विभूषित करता है, नायक सजाकर गोपियों के कुंज-कुंज में लिये घूमता है। कामना की और भी कितनी-कितनी रंगीन छवियाँ उनके हृदयपट पर अंकित कर देता है। सर्वोपरि हैं राधारानी। जिनके थोड़े-से दर्शन के लिये इतनी प्रतीक्षा करते हैं! वे तो साक्षात् प्रेम की अधिष्ठात्री देवी हैं, मादनाख्य (मादक नामक) महाभावस्वरूपिणी। किन्तु इस प्रेम की एक बूँद जीव के हृदय में उदित हो जाय, तो उसे पाने के लिये भी (उस जीव के लिये भी) भगवान् में कितनी उत्कण्ठा होती है! वैकुण्ठपति नारायण ने श्रीगोपकुमार से कहा था-

''स्वागतं स्वागतं वत्स दिष्ट्या दिष्ट्या भवान् मया।
सङ्गतोऽत्र त्वदीक्षायां चिरमुत्कण्ठितेन हि॥
वहूनि गतिमान्यङ्ग जन्मानि भवता सखे।
कथञ्चिदपि मय्याभिमुख्यं किञ्चिदकारि न॥
अस्मिन्नस्मिन्निहेनैव भवे भावी मदुन्मुख:।
इत्याशया तवात्यन्तं नर्तितोऽस्मि सदाज्ञवत्॥
छलञ्च न लभे किञ्चिद् येनाद्यं परिपालयन्।
निबन्धं स्वकृतं भ्रातरानयाम्यात्मन: पदम्॥
तत्ते मय्यकृपां वीक्ष्य व्यग्रोऽनुग्रहकातर:।
अनादिं सेतुमुल्लङ्घ्य त्वज्जन्मेदमकारयम्॥
श्रीमद्गोवर्द्धने तस्मिन् निजप्रियतमास्पदे।
स्वयमेवाभवं तात जयन्ताख्य: स ते गुरु:॥
कामं दीर्घतमं मेऽद्य चिरात्त्वं समपूरय:।
स्वस्य मेऽपि सुखं पुष्णन्त्रैव निवस स्थिर:॥''

(वृहद्भागवतामृतम्-२/४/८१-८७)

''हे वत्स! स्वागत! स्वागत!! मैं तुम्हें देखने के लिये बहुत दिनों से उत्कण्ठित था। हे सखे! तुमने बहुत जन्म बिता दिये, पर मेरे प्रति किंचित् भी अभिमुख नहीं हुए। इसी जन्म में तुम मेरी ओर उन्मुख होंगे, इस आशा में मैं अज्ञ की तरह अनवरत नृत्य करता रहा हूँ। हे भ्रात! मुझे किसी प्रकार का छल भी प्राप्त नहीं, जिसका सहारा लेकर मैं अपनी पहली आज्ञा रूपी वेदमर्यादा आदि को लाँघकर तुम्हें यहाँ ले आऊँ। हे वत्स! अपने प्रति तुम्हारी ऐसी उपेक्षा देखकर मैं व्याकुल हो गया और तुम्हारे प्रति अनुग्रह-कातर होकर अपनी अनादि धर्ममर्यादा का लंघन कर अपने प्रिय स्थान श्रीगोवर्धन में तुम्हें जन्मग्रहण कराया और मैं स्वयं 'जयन्त' नाम से तुम्हारे गुरुरूप में अवतीर्ण हुआ! तुमने मेरी दीर्घकाल की आशा अब पूरी की। अब यहाँ स्थिरभाव से रहकर मेरा और अपना सुख पुष्ट करो।''

प्रत्येक जीव को भक्तरूप में पाने के लिये नारायण की कितनी आकांक्षा रहती है, इससे स्पष्ट है। गोपकुमार को देखकर श्रीनारायण ने परमानन्द प्राप्त तो किया, पर उनके आनन्द की मात्रा इतनी अधिक न थी कि वे उस आनन्द के भार को सहन न कर पाने के कारण मूर्छित हो जायें। किन्तु व्रज में जब श्रीकृष्ण ने गोपकुमार को देखा, तो वे आनन्द-आतिशय्य सहन न कर पाने से मूर्छित हो गये! श्रीगोपकुमार ने जन शर्मा से कहा-

''स्वदीनलोक-प्रियतानियन्त्रितो, बलादथोत्प्लुत्य समीपमागतः।
तदीक्षणप्रेम-विमोहितं हि मां, गले गृहीत्वा सहसापतद्भुवि॥'' (वही-२/६/६०)

''श्रीकृष्ण के दर्शन कर मैं प्रेम में विमोहित हो गया। और इस दीनजन की प्रियता से नियन्त्रित वे मुरलीधारी बलपूर्वक उछलकर पास आकर मेरा गला पकड़कर प्रेम से मूर्छित होकर गिर पड़े।'' बाद में श्रीबलदेव की चेष्टा से इन गोपकुमार के द्वारा ही उनकी प्रेममूर्छा भंग हुई थी। एक भक्त को पाने के लिये उनकी ऐसी उत्कण्ठा; प्रेममयी श्रीराधा के लिये उनकी उत्कण्ठा को कौन मापेगा?

स्वार्थ के भजन में सौन्दर्य नहीं। भजन सुन्दर तभी होगा, जब चित्त में मात्र इष्ट के सुख की बात रहेगी। 'उन्हें क्या अभाव है, मैं यह देखूँगा और उसे पूरा करूँगा'-भजन-परिपाटी में यह भाव आयेगा ही।

श्याम के प्रत्येक अङ्ग में कैसी उत्कण्ठा है! जाने किस वस्तु के आस्वादन के लिये अनन्त प्रतीक्षा है! शीतकाल है। एक अच्छा-खासा ओढ़ना शरीर पर धारण किये हैं। कैसा अपूर्व माधुर्य! श्रीरूपमंजरी स्वामिनी को रास्ता दिखाती ला रही हैं। पीछे-पीछे तुलसी। स्मरणनिष्ठ साधक नित्य ही यह भाव-माधुरी आस्वादन करते हैं। स्वामिनी के पास न रहने से ही भजन की विच्युति। सदा पास रहकर सेवा करनी होगी। कुन्दलता दिखा रही हैं-'वह देखो, पुर के द्वार पर श्यामकान्त प्रकाश किये है। वही कान्ति, जिसे देखकर व्रजललनाओं के धैर्य का बाँध टूट जाता है!' स्वामिनी देखती हैं, प्रियसखा सुबल के स्कन्ध पर बायां हाथ रखे दाहिने हाथ से लीलाकमल घुमा रहे हैं। मानो कामिनियों के चित्त को ही घुमा रहे हैं। कर्णचषकों से कुन्दलता का वचनामृत आस्वादन कर और नयनचषकों से कोटि मन्मथों (कामदेव) को मोहनेवाला रूपामृत पान कर श्रीमती अत्यन्त विह्वल हो उठीं। तब श्रीकृष्ण के छिटके अङ्गसौरभ ने उनके नासिकापुट में प्रवेश कर चेतना का संचार किया। स्वामिनी के मन में आता है-'भुवनमोहन श्याम मेरे लिये खड़े हैं।' श्याम की व्याकुलता समझकर घूँघट खींचने के बहाने उन्हें अपना चेहरा एकबार अच्छी तरह दिखाया। श्यामसुन्दर के ध्यान की छवि! वस्त्र (ओढ़ना) का प्रान्तदेश किस प्रकार पकड़कर खींच रही हैं! मानो श्याम का मानस (चित्त)-अंचल ही खींच रही हैं! फिर चूड़ियों का कैसा मधुर शब्द! महाभाव के हाथ, अंगुलियाँ चम्पक-कलिका को लजाने वाली, उनमें रत्न-अङ्गूठियाँ सुशोभित! श्याम अपलक नेत्रों से देख रहे हैं। स्वामिनी के हृदय के स्तर-स्तर पर कृष्णानुराग की प्रगाढ़ तरंगे खेल रही हैं। अङ्ग में सात्त्विकभावों से उठा पुलक, कम्प; नेत्रों में प्रेमाश्रुओं की स्निग्ध धारा! अब और जोर से नहीं चल सकतीं। ललिता से कहती हैं-'सखि! जल्दी नहीं चल सकती, रास्ते में बड़े कंकड़ हैं।' कुन्दलता परिहास करती हैं-'कंकड़ पैरों में लग रहे हैं या मन में?' नयनों से नयनों का मिलन हो गया है। माधुर्य की साम्राज्ञी जा रही हैं। भाव की बाढ़ से विश्व भर गया है! नयन-भंगिमा से नागर उन्मत्त हैं। श्रीमती की महामाधुर्यधारा

प्राप्तां निजप्रणयिणी-प्रकरैः परीतां, नन्दीश्वरं व्रजमहेन्द्रमहालयं तम्।
दूरे निरीक्ष्य मुदिता त्वरितं धनिष्ठा, त्वामानयिष्यति कदा प्रणयैर्ममाग्रे? युग्मकम्॥६१॥

अन्वय-व्रजमहेन्द्रमहालयं तं नन्दीश्वरं प्राप्तां निजप्रणयिणी-प्रकरैः (ललितादि सखी-समूहैः) परीतां (वेष्टितां) धनिष्ठा दूरे निरीक्ष्य (दृष्ट्वा) मुदिता (हृष्टा सती) कदा प्रणयैः त्वरितं ममाग्रे (मम साक्षात् व्रजेश्वरी समीपं) आनयिष्यति?६१॥

अनुवाद-हे श्रीराधिके! तुम नन्दीश्वर नन्दालय में ललितादि सखियों से घिरी पहुँचोगी, तो धनिष्ठा दूर से देखकर प्रसन्न होकर तुम्हें प्रेमपूर्वक व्रजेश्वरी के निकट ले जायेंगी-मैं उस दृश्य को कब देखूँगा?६१॥

मानो झौंकों के रूप में बड़े वेग से प्रवाहित है! भुवनमोहन रूपमाधुरी देखकर श्याम विभोर हैं। अपलक नेत्रों से देख रहे हैं। दोनों अपने-अपने ध्यान का धन प्रत्यक्ष देख रहे हैं!

''पथ-गति नयने मिललो राधाकान।
दुहुँ मने मनसिज पूरलो सन्धान॥
दुहुँ मुख हेरइते दुहुँ भेलो भोर।
समय ना बुझत अचतुर चोर॥
विदगध संगिनी सब रस जान।
कुटिल नयने करलो सावधान॥'' (पदकल्पतरु)

रूप और तुलसी समय के अनुरूप सेवा कर रही हैं। मिलन और विरह-सभी अवस्थाओं में सेवा करनी होगी। प्रेमिक-सेविका हर समय स्वामिनी के साथ रहेंगी। पहले स्वामिनी को प्रेम करना होगा, उसके बाद उनके रूप-गुण-लीलादि के आस्वादन से युक्त भजन-परिपाटी चलेगी। व्रज-उपासना प्रेम की ही उपासना है। शास्त्र-शासन के भय से उपासना नहीं। लोभ का भजन। अभिमान-स्फूर्त कम्पित स्वर में स्वामिनी ललिता से कहती हैं-'सखि! व्रजराज-भवन जाने का क्या और रास्ता नहीं? मैं इस रास्ते नहीं जा पाऊँगी सखि! ललिता-'राधे! गुरुपरवशता तुम्हारे सारे दोष दूर कर देगी (गुरुजनों के आदेश से इस पथ पर चलने से भी तुम्हारी कोई निन्दा नहीं होगी)। चलो सखि! हम लोग इसी रास्ते से पुर में प्रवेश करेंगी।' ललिता की चतुराई से प्रसन्न होकर श्रीमती उसी रास्ते धीर गति से चलने लगीं। युगलमाधुरी के रस-सिन्धु में सखीमंजरियों के मनोमीन सुखपूर्वक तैरने लगे। गिरि शोभा देखते-देखते सभी अग्रसर हो रही हैं।

''व्रजेर वन्दित जेइ गिरि गोवर्द्धन।
ताहा हैते नन्दीश्वर अति सुशोभन॥
कपिलार हाम्बारवे सदा मुखरित।
गोपगण कोलाहल करे चारिभित॥
वन्दीगण निरन्तर करे स्तुतिगान।
व्रजेन्द्रनन्दन कृष्णेर अति प्रियस्थान॥''६०॥

धनिष्ठा के प्रणय का आस्वादन

परिमलकणा व्याख्या-स्वामिनी व्रजराज-पुर में प्रवेश कर रही हैं। पुर की कैसी अपूर्व शोभा! जिधर देखती हैं, उधर ही असाधारण शिल्पचातुर्य! सम्पूर्ण सुखद शोभामाधुरी के अनन्त उत्स से पुरप्रदेश परिपूर्ण है। सखियों के साथ श्रीमती देख रही हैं-

''स्फटिकघटित-कुड्यमीड्य-भर्मोज्जलपटलं पविकिलकं कवाटम्।
मणिमय-ललना-धृत प्रदीप व्रतति नगद्विजराजि राजितद्वाः॥
द्युमणि-किरण-दीप्तरत्नकुम्भध्वज-नटकेकि-वृताग्रपौरटाट्टम्।
सुरवरपुरनिन्दि यत्र शन्दं विलसति मन्दिरवृन्द-मिन्दिराढ्यम्॥''

(कृ० भा०-५/४८, ४९)

''पुर के बीच विचित्र मन्दिरों की दीवारें स्फटिकमणि की बनी हैं, स्वर्णमणि की छतें हैं, द्वारों पर हीरे-जड़ी स्वर्णकपाटें शोभा पा रही हैं। प्रत्येक द्वार के दोनों ओर दो रत्नमयी सुन्दरी ललनायें हाथों में मणिप्रदीप धारण किये खड़ी हैं। उन्हीं के पास रत्नलतिका-जड़े रत्नमय वृक्ष हैं, जिनकी एक-एक शाखा पर नाना वर्णों की मणिनिर्मित विहगश्रेणी (पक्षियों की कतारें) हैं-कैसा अपूर्व दृश्य! घर की चोटियाँ रत्नकुम्भों से परिशोभित हैं, जो सूर्यकिरणें के पड़ने से झिलमिला रहे हैं। कुम्भ के ऊपर मणिमय ध्वजदण्ड है और उनके ऊपर एक नृत्यपरायण रत्नमय कृत्रिम मयूर अपूर्व शोभा पा रहा है। शत-शत अमरावतियों को लजाने वाली शोभासम्पदा से पुरप्रदेश भरा है।'' सखियों के साथ स्वामिनी सात कक्षायें पार किये जा रही हैं। इस समय और अधिक बातचीत नहीं। नूपुर-किंकिणी आदि की ध्वनि हो रही है। वह ध्वनि अब श्रीश्यामसुन्दर के कानों में अमृतधारा सिंचन कर रही है। राधारानी धनिष्ठा का जीवन हैं। 'राधा अभी तक नहीं आई' कहकर बार-बार बाहर जा रही हैं और आ रही हैं। जैसे ही दिखाई देती हैं, दौड़कर आती हैं और प्रणय से भरकर राधारानी के हाथ पकड़कर कहती हैं-'इतनी देर क्यों? तुम्हें देखे बिना कितना कष्ट पाती हूँ!' मैं तो पराधीन हूँ'-स्वामिनी कहती हैं। धनिष्ठा और सखियों के साथ श्रीमती ने अन्तःपुर में प्रवेश किया। श्रीमती के शोभन-माधुर्य से राजभवन उद्भासित हो उठा! धनिष्ठा राधारानी को माँ यशोदा के निकट लाई। श्रीमती का असामान्य रूप-लावण्य देखकर माँ ने सोचा-'आहा! लगता है, त्रिलोकी की समस्त शोभासम्पदा की अधिष्ठात्री देवी ही आज मेरे घर आकर उदित हो गई!'

''राइरे देखिया, उमति हइया, यशोदा करलो कोरे।
मुखानि धरिया, चुम्बन करिते, भिगालो नयान-लोरे॥
से जे रसवती, करलो प्रणति, यशोदा-रोहिणी पाय॥'' (पदकल्पतरु)

स्वामिनी हैं भक्तिलता। चरणों पर मस्तक रखकर माँ यशोदा को प्रणाम किया। माँ ने उन्हें उठाकर कस कर वक्ष से लगा लिया। चिबुक से हाथ लगाकर पुत्रवधू की तरह ही बड़ा लाड़ किया, मुँह देखा, चुम्बन किया और मस्तक सूँघा। माँ के विशुद्ध वात्सल्यस्नेह से स्वामिनी मानो गल गई हैं। माँ के वक्ष से लगी हुई हैं। डबडबाई आँखों से, गद्गद कण्ठ से कहती हैं-'माँ ! मैं तो तुम्हारी ही हूँ।' तत्त्वतः श्रीकृष्ण की ही आनन्दिनी शक्ति और श्रीराधा आदि गोपसुन्दरियों को परोढ़ा अभिमान देकर योगमाया ने व्रज में मधुररस को पुष्ट किया।

दूसरे के घर वास किये बिना प्रणयिनी रमणी दुर्लभ नहीं होती। दुर्लभ हुए बिना मिलन में बाधा नहीं रहती। बाधा न रहने से मिलन-सुख का चमत्कारित्व नहीं बनता। परोढ़ा न होकर भी वे सब रसपुष्टि के निमित्त श्रीकृष्ण के निकट परोढ़ा हैं। शास्त्रविधि के अनुसार अग्नि को साक्षी बनाकर मन्त्रपाठ के बीच किसी गोप के साथ उन लोगों का विवाह नहीं हुआ। फिर भी लोक प्रसिद्धि है कि अभिमन्यु, गोवर्धन आदि गोप श्रीराधा, चन्द्रावली आदि के स्वामी हैं। सिर्फ इसी लोकप्रसिद्धि के कारण कृष्णकान्ता गोपियों को 'गोपवधू' कहा जाता है। यह अघटन घटना घटित की है भगवती योगमाया ने! कृष्णकान्ता व्रजवधूओं के विवाह की-अन्य गोपों के साथ विवाह की मूलत: कोई सत्ता नहीं, किन्तु उसका कार्य है। सत्ताहीन का कार्य मरीचिका की तरह केवल भ्रम है। निद्रित पुरुष के स्वप्न-दर्शन की भाँति। नित्यसिद्धाओं का परोढ़ा भाव उसी प्रकार स्वाप्निक है। योगमाया ने स्वप्न दिखाया है। ⁎ परोढ़ा प्रणयिणी परगृह में बैठकर प्रेमी के लिये रो-रोकर दिन बिताती है। कभी सुयोग होता है, तभी मिलन होता है। उस मिलन में बड़ा ही सुख है। उसी सुख, उस जाति के रसनिर्यास के आस्वादन की गोविन्द की बड़ी इच्छा है। तभी योगमाया की यह चतुराई।

''मो-विषये गोपीगणेर उपपतिभावे। योगमाया करिबेक आपन प्रभावे॥
आमिह ना जानि ताहा-ना जाने गोपीगण। दोंहार-रूप-गुणे दोंहार नित्य हरे मन॥
धर्म छाड़ि रागे दोंहे करये मिलन। कभु मिले, कभु ना मिले, दैवेर घटन॥
एइ सब रसनिर्यास करिबो आस्वाद। एइ द्वारे करिबो सर्वभक्तेरे प्रसाद॥
व्रजेर निर्मल राग शुनि भक्तगण। रागमार्गे भजे जेनो छाड़ि धर्मकर्म॥''
(चै० च० आदि०-परि० ४)

परकीयभाव के चरम उत्कर्ष से युक्त सर्वलीला-मुकुटमणि रासलीला के प्रसंग में श्रीपाद शुकमुनि ने कहा है-

''अनुग्रहाय भक्तानां मानुषं देहमाश्रित:।
भजते तादृशी क्रीड़ा या श्रुत्वा तत्परो भवेत्॥ (भा०-१०/३३/३६)

''सभी भक्तों के प्रति अनुग्रह प्रकट करने के लिये भगवान् वैसी सर्वचित्ताकर्षक लीला प्रेम-पूर्वक सम्पादित करते हैं। उसकी कथा सुनकर जीव समूह भगवत्-परायण हुआ करता है।'' व्रज-सुन्दरियों के साथ भगवान् की ऐसी परकीयभावमय लीला उनके स्वयं के, आनन्दिनी शक्तियों के, व्रजपरिकरों के और विश्व के समस्त जीवों के परमानन्द एवं कल्याण के लिये ही अनुष्ठित हुआ करती है। जो भी हो, वात्सल्यस्नेह की मूर्ति माँ यशोदा ने स्वामिनी को अश्रुधाराओं से सिंचित करते-करते आशीर्वाद किया-'शशिमुख! शरदां शतं जयैव सुखय मनो नयने ममेत्युदित्वा।' (कृष्णभावनामृतम्)-'हे चन्द्रमुखि! तुम शतायु हो और इसी प्रकार नित्य मेरे नयन-मन को सुख पहुँचाओ।' सखी-मंजरियों ने माँ के चरणों में प्रणाम किया, तो उन्होंने राधारानी की तरह ही सबको आलिंगन-आशीर्वाद आदि से सुखी किया। अनुपम वात्सल्य-लतिकारूपी व्रजेश्वरी की वात्सल्य-पुष्पमाला से सुशोभित होकर सखियों सहित श्रीमती अत्यन्त मनोहर हुईं! स्नेहविगलित चित्त माता यशोदा ने श्रीमती को उत्तम आसन पर बिठाकर किंचित् मधुर कोमल मोदक आदि मँगाकर खाने के लिये अनुरोध किया तो स्वामिनी लज्जा से झुक गई। तब माँ धनिष्ठा को उन सबके भोजन का भार देकर अन्य कार्य से चली गईं।

⁎ गोपालचम्पू के पुर्वचम्पू पंचदश पूरण में वृन्दा-पौर्णमासी संवाद।

प्रक्षाल्य पादकमले कुशले प्रविष्टा, नत्वा व्रजेशमहिषीप्रभृतीर्गुरूस्ताः।
हा कुर्वती रसवतीं रसभाक् कदा त्वं, सं मज्जयिष्यसितरां सुखसागरे माम्?६२॥

अन्वय-कुशले (हे पाककर्मणि नैपुण्यवति! वा मंगलमयि!) हा कदा त्वं पादकमले प्रक्षाल्य ताः व्रजेशमहिषी प्रभृति गुरूः नत्वा प्रविष्टा (रन्धनालये प्रविष्टा सती) रसवतीं (रन्धनप्रक्रियां) कुर्वती रसभाक् (श्रीकृष्णं प्रति रसभाक् कटाक्षादिकं विस्तारयन्ती सती) मां सुखसागरे संमज्जयिष्य-सितराम्?६२॥

अनुवाद-हे पाककर्मनिपुणे श्रीराधे! हाय! तुम पैर धोकर व्रजेश्वरी आदि गुरुवर्ग को प्रणाम कर रन्धनशाला में प्रवेश कर रसोई कर श्रीकृष्ण के प्रति कटाक्षपात करते-करते मुझे सुख-सागर में कब मग्न करोगी?६२॥

पाकशाला में रसास्वादन

परिमलकणा व्याख्या-स्वरूप के आवेश में सेवा का स्फुरण, विराम की स्थिति में प्रार्थना। 'हे कुशले! मंगलमयि स्वामिनी! चरण-प्रक्षालन कर व्रजेश्वरी आदि गुरुजनों को प्रणाम कर तुम पाकशाला में कब प्रवेश करोगी?' किंकरी ने श्रीमती के वस्त्र-भूषण आदि बदल कर रसोई के अनुरूप वेशभूषा पहना दी है। लीला की सुस्पष्ट अनुभूति है। स्फुरण होने पर भी विस्फूर्ति, साक्षात्कार-जैसा। जब स्फूर्ति में विराम आता है, तो लगता है कि यह साक्षात्कार नहीं-स्फुरण है। तब हाहाकार के साथ प्रार्थना करते हैं। पुनः साक्षात्कार-भ्रम या विस्फूर्ति आती है। यही सिलसिला चल रहा है। भाग्यवान् सामाजिक को यह पढ़कर या श्रवण कर लगेगा कि अहो! धन्य हैं श्रीपाद दास गोस्वामि! व्रजमुकुटमणि श्रीकुण्डतट पर पड़कर देह-दैहिकादि के अभिनिवेश से रहित हो अखण्ड स्वरूपावेश में रातदिन मिलन-विरह के महा उच्छ्वास से भरी अपूर्व युगल-माधुरी आस्वादन करने का कैसा सौभाग्य प्राप्त किया है! उनकी करुणा से क्या कभी मुझे भावसिन्धु की एक बूँद प्राप्त होगी?

भोजन के पश्चात् (माँ) श्रीमती को रसोई में ले जाकर बोलीं-'हे राधे! तुम साक्षात् कमलास्वरूपिणी हो। तुम नित्य मेरे भवन पर कृपादृष्टि डालती हो, इसी से मेरा भण्डार अक्षय बना हुआ है। रन्धन के लिये आवश्यक किसी भी द्रव्य का अभाव नहीं। जो चाहिये, माँग लेना।' यशोदामाँ की आज्ञा पाकर प्रियतम के लिये रसोई करने के लिये श्रीमती राधारानी उल्लासवती हो उठीं। और तभी स्फूर्ति में विराम आ गया! श्रीपाद प्रार्थना कर रहे हैं-'इस रूप में तुम्हें कब देख पाऊँगा?'

''सेइ नन्दीश्वरे व्रजपतिर आलये।
निज प्रणयिणीगणे परिवृत हये॥
उपस्थित हैबे जबे तोमा देखि दूरे।
आगुसरि धनिष्ठा जाइबे त्वरा करे॥
व्रजेश्वरी निकटेते अतिहृष्ट हैया।
(कबे) आमार सम्मुखे हाय! जाबे तोमा लैया॥''६१॥

''विभावयति उत्पादयतीनि विभाव'' (अलंकारकौस्तुभ)-विभाव सहृदय सामाजिक (रसास्वाद योग्य) के भक्तिवासना में डूबे भाव को जगा देता है। श्रीपाद दासगोस्वामि सामाजिक के भाव को ठीक-ठीक उत्पादन * नहीं कर रहे, किन्तु वासना के रूप में स्थित भाव को (बीज में जलसिंचन की तरह) अंकुरित अथवा अंकुर-आविर्भाव के योग्य कर रहे हैं। समवासन (समान भाव वाला) सहृदय सामाजिक दासगोस्वामी की बात जितनी पढ़ेगा या सुनेगा, उतना ही उस जाति का अंकुर क्रमशः पुष्ट होगा। सामाजिक के चित्त में त्रिभाव की यही कार्यकारिता है।

''आसि दासीगण, राधार चरण, धोयालो शीतल नीरे।
अति सुकोमल, ओथल-कमल, मुछालो पातल चीरे॥
रोहिणी सहिते, रन्धन करिते, बसिलो राजार झि।
सब सखीगण, जोगाय जोगान, शेखर जोगाय घि॥''

रोहिणीदेवी ने श्रीराधा को कन्या की तरह स्नेहपूर्वक आशीर्वाद देकर कहा-''पचन-चतुरता रतासि जाते! पचमनसा तब भाति यद् यथा तत्'' (श्रीकृष्णभावनामृतम्)-''वत्से! तुम रन्धनकार्य में अति सुचतुर हो, तुम्हारे मन में जो आये, उसी के अनुरूप पाक करो।'' यह सुनकर स्वामिनी लज्जा से झुक गईं, तो रोहिणीदेवी ने उन्हें बड़े प्यार से चूल्हे के पास रखी शुभ्रवस्त्र से ढकी स्वर्ण चौकी पर बिठाया। अगरु, चीड़, देवदारु आदि सुगन्धि काष्ठ से चूल्हा जल रहा है। सामने रन्धन की विविध सामग्री सुसज्जित है। किंकरी प्रयोजन के अनुसार राधारानी को सब ला-लाकर दे रही हैं।

''ज्वलन-कलन-पात्रधारणोन्नत्यवनति-मूर्छन-दर्विचालनाद्यैः।
त्रिवलिकुच-भुजां स-कम्पचेलोच्चलनवशादुदपादि यस्तदास्याः॥''

(कृ० भा०-५/६४)

''श्रीराधा रन्धन के लिये बैठ गई हैं, तो चूल्हे के नीचे आग जल रही है कि नहीं-कभी यह देखती हैं, कभी पाक-पात्र हाथ में लेती हैं, कभी उसे उठाती हैं, कभी यह देखकर कि पाक पूरा हो गया उसे चूल्हे से उतार कर रखती हैं। कभी छौंक लगाती हैं, तो कभी कलछी चलाती हैं। इन कार्यों में उनकी त्रिवली (नाभि के ऊपर के तीन बल), कुचयुगल, भुजायें, कन्धे घन-घन काँपने लगे और वस्त्र के उच्छलन (सरकने-उड़ने) से उनकी अनिन्द्यसुन्दर रूपमाधुरी रह-रहकर उद्भासित होने लगी।''

तुलसी कहती हैं-'तुम रसवति हो, पाकशाला को भी रसवती बनाकर मुझे सुखसागर में डुबाओगी। पाकशाला में रसास्वादन के लिये क्या है? श्यामसुन्दर स्नान-वेषभूषा के पश्चात् अपने भजनकक्ष में 'राधानाम' और 'राधामन्त्र' जपते हैं। माता-पिता ने अपने गोपाल को भागुरि मुनि से नारायण-मन्त्र दीक्षा दिलाई है। गोपाल के कल्याण और अरिष्टनाश के लिये माँ कहती हैं-'जा गोपाल, भजनकक्ष में इष्टमन्त्र जप ले।' श्रीकृष्ण सोचते हैं-'मैं किसका मन्त्र जपूँगा?''''आमा हैते गुणी बड़ो जगते असम्भव। एकलि राधाते ताहा करि अनुभव॥''

---

* श्रीपाद कवि कर्णपूर ने जो 'उत्पादन' कहा है, वह नायक-नायिका के सम्बन्ध में ही विशेष रूप से प्रयुक्त है।

(चै० च०) अतएव वे स्वामिनी का भजन करते हैं। वे सभी समय के लिये उनकी अभीष्ट हैं। श्रीपाद प्रबोधानन्द सरस्वती ने लिखा है-''कालिन्दीतट-कुंजमन्दिरगतो योगीन्द्रवद्यत्पदज्योतिर्ध्यानपरः सदा जपति यां प्रेमाश्रु-पूर्णो हरिः'' (राधारससुधानिधि-९६)-''यमुनातटस्थित कुंजमन्दिर में योगीन्द्र की तरह श्रीराधा की पदनखज्योति का ध्यान करते-करते श्रीहरि प्रेमाश्रुपूर्ण नेत्रों से सात्त्विकभाव से व्याकुल होकर राधानाम जपते हैं।'' राधानाम सुनते ही विह्वल हो जाते हैं। कहते हैं-

''सखि! राधानाम केबा शुनाइले। शुनि मोर प्राण जुड़ाइले॥
ओइ नामे आछे कि माधुरी। श्रवणे रहलो सुधा भरि॥
कतो नाम आछये गोकुले। हेनो हिया ना करे आकुले॥
चिते निति मूरति विकाश। अमिया-सागरे जेनो वास॥
देखिते नयने लागे साध। ए यदुनन्दन मन काँद॥''

यह सौभाग्य और किसी कान्ता को प्राप्त नहीं। सब भूल सकते हैं, पर उन्हें नहीं। ऐसे भगवान् ही हम लोगों के उपास्य हैं। वे लीलाविलासी हैं। भारहरण, असुर-संहार आदि कार्य विष्णु के हैं। विष्णु के द्वारा वे ये सब करते हैं। ''कृष्ण करे विष्णुद्वारे असुर-संहारे'' (चै० च०)। ये हैं निश्चिन्त, धीरललित। कुंज-कुंज में श्रीराधा के साथ विहार करते हैं। खेलते-खेलते वृक्ष-लताओं में प्रेम का संचार करते हैं। वंशीवादन से शुष्क वृक्ष को करते हैं मुंजरित (पल्लवित)। पत्थर गला देते हैं। हम लोग विलास से बाहर कर अपने उपास्य भगवान् को नहीं देखेंगे। श्रीमन्महाप्रभु गम्भीरा में श्रीस्वरूपदामोदर और रामानन्द के गलों से लिपटकर रो रहे हैं। उनके भाव के अनुरूप श्रीकृष्णकर्णामृत, गीतगोविन्द के श्लोक या विद्यापति-चण्डिदास के पद गाने पर ही विरहतप्त प्राणों को शीतलता मिलती है!

''चण्डिदास विद्यापति, रायेर नाटक-गीति, कर्णामृत श्रीगीतगोविन्द।
स्वरूप-रामानन्द सने, महाप्रभु रात्रिदिने, गाय शुने परम आनन्द॥'' (चै० च०)

महाराज प्रतापरुद्र ने गोपीगीत के श्लोक पढ़कर ही प्रभु की कृपा प्राप्त की। स्वयं आस्वादन कर विश्व के साधकों को शिक्षा दे रहे हैं-गोपीजनवल्लभ श्रीगोविन्द ही हमारे आराध्य हैं।

भजनकक्ष में राधानाम जपते-जपते श्रीराधा के दर्शन के लिये श्रीकृष्ण के प्राण व्याकुल हो उठे। पाकशाला के पास से निकल रहे हैं। गवाक्ष में से झाँक कर देख रहे हैं। आहा कैसी माधुरी है! स्वामिनी रसोई कर रही हैं। सिर का कपड़ा सरक गया है। वेशभूषा अस्तव्यस्त है। आग के पास बैठने से स्वर्णमुख लाल हो गया है। गण्डस्थल पर पसीने की बूँदों की कैसी शोभा! श्याम के चरण आगे नहीं बढ़ते। ''पादौ पदं न चलतस्तव पादमूलात्''-यही अवस्था! ध्यान की वस्तु मिल गई। दर्शन-आनन्द से श्याम के नेत्र फैल जाते हैं। हठात् स्वामिनी की दृष्टि पड़ती है। लज्जा के मारे सिर पर कपड़ा भी नहीं रख पा रहीं हैं। तुलसी को इंगित करती हैं, तो वह सिर ढक देती हैं। तुलसी को आँखों की भंगिमा से ही धमक देती हैं-'तू ने देखा नहीं? बताया क्यों नहीं?' तुलसी भी आँखों के इशारे से उत्तर देती हैं-'मैंने भी नहीं देखा, मसाला पीस रही थी।' असल बात यह कि तुलसी पाकशाला का रस आद्योपान्त आस्वादन कर रहीं हैं- नागरेन्द्र की प्रार्थना पर श्रीमती को कुछ

माधवाय नतवक्त्रमादृता, भोज्यपेय-रससंचयं क्रमात्।
तन्वती त्वमिह रोहिणीकरे, देवि फुल्लवदनं कदेक्ष्यसे?६३॥

अन्वय-देवि! इह (नन्दालये) माधवाय (माधवतृप्तिजनकं) क्रमात् भोज्य-पेय-रससंचयं (आदौ-भोज्यं ततः पेयमित्याद्यनुक्रमेण रससमूहं) नतवक्त्रम् आदृता (सादरा सतौ नतमुखं यथास्सयात्तथा) रोहिणीकरे तन्वती (विस्तारयन्ती) त्वं कदा फुल्लवदनम् ईक्ष्यसे (द्रक्ष्यसे) ?६३॥

अनुवाद-हे देवि श्रीराधिके! तुम नन्दालय में नतवदन हो श्रीकृष्ण की तृप्ति के लिये यथाक्रम से भोज्यपेय आदि सुरसाल द्रव्य खिलते चेहरे से यत्नपूर्वक रोहिणी के हाथों अर्पित कर रही हो-मैं यह दृश्य कब देख पाऊँगा?६३॥

रससंचय अर्पण

परिमलकणा व्याख्या-पिछले श्लोक में पाकशाला में एक-दूसरे को देखकर राधाश्याम दोनों ही के मन में अपार आनन्द का उद्रेक हुआ। उससे पाकशाला तक रसवती हो गई! 'इस प्रकार तुम मुझे सम्यक्रूप से सुख-सागर में कब निमज्जित करोगी?' सुख की यह कामना भी उन दोनों ही के सुख में लीन होती है। भक्ति का प्रभाव ही ऐसा है। 'तुम लोगों के सुख में मैं सुखी होना चाहता हूँ।' विश्व में सभी सुख चाहते हैं। यहाँ तक कि निष्काम प्रेमियों में भी कुछ न कुछ सूक्ष्म आत्मसुख की गन्ध रहती है। इसका अत्यन्त अभाव होता है केवल राधा-किंकरी में। इन लोगों की निष्कामता है चरम। उसी राधदास्य की उपासना करते हैं गौड़ीय वैष्णव। श्रीराधाश्यामसुन्दर सुखी कैसे होंगे, इसी ओर लक्ष्य रख साधक को अग्रसर होना पड़ेगा। ध्यान रखना होगा कि कामना का दाग भजन में न रहे। भजन-काल में प्रतिष्ठा की आशा सहज ही नहीं त्यागी जाती। प्रतिष्ठाशा चण्डालिनी हृदय में रहेगी, तो वहाँ साधुप्रेम क्यों आयेगा? प्रतिष्ठाशा से डरना होगा, जैसे श्रीपाद माधवेन्द्रपुरी

कहा नहीं। नयनों का नयनों से मिलन। पाकशाला रसवती। वहाँ भी रस-प्लावन (बाढ़)। आँखों ही आँखों स्वामिनी बता रही हैं-'छोटी माँ हैं, इस समय जाओ!' नागर भी इशारे से विनती करते है-'और दर्शन नहीं मिलेंगे?' स्वामिनी इंगित करती हैं-'हाँ (मिलेंगे)।' आँखों के इशारे पर नागर मुग्ध हैं। सोचते हैं-'आहा! मेरे लिये कितना परिश्रम कर रसोई कर रही है। आग के पास रहने से मुँह लाल हो गया है। पसीनों से भरा वदन दासी पोंछ दे रही है।' दृष्टि-विनिमय कितना मधुर है! तभी तुलसी के लिये पाकशाला रसवती है। स्फूर्ति में विराम आता है और प्रार्थना आरम्भ होती है।

''व्रजेन्द्र-महिषी आदि जतो गुरुजने।
हे कल्याणि! नमस्करि सबार चरणे॥
कोमल चरणपद्म प्रक्षालन करि।
पाकशाले प्रविष्ट हइबे त्वरा करि॥
पाककाले निजकान्ते करिया दर्शन।
(कबे) सुखेर सागरे डुबाइबे मोर मन॥''६२॥

डरते थे। "प्रतिष्ठार भये पुरी गेला पलाइया। कृष्णप्रेम-संगे प्रतिष्ठा चले लाग लैया॥" (चै० च०)। निष्कामभजन का जो आनन्द है, वह सकाम उपासक की उपलब्धि का विषय नहीं। सकाम भजन में दु:ख है। कामना की गन्ध रहने से यथार्थ आनन्द नहीं मिलता।

रन्धन समाप्त हो गया है। स्वामिनी विश्राम कर रही हैं। किंकरी रन्धन के वस्त्र उतरवा कर हाथ-पैर आदि भीगे वस्त्र से पौंछकर पंखा झल रही हैं। धनिष्ठा एक ग्लास शर्बत लाई हैं। 'प्रिय सखि! थोड़ा शर्बत पीओ।' सुधा-मिश्रित शर्बत। स्वामिनी पी रही हैं। उसके आस्वादन से आँखें बन्द हुई जाती हैं। तत्पश्चात् ताम्बूल सेवा।

इधर सभी भोजन करने बैठे हैं। स्वामिनी ललाट पर थोड़ा घूँघट किये भण्डार से भोज्य सामग्री ला-लाकर रोहिणी माँ को पकड़ा रही हैं। स्वामिनी को पहली बार देखते ही नागर विमोहित हो जाते हैं। माँ अरुचि की बात सोचकर चिन्तित हो गई हैं।

"रामेर जननी, दिछेन आपनि, राधिका राँधिला जतो।
सुगन्धि ओदन, विविध व्यंजन, ताहा वा कहिबो कतो॥
विधि अगोचर, जतो उपहार, दिछेन रोहिणी माय।
राधार वदन, देखि अचेतन, हइला नागर राय॥
अरुचि देखिया, आकुला हइया, कहये नन्देर रानी।
राधा रसवती, कर्पूर मालती, तोमार लागिया आनि॥
तुमि ना खाइले, राइ न आसिबे, स्वरूप कहिलाम तोरे।
विशाखा ललिता, आर कुन्दलता, ठारिया कहिछे मोरे॥
मायेर वचने, पाओल चेतन, नागर शेखर कान।
राइये सुख दिया, आकण्ठ पूरिया, करलो भोजन पान॥" (महाजन)

स्वामिनी नतमुख हैं! लज्जावती। बलदेव हैं, माँ व्रजेश्वरी हैं। लज्जा से वदनमण्डल लाल है। नूपुर-किंकिणी धीरे-धीरे बज रहे हैं। श्यामसुन्दर के लिये भोज्य-सामग्री कितने प्यार से ला रही हैं। रोहिणी माँ के हाथों में पकड़ा-पकड़ा कर खाली पात्र लेकर चली जाती हैं। आने-जाने की कैसी अपूर्व भंगिमा (अदा)! "रससंचयं तन्वती"-रस संचय विस्तार कर रही हैं। अमृत को भी लजाने वाले भोज्य-पेय आदि द्रव्यों के साथ भावानुरूप रससमूह छिटका है! श्रीकृष्ण, सखी-मंजरियाँ, सुबल आदि सखा-इनके लिये खाद्यसामग्री के साथ यथायोग्य मधुररस का विस्तार है। यशोदा, रोहिणी और बलदेव आदि के लिये वात्सल्य रस का विस्तार। कैसा अपूर्व है भोजनरंग!

"रोहिणीनन्दन, करये भोजन, कानुर डाहिने बसि।
बामेते सुबल, सम्मुखे मंगल, सघने उठये हासि॥" (वही)

यशोदामाँ तर्जनी से भोज्य वस्तुएँ दिखाकर कहने लगीं-'हे वत्स! यह द्रव्य बड़ा अच्छा है, यह बड़ा ही मीठा है, यह अति मनोरम है, यह खाओ।' परिहास-पटु मधुमंगल श्रीकृष्ण को भोजन कराने की माँ की चेष्टा और भोजन में श्रीकृष्ण की शिथिलता देखकर व्रजेश्वरी से बोले-'माँ!

भोजने गुरुसभासु कथञ्चि,-ल्माधवेन नतदृष्टि मदोत्कम्।
वीक्ष्यमाणमिह ते मुखपद्मं, मोदयिष्यसि कदा मधुरे माम्?६४॥

कृष्ण तो कुछ भी नहीं खा रहा। इसे हल्के थोड़े-से सुपाच्य चावल और सब्जी दो। घी में पकाये अच्छे-अच्छे द्रव्य मुझे दो। मैं खाकर उसे आलिंगन कर लूँगा, उसी से इसका शरीर पुष्ट हो जायेगा।' मधुमंगल की बात सुनकर सभी हँसते हैं। राधा के वदन-माधुर्य में एक अभिनव रससंचय का आस्वादन प्राप्त कर रहे हैं माधव। राधारानी का मुख प्रफुल्लित है-''फुल्लवदनम्।'' स्वामिनी हैं मर्यादावती। गुरुजन उपस्थित हैं। फिर भी थोड़ा देखे बिना क्या रहा जा सकता है? माधव की तृप्ति के लिये ही समस्त चेष्टाओं का उद्गम है। 'मा'-लक्ष्मी, उनका 'धव' अर्थात् पति। तत्त्व की भित्ति पर रस की प्रतिष्ठा। श्रीकृष्ण स्वयं भगवान्, मूल अवतारी। श्रीकृष्णप्रियाओं में मुख्य श्रीराधा हैं मूल शक्ति। समस्त लक्ष्मियों अथवा भगवत् कान्ताओं की अंशिनी।

''कृष्णकान्तागण देखि त्रिविध प्रकार-। एक लक्ष्मीगण, पुरे महिषीगण आर॥
व्रजांगनारूप आर कान्तागणसार। श्रीराधिका हैते कान्तागणेर विस्तार॥
अवतारी कृष्ण जैछे करे अवतार। अंशिणी राधा हैते तिनगणेर विस्तार॥
लक्ष्मीगण ताँर वैभवविलासांशरूप। महिषीगण वैभवप्रकाश-स्वरूप॥
आकार-स्वभाव भेदे व्रजदेवीगण। कायव्यूहरूप ताँर रसेर कारण॥
बहु कान्ता बिना नहे रसेर उल्लास। लीलार सहाय लागि बहुत प्रकाश॥
तार मध्ये व्रजे नाना भाव-रसभेदे। कृष्ण के कराय रासादिक-लीलास्वादे॥''

(चै० च० आदि०-परि ४)

अथवा 'माँ' - शोभा, उसके पति। अनन्त सौन्दर्य-माधुर्य के निकेतन। श्रीराधा के दर्शन से सौन्दर्य-सिन्धु में प्लावन जग रहा है। सखी-मंजरियाँ ही आस्वादन करती है। एक-दूसरे की शोभा की पुष्टि करती हैं। तभी 'देवि' सम्बोधन। द्योतमाना परमासुन्दरि! श्यामसुन्दर किसी भंगिमा से-दूसरों की दृष्टि से बचकर-स्वामिनी को देख रहे हैं। स्वामिनी भी रोहिणीमाँ को भोज्य-सामग्री देते समय श्याम का मधुर मुख देख लेती हैं।' कितने सुन्दर हैं मेरे प्रियतम!' कोई मिष्टान्न खाकर श्यामसुन्दर कहते हैं-माँ! यह मिष्टान्न क्या कमाल का है!' उस समय रोहिणीमाँ दूसरी जगह परोस रही थीं। यशोदामाँ पुकारकर कहती हैं-'राधे! यह सन्देश (मिठाई) लेकर आओ।' स्वामिनी सन्देश लाई हैं, लेकर खड़ी हैं। माँ कहती हैं-'दो न बेटी!' हृदय में अत्यन्त उल्लास और स्वभाव में लज्जा-स्वामिनी श्यामसुन्दर के पात्र में रखने को होती हैं, तो श्याम हाथ फैलाकर ले लेते हैं। उस समय स्वामिनी के लज्जारंजित फुल्लवदन की कैसी शोभा! तुलसी ने उस माधुर्य का आस्वादन कर लिया है। स्फुरण में विराम आ जाता है। वही फुल्लवदन देखने की लालसा जगती है। प्राण भरे हैं उस लालसा से।

''भोज्य पेय रस सब क्रमेते करिया।
कृष्णसेवा लागि देवि नतमुखी हैया॥
रोहिणीदेवि के दिवे प्रफुल्लवदने।
ताहा आमि कबे हाय! हेरिबो नयाने॥''६३॥

अन्वय–मधुरे! इह (नन्दालये) गुरुसभासु भोजने माधवेन नतदृष्टि कथञ्चित् वीक्ष्यमाणम् (श्रीकृष्णेन कथञ्चित् कष्टसृष्ट्या नतदृष्टि यथास्यात्तथा वीक्ष्यमाणं) ते मुखपद्मं मदोत्कं (मदेन हर्षेण उत्क कृष्णस्य सकटाक्षाननदर्शने उत्सुकं) कदा माँ मोदयिष्यति (हर्षयिष्यति) ?६४॥

अनुवाद–हे मधुरे! गुरुजनसभा में भोजन के लिये बैठकर श्रीकृष्ण नतमुख हो अति कष्ट के साथ तुम्हारा जो मुखकमल थोड़ा–सा देख रहे हैं, और जो श्रीकृष्ण का कटाक्षयुक्त वदन देखकर हर्ष से अत्यन्त उत्सुक हो गया है–तुम्हारा वही मुखकमल मुझे कब आनन्दित करेगा ?६४॥

मधुररसवती का मुखकमल

परिमलकणा व्याख्या–'हे मधुरे! गुरुजनों की सभा में माधव द्वारा दृश्यमान होने पर तुम्हारी कितनी शोभा होगी!' स्वामिनी रोहिणीमाँ के हाथ में देती हैं और वे परिवेषन कर रही हैं। माँ हैं, बलदेवचन्द्र हैं! किसी तरह श्यामसुन्दर ने उनके दर्शन कर लिये हैं। स्वच्छन्द दर्शन यहाँ नहीं हो सकते, किन्तु उस थोड़े–से दर्शन से ही श्याम स्वामिनी के चेहरे पर उत्कण्ठा के सारे भाव अनुभव कर लेते हैं।

''राधिकार हस्तस्पर्शे सर्वान्न–व्यंजने। भोजन करेन कृष्ण अमृत–आस्वादने॥
स्वादु पाइया निज–नेत्रभृंग पाठाइया। राइ–मुखपदम्–मधु पिये हृष्ट हैया॥
राधिकाह निज–नेत्रकटाक्ष–प्रणाली। पाठाइया पिये कृष्णलावण्य सकलि॥
कृष्ण–मुख–मधुरिमा देखि सुवदनि। हरिषे व्याकुल–चित्ते किछुइ ना जानि॥''

(यदुनन्दन ठाकुर)

स्वामिनी श्याम के थोड़े–से दर्शन पाकर ही कितनी उत्कण्ठित हैं!''मदोत्कं'', हर्षेण उत्सुकं''–आनन्दपूर्ण उत्कण्ठा की छाप है स्वामिनी के चेहरे पर। श्रीपाद ने स्फूर्ति में हर्ष–उत्सुका स्वामिनी के श्रीमुख के भाव आस्वादन किये हैं। आचार्यचरण के आनुगत्य में साधक अपनी स्मृति में स्वामिनी के वदनमण्डल का माधुर्य आस्वादन करेंगे। तीव्र स्मरण में अभीष्ट के सान्निध्य की उपलब्धि होती है। 'स्मरण कर रहा हूँ, यह याद नहीं रहता। ध्यान के विराम में ध्येय वस्तु के साक्षात्कार के लिये व्याकुलता उत्पन्न होती है। जितना आस्वादन, उतनी व्याकुलता! किंचित् अनुभव प्राप्त करते ही तृप्ति का आ जाना उचित नहीं। पिपासा–उत्कण्ठा जितनी बढ़ेगी, प्राप्ति उतनी ही निकट आयेगी। श्रीरूप–रघुनाथ की उत्कण्ठा देखिये! लगता है जैसे वक्ष विदीर्ण हुआ जाता है! रघुनाथपाद के विरह–शोकाकुल उत्कण्ठामय कातर क्रन्दन की ध्वनि सुनकर श्रीकुण्डतीर स्थित पशु–पक्षियों ने भी संवेदना व्यक्त करने के बहाने रोदन किया था! स्मरण, ध्यान, स्वप्न आदि की अपेक्षा स्फूर्ति का आस्वादन अधिक होता है। स्फूर्ति का अनुभव स्पष्ट होता है। आँखों से निहारकर ही देखा जाता है। आँखें बन्दकर ध्यान का आस्वादन होता है। श्रील विल्वमंगल ठाकुर वृन्दावन आकर जिधर देखते हैं, उधर ही कृष्ण हैं। पकड़ने को होने हैं तो कुछ हाथ नहीं लगता, तब समझे कि यह साक्षात्कार नहीं, स्फुरण है। उनकी स्फूर्ति कितनी सुस्पष्ट है।

''मौलिश्चन्द्रकभूषणो मरकतस्तम्भाभिरामं वपु–
र्वक्त्रं चित्रविमुग्धहासमधुरं वाले विलोले दृशौ।
वाचः शैशवशीतला मदगजश्लाघ्या विलासस्थिति–
र्मन्दं मन्दमये क एष मथुरावीथीं मिथो गाहते॥'' (श्रीकृष्णकर्णामृतम्–५७)

''सिर पर मोरपंख, श्रीअङ्ग मरकतमणि-स्तम्भ की तरह नयनाभिराम, मुख चित्रमुग्ध हास्यमधुर, नेत्र भावविलास से सतृष्ण कटाक्षयुक्त, वाक्य कैशोरशीतल, गतिविन्यास मत्तगज से भी अधिक श्लाघनीय-यह कौन पुरुष मृदुमन्द-विलास-भंगिमा से वृन्दावन में प्रवेश कर रहा है।'' लगता है कि विल्वमंगल श्रीकृष्णदर्शन कर रहे हैं, पर यह प्रकृत दर्शन नहीं-यह विस्फूर्ति है। निष्ठापूर्वक भजन करने से साधक को भी न्यूनाधिक अनुभव प्राप्त होगा। भजन से नया जीवन गठित होगा। साधक अपनी परीक्षा स्वयं ही कर सकते हैं। भजन के प्रभाव से वे अवश्य ही स्वामिनी की आहट पायेंगे। वे निकट आकर सेवा ग्रहण करेंगी। वे तो अपार करुणासागररूपिणी हैं; मंजुस्वभाव एवं भक्तवांछाकल्पलता हैं। श्रीपाद प्रबोधानन्द सरस्वती ने लिखा है-

''मंजुस्वभावमधिकल्पलता-निकुंज, व्यंजन्तमद्भुत-कृपारसपुंजमेव।
प्रेमामृताम्बुधिमगाधमवाधमेतं, राधाभिधं द्रुतमुपाश्रय साधु चेतः॥''

(राधारससुधानिधि-२८)

''हे साधुचित्त! अति मनोहर-स्वभाव, कल्पलता की निकुंजस्वरूप, अद्भुत कृपारसपुंज की प्रकाशक, प्रेमामृत की अगाध-अबाध सिन्धुस्वरूप, राधा नामक परम वस्तु का शीघ्र आश्रय लो।'' उनकी प्राप्ति के लिये ही साधन-भजन है, उनकी प्राप्ति के लिये ही श्रीगुरु-पदाश्रय। गौड़ीय वैष्णव का हृदय सर्वदा ही राधारानी के लिये रोयेगा। ''हेम-गौरी तनु राइ, आँखि दरशन चाइ, रोदन करिबो अभिलाष'' (प्रे० म० च०)।

षड्रस की भोज्यसामग्री होती है, किन्तु हमलोगों की सात प्रकार की; साथ में शृंगार-रस भी है। स्वामिनी के हाथों पकाये द्रव्य। श्याम उनके करकमलों के स्पर्श का अनुभव प्रत्येक द्रव्य में कर रहे हैं। भोज्य-पदार्थों में सप्तम रस के आस्वादन का स्पष्ट अनुभव सखीमंजरियों को भी मिल रहा है। अखिलरसामृतमूर्ति रसराज श्रीकृष्ण की रसरूपता का अनुभव अपने-अपने भाव के अनुसार ही हुआ करता है। मथुरा में कंस के रंगालय में प्रविष्ट श्रीकृष्ण को दर्शकों ने अपने-अपने भाव के अनुसार ही देखा था-''मल्लानामशनिः'' (भा०-१०/४३/१८) श्लोक में वर्णित है। श्रीधर स्वामिपाद ने इस श्लोक की व्याख्या-भूमिका में लिखा है-''तत्र च शृंगारादिसर्वरसकदम्बमूर्तिर्भगवान् तत्तदभि-प्रायानुसारेण वभौ न साकल्येन सर्वेषामित्याह मल्लानामिति'-शृंगार आदि सर्वरसकदम्ब मूर्ति भगवान् दर्शकों के अपने-अपने अभिप्राय के अनुसार ही ग्राह्य हुए थे, पर उनकी उस सर्वरसकदम्बमूर्ति को कोई भी अनुभव नहीं कर सका।

स्वामिनी रोहिणीमाँ के हाथों में भोज्य-पदार्थ पकड़ा-पकड़ा कर रससंचय बिखेर रही हैं! देने-पकड़ाने की भंगिमा में हाथ की भंगिमा कैसी अपूर्व है! श्यामसुन्दर विभोर हैं। स्वामिनी के हृदय का भाव आस्वादन कर रहे हैं। पाने के लिये उत्कण्ठित हैं। 'ते मुखपद्मम्' कहा गया है। माधव के नयन हैं भृंग की तरह। चंचल भृंग पिपासित प्राणों से स्वामिनी के मुखकमल का मधु पी रहे हैं। नतवदन होने के कारण दृष्टि छोटी है, अधिक समय नहीं टिक सकती, उसी से सारा पी रहे हैं। मुखकमल के साथ नयनकमलों का मकरन्द-आस्वादन भी निहित है। चार नयनों का मिलन हुआ। दृष्टि-भंगिमा से ही प्रार्थना की। स्वामिनी ने भी दृष्टि द्वारा आश्वासन दिया। उत्कण्ठा के कारण भोजन में अरुचि हो गई थी। आश्वासन पाकर भोजन करने लगे। दाऊजी महाराज (बलदेव) का उस ओर ध्यान नहीं। उन्हें और माँ को धोखा देकर कृष्ण स्वामिनी को देख रहे हैं। माधुर्य का

अयि विपिनमटन्तं सौरभेयीकुलानां, व्रजनृपतिकुमारं रक्षणे दीक्षितं तम्।
विकलमति-जनन्या लाल्यमानं कदा त्वं, स्मितमधुरकपोलं वीक्ष्यसे वीक्ष्यमाणा ?६५॥

अन्वय-अयि (श्रीराधिके!) सौरभेयीकुलानां रक्षणे दीक्षितं (गृहीतव्रतं) विपिनम् अटन्तं (वनं गच्छन्तं) विकलमति जनन्या लाल्यमानं (व्याकुलचित्त यशोदया लाल्यमानं) तं व्रजनृपति-कुमारं (श्रीनन्दनन्दनं) वीक्ष्यमाणा (दृश्यमाना) त्वं कदा स्मितमधुरकपोलं वीक्ष्यसे ?६५॥

अनुवाद-हे श्रीराधिके! जिन व्रजेन्द्रनन्दन ने गायों के रक्षण का व्रत लिया है-उस कार्य के लिये वन-गमन परायण और व्याकुल-चित्त-माता यशोदा द्वारा लाल्यमान। दुलार किये, लालित) - उन्हीं कृष्ण द्वारा दृश्यमान तुम उन्हें हास्यमधुर कपोल लिये देखोगी। मैं यह दृश्य कब देख पाऊँगा ?६५॥

अपूर्व प्लावन! स्वामिनी ने आश्वासन देकर श्याम के प्राणों को शान्ति पहुँचाई। आचार्यपादगण का लक्ष्य राधामाधव का मिलन ही रहता है, कारण-मिलनभूमि पर ही उनकी चिर-आकांक्षित सेवा प्राप्त होती है।

''युगल-चरण सेवा, युगल-चरण ध्येबा,
युगलेइ मनेर पिरीति।
युगलकिशोर रूप, कामरतिगणभूप,
मने रहु ओ-लीला कि रीति॥'' (प्रे० भ० च०)

''वीक्ष्यमाणमिह ते मुखपद्मम्''-'मैं देखना चाहता हूँ, गुरुजनों के सामने वह तुम्हें चतुराई से देखेगा। हे मधुरे! श्याम की दृष्टि का स्पर्श पाकर तुम्हारे गण्डस्थल होंगे प्रफुल्ल। तुम अपने गण्डों पर करोगी उनकी दृष्टि के स्पर्श का अनुभव। हम लोग सभी देखेंगी और समझेंगी। हम लोगों से तुम दोनों की कोई बात छिपी न रहेगी।' जो लोग भाव का वैभव समझते हैं, उनसे श्रीश्रीराधामाधव का कुछ भी छिपा नहीं रहता। दासी के प्रेम की यही अद्भुत वैचित्री है! कुंज में क्या लीला होगी-श्रीराधामाधव के समझने से पूर्व ही दासियाँ जान जाती हैं और कुंज सजा देती हैं। युगल का चातुराक्षिक (चार आँखों का) मिलन। दर्शन कर तुलसी के आनन्द की सीमा नहीं। स्फूर्ति में विराम आने पर प्रार्थना!

''गुरुजन सने, बसिया भोजने,
व्रजेन्द्रनन्दन जबे।
आनत-वदने, अति सावधाने,
तुया मुख निरखिबे॥
से कटाक्ष-सद्म,- कृष्णमुख-पदम्,
हेरि, तब श्रीवदन।
प्रफुल्ल हइबे,- हेरि ताहा कबे,
हृष्ट हबे मोर मन?''६४॥

श्रीकृष्ण की वनगमन की तैयारी

परिमलकणा व्याख्या–श्रीकृष्ण के भोजन के पश्चात् सखियों के साथ श्रीराधा का भोजन, फिर नन्दीश्वर के निकट उद्यान में योगपीठ में मिलन, तत्पश्चात् वनगमन–लीला। लीला का क्रम सर्वत्र ही इसी प्रकार बताया गया है। विरहोन्माद के कारण श्रीपाद को पहले वनगमन की स्फूर्ति हुई है, पीछे हुई है श्रीराधा की भोजन–लीला की। लीला का क्रमपूर्वक यथायथ आस्वादन करते हुए भी प्रार्थना स्फुरण के अनुरूप ही हुई है। श्रीकृष्ण गोचारण को जायेंगे, पर माँ का लालन उन्हें जाने नहीं देगा। माँ व्याकुल हैं, वन जाने को तैयार पुत्र को हृदय से लगाये आँसुओं से भीग रही हैं–

''हियाय आगुनि भरा, आँखि बहे बहुधारा, दुखे बुक विदरिया जाय।
घर पर नाहि जाने, से जना चलिला वने, ए ताप केमने सहे माय॥
ओरे मोर जीवन–दुलालिया।
किवा घरे नाहि धन, केनो बा जाइबे वन, राखाले राखिबे धेनु लैया॥
आगे पाछे नाहि मोरा, हा पुतिर पुत तोरा, आन्धल करिया जाबि मोरे।
दुधेर छाओयाल हैया, वने जाबे धेनु लैया, कि देखि रहिबो आमि घरे॥
ननी–जिनि तनुखानि, आतपे मिलाय जानि, से भये सघने प्राण काँपे।
बाड़व अनल पारा, विषम रविर खरा, केमने सहिबे हेनो तापे॥
कुशेर अंकुर बड़ो, शेलेर समान दड़ो, शुनिते सिञ्चिड़ा पड़े गाय।
शिरीष कुसुम–दल, जिनिया चरणतल, केमने धाइबे हेनो पाय॥
मायेर करुणा वाणी, शुनिया गोकुलमणि, कतो मते मायेरे बुझाय।
विषाद ना करो मने, किछु भय नाहि वने, इथे साथि ए शेखर राय॥''

विकलमति माँ की बातें सुनकर श्रीकृष्ण उन्हें सान्त्वना देते हैं–'माँ, तुमने वृन्दावन के वन देखे नहीं माँ, तभी इस मिथ्या विपदा की आशंका कर रही हो। आनन्दमय वृन्दावन के वृक्षलताओं के गलित पुष्पों से वनमार्ग सदा ही अति मृदुल रहते हैं। वहाँ कंकड़–कंटक कहाँ? हम लोग तो वृक्षों की छाया में सदा ही खेलते हैं, सूर्य की किरणें हमारे अङ्गों को नहीं छूतीं। वहाँ तो वृक्षलताओं पर फूल फूटते हैं। फूल–फूल पर भौंरे गुंजन करते हैं। कोयलें गीत गाती हैं। नाना पक्षियों के कलकूजन से वन सदा आनन्द–मुखरित रहता है। हम लोग अनार आदि वृक्षों पर पके अति मीठे फल खाते रहते हैं। फूलवनों में वंशी बजती है, और तृणक्षेत्र (चरागाह) में गायें चरती हैं। दिन बीतने को होता है, तो वंशी की आवाज पर गायें स्वयं एकत्रित हो जाती हैं। माँ! तुम घर में बाँधकर हम लोगों को इस आनन्द से वंचित करोगी? तुम्हारी चरणधूलि के प्रभाव से वन में कोई विपदा नहीं रहेगी माँ। और विशेष बात यह, गायें मुझे छोड़कर वन जाना ही नहीं चाहती माँ।' सुनकर माँ सोचती हैं–'आहा! मेरा गोपाल यदि वन में इतना आनन्द पाता है, तो जाय।' तब माँ ने अति स्नेह–विह्वल होकर नृसिंहादि मन्त्रों से पुत्र का रक्षा–बन्धन किया और कुछेक सुन्दर शिक्षायें दीं–

''आमार शपति लागे, ना धाइहो धेनुर आगे,
पराणेर पराण नीलमणि।
निकटे राखिहो धेनु, पूरिहो मोहन–वेणु,
घरे बसि आमि जेनो शुनि॥

बलाइ धाइबे आगे, आर शिशु बामभागे,
श्रीदाम-सुदाम सब पाछे।
तुमि तार माझे धाइओ, संगछाड़ा ना होइओ,
माठे बड़ो रिपु-भय आछे॥
क्षुधा हैले चाहि खाइओ, पथपाने चाहि जाइओ,
अतिशय तृणांकुर पथे।
कारु बोले बड़ो धेनु, फिराइते ना जाइओ कानु,
हाथ तुलि देहो मोर माथे॥
थाकिबे तरुर छाय, मिनति करिछे माय,
रवि जेनो नाहि लागे गाय।''

स्वामिनी देख रही हैं। श्याम ने भी उनकी ओर देखा है। तुलसी कहती हैं-'इससे तुम्हारे मुँह पर हँसी फूटेगी। गुलाबी हँसी। फुरफुरी हँसी। गुलाब की पपड़ी की तरह उड़ जाती है। तुम आँखों ही आँखों कह देना-''याद रहे, कुण्डतीर पर मिलोगे।'' तुम्हारा यह मुखारविन्द ही तो है! सब के पास से छुड़ा लाता है और तुम्हारा बना देता है। वह मुखमण्डल कब देखूँगी? केवल मुख ही देखूँगी सो नहीं, पूरी मूर्ति ही देखूँगी। किस भंगिमा से खड़े हैं! तुम्हारे नेत्रों से नेत्र मिलाये, भाव के साथ भाव मिलाये तुम्हारे श्याम को देखूँगी-तभी तो ठीक-ठीक देखना होगा।' मन ही मन जाने कितनी बातें कर रही हैं तुलसी। साधक का आवेश निविड़ होता है, तो अभीष्ट वस्तु को अनुभव करने के लिये पृथक् चेष्टा नहीं करनी पड़ती। साधन की प्रथम अवस्था में स्वरूप के साथ देहावेश मिला होता है। देह-दैहिकादि के सम्बन्ध की बात मन में आती है। भावभक्ति में साधक की जीवन्मुक्ति होती है, देह का आवेश नहीं रहता। प्रेमभक्ति में घना स्वरूपावेश सर्वदा विद्यमान रहता है। लीलादि की धारा खण्डित नहीं होती। राधाकिंकरियाँ महाभाव की कक्षा (स्तर) में हैं। महाभावस्वरूपिणी हैं श्रीमती। भाव की रीति-नीति का ज्ञान न हो, तो सेवा कैसे होगी? उपासना से उपास्य के हृदय की खबर मिलती है। गौड़ीय वैष्णव का भजन शास्त्र-शासन के भय से अथवा नरक के भय से नहीं होता। वह है लोभ का भजन अथवा स्वभाव का भजन। जैसे आदमी संसार के काम स्वभाव से करता है, किसी के उपदेश से नहीं, वैसे ही यहाँ भी। विधिभक्ति के प्रेम से भी अधिक मूल्यवान् है रागभक्ति का लोभ। इष्टदेव को सेवा द्वारा सुखी करने के लिये भजन किया जाता है, भजन का और कोई हेतु नहीं। भजन को प्रेम करें, तो भजनीय भगवान् के प्रति प्रेम स्वतः आयेगा। प्रेम स्वाभाविक वस्तु है, जबरदस्ती नहीं होता। साधनभक्ति द्वारा परिमार्जित चित्त में प्रेम स्वतः प्रकट होता है।

''नित्यसिद्ध कृष्ण-प्रेम साध्य कभु नय।
श्रवणादि शुद्ध चित्ते करये उदय॥'' (चै० च०)

श्रीकृष्ण ही ह्लादिनीशक्ति की किसी एक सर्वानन्द-परिपूर्ण वृत्ति को भक्तों के चित्त में सर्वदा निक्षेप कर रहे हैं, वही भक्तिचित्त में ग्रहण की जाकर प्रेमरूप से विराजती है। ''तस्या ह्लादिन्या एव क्वापि सर्वानन्दातिशायिनी वृत्तिर्नित्यं भक्तवृन्देष्वेव निक्षिप्यमाणा भगवत्-प्रीत्याख्यया वर्तते'' (प्रीतिसन्दर्भ-अनु० ६५)। जैसे सूर्य निरपेक्षभाव से किरणों का सर्वत्र वितरण करता है, वैसे कृष्ण भी अपनी ह्लादिनीशक्ति की वृत्तिविशेष को सर्वत्र ही निक्षेप कर रहे हैं, किन्तु मायामिलन चित्त में उसका स्थान नहीं होता। श्रवण-कीर्तन आदि साधनभक्ति से जब भक्त का

गोष्ठेशयाथ कुतुकाच्छपथादि-पूर्वं, सुस्निग्धया सुमुखि मातृपरार्द्धतोऽपि।
हा ह्रीमति प्रियगणैः सह भोज्य मानां, किं त्वां निरीक्ष्य हृदये मुदमद्य लप्स्ये?६६॥

अन्वय-सुमुखि! (अयि सुमुखि!) अथ मातृपरार्द्धतः अपि सुस्निग्धया गोष्ठेशया (यशोदया) शपथादिपूर्वं (वाधा शरीरस्पर्शपूर्वं) कुतुकात् प्रियगणैः सह (ललितादिभिः सह) हा ह्रीमति अद्य भोज्यमानां त्वां निरीक्ष्य किं हृदये (अंतःकरणे) मुदं (हर्षं) लप्स्ये?६६॥

अनुवाद-हे सुमुखि! परार्द्ध (कोटि-अरब-खरब) माताओं से भी अधिक सुस्नेहवती गोष्ठेश्वरी यशोदामाँ तुम्हें स्पर्श कर शपथादि दिलायेंगी, तब अनुरुद्ध होकर (उनके अनुरोध को टाल न पाकर) हा लज्जाशीले श्रीराधे! तुम ललितादि सखियों के साथ सानन्द सलज्जभाव से भोजन करोगी-मैं वह दृश्य देखकर अतिशय सुखी कब होऊँगा?६६॥

श्रीराधा के भोजन-दर्शन का आनन्द

परिमलकणा व्याख्या-पिछले श्लोक में परस्पर दृष्टि विनिमय हुआ था। उस समय की शोभा देखने के लिये प्रार्थना की जा चुकी है। इस श्लोक में स्वामिनी की भोजन-लीला देखने के लिये प्रार्थना की जा रही है। माँ अब स्वामिनी के भोजन आदि की ओर ध्यान दे रही हैं। वे भोजन कराना चाहती हैं, लज्जावती स्वामिनी करना नहीं चाहतीं।

चित्त परिमार्जित हो जाता है, तो उस चित्त में वह गृहीत होकर प्रेमरूप में विराजती है। तभी साधक का प्रथम प्रयत्न होता है कि किसी प्रकार श्रवण-कीर्तनादि भजन-अङ्ग सुन्दर भाव से अनुष्ठित हों। गौड़ीय वैष्णव को राधादास्य के अतिरिक्त और कुछ अच्छा नहीं लगता। इस निष्ठा की अधिकारिणी केवल राधाकिंकरी हैं। वनगमन से पूर्व स्वामिनी के नयनों के साथ श्याम का मिलन होता है। आँखों ही आँखों कितनी बातों का इंगित (होता है)! जितना आस्वादन हो रहा है, उतना ही लावण्य-माधुर्य प्रति अङ्ग में तरंगायित हो रहा है। श्यामसुन्दर की वनगमन की स्पृहा जगा रही हैं। वन में गोचारण को जाते हैं, वहाँ गोचारण का भार सखाओं को देते हैं, फिर सूर्यपूजा के छल से आईं सखियों सहित श्रीमती के साथ श्रीकुण्ड के वन-वन में कितना स्वच्छन्द विहार (करते हैं)! तभी कहा है-''तोमारि लागिया बेड़ाइ भ्रमिया गिरि-नदी-वने-वने'' (ज्ञानदास)। धन्य है राधारानी के प्रेम का गौरव! किंकरी तुलसी इसी रस में डूबी हैं।

''गो-कुल रक्षण - व्रत करिया ग्रहण।
सर्वदा विपिने जिनि करेन भ्रमण॥
विकला जननी वन-गमनेर तरे।
लालन करेन जाँरे, अति स्नेहभरे॥
सेइ से व्रजेन्द्रसुत तोमारे हेरिया।
मृदुहास्योत्फुल्ल हये रहिबे चाहिया॥
तुमिओ ताँहार पाने करिबे ईक्षण।
कबे आमि सेइ लीला करिबो दर्शन?''६५॥

''यशोदा आकुलि, हइया विकलि, राइरे करलो कोले।
आमार बाछनि, मो जाओ निछनि, भोजन करहो बोले॥'' (पदकल्पतरु)

माँ स्वामिनी का अङ्ग स्पर्शकर नाना प्रकार की शपथ दिलाकर भोजन करा रही हैं। कितना स्नेह हैं, परार्द्ध (असंख्य) माताओं से भी अधिक स्नेहवती। 'क्यों नहीं खाओगी बेटी? मैं क्या तुम्हारी माँ से अलग हूँ? तुम कीर्तिदा के घर की तरह मेरे घर भी अपनी सखियों के साथ भोजन करो, हँसो-बोलो, उठो-बैठो। लज्जा किस बात की?' माँ पास बैठकर खिला रही हैं। स्वामिनी श्रीकृष्ण-अधरामृत छोड़ और कुछ भी नहीं खातीं। धनिष्ठा ने गुप्तरूप से वह मिला दिया है।

''प्रेष्ठ - फेलामृतं स्वादैः परिचित्य मुदाऽप्लुता।
धनिष्ठायां किरन्त्यक्षि - कोणं तामधिनोदियम्॥''

(कृष्णभावनामृतम्-६/१०९)

चतुर धनिष्ठा ने श्रीराधा के भोज्य-द्रव्य में श्रीकृष्ण-अधरामृत मिला दिया है। श्रीराधा खाते-खाते प्रियतम के अधरामृत का आस्वाद पाकर हर्षपरिप्लुत हो गईं। उन्होंने धनिष्ठा की ओर सकरुण कटाक्षपात कर उन्हें सुख-तरंगों में डुबो दिया। उस गुप्त सेवा से श्रीराधा को आनन्द प्राप्त हुआ जानकर वे अपने को धन्य मानने लगीं। माँ स्नेहवश अपने हाथ से उठा-उठाकर खिलाने लगीं। वात्सल्यप्रेम की मूर्ति हैं माँ। सखियाँ कौतूहल के साथ थोड़ा-थोड़ा हँस रही हैं। इंगित से यह भाव प्रकट कर रही हैं-'हाथ से खिलाये बिना शायद पेट नहीं भरता?' तुलसी खड़ी-खड़ी सखियों के साथ श्रीमती का भोजनकौतुक देख रही हैं। आनन्द की सीमा नहीं। आशा कर रही हैं, स्वामिनी का किंचित् अधरामृत यदि मिल जाय! उनके मन की बात जानकर स्वामिनी उठते समय गुप्तरूप से हाथ में कुछ लेकर ही उठीं, दूसरों की दृष्टि से बचकर वह भाग्यवती तुलसी के हाथ में दे दिया। धन्य है स्नेहपात्र किंकरी! आचमन के पश्चात् स्वामिनी को जावट जाने के लिए व्यग्र होते देख माँ लाड़ कर रही हैं-

''ओ मोर बाछनि धनि, सतीकुल-शिरोमणि, क्षणेक विश्राम करो सुखे।
ना हये उछर बेला, सखीसंगे करो खेला, कर्पूर ताम्बूल दाओ मुखे॥
रूप गुण काज तोर, पराण निछनि मोर, शुतिया स्वप्ने देखि सदा।
तोमा हेनो गुणनिधि, आमारे ना दिला बिधि, हृदये रहिया गेलो साधा॥
धातार माथाये बाज, जे हेनो करये काज, आमारे भांगिला किबा दोषे।
बाछार विवाह-तरे, हेनो नारी नाहि पुरे, चाहिया ना पाइ कोनो देशे॥
यशोदा विषाद-कथा, शुनि वृषभानुसुता, वदने वसन दिया हासे।
पुलके पूरल गा, मुखे नाहि सरे रा, भासिलो नारीर स्नेहरसे॥''

(पदकल्पतरु)

माँ के अनुरोध पर श्रीमती सखियों के साथ ताम्बूल सेवन कर किंचित विश्राम कर रही हैं। माँ के स्नेहरस में भीगी। वात्सल्यप्रेम-सिन्धु माँ के लिये जो जितना शुद्ध कृष्णप्रेम का पात्र है, उसमें उतनी ही आसक्ति है। राधा, राधिका, गान्धर्विका इत्यादि नामों का शास्त्रों और महाजनों ने कीर्तन किया है। इन नामों से उनका

स्वरूप निरूपण किया गया है। ''कृष्णवांछा-पूर्तिरूप करे आराधने। अतएव राधिका नाम पुराणे बाखाने॥'' प्रेम ही कृष्ण-आराधना का श्रेष्ठ उपचार है। श्रीराधा हैं प्रेमनिधि-विग्रह। प्रेम को छोड़ कोई परिचय नहीं। प्रेम की ही अधिष्ठात्रीदेवी हैं। उन-जैसी कृष्ण-आराधना और किसी की नहीं।

भाव के बन्धन को प्रेम कहते हैं। 'सर्वथा ध्वंसरहितं सत्यपि ध्वंसकारणे। यद्भावबन्धनं यूनोः स प्रेमा परिकीर्तितः॥'' (उ० नी०) एक ओर होने से नहीं होता, प्रेम द्विपक्षीय है। श्रीकृष्ण-विषयक प्रेम की मूर्ति हैं श्रीराधा। फिर उनमें राधा-विषयक श्रीकृष्ण का प्रेम मिला है। (आश्रय-जातीय) प्रेम के ऊपर (विषयजातीय) प्रेम का रंग चढ़ा हुआ। रंग की इस छटा को देखेगा कौन? देखेंगे श्यामसुन्दर। सिर्फ देखना नहीं, स्वामिनी की प्रेमसेवा तक (करेंगे)। जैसे-पादसंवाहन, अलक्तकरचना (महावर लगाना), तिलकरचना आदि। स्वाधीनभर्तृका श्रीमती भी निःसंकोच आदेश देती हैं। दासी की सेवा नहीं; श्रीकृष्ण दासभाव से सेवा कर रहे हैं, सो भी नहीं। प्रेम ही सेवारूप में परिणत है। प्रियतम होकर सेवा-प्रेम की निविड़ परिणति का फल है। मार्मिक सेवा। जैसे निशान्तकाल में सखियाँ कर रही हैं-'तुमने हमारी प्रिय सखि की वेशभूषा क्यों बिगाड़ दी? जैसी थी, वैसी ही कर दो।' श्याम वेशरचना कर रहे हैं-

''वाचा सूचितशर्वरीरतिकलाप्रागल्भ्यया राधिकां,
व्रीड़ाकुञ्चितलोचनां विरचयन्नग्रे सखीनामसौ।
तद्वक्षोरुहचित्रकेलिमकरीपाण्डित्यपारं गतः,
कैशोरं सफलीकरोति कलयन् कुंजे विहारं हरिः॥''

(भ० र० सि० २/१/२३१)

थोड़े-से हास्य के साथ उरोजों पर पत्रावली-रचना कर रहे हैं और गत रात्रि के विलास में श्रीराधा की प्रगल्भता की बात सखियों को बता रहे हैं। इस पर श्रीमती व्रीड़ा-कुंचित (लज्जा से सिकुड़े) नेत्रों से तिरस्कार कर रही हैं। नयनभंगिमा से तिरस्कार! तिरस्कार द्वारा आराधना। श्याम की सेवा में जो सुख है, उससे अधिक सुख है स्वामिनी के तिरस्कार में। श्याम के प्रेम में यह जो माधुर्य है, वह राधावदन पर प्रकट हो रहा है। उस प्रेम सम्पर्क से रंजित हैं श्रीराधा। नेत्रों की दृष्टि कटाक्ष, मुख की हँसी-हर बात में, अङ्ग-प्रत्यंग में अपूर्व माधुर्य का प्रकाश! श्रीकृष्ण प्रेम के धक्के से तरंगायित श्रीराधा की स्वाभाविक दृष्टि। श्याम की दृष्टि में श्रीराधा का स्वाभियोग प्रेम की मिलन-आकांक्षा) बड़ा ही मधुर है। (१) कुंज में स्वामिनी अपने हाथ से श्याम का चित्र बनाकर देख रही हैं। श्यामसुन्दर कुंज में आये हैं, उन्हें दिखा-दिखाकर देख रही हैं। मन का भाव यह है-'तुम्हारा चित्र वक्ष से लगाये किसी तरह दिन काटती हूँ! इस समय तो तुम स्वयं उपस्थित हो, तुम्हें वरण न करूँ? आओ, आओ।' प्रणय के सम्पर्क से रंग फूट उठा है। (२) दोनों हाथ फैलाये ऊँची डाल पकड़कर फूल तोड़ रही हैं। बाहुमूल दिखा रही हैं। इतनी देर तक कुछ बोली नहीं, बाहुमूल दिखाकर बोलीं। दोनों के प्रेम से प्रेम सरस होता है। कृष्णप्रेम की मूर्ति हैं राधा, यही उनका सुख्य परिचय है। ''कृष्णप्रेमे भावित जाँर चित्तेन्द्रिय काय'' (चै० च०)। प्रियतम को द्रवित कर दिया है। दोनों को कोई मर्यादा-ज्ञान नहीं। श्रीकृष्णप्रेम की मूर्ति में श्रीकृष्ण के प्रेम का रंग मिला हुआ है। एकबार की बात। स्वामिनी वृन्दावन में पुष्प-चयन कर रही हैं, श्याम माली के वेश में सामने आ खड़े होते हैं। स्वामिनी लज्जित हो जा रही हैं। अपूर्व प्रभाववती। नीली ओढ़नी से

आलिङ्गनेन शिरसः परिचुम्बनेन, स्नेहावलोकनभरेण च खञ्जनाक्षि।
गोष्ठेशया नववधूमिव लाल्यमानां, त्वां प्रेक्ष्य किं हृदि महोत्सवमातनिष्ये?६७॥

अन्वय–खंजनाक्षि! (खंजने इव चंचले ईक्षणे यस्या हे तथाविधे!) गोष्ठेशया त्वाम् आलिङ्गनेन शिरसः परिचुम्बनेन, स्नेहावलोकनभरेण च नववधूम् इव लाल्यमानां प्रेक्ष्य किं हृदि महोत्सवम् आतनिष्ये (सम्यग्विस्तारयिष्यामि) ?६७॥

अनुवाद–हे खंजननेत्रे! नन्दपत्नी यशोदामाँ के आलिंगन, मस्तक चुम्बन, स्नेह-अवलोकन से तुम्हें नववधू की तरह लालित होते देख क्या मैं महानन्द प्राप्त करूँगा?६७॥

नववधू की तरह लालित

परिमलकणा व्याख्या–श्रीपाद अभीष्ट वस्तु के अभाव में अपने हृदय की तीव्र वेदना स्वामिनी के चरणों में निवेदन कर रहे हैं। उनकी दर्शन-कामना भी उन्हें (राधारानी को) अपनी सेवा द्वारा सुखी करने के लिये ही है; अपने स्वतन्त्र सुख के लिये नहीं। विशुद्ध प्रेम में कोई कपटता नहीं रहती; विशेषतः इस व्रजप्रेम में। 'विशुद्ध व्रजेर प्रेम, जेनो जाम्बुनदहेम, आत्मसुखेर जाँहा नाहि गन्ध।' व्रज के नित्यसिद्ध परिकरों के आनुगत्य में यह निर्मल प्रेम साधक में भी संचारित होता है। श्रीकृष्ण में व्रजवासियों का राग अर्थात् अनन्य आवेश बना ही हुआ है। साधक उन लोगों के राग का अनुगत हो जाय, तो उसके स्फटिकमणि-जैसे स्वच्छ चित्त में भी राग-चन्द्रमा की किरणों का आभास होगा। तब प्रेम होगा निष्कपट। ऐश्वर्यज्ञान भी एक प्रकार की उपाधि है। व्रज को छोड़ सर्वत्र ही प्रेम थोड़ा-बहुत ऐश्वर्यमिश्रित है। यहाँ तक कि व्रजलीला की ही परिशिष्ट नवद्वीपलीला में भी महाप्रभु के परिकरों का महाप्रभु में ऐश्वर्यमिश्रित प्रेम देखा जाता है। रामानन्द राय व्रज की विशाखा सखी हैं, श्रीमन्महाप्रभु में विशुद्ध सख्य होना ही उचित है। किन्तु गोदावरी-तट पर जब महाप्रभु के साथ प्रथम

अङ्ग ढक लेती हैं। 'मैं राजनन्दिनी, एक माली मेरे सामने खड़ा है!' यही भाव। ओढ़नी अङ्ग से चिपट गई है। उसके भीतर से प्रति अङ्ग की छटा निकल रही है! श्याम उनके प्रति अङ्ग का माधुर्य आस्वादन कर रहे हैं। ऐसा और कभी नहीं देखा। इन्हीं सब अनन्यसाधारण आराधनाओं के कारण उनका नाम है राधा। यही कारण है कि इस कृष्ण-आराधिका के प्रति माँ का असंख्य जननियों से भी अधिक स्नेह है। और यह स्नेह है सहज-स्वाभाविक, बिना किसी प्रश्न के, बिना किसी जाँचपड़ताल के! स्वामिनी के प्रति माँ का सुस्निग्ध स्नेह आस्वादन कर तुलसी आनन्द में आत्महारा हैं। स्फूर्ति में विराम आया, तो प्रार्थना-

''मातृकोटि हैते स्निग्धा माता यशोमती।
कौतुके दिबेन तेंहो अनेक शपथि॥
भोजन कराबेन तोमा सखीगण संगे।
लज्जावती हये भोजन करिबे गो रंगे॥
हे सुमुखि! कबे इहा दर्शन करिबो।
आनन्द-पाथारे आमि निमग्न हइबो?''६६॥

साक्षात्कार हुआ और दोनों के स्वाभाविक प्रेम का उदय हुआ, तब भी रामराय प्रभु को अपने घर नहीं ले जा सके। वैदिक वैष्णव ब्राह्मण ने प्रभु को आमन्त्रित किया। राय ने तो वरन ससम्भ्रम कहा-

''काँहा तुमि साक्षात् ईश्वर नारायण। काहाँ मुइँ राजसेवी विषयी शूद्राधम॥
मोर स्पर्शे ना करिले घृणा वेदभय। मोर दरशन तोमा वेदे निषेधय॥
तोमार कृपाय तोमाय कराय निन्द्यकर्म। साक्षात् ईश्वर तुमि-के जाने तोमार मर्म॥
× × × ×
आकृत्ये-प्रकृत्ये तोमार ईश्वर-लक्षण। जीवे ना सम्भवे एइ अप्राकृत गुण॥''

(चै० च०)

व्रज के सखा तो उच्छिष्ट खिलाते हैं, कन्धे पर चढ़ते हैं। अतएव ऐश्वर्यज्ञान की गन्ध से भी रहित प्रेम व्रज के अतिरिक्त और कहीं भी नहीं। व्रजानुगत्य के बिना ऐश्वर्यज्ञान थोड़ा-बहुत तो आयेगा ही। अखण्ड अद्वयज्ञानतत्त्व स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण और अखण्ड महाभावतत्त्व स्वयं भगवती श्रीराधा। यह है तत्त्व की बात। किन्तु रसानुभूति की दृष्टि से (श्रीकृष्ण हैं) श्रीराधा के प्राणबन्धु-हम लोग यही जानते हैं। श्रीरूप गोस्वामिपाद प्रार्थना करते हैं-''हे वृन्दावन-चक्रवर्तिनि! तुम यही कृपा करो कि तुम्हारे श्याम मेरे चाटुकार (चापलूस) बनें। वे चाटुवचनों से अपना अभीष्ट मुझसे माँगेगे।'' ऐसा सम्भ्रम-गौरव रहित विशुद्ध मधुर भाव श्रीराधाचरणाश्रय को छोड़ अन्यत्र नहीं मिलता। रास में चन्द्रावली अपना बायां हाथ श्रीकृष्ण के कंधे से खींचकर दायां हाथ उनके कंधे पर रखती हैं और सम्भ्रमवश पैर टेढ़ा कर नाच रही हैं-इस डर से कि कहीं उनका पैर श्रीकृष्ण के चरण से लग न जाय। यह देखकर राधारानी की सखियाँ हँसती हैं।

''निजमघरिपुणांशे न्यस्तमाकृष्य सव्यं, भुजमिह निदधानादक्षमस्रोक्षिताक्षी।
पदयुगमपि बङ्कं शंकया विक्षिपन्ती, प्रतियुवतिवयस्यां स्मेरयामास गौरी॥''

(उ० नी० स्थायि० - ९१)

हमारी स्वामिनी नि:संकोच कैसा मधुर नृत्य करती हैं! स्वाधीनभर्तृका अवस्था में वे नि:संकोच श्याम के वक्ष पर चरण रख देती हैं। श्रीरूप ने कहा है-'उन्हीं राधा की किंकरी हूँ मैं, तभी श्याम मेरे पीछे-पीछे घूमेंगे।' काशी में श्रीमन्महाप्रभु और श्रीपाद सनातन गोस्वामी एक-दूसरे के गले से लगकर रोदन कर रहे हैं। देखकर चन्द्रशेखर को विस्मय होता है। ''दुइजने गलागलि रोदन अपार। देखि चन्द्रशेखरेर हैलो चमत्कार'' (चै० च०)। श्रीवृन्दावन से लौटे श्रीगौरांग को विरहिणी राधा का आवेश और श्रीसनातन गोस्वामी को लवंगमंजरी का। पूर्व (व्रजलीला) के भाव में दोनों ही विभोर! जैसे ही बाह्यज्ञान लौटा, सम्भ्रम-गौरव का उदय हुआ! सनातन बोले-'मोरे प्रभु! ना करो स्पर्शन!' ''प्रभु कहे-तोमा स्पर्शि पवित्र हइते। भक्तिबले पारो तुमि ब्रह्माण्ड शोधिते॥'' (वही) श्रीमन्महाप्रभु का ही अवदान है यह राधादास्य। उन्होंने स्वयं और अपने पदाश्रित आचार्यपादगण के द्वारा शिक्षा दी है। स्वरूप जगेगा तो राधा-विरह प्रबल होगा ही। 'आज ही दर्शन चाहिये। इसी मुहूर्त। और समय नहीं कटता। मैं अकेला हूँ। नि:संग जीवन है। तुम्हारे बिना और क्या लेकर रहूँगा?' जिनका चित्त-मन राधारानी के भाव से आक्रान्त है, उनका यही भाव होता है। महाप्रभु रो रहे हैं-

''युगायितं निमेषेण चक्षुषा प्रावृषायितम्।
शून्यायितं जगत् सर्वं गोविन्द-विरहेण मे॥''
''उद्वेगे दिवस ना जाय, क्षण हैलो युगसम।
वर्षार मेघप्राय अश्रु बरिषे नयन॥
गोविन्दविरहे शून्य हैलो त्रिभुवन।
तुषानले पोड़े जेनो ना जाय जीवन॥'' (चै० च०)

श्रीपाद दासगोस्वामी की यही अवस्था। 'हृदय में बड़ी व्यथा है। दु:ख का अवसान करो। आज ही दर्शन दो।' स्वरूप का कैसा निविड़ आवेश! इस समय वे रघुनाथ नहीं, तुलसीमंजरी हैं। कुण्डतट पर पड़े-पड़े कातरप्राणों से रो-रोकर विलाप कर रहे हैं-'हे श्रीसरोवर! मेरी अधीश्वरी अपने प्रियतम को साथ लेकर तुम्हारे ही तीर-तीर पर कितनी क्रीड़ायें करती हैं। तुम श्रीराधाश्याम के कितने प्रिय हो। और कुछ नहीं चाहता। एकबार ईश्वरी के चरण-दर्शन कराओ।' जो ऐसे आचार्य के अनुगत साधक हैं, उनके प्राणों में भी स्वामिनी का कुछ न कुछ विरह जगेगा ही।

श्रीपाद के आगे लीला की छवि पुन: फूट उठी। उन्होंने स्फुरण में स्वामिनी के प्रति माँ के स्नेह-व्यवहार का माधुर्य आस्वादन किया। भोजन के पश्चात् स्वामिनी विश्राम कर रही हैं। माँ ने आवाज दी। तुलसी उन्हें माँ के निकट ले गईं। माँ ने उन्हें वक्ष से लगाया। नववधू की तरह कितना ही लाड़-प्यार किया, चुम्बन किया और सिर सूंघा। बार-बार मुँह पोंछकर चिबुक पकड़कर चेहरा देख रही हैं और स्नेहाश्रुओं में भीग रही हैं। 'तुम नहीं आती हो, तो सब अन्धकार देखती हूँ बेटी! तुम नित्य आया करो, भूलना नहीं।' कहते-कहते माँ को कण्ठारोध। 'इस प्रकार तुम्हें कब देख पाऊँगा?' ''नववधूमिव लाल्यमानां।'' श्रीगोविन्दलीलामृत (४/७०-७१) में मिला है-

''हृद्युदगतै: सुतकरग्रहणाभिलाषैस्तद्भूषणै: सुबहुश: सह यानि यत्नात्।
निष्पाद्य तन्नववधूप्रतिरूपकाणि स्नेहाद्धृतानि सदने वरसम्पुटेषु॥
तैर्भूषणैरथ धनिष्ठिकयोपनीतैस्ताम्बूल-चन्दन-वराम्बर-नागजैश्च।
आलीवृतां नववधूमिवं तां व्रजेशा सम्मान्य हार्दवलिता मुदिता वभूव॥''

''माँ यशोदा ने स्नेहार्द्रचित्त से श्रीकृष्ण का विवाह करने की अभिलाषा से विवाह-उप-योगी जो सब आभरण प्रस्तुत करा उत्तम सम्पुट (पेटी) में यत्नपूर्वक रखे थे, उन्हीं सब आभूषणों को, ताम्बूल, चन्दन, सिन्दूर और नये वस्त्रों को धनिष्ठा लेकर आईं तो माँ ने नववधू-सदृश मानकर आनन्दपूर्वक वे सब राधारानी को अर्पित कर परम सन्तोष प्राप्त किया।'' श्रीपाद कहते हैं-'तुम्हें इस प्रकार देखकर मैं कब अपार आनन्द प्राप्त करूँगा?' इसी बीच धनिष्ठा की चेष्टा से नन्दीश्वर-गिरिनिकुंज में सखियों के साथ श्रीयुगल का मिलन होता है। श्रीपाद ने व्रजविलासस्तव (३३) में वर्णन किया है-

''व्रजेश्वर्यानीतां वत रसवतीकृत्यविधये मुदा कामं नन्दीश्वरगिरिनिकुंजे प्रणयिणी।
छलै: कृष्णं राधां दयितमभितां सारयति या धनिष्ठां तत्प्राणप्रियतरसखीं तां किल भजे॥''

''पाक-कार्य के लिये यशोदा द्वारा बुलाई श्रीराधा को जो परमानन्द पूर्वक नन्दीश्वरगिरि-निकुंज में छल से लाकर श्रीकृष्ण से मिलाती हैं, उन्हीं धनिष्ठा का मैं भजन करता हूँ।'' स्मरणनिष्ठ साधक प्रवाहवत्

हा रूपमंजरि सखि प्रणयेन देवीं, त्वद्बाहुदत्त-भुजवल्लरिमायताक्षीम्।
पश्चादहं कलित-कामतरङ्गरंङ्गा, नेष्यामि किं हरिविभूषितकेलिकुंजम्?६८॥

अन्वय-हा सखि रूपमंजरि! प्रणयेन त्वद्बाहुदत्तभुजवल्लरिम् (प्रीत्या त्वद्बाहौ दत्ता भुजलता यया तां) आयताक्षीं (आयते दीर्घे लोचने यस्यास्तामिति) कलितकामतरङ्गरङ्गा (कलितं गृहीतं कामतरङ्गे प्रेमसागरोमाँ रङ्गं निमज्जनं यया तां) देवीं (श्रीराधिकां) किम् अहं पश्चात् (गच्छन्ती सती) हरिविभूषित-केलिकुंजं नेष्यामि?६८॥

अनुवाद-हे सखि रूपमंजरि! आयताक्षी (बड़ी-बड़ी आँखों वाली), प्रेमसागर में निमग्न, देवी श्रीराधिका प्रेम पूर्वक तुम्हारे हाथ में बाहुलता अर्पित कर अभिसार को जायेंगी। हाय! क्या मैं उनकी अनुगामिनी होकर हरि-विभूषित केलिकुंज में उन्हें ले जाऊँगी?६८॥

श्रीराधा का अभिसार

परिमलकणा व्याख्या-विरह-वेदना की तीव्रता से श्रीपाद की उन्माददशा बढ़ती जा रही है। स्वरूप का आवेश ही एकमात्र अवलम्बन है। उसी में स्वामिनी के रूप-गुण-लीला का आस्वादन है। प्रेमोन्मत्त दशा। जो अनुभव हो रहा है, उसे वर्णन करने की भाषा नहीं, सामर्थ्य भी नहीं। जितना भी सम्भव है, वही विलाप में व्यक्त हो रहा है। जिसकी स्वामिनी ही सर्वस्व हैं, जो उनके लिये रो-रोकर व्याकुल है, उसे सान्त्वना देने के लिये तो स्वामिनी ही आयेंगी। वे ही उसे चरणप्रान्त में खींच ले जायेंगी। स्वामिनी के बराबर दया और किसमें है? श्रीपाद ने कहा है-''करुणाविद्रवद्देहा'' (शतनामस्तोत्रम्)-करुणा से जिनकी देह तक विगलित है! साधारणत: करुणा से चित्त विगलित होने की बात सुनी जाती है, किन्तु श्रीराधा की देह भी करुणा से विगलित है, यह ऐसी बात है जो पहले नहीं सुनी। श्रीकृष्ण का भजन किये बिना वे कृपा नहीं करते, यह उनके श्रीमुख की वाणी है। ''ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्'' (गीता), किन्तु श्रीमन्महाप्रभु ने उपेक्षित अथवा अपमानित होकर भी प्रेम दिया है। स्वामिनीजी का भाव अङ्गीकार करके ही वे ऐसे हुए हैं। पर कहा गया है-

---

स्वारसिकी (अष्टकालीय) उपासना में इसी स्थान पर (उक्त निकुंज) ह्रदवत् (मन्त्रमयी) उपासना अर्थात् योगपीठ में मानस सेवा के साथ मन्त्र स्मरण करते हैं।

श्रीपाद ने स्फुरण में लीला-आस्वादन कर स्फूर्ति के विराम में प्रार्थना की है-

''खंजन-नयनि! राइ, तोमार वदन चाइ,
नन्दरानी अति स्नेहभरे।
करि तोमा आलिंगन, चुम्बन मस्तकाघ्राण,
नववधूप्राय समादरे॥
लालन करिबे जतो, हेरिया उल्लास ततो,
मम हृदिमाझे उथलिबे।
एइ कृपा करो मोय, एइ वांछा सिद्धि होय,
सेवा दिया चरणे राखिबे॥''६७॥

''सन्त्ववतारा बहवः पुष्करणाभस्य सर्वतोभद्राः।
कृष्णादन्यः को वा लताष्वपि प्रेमदो भवति॥''

(लघुभागवतामृतम्-पूर्व-५/३७)

अर्थात् 'पद्मनाभ श्रीकृष्ण के सर्वमंगलप्रद अनेक अवतार हैं, यह सत्य है, किन्तु श्रीकृष्ण को छोड़ ऐसे और कौन हैं, जो लता तक को प्रेमदान किया करते हैं?'' किन्तु यह बात है तब, जब वे व्रजवासियों के पास रहते हैं। जब वे राधिका के प्राणबन्धु हैं, तभी। प्रेममयी के प्रेम के सान्निध्य ने उन्हें इतना सरस और मधुर बना रखा है। रूपामृत एवं वंशीगानामृत ने वृक्ष-लता, पशु-पक्षी, पत्थर, मेघादि तक में प्रेम का संचार किया है। श्रीमद्भागवत में श्रीपाद शुकमुनि ने इसी प्रेम-संचारण लीला का वर्णन किया है। व्रज के बाहर वह नहीं। श्रीकृष्ण की श्रीमुख की वाणीसे ही पता चलता है-

''रूपेण वेषेण रवामृतेन, वंश्याश्च पूर्वानुदितेन विश्वम्।
सम्मोहितं प्रेमभरेण कृत्स्नं, तिष्ठन्तु दूरे व्रजवासिनस्ते॥''

(वृ० भा०-१/७/११०)

द्वारकानाथ सत्यभामाजी से बोले-''व्रज में मैंने अपूर्व रूप, वेश और वंशीगानामृत द्वारा समस्त स्थावर-जंगम को सम्मोहित किया था। व्रजवासी गोप-गोपियों की बात तो दूर।''

''अधुना तु स एवाहं स्वज्ञातीन् यादवानपि।
नेतुं नार्हामि तं भावं नर्मक्रीड़ाकुतूहलैः॥'' (वही-१/७/११४)

''आज मैं वही हूँ, किन्तु अब मैं स्वज्ञाति (भाई-बन्धु) इन यादवों को भी वह भाव नहीं दे सकता (स्थावर-जंगम आदि की बात दूर)। वैसा नर्मरसमय क्रीड़ा-कौतूहल यहाँ प्रकट करने में मैं असमर्थ हूँ।'' अन्यत्र कृपा की कोई न कोई अपेक्षा (कारण, आवश्यकता) है, किन्तु व्रज में अहैतुक करुणा। स्वामिनीजी के प्रेम के पर्श ने उन्हें इतना मधुर कर रखा था, यह बात व्रज में स्पष्टतः पकड़ में नहीं आई। श्रीराधा की भाव-कान्ति लेकर (कृष्ण) जब गौर बने, तो अयाचित कृपा देखकर स्वामिनी की कृपा की महिमा सभी के आगे प्रकट हुई! वे स्वभावतः परम करुणामयी हैं।

ग्रीष्मकाल। प्रखर सूर्य की तपन। खुली जगह में श्रीरघुनाथ आविष्ट अवस्था में भजन कर रहे हैं। करुणामयी स्वामिनी आकर रघुनाथ के ऊपर छाया कर खड़ी हैं। रघुनाथ को बाहर का कुछ पता नहीं। श्रीपाद सनातन उनकी भजन-कुशल जानने के लिये श्रीकुण्ड आते हैं, तो यह दृश्य देखते हैं। बोले-'रघुनाथ! किसका भजन कर रहे हो?' 'स्वामिनीजी का'-उत्तर दिया रघुनाथ ने। श्रीसनातन बोले-'स्वामिनी तुम्हारी छाया किये खड़ी रहती हैं, इसकी खबर है?' सुनकर रघुनाथ रोने लगे। 'बाहर भजन मत करो, कुटिया में बैठकर करो'-श्रीपाद सनातन कह गये। श्रीरघुनाथ उन्हीं चरणों में बिक गये हैं। 'मेरी स्वामिनी, मैं तुम्हीं को जानता हूँ। अपने प्रियतम के साथ तुम ही मेरा परिचय करा दोगी।' ''मदीशानाथत्वे व्रजविपिनचन्द्रं.....स्मर मनः'' (मनःशिक्षा)। 'आमार ईश्वरी होन वृन्दावनेश्वरी। ताँर प्राणनाथ बोलि भजि गिरिधारी॥' इसी निष्ठा से श्रीपाद का हृदय भरा है।

स्फूर्ति के विराम में श्रीपाद हाहाकार कर रहे हैं। कुण्डतट पर पड़े स्वामिनी को पुकार रहे हैं। तीव्र यातना है। सहसा जाने किसके नूपुरों की ध्वनि सुनाई पड़ी। साथ ही साथ यातना कुछ कम हुई। देखते हैं–श्रीरूपमंजरी आई हैं। उन्हें देखते ही स्वामिनी की बात याद आती है। वे स्वामिनी के रूप की ही मंजरी हैं। अफुटन्त (अनखिला) अविकसित रूप। अविकसित कुसुम पर भ्रमर नहीं बैठता। रूपमंजरी कहती हैं–'तुलसि! क्या हुआ?' व्यवहार है उस राज्य के साथ। व्यवहारिक राज्य (इस संसार) का कोई सम्पर्क नहीं। कैसा मधुर सम्बोधन है–'यह देख तुलसि! मैं आई हूँ।' आवेश में श्रीपाद उठकर बैठ गये। 'हा सखि रूपमंजरि! स्वामिनी की विरह–ज्वाला और नहीं सह सकती। क्या स्वामिनी की थोड़ी–सी सेवा नहीं मिलेगी?' 'क्या सेवा करेगी?' 'तुम्हारे साथ–साथ सेवा करूँगी। श्रीराधाकुण्ड–तीर पर हरिभूषित कुंज में तुम्हारे साथ स्वामिनी को अभिसार कराऊँगी। मिलन–उत्कण्ठा से श्याम कातर हैं। मुरली दूती को भेजेंगे। मुरली की ध्वनि सुनकर प्रेममयी अधीर हो उठेंगी। सब कुछ भूल–विसर जायेंगी।' इसी प्रकार का वर्णन मिलता है पदकर्ता के पद में –

''माथहि तपन, तपत–पथ–बालुक, आतप–दहन बिथार।
नोनिक पुतलितनु, चरण–कमल जनु, दिनहिं कयल अभिसार॥
हरि! हरि! प्रेमक गति अनिवार!
कानु–परश–रसे, परवश रसवती, विछुरल सबहुँ विचार।
गुरुजन–नयन, पाशगण–वारण, मारुत–मण्डल–धूलि।
ता संगे मेलि, चललि वररंगिणी, पतिगेह–नीतहि भूलि॥
जतो जतो विघिनि, जितलि अनुरागिणि, साधलि मनसिज मंत्र।
गोविन्ददास, कहइ–अब समुझउ, हरि संगे रसमय तन्त्र॥'' (पदकल्पतरु)

''काम–तरंगों में रंगमयी स्वामिनी तुम्हारा हाथ पकड़कर जायेंगी। मैं पीछे–पीछे चलूँगी। चलते–चलते वे लड़खड़ा सकती हैं, इसलिये पकड़े रहूँगी। मार्ग में स्वामिनी को तमाल देखकर कृष्ण का भ्रम और स्वर्णलता देख अन्य नायिका का भ्रम होगा। तुम उसका समाधान करोगी। श्याम अपने रूप की छटा से कुंजगृह को सुशोभित किये होंगे, उसी कुंज में श्याम के साथ स्वामिनी का मिलन करायेंगी।' यहाँ 'कामतरङ्गरङ्गाम्' का अर्थ मादनरस की तरंगों का उच्छ्वास ही है, कारण–''प्रेमैव गोपरामाणां काम इत्यगमत् प्रथाम्'' (भ० र० सि० धृत तन्त्रवचनम्)। 'व्रजरामाओं के प्रेम ने ही काम' नाम से प्रसिद्धि प्राप्त की है।' ''सहजे गोपीर प्रेम नहे प्राकृत काम। कामक्रीड़ासाम्ये तारे कहे काम नाम॥'' (चै० च०)। बाहर क्रिया–साम्य है, किन्तु भीतर आत्मेन्द्रिय–सुखवासना का अत्यन्त अभाव है–यह एक दुर्ज्ञेय रहस्य है। बाहर क्रिया–साम्य होते हुए भी लक्ष्यगत भेद प्राकृत विश्व में भी देखने को मिलता हैं। उदाहरण : दो व्यक्ति बगीचे में पुष्प–चयन कर रहे हैं। एक अपनी घ्राणेन्द्रिय को चरितार्थ करने के लिये, दूसरा भगवान् की अर्चना के लिये। पहले व्यक्ति का कार्य अपनी इन्द्रिय की सन्तुष्टिरूपी मायिक वृत्ति होने के कारण बन्धन की ही सृष्टि करेगा; दूसरे का कार्य भगवद्भक्ति– रूपी स्वरूपशक्ति की वृत्ति होने से प्रेम के उन्मेष (उत्पत्ति, विकास) में सहायक होगा। प्रेम के बिना, प्राकृत काम द्वारा भगवान् को वशीभूत नहीं किया जाता–यह सभी को अच्छी तरह मालूम है। गोपिकाओं के काम द्वारा भगवान् की सर्वाधिक वश्यता देखकर यह बात सहज ही समझ में आती है, पक्षान्तर से, कि यह काम प्रेम की

ही घनीभूत परिणति विशेष है। तभी प्रीतिसन्दर्भ में कहा गया है-''एष भावः (कान्तभावः) कामतुल्यत्वात् श्रीगोपिकाषु कामादिशब्देनाप्यभिहितः। स्मराख्य-काम-विशेषस्त्वन्य, वैलक्षण्यात्। कामसामान्यम् खलु स्पृहा-सामान्यात्मकम्। प्रीतिसामान्यन्तु विषयानुकूल्यात्मकस्तदनुगतविषय-स्पृहादिमयो ज्ञानविशेष इति लक्षितम्। ततो द्वयोः समानप्रायचेष्टत्वेऽपि कामसामान्यस्य चेष्टा स्वीयानुकूल्यतात्पर्या। शुद्धप्रीतिमात्रस्य चेष्टा तु प्रियानुकूल्यतात्पर्यैव।'' अर्थात् यह कान्तभाव कामतुल्य होने से 'काम' शब्द से अभिहित हुआ है। स्मराख्य प्राकृत काम इससे भिन्न है, कारण-दोनों में बहुत विरोध देखने में आता है। साधारणगतः 'काम' शब्द से स्पृहा अथवा इच्छा ही समझी जाती है। प्रीति या प्रेम शब्द का अर्थ समझा जाता है-भगवत् सुख की अनुकूलता के अनुगत विषयों की अभिलाषा से युक्त ज्ञानविशेष! (जिन बातों से भगवान् को सुख मिले, जो बातें भगवान् को सुख पहुँचाने में सहायक और अनुकूल हों-उन्हीं की अभिलाषा!)। अतएव काम और प्रेम दोनों में चेष्टायें समान-सी होते हुए भी 'काम' शब्द बताता है स्वसुखतात्पर्य और 'प्रेम' बताता है श्रीकृष्ण-आनुकूल्य। इसलिये सहज ही अनुमान कर सकते हैं कि आत्मेन्द्रिय सुख-वांछाशून्य गोपियों का काम शुद्ध प्रेम की चरम स्थिति है।

स्वामिनीजी श्रीरूपमंजरी का हाथ पकड़े अभिसार को जा रही हैं। कामतरंग-रंग प्रति अङ्ग में प्रकट हो रहा है। कृष्ण के प्रति उनका जो अनुराग है, उसी की तरंग। देखने की भंगिमा में गतिभंगिमा में, बातों में-वही प्रकट हो रही है। मिलन की तीव्र कामना है। केवल उन्हीं के सुख के लिये।' और कितनी देर में देख पाऊँगी, बताओ रूप-और कितनी दूर? आहा! मेरी प्रतीक्षा में कितनी उत्कण्ठा के लिये बैठा है वह!' विरह यन्त्रणा देता है, पर उसकी उपादेयता है। विश्व की किसी वस्तु में जो उपादेयता नहीं, वह विरह में है। विरह नहीं जगता, तो अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति की लालसा नहीं होती। तभी साधक का प्रथम साध्य है विरह। कातरता आये बिना अनुभव की योग्यता नहीं मिलती। स्मरण-मननशील साधक स्मरण के सुख में डूबकर कहीं यह बात न भूल जायें। मुझ-जैसे जीव को तो कोई अभाव-बोध नहीं। हँस रहा हूँ, खा रहा हूँ, आमोद-प्रमोद कर रहा हूँ, मजे में हूँ। साधक श्रीपादगण के चरित्रों का अनुशीलन करे, तो अपनी निश्चिन्तता की बात देखकर लज्जित होगा। श्रीमन्महाप्रभु गरुड़स्तम्भ के पीछे खड़े होकर जगन्नाथ-दर्शन कर रहे हैं और अश्रुजल से भीग रहे हैं। ''गरुड़स्तम्भेर तले, आछे एक निम्नखाले, से खाल भरिलो अश्रुजले'' (चै० च०)। राधाभाव में भरे गौरसुन्दर। कुरुक्षेत्र-मिलन की-सी अवस्था। भिखारिन की तरह देख रहे हैं। जिनके सर्वस्व हैं, वे स्वामिनि ही उन्हें वक्ष पर धारण नहीं कर पा रहीं। क्या व्यथा है! कैसी आर्ति है! असीम आनन्द दुःख-सिन्धु को उच्छलित कर रहा है! मन ही मन कह रहे हैं-'तुम व्रज चलो, मैं तुम्हें व्रज में ही देखना चाहती हूँ।' श्रीमन्महाप्रभु की करुणा की जीवन्त मूर्ति हैं रघुनाथ। उनका विरह स्वाभाविक है। उनकी उपासना-धारा के श्रवणकीर्तन से भी साधक का कल्याण होता है।

स्वामिनी रूप और तुलसी के साथ केलिकुंज के द्वार पर आ पहुँची हैं। हरि-विभूषित केलि-कुंज। श्रीहरि पहले से आकर प्रतीक्षा कर रहे हैं। जैसे स्वामिनी वासकसज्जिका होकर कुंज सजाकर नागर की प्रतीक्षा करती हैं-आज उसके विपरीत अवस्था है। हरि के रूप-गुण-शिल्प से विभूषित है कुंज। प्रिया आयेंगी, इसलिये अपने हाथों कुंज सजाया है। अश्रुबिन्दुओं से पुष्प भिगोकर आसन बिछाया है। कितनी प्रीति-निपुणता से सजा कुंज! प्रिया के प्रति उनका जो प्रेम है, वही मानों कुंज में शोभा के रूप में चारों ओर छिटका है। 'प्रिया

के साथ यहाँ इस तरह बैठूँगा'–इस प्रकार के मनोभाव लेकर कुंज सजाया है। प्रेमसेवा की यह परिपाटी है! प्रणय की पारस्परिक सेवा। रूप–तुलसी के साथ स्वामिनी ने कुंज में प्रवेश किया। कुंज–शोभा देखकर स्वामिनी चकित। एक तो मदनसुखदा–कुंज, ऊपर से अप्राकृत नवीनमदन के अपने हाथों सजाया! स्वामिनी प्रश्न करती हैं–श्याम! कुंज किसने सजाया है?' श्याम–'मैं क्या जानूँ–तुम समझो।' 'तुमने स्वयं ही सजाया है, यह काम दूसरे का नहीं। मैं आऊँगी, इसलिये इतना परिश्रम किया है। तुम्हारे साथ–साथ मुझे भी सजाना चाहिये था'–स्वामिनी कहती हैं। आज अत्यन्त उदार हैं स्वामिनी के हरि। प्रेमपरिपाटी से मन हर लिया है। एक–दो आँसू गिर पड़े हैं! श्याम ने बड़े प्रेम से स्वामिनी को ले जाकर आसन पर बिठाया। प्रिया के प्रीति से हृदय भरा है। स्वयं नीचे बैठे हैं। स्वामिनी के कोमल चरण वक्ष से लगा लिये हैं। 'ऐसे कोमल चरणों से कैसे आई हो–व्रज की कठोर माटी है!' कहते–कहते स्वामिनी के धूलि–धुसरित चरण बार–बार देखते हैं। उनका मनोभाव जानकर तुलसी स्वर्णभृंगार (झारी, कलश) में जल और सोने का बड़ा कटोरा ले आती हैं। तुलसी जल डाल रही हैं, श्याम चरण धो रहे हैं। पीतवस्त्र के अंचल से चरण पौंछते हैं। आँखों में आँसू भरे हैं। आचार्यपादगण की कृपा को छोड़ इसका अनुभव नहीं होगा। उन लोगों की करुणा से लीला की दिव्य स्मृति हृदय में जगेगी। उसी वस्तु में मन डूब जायेगा। श्याम की कैसी शोभा बनी है! चरणप्रान्त में बैठे हैं। स्वामिनी ने प्रियतम को पकड़कर ऊपर उठाकर बिठाया। गण्डस्थल पकड़कर कहती हैं–'मुझे इतना प्रेम करते हो? मैं तो कुछ भी नहीं कर सकी। मेरे प्रति इतना प्रेम किसलिये? मैं तो स्वच्छन्द रूप से तुम्हारी कोई सेवा नहीं कर सकती। मेरे आगे कितनी बाधायें हैं। कितनी–कितनी योग्य नारियाँ तुम्हारी अपेक्षा कर रही हैं। उन सबको छोड़ इस हतभागिन में तुम्हें क्या मिला है?' श्याम स्वामिनी के चेहरे की ओर टकटकी लगाये बस देख रहे हैं! क्या मिला है–यह क्या उनसे छिपा है!

''विपुल पुलकवर स्वेदसंचार।
चिर थिर–नयने नीर अनिवार॥
× × × ×
आन आन संगे रंगे भरु अङ्ग।
को करु अनुभव प्रेमतरंग॥'' (राधामोहनदास)

श्याम के अङ्ग से अङ्ग सटाये बैठी हैं। दोनों एक–दूसरे का तकिया बने। स्वामिनी बैठी हैं श्याम के बायें कन्धे पर मस्तक रख दायें हाथ से श्याम का पृष्ठदेश पकड़े। आँखों–आँखों दृष्टि–विनिमय। मुखों पर मृदुमन्द हँसी। हँसी हटती नहीं। रूप और तुलसी अपलक नेत्रों से युगलमाधुरी देख रही हैं।

''कनकेर लता जेनो तमाले बेड़िलो।
नवघन माझे जेनो बिजुरी पशिलो॥
राइकानु – रूपेर नाहिक उपाम।
कुवलय चाँद मिललो एक ठाम॥'' (पदकल्पतरु)

सहसा श्रीपाद की स्फूर्ति भंग हुई। नेत्र मानो दृष्टिशून्य हो गये! कहाँ से कहाँ आ गिरे! क्रन्दन के साथ विलाप करते–करते प्रार्थना–

साकं त्वया सखि निकुंजगृहे सरस्याः, स्वस्यास्तटे कुसुमभावितभूषणेन।
शृंगारितं विदधती प्रियमीश्वरी सा, हा हा भविष्यति मदीक्षणगोचरः किम्?६९॥

अन्वय-सखि! (हे सखि रूपमंजरि!) सा ईश्वरी (श्रीराधा) स्वस्याः सरस्याः तटे निकुंजगृहे (स्वीयायाः सरस्याः राधाकुण्डस्य तटे निकुंजगृहे) कुसुमभावितभूषणेन (पुष्पेण प्रकटितं यद्विभूषणम् अलंकरणसाधन-मुकुटादि तं) त्वया साकं (सह) प्रियं शृङ्गारितं विदधती (श्रीकृष्णं भूषितं कुर्वती सती) किं हा हा मदीक्षण-गोचरः भविष्यति?२९॥

अनुवाद-हे सखि रूपमंजरि! मेरी ईश्वरी श्रीराधा जब तुम्हारे साथ अपनी सरसी श्रीराधाकुण्ड के तट पर बने निकुंजगृह में पुष्पों के अलंकारों से अपने प्रियतम श्यामसुन्दर को विभूषित करेंगी, हाय! तब क्या वे मेरे नयन-गोचर होंगी?६९॥

पुष्प-अलंकारों से सज्जित

परिमलकणा व्याख्या-श्रीरूप के साथ श्रीरघुनाथ का निष्कपट सौहार्द्य है। हठात् श्रीरूपमंजरी की स्फूर्ति क्यों? स्फुरण भी तो सत्य है। इसमें भी तो साक्षात्कार की तरह ही एक आनन्द है। श्रीपाद ने अभीष्टसूचन में लिखा है-'मेरी श्रीराधा-दास्य की अभिलाषा श्रीरूप की निर्मल चिन्तनधारा की अनुगामी होकर श्रीराधा के दास्यकार्य में नियुक्त रहे।' श्रीरूप के साथ स्फूर्ति की देवी का आस्वादन करने की अभिलाषा। तुलसी ने श्रीरूप के साथ श्रीराधाकुण्डतट पर हरि-विभूषित केलिकुंज में स्वामिनी को श्याम से मिलाया है। श्रीराधाकुण्डतट की कैसी शोभा! ''राधाकुण्ड श्यामकुण्ड तीरेर जे शोभा। वर्णन ना हय राधाकृष्ण-मनोलोभा॥'' प्रेयसी का कुण्ड प्रेयसी-जैसा ही श्रीकृष्ण को प्रिय है। श्रीकुण्ड दर्शन कर उन्हें प्रियाजी का उद्दीपन होता है। प्रियाजी के प्रियता-गुण के कारण (वे) श्रीकुण्ड में एकबार स्नान करने वाले को प्रियाजी की तरह ही प्रेमदान किया करते हैं।

''कुण्डेर माधुरी जेनो राधा-मधुरिमा।
कुण्डेर महिमा जेनो राधार महिमा॥

''मोरे कृपा करो सखि! श्रीरूपमंजरि!
तब करे प्रीत हये, निज कर-पद्म थुये,
दाँडाबे से स्वभाव-सुन्दरी॥
कमल आयत आँखि, कृष्णे आगे नाहि देखि,
कृष्णप्रेम अगाध पाथारे।
डुबियाछे चित्त जाँर, कबे कृष्ण अभिसार,
कराइबो सेइ श्रीराधारे॥
से काम-तरंग-रंगा, कृष्णजन्य सदाकांक्षा,
केलिकुंजे कृष्णेर सहिते।
मिलन कराबो आमि, एइ कृपा करो तुमि,
आर किछु नाहि भाय चित्ते॥''६८॥

सेइ कुण्डे एकबार जेइ करे स्नान।
तारे राधासम प्रेम कृष्ण करे दान॥'' (चै० च०)

उसी श्रीकुण्ड पर मदनसुखदा-कुंज में मिलन। स्वामिनी के हरि। निभृत-निकुंज-विहारी श्रीराधा के प्राणबन्धु। ऐकान्तिक भाव से-एकनिष्ठ होकर श्रीराधाचरणों का आश्रय लिये बिना इन्हें नहीं पाया जाता। तभी श्रील ठाकुरमहाशय ने कहा है-''व्रजपुर-वनितार, चरण-आश्रयसार, करो मन एकान्त करिया।'' हरि-विभूषित केलिकुंज है। हरि द्वारा विभूषित कुंज, अथवा श्रीहरि ने जिस कुंज को अपने हाथों से सजाया है। 'विलास-विशेष की आकांक्षा से देखते ही प्रिया के हृदय में जगेगी वे खेलेंगी, मैं उनके साथ खेलूँगा'-इत्यादि मनोरथों को लेकर सजाया है। अप्राकृत नवीन-मदन हैं-ये किशोर कृष्ण। मदन को मूर्छित किये रखा है। गोपियों के मनोरथ पर चढ़कर मन्मथ के मन को मथते हैं। ''चड़ि गोपीर मनोरथे, मन्मथेर मन मथे, नाम धरे मदन-मोहन'' (चै० च०)। जिनकी उज्ज्वल बाहु राधा-स्कन्ध पर फैली है, वे ही हम लोगों के आराध्य हैं। केलिकुंज में राधारमण। मुग्ध कैशोर ने स्वामिनी को चंचल कर दिया है। कृष्ण स्वामिनी के साथ खेल रहे हैं। श्याम के साहचर्य में स्वामिनी उन्मादिनी हैं। नागर की लीला में वे अतृप्त रहती हैं। नया खेल सिखाती हैं। नागर अधीन हैं। स्वामिनी आत्मसात् कर खेल रही हैं। श्रीरूप-तुलसी उस अभिनव लीलामाधुरी का आस्वादन कर रही हैं। गौड़ीय वैष्णवों का यही आराध्य या उपास्य तत्त्व है। श्रीजीव गोस्वामिपाद ने लिखा है-'श्रीराधामाधव की माधुरी हम लोगों के चित्त पर आक्रमण करे, इस तरह कि हम सरक न सकें।'

''गौरश्यामरुचोज्ज्वलाभिरमलैरक्ष्णोर्विलासोत्सवै-
र्नृत्यन्तीभिरशेषमादनकलावैदग्ध्यदिग्धात्मभिः।
अन्योन्यप्रियतासुधापरिमलस्तोमोन्मदाभिः सदा
राधामाधवमाधुरीभिरश्चित्तं ममाक्रम्यताम्॥''

(श्रीकृष्णसन्दर्भ-अनु० ५८१)

''जो गौर-श्याम दीप्ति से उज्ज्वल है, नेत्रों के निर्मल उत्सव-विलास से नृत्यशील है, अशेष मादनकला की वैदग्धी से लिप्त (स्वरूप) है, परस्पर के प्रियता-सुधा-परिमल से परम प्रसन्न है-राधामाधव की उसी माधुरी द्वारा (माधुरी समूह द्वारा) मेरा चित्त सभी प्रकार से आक्रान्त हो।'' यहाँ श्रीपाद का अभिप्राय यही है कि श्रीश्रीराधामाधव की सम्मिलित अनिर्वचनीय रूपमाधुरी मेरे हृदय में इस प्रकार उदित हो कि चित्त में अन्य किसी भी बात का स्फूर्तिलेश भी न रहे। 'आक्रान्त' का अर्थ यही कि वह रूपमाधुरी मेरे चित्त में अन्य किसी भी बात का स्फूर्तिलेश भी न रहे। 'आक्रान्त' का अर्थ यही है कि वह रूपमाधुरी मेरे चित्त को किसी भी प्रकार न छोड़े। वह गौर और श्याम कान्तियों से उज्ज्वल है-श्रीराधा की अङ्गद्युति गौरवर्ण, श्रीकृष्ण का श्यामवर्ण। दोनों की अङ्गच्छटा से मानो वृन्दावन उद्भासित है! (प्रियसंग के कारण) श्रीराधा का दाहिना नेत्र और श्रीकृष्ण का बायां नेत्र-दोनों नेत्रों की विचित्र भंगिमा से उल्लसित होकर दोनों की अनिर्वचनीय रूपमाधुरी मानो नृत्य कर रही है! दोनों के अपरूप अङ्ग मादनाख्य महाभाव की अनन्त विलास-निपुणता से परिवृत हैं, अर्थात् मादनरस की आलिंगन-चुम्बन आदि संयोगसूचक अनन्त कलाओं से मण्डित हैं दोनों के श्रीअङ्ग। जैसे विलासी नायक-नायिका अपने अङ्गों पर कुंकुम आदि का लेप करते हैं, वैसे ही श्रीराधामाधव के अङ्ग पारस्परिक प्रीति

द्वारा अनुलिप्त हैं। अर्थात् परस्पर की प्रीतिरूपी सुधा-परिमल-समूह से आमोदित वह माधुरी जिसके हृदय में विराजती है, उसका हृदय भी श्रीश्रीराधाकृष्ण के प्रेम-सौरभ से सुरभित रहता है। इस नित्यस्थिति से ही साधक की साध्यवस्तु निकुंजसेवा मिलती हैं और रस की चरम उपलब्धि होती है। फिर इसी संयोगमयी लीला के भीतर नाना प्रकार की विप्रलम्भ-रसमयी लीला की स्थिति विद्यमान है, कारण-संयोग-विप्रलम्भ की एकसाथ विद्यमानता के बिना आस्वादन की वैचित्री सम्भव नहीं। इसलिये इसी से गुरुजनों की परवशता, घर से आना-जाना, कुंज में मान आदि बहुत प्रकार के लीलारसों की उद्‌भावना होती है।

लीला में स्वामिनीजी को तृप्ति नहीं हो रही। सुन्दर का चूड़ा-धड़ा ढीला हो गया है। माला-मुक्ताहार टूट गया है। 'सुन्दर! तुम्हारी यह अवस्था! अच्छा, मैं सजाती हूँ। मैंने सब नष्ट किया है, मैं ही सजाऊँगी। तुम थोड़ा बैठो यहाँ।' रूपमंजरी से बोलीं-'आ रूप, फूल चयन कर लाती हैं।' रूप के साथ मनपसन्द पुष्प चयनकर स्वामिनी ने कुंज में प्रवेश किया और रूपमंजरी के साथ पुष्प-आभूषणों से प्राणनाथ को सजाने लगीं।

तुलसी कुंज की एक ओर खड़ी होकर अधीश्वरी की सेवा-परिपाटी देख आनन्दसागर में डूब रही हैं और सोच रही हैं-'ऐसी सेवा तुम्हारे द्वारा ही सम्भव है स्वामिनी।' इधर स्वामिनीजी के स्पर्श से श्यामसुन्दर के अङ्ग में सात्विकविकार घर्म (पसीना) बिन्दु प्रकट हो रहे हैं। ये स्वेदबिन्दु स्वामिनी की सेवा में बाधक बन रहे हैं। स्वामिनी का संकेत पाकर तुलसी नागर के पास आकर हवा करने लगीं। तुलसी की सेवा से नागर का पसीना सूख गया। तब तुलसी के मन में थोड़ी कौतुक की बात उपजी। उन्होंने इस परिपाटी से हवा करना शुरू किया कि हवा से स्वामिनी के वस्त्रादि स्थानच्युत हो गये, अङ्गविशेष के दर्शन कर श्याम चंचल हो उठे। वेशरचना में विघ्नस्वरूप चेष्टायें आरम्भ हुईं। तुलसी मृदु-मृदु हँस रही हैं। हवा करने की परिपाटी अब भी बदली नहीं। स्वामिनी तिरस्कार की भंगिमा से कटाक्ष निक्षेप कर अपनी दृष्टि द्वारा ही कहती हैं-'तुलसि! तू बड़ी दुष्ट है। इस तरह हवा करेगी, मैं नागर की वेशरचना कैसे करूँगी? ठीक तरह हवा कर जिससे नागर शान्त होकर बैठे रहें।' स्वामिनी का अपूर्व तिरस्कार पाकर तुलसी ने आनन्दित होकर नयी परिपाटी से हवा करना शुरू किया। इस तरह कि स्वामिनी की अङ्ग-गन्ध श्याम की नासिका में प्रवेश कर उनके लुप्त धैर्य को पुनः लौटा लाये। धन्य हैं किंकरी! धन्य उनकी सेवा!

लीला का आस्वादन स्वरूप को जगाये रखता है। मुझ-जैसे जीव की पारिपार्श्विक (चारों ओर की) अवस्था भी आवेश के अनुकूल नहीं। मन भी टेढ़ा (विरुद्ध) है। प्राकृत आवेश को लेकर कोई उनके (इष्ट के) निकट नहीं जा सकता। स्वरूप का आवेश होना चाहिये। अर्चाविग्रह की सेवा में भी भूतशुद्धि की आवश्यकता है। स्वरूप के आवेश से ही गौड़ीय वैष्णवों की भूतशुद्धि होती है। मानससेवा में तो स्वरूप का आवेश चाहिये ही। भाव-सम्बन्ध को लेकर प्रत्येक भजनांग का अनुष्ठान करना होगा। 'मैं राधा-किंकरी हूँ'-यह अभिमान साधक में सदैव ही रहना चाहिये। किंकरी श्याम-स्वामिनी को मिलाकर जो अपूर्व आनन्द देती है, वह और कोई नहीं दे सकता। युगल बड़े सुखी होते हैं। किंकरी की सेवा से सुखी होकर उसे आत्मदान करते हैं। श्रीलीलाशुक ने कहा है-''अपास्य वृन्दावनपादलास्यमुपास्यमन्यं न विलोकयाम'' (कृष्णकर्णामृतम्-२२); ''वृन्दावने पादलास्यं ययोस्तं युवद्वन्द्वरत्नं त्यक्त्वा अन्यमुपास्यं सेव्यं न विलोकयाम'' (सारंगरंगदा टीका)-'वृन्दावन में नृत्यपरायण श्रीश्रीराधाश्याम को त्यागकर अन्य उपास्य नहीं देखूँगा।' मंजरीभाव की निष्ठा और भी घनी है।

श्रुत्वा विचक्षणमुखाद् व्रजराजसूनोः, शस्ताभिसार-समयं सुभगेऽत्र हृष्टा।
सूक्ष्माम्बरैः कुसुम-संस्कृत-कर्णपूर, -हारादिभिश्च भवतीं किमलंकरिष्ये ?७० ॥

अन्वय-सुभगे! (हे सौभाग्यवति!) विचक्षणमुखात् (एतन्नाम शुकमुखात्) व्रजराज-सूनोः (श्रीकृष्णस्य) शस्ताभिसारसमयं (प्रशस्ताभिसारकालं) श्रुत्वा अत्र (अनुभूतस्थले) हृष्टा (सती) किं भवतीं सूक्ष्माम्बरैः (सूक्ष्मवस्त्रैः) कुसुमसंस्कृतकर्णपूरहारादिभिः च (कृत्वा) अलंकरिष्ये (भूषितां करिष्ये) ?७० ॥

अनुवाद-हे सुभगे! विचक्षण नामक शुकपक्षी के मुख से व्रजराज-नन्दन श्रीकृष्ण का प्रशस्त (अनुकूल)

आचार्यपादगण की महावाणी का अनुसरण करने से स्वरूप की निष्ठा जगेगी। श्रीमन्महाप्रभु ने उन लोगों को भार दिया है-'तुम लोग भजन कर विश्व को शिक्षा दो।'

श्याम की आकांक्षा स्वामिनी के हृदय में भी जग गई है। हरि ने मिलन-लीला के आवरक (बाधक) लज्जा, भय, वाम्य आदि सब हर लिये हैं। 'शृंगारितं'-स्वामिनी श्यामसुन्दर को मानो शृंगारयुक्त कर रही हैं! फूलों की माला गूँथी है-दोनों छोर बाँधे नहीं है। पीछे की ओर गाँठ लगायेंगी। श्याम के सामने आकर कहती हैं-'माला कैसी बनी?' श्याम थोड़े हँसे। शिल्प-प्रशंसा के योग्य भाषा खोजने पर नहीं मिल रही। माला गले में पहनाकर पीछे गाँठ लगाते ही परस्पर के वक्षस्थलों का मिलन हो गया। माला मर्दित हुई। 'माला मर्दित होकर नष्ट हो गई'-प्रियाजी कहती हैं। पुनः अभिनव शिल्प का प्रयोग कर माला गूँथकर पहना रही हैं। साक्षात् शृंगार को शृंगाररस में डुबोकर शृंगार कर रही हैं। श्याम को चूड़ा पहना रही हैं। श्याम के चेहरे पर मृदु हास्य। 'यह तो अमृत है; गिरने नहीं देगा॥' किन्तु अमृत ग्रहण करने में चूड़ा गिर ही गया! पुनः चूड़ा पहना रही हैं। श्रीरूपमंजरी सहायता कर रही हैं। तुलसी सेवा-परिपाटी देखकर विस्मित हैं! इसी सयम स्फुरण में विराम आ गया। कुण्डतट पर लोटपोट हो करुणस्वर में रो रहे हैं। स्वामिनी के शृंगार करने के समय-स्वामिनी श्यामसुन्दर का शृंगार करेंगी, उस दृश्य को देखने के लिय तुलसी प्रार्थना करती हैं।

''श्रीरूपमंजरि सखि मोरे करो दया।
तव कृपा ना होइले, कुंजसेवा नाहि मिले,
सदा मोरे देहो पदछाया॥
राधाकुण्डतीर-शोभा, कुंजगृह मनोलोभा,
तोमा सह ताहार माझारे।
जबे राधा मदीश्वरी, प्रेम-सोहागेते भरि,
प्राणकान्त व्रजेन्द्रकुमारे॥
नाना पुष्प आभरणे, साजाइबे सजतने,
जे अङ्गे जेमन शोभा पाय।
से रहस्यलीला कबे, नयनगोचर हवे,
जीवन सार्थक हबे ताय॥''६९॥

अभिसार-काल सुनकर हृष्ट होकर क्या मैं तुम्हें सूक्ष्मवस्त्र, पुष्पनिर्मित कर्णभूषण और हार आदि से विभूषित करूँगी ?७० ॥

अभिसार-सज्जा

परिमलकणा व्याख्या-इस बार स्वामिनी का स्फुरण। 'हे सुभगे! विचक्षण नामक शुक के मुख से श्यामसुन्दर के अभिसार का संवाद जानकर क्या मैं तुम्हें अभिसार कराऊँगी ?' स्वामिनीजी के सौभाग्य का अनुभव कर 'सुभगे' सम्बोधन। जिनके लिये असंख्य व्रजसुन्दरियाँ उत्कण्ठित हैं, वे राधारानी के लिये कातर हैं। राधारानी के गर्व से दासी गर्विनी है। राधारानी के लिये श्याम की आर्ति की सीमा नहीं।

''वृषभानु-नन्दिनी, जपये रातिदिनि, भरमे ना बोलये आन।
लाख लाख धनि, बोलये मधुर वाणी, स्वप्ने ना पातये काण॥
''रा'' कहि ''धा'' पहुँ, कहइ ना पारइ, धारा धरि बहे लोर।
सोइ पुरुख-मणि, लोटाय धरणी पुन, को कह आरति ओर॥'' (गोविन्ददास)

श्याम की आर्ति की चरमता राधारानी को पाने के लिये। तभी विचक्षण शुक को स्वयं ने ही कह भेजा है। जो पूर्णानन्द स्वरूप हैं; अखण्ड शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध के जो परम आश्रय हैं-उन्हीं अखिल रस-निधान व्रजेन्द्रनन्दन को भी उन्मादित करती है राधा की मधुरिमा। ''रसो वै सः'', ''रसं ह्येवायं लब्धानन्दीभवति'', ''को ह्येवान्यात् कः प्राण्यात् यदेष आकाश आनन्दो न स्यात्'', ''एष ह्येवानन्दयति सैषानन्दस्य मीमांसा भवति'', ''एतस्यैव आनन्दस्य अन्यानि भूतानि मात्रामुप-जीवन्ति''-श्रुति में इस प्रकार उनके स्वरूपतत्त्व का इंगित किया गया है। अर्थात् ''परब्रह्म भगवान् रसस्वरूप हैं, उसी रस का आस्वादन कर जीव आनन्दित होता है। आकाश की तरह सर्वव्यापक और अलिप्त भगवान् यदि आनन्दस्वरूप न होते, तो कौन प्राणवायु का कार्य करता, कौन अपानवायु का कार्य करता ? अर्थात् परमात्मा भगवान् आनन्दस्वरूप न होते, तो किसी में भी बचने की (जीवित रहने की) आकांक्षा न रहती। भगवान् ही सभी को आनन्दित करते हैं, सभी आनन्दों का चरम पर्यवसान भगवान् में है। उसी विभु आनन्द की एक बूँद की आभास-कणिका अवलम्बन कर सारा विश्व आनन्दित रहता है।'' उन भगवान् की भी इतनी उन्मादना, इतनी आकांक्षा है राधारानी के लिये पूर्वराग दशा में देखा गया है कि श्रीमती के लिये विरहकातर श्याम की अवस्था का वर्णन सखी राधारानी के आगे करती है-

''धनि धनि रमणि-जनम धनि तोर।
सब जन कान्हु, कान्हु करि झुरये, से तुय-भावे विभोर॥
चातक चाहि तियासल अम्बुद, चकोर चाहि रहु चन्दा।
तरु-लतिका-अवलम्बनकारी, मझु मने लागल धन्दा॥
केश पशारि, कबहुँ तुहुँ आछलि, उर पर अम्बर आधा।
सो सब सुमरि, कान्हु भेलो आकुल, कह धनि इथे कि समाधा॥
हसइते कब तुहुँ, दशन देखयलि, करे कर जोरहि मोर।
अलखिते दिठि कब, हृदये पसारलि, पुन हेरि सखि कैलि कोर॥

एतहुँ निदेश, कहल तोहे सुन्दरि, जानि तोंहे करह विधान।
हृदय-पुतलि तुहुँ, सो शून-कलेवर, कवि विद्यापति भान॥''

श्याम का ऐसा प्रेम-आतिशय्य और किसी के प्रति नहीं। श्रीमती के साथ विलास-वैचित्री आस्वादन के लिये ही अन्यान्य गोपियाँ हैं। अखण्ड वश्यता राधारानी के प्रति ही है। यह अवस्था श्रीराधा-किंकरी के लिये बड़ी ही आस्वाद्य है। कृष्ण ने स्वयं शुकपक्षी द्वारा अभिसार के लिये राधारानी को संवाद भेजा है। विचक्षण शुक किंकरी तुलसी को अभिसार का संवाद दे गया है। तुलसी को कितना आनन्द!

''शुकमुखे शुनइते ओइछन रीत।
सब अङ्ग पुलकित चमकित-चित॥
कहइते गदगद कण्ठहि बोल।
राइमुख निरखिते अन्तरदोल॥'' (महाजन)

'पहले से स्वामिनी को नहीं बताना। बताने से तो वे विलम्ब न सह पाकर यों ही अस्त-व्यस्त वेश से अभिसार करेंगी।' श्रीशुकमुनि ने महारास में श्रीकृष्ण का वंशी-नाद सुनकर उन्मादिनी हुई किसी-किसी गोपी का अभिसार वर्णन किया है-''लिम्पन्त्यः प्रमृजन्तोऽन्या अञ्जन्त्यः काश्च लोचने। व्यत्यस्तवस्त्राभरणाः काश्चित् कृष्णान्तिकं ययुः॥'' (भा०-१०/२९/७) अर्थात् ''उस समय कोई-कोई गोपी अङ्गराग कर रही थी, कोई-कोई अङ्गमार्जन; कोई-कोई नेत्रों में अंजन लगा रही थी, तो कोई वस्त्र-आभूषण धारण करने में लगी थी-उन्होंने वस्त्र, भूषण, अनुलेपन आदि विपर्यस्तभाव से (एक अङ्ग की वस्तु अन्य अङ्ग में) धारण कर श्रीकृष्ण के निकट गमन किया।'' गोस्वामिपादगण के मत में ऐसा सम्भव है मादन और मोहन भाववती राधारानी एवं उनकी सखियों के लिये ही। पदकर्ता ने भी गाया है-

''राइ साजे बाँशी बाजे ना पड़िलो उल। कि करिते किना करे सब हइलो भूल॥
मुकुरे आँचरे राइ बाँधे केशभार। पाये बाँधे फूलेर माला ना करे विचार॥
करेते नूपुर परे नयने आलता। हियार उपरे परे बंकराज पाता॥
श्रवणे करये राइ वेशर साजना। नासार उपरे करे वेणीर रचना॥
वंशीवदने कहे जाउँ बलिहारी। श्याम अनुरागेर बालाइ लइया मरि॥''

श्रीकृष्णप्रेमोन्मादिनी श्रीराधा की ऐसी अङ्ग-प्रत्यंग की विस्मृति को रसशास्त्र में 'विभ्रम' अलंकार कहा गया है।

''वल्लभप्राप्तिबेलायां मदनावेशसम्भ्रमात्।
विभ्रमो हारमाल्यादिभूषास्थानविपर्ययः॥'' (उ० नी०)

''प्राणवल्लभ श्रीकृष्ण के साथ मिलन का सुयोग या सम्भावना होने पर मदन-आवेश जनित व्यस्तता और व्यग्रता में अङ्ग-प्रत्यंग आदि की विस्मृति वशतः हार-माल्यादि अलंकार धारण में जो स्थान-विपरीतता घटित हो जाती है, उसे 'विभ्रम' नामक अलंकार कहा जाता है।''

श्रीकृष्ण प्रेम के ही आस्वादक हैं, वस्त्र-भूषादि विषयक सौष्ठव के नहीं। अतएव प्रेमवती की ऐसी अस्तव्यस्त उल्टी-पुल्टी वेशभूषा देख प्रेमरस-लोलुप श्रीकृष्ण में परम आनन्द का ही उद्रेक होता है और वे

नानापुष्पैः क्वणितमधुपैर्देवि संभावितामि-
र्मालाभिस्तद्घुसृण - विलसत्काम-चित्रालिभिश्च।
राजद्द्वारे सपदि मदनानन्ददाभिख्य-गेहे
मल्लीजातैः शशिमुखि कदा तल्पमाकल्पयामि?७१॥

अन्वय-शशिमुखि! देवि! कदा (अहं) क्वणितमधुपैः नानापुष्पैः सम्भाविताभिः (सम्यक् निर्मिताभिः) मालाभिः तद्घुसृणविलसत्कामचित्रालिभिः (तेन प्रसिद्धेन घुसृणेन कुंकुमेन विलसन्त्यः शोभमानाः याः कामचित्रालयः कन्दर्पलेखश्रेण्यस्ताभिश्च) राजद्द्वारे (प्रकाशमानं द्वारं यस्य तस्मिन्) मदनानन्ददाभिख्य गेहे (मदनानन्ददाऽभिख्य नाम यस्य तच्च तद्गेहञ्चेति तस्मिन्) सपदि मल्लीजातैः तल्पम् आकल्पयामि (शीघ्रं मल्लिसमूहैः शय्यां रचयिष्यामि) ?७१॥

अनुवाद-हे शशिमुखि! हे देवि! मधुपगुंजी (भौंरों के गुंजन से युक्त) सद्य-प्रस्फुटित विविध कुसुमों की मालाओं और प्रसिद्ध कुंकुम से चमकते कामोद्दीपक चित्रों द्वारा शोभित द्वारों वाले मदनानन्दद नामक कुंजगृह में मैं मल्लिका पुष्पों से शय्यारचना कब करूँगा?७१॥

अपने हाथों प्रेममयी के वस्त्र-अलंकार आदि यथास्थान रख प्रेम-अधीनता का ही परिचय देते हैं। किन्तु किंकरी यथायोग्य भाव से सुसज्जित करके ही श्रीमती को अभिसार कराने की इच्छा रखती है। तभी किंकरी तुलसी सोच रही हैं-'शुकपक्षी कह गया है-श्याम स्वामिनी के लिये अभिसार करेंगे। स्वामिनी को सजाकर यह बात बताऊँगी।' इन लोगों की सेवा-परिपाटी की बात सोचकर भी मंगल होता है। अन्य किसी विषय पर दृष्टि डालने की इच्छा नहीं होती। युगल के रूप-गुण-लीलादि के विषय में सोचने से भी चित्त पवित्र क्यों नहीं होगा? मायाशक्ति क्या स्वरूपशक्ति को रोक सकती है? भजन में नया जीवन गठित होगा ही। चित्त-मन में कोई परिवर्तन नहीं आता, तो कैसे समझेंगे कि भजन से उन्नति हो रही है? दासी तुलसी श्रीमती को अभिसार-वेश में, अर्थात् सूक्ष्मवस्त्र, पुष्प-कर्णभूषण, हार आदि विचित्र अलंकारों से सजा रही हैं। कितनी परिपाटी वाली वेशरचना! तुलसी की उस परिपाटी को देख स्वामिनी भी मन ही मन सोच रही हैं-'इस वेशरचना का निश्चय ही कुछ उद्देश्य है।' तभी स्वामिनी की स्वभाव-सुन्दर रूपराशि मानो उच्छ्वसित हो रही है! इसीलिये तुलसी ने 'सुभगे' या 'सुन्दरि' कहकर सम्बोधित किया है। स्फूर्ति के विराम में सेवा के लिये प्रार्थना।

''कृष्ण-अभिसार काल, शुनिबो जखन भाल,
विचक्षण शुकेर वदने।
तबे अति हृष्ट हये, सूक्ष्म पट्टशाटी लये,
पराइबो तोमारे जतने॥
कर्णपूर रचि फूले, पराइबो कर्णमूले,
गले दिबो कुसुमेर हार।
हा देवि! तोमार कबे, साजाइबो एइ रूपे,
दिया हेनो पुष्प-अलंकार॥''७०॥

मदनानन्दद कुंज

परिमलकणा व्याख्या–स्फूर्ति में विराम आया तो श्रीपाद के चित्त में हाहाकार मच गया। राधानिष्ठा ने चित्त को सम्पूर्णरूप से ग्रसित कर लिया है। बाह्य आवेश में भी राधादास्य के लिये प्रार्थना कर रहे हैं। स्मरण में, स्फुरण में पाकर भी तृप्ति नहीं–साक्षात् चाहिये। बाह्य दशा में भी स्वामिनी का तीव्र अभाव अनुभव कर रहे हैं। विलाप करते–करते प्रार्थना कर रहे हैं–

''निरुपम–नवगौरी–नव्य–कन्दर्पकोटि–प्रथित–मधुरिमोर्मि–क्षालित–श्रीनखान्तम्।
नव–नव–रुचिरागैर्हृष्टमिष्टैर्मिथस्तद्–व्रजभुवि नवयूनोर्द्वन्द्वरत्नं दिदृक्षे॥
मदन–रस–विघूर्णन्नेत्र पद्मान्त–नृत्यैः परिकलितमुखेन्दुह्रीविनम्रं मिथोऽल्पैः।
अपि च मधुरवाचं श्रोतुमावर्द्धिताशं व्रजभुवि नवयूनोर्द्वन्द्वरत्नं दिदृक्षे॥''

''निरुपम नवगौरी और कोटि–कोटि नवकन्दर्पों की सुप्रसिद्ध माधुर्यतरंग द्वारा धोयी शोभाराशि जिनके पदनखप्रान्त में विलीन हो गई है, जो अभिनव रुचिसम्पन्न पारस्परिक अनुराग से आनन्दित हो रहे हैं–उन्हीं नवयुव–युगलरत्न श्रीराधाकृष्ण को मैं इस व्रजभूमि मैं देखने की इच्छा करता हूँ।'' कभी कहते हैं–''जिनके मदनरस–विघूर्णित नेत्रकमलों के ईषत् कटाक्ष से युक्त मुखचन्द्र सलज्ज नम्रता से अति सुन्दर हो गये हैं, जिनकी पारस्परिक वचनमाधुरी सुनने की लालसा उत्तरोत्तर बढ़ रही है–उन्हीं नवयुव–युगलरत्न श्रीराधाकृष्ण को मैं इस व्रजभूमि में देखने की अभिलाषा करता हूँ।''

प्रार्थना की तरंगों में डूबा श्रीपाद का चित्त लीलाराज्य में चला गया है। विचक्षण शुक के निर्देश के अनुसार अभिसारिका उत्कण्ठावती श्रीमती को लेकर कुण्डतट पर मदनसुखदा कुंज की ओर चली जा रही हैं। श्यामसुन्दर की सुखस्मृति में स्वामिनी सब भूल गई हैं। पदकर्ता ने गाया है–

''देखो राइ करत अभिसार।
शिरिष–कुसुम जिनि, कोमल पदतल, विपथे पड़त अनिवार॥
सम वय वेश, भूषणे भूषित तनु, सखिगण संगहि मेलि।
गजगति निन्दि, गमन सुमन्थर, किये जित खंजन–केलि॥
जो थलकमल, परशे अति कोमल, झामर भइ उपचंक।
सो अब जाँहा ताँहा, कठिन धरणी माहा, डारत भइ निःशंक॥
ओइछन भाँति, मिलल वरनागरी, कुंज महा चलि गेल।
हेरि राधामोहन, उलसित लोचन, आनन्द–सागरे डूबि गेल॥''

नाना पुष्पों से सुशोभित कुंज। प्रति फूल पर गुंजन कर रहा है भौंरा। भ्रमर–झंकार से कुंज मुखरित है। पिसे कुंकुम–रंग से अंकित कामचित्रों द्वारा चित्रित है द्वारदेश। चित्र उद्दीपक हैं। कुंकुम भी उद्दीपक है। श्रीराधाकुण्ड के ईशानकोण में 'मदनसुखदा' नामक कुंज है विशाखा सखी का। उसके चारों ओर चार चम्पकतरु विद्यमान हैं, जिनके लाल–हरे–पीले और श्यामवर्ण पुष्पों के सौरभ ने चारों दिशायें आमोदित कर रखी हैं। नील, पीत और हरित् वर्ण शुक पिक एवं अलिसमूह मधुर स्वर में गायन कर रहे हैं। माधवीलताओं से

चम्पकशाखायें ढकी होने से कुंज सुंदर राजभवन-जैसा ही लगता है। सरकण्डों में गुंथे हैं पत्ते और विचित्र फूल-उनसे चार छोटे किवाड़ बने हैं, जो कुंज के चारों द्वारों पर आवरण के रूप में शोभा पा रहे हैं। मदमत्त चंचल भौंरे द्वारपालों की तरह घूम रहे हैं। कुंज की मध्यभूमि मणियों से जड़ी है, वह षोड़शदल कमल की श्री धारण किये है! विशाखा की सखी मंजुमुखी कुंज की परिचर्या में नियुक्त रहती हैं। प्रेमरसस्वरूप श्रीराधाकुण्ड के तट पर स्थित यह मदनसुखदाकुंज श्रीराधाकृष्ण के विहाररूपी रसवन्या से सर्वदा आप्लावित रहता है।

कुंज के भीतर श्याम स्वामिनि की प्रतीक्षा में हैं। उत्कण्ठित नायक पथ निहार रहे हैं। वृक्ष-लताओं के पत्ते मर्मर ध्वनि करते गिरते हैं, तो यह सोचकर कि प्रियाजी आ गईं उल्लसित हो चौंक उठते हैं। सहसा स्वर्ण-आलोक से कुण्डतट उद्‌भासित हो उठा! श्याम कुंज से बाहर आ गये हैं। उत्कण्ठा की सीमा नहीं। कुछ ही दूर स्वर्णप्रतिमा दिखाई दी। ऐसी पहले कभी नहीं देखी। उत्कण्ठित नागर सोच रहे हैं-

''किं कान्तेः कुलदेवता? किमुत वा तारुण्यलक्ष्मीरियम्?
सम्पद् वा किमु माधुरी तनुमती? लावण्यवन्या नु किम्?
किम्वानन्द-तरङ्गिणी ? किमथवा पीयूषधाराश्रुतिः
कान्तासावुत वा ममेन्द्रियगणानाह्लादयन्त्यागता॥'' (गो० ली-८/१०९)

''ये क्या कान्ति की कुलदेवी हैं? अथवा तारुण्यलक्ष्मी हैं? या देहधारिणी माधुरी-सम्पद्? और क्या ये लावन्यवन्या हैं? या आनन्दतरंगिणी? अमृतधारा का स्रोत हैं, अथवा मेरी इन्द्रियों को आनन्द-दान करते-करते मेरी ये कान्ता ही आईं?'' अनुरागिणी श्रीमती भी श्याम-माधुरी दर्शन कर विस्मित हैं। जिनके लिये वे इतने अनुराग से भरी आई हैं, क्या ये वही हैं, या और कुछ?

''अयं किं कन्दर्पः? स खलु वितनुः, किं नु रसराट्?
स नो धर्मी, किम्वामृतरसनिधिः? सोऽतिवित्ततः।
किमुत्फुल्लप्रेमामरतरुवरः? सोऽपि न चरः
स वासौ मत्प्रेयान् जयति मम भाग्यं क्वनु तथा॥'' (वही ८/११२)

''ये क्या कन्दर्प हैं? नहीं, उसका तो शरीर नहीं। तो क्या रसराज? नहीं, वह तो धर्म है; धर्मी नहीं। तो क्या अमृतरस का सागर? नहीं, वह तो महाविस्तीर्ण है। तो क्या प्रफुल्लित प्रेम-कल्पतरु? नहीं, वह तो चलता नहीं। तब क्या ये मेरे वही चिर-आकांक्षित प्रियतम हैं? हाय! मैं क्या इतनी भाग्यवती हूँ?''

तुलसी ने उत्कण्ठित युगल को पहले कुंजप्रांगण में रत्नवेदी पर बिठा दिया है। उन दोनों का मनोभाव जानकर किंकरी ने कुंज में प्रविष्ट होकर मल्लिका पुष्पों की शय्या प्रस्तुत की। शीतकाल में भी षड़ऋतु सेवा करती हैं। जब जैसी आवश्यकता। समय लीला की प्रतीक्षा करता है। लीला के अनुकूल हो काल, आकाश, वायु, चन्द्र, सूर्य सभी सेवा करते हैं। व्रज में जड़वस्तु कुछ नहीं। सभी लीला के सेवक हैं। जैसे-चन्द्रशालिका (अट्टालिका) का द्वार खोलते ही श्यामसुन्दर ने पूर्णचन्द्र देखा। ''रमाननाभं'-राधारानी के वदन की स्मृति हो आई। उत्कण्ठित नायक ने वंशीवट आकर वंशी बजाई। गोपियों के साथ एक ब्रह्मरात्रि रास किया। उसी व्रज में अन्यान्य गोप-गोपियों के लिये वही रात्रि चार प्रहर की है। कैसी सेवा! तुलसी ने मल्लिका पुष्पों के डंठल

श्रीरूपमंजरी-करार्चित-पादपद्म,- गोष्ठेन्द्र-नन्दन-भुजार्पित-मस्तकायाः।
हा मोदतः कनकगौरि पदारविन्द,-सम्वाहनानि शनकैस्तव किं करिष्ये?७२॥

अन्वय-कनकगौरि! श्रीरूपमंजरि-करार्चितपादपद्म-गोष्ठेन्द्रनन्दन-भुजार्पित-मस्त-कायाः (श्रीरूपमंजर्या कराभ्यामर्चिते मर्दिते पादपद्मे यस्य सचासौ गोष्ठेन्द्र-नन्दनश्चेति तस्य भुजे बाहौ अर्पितो मस्तको यया तस्याः) हा किं पदारविन्द मोदतः (प्रमोदात्) शनकैः मन्दं मन्दं) सम्वाहनानि (मर्दनानि) करिष्ये?७२॥

अनुवाद-हे हेमगौरि श्रीराधिके! श्रीरूपमंजरी जिनके पादपद्म संवाहन कर रही हैं, उन्हीं गोष्ठेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण की भुजा पर तुम सिर रखे हुए हो। हाय! उस समय क्या मैं सानन्द पूर्वक धीरे-धीरे तुम्हारे पादपद्म संवाहन करूँगी?७२॥

निकाल पंखुड़ियों से शय्या-रचना की। एक पतली चादर शय्या पर बिछी हुई है, जिससे फूल अस्तव्यस्त न हों। एक जने के योग्य शय्या। नव-नव पल्लवों से बना एक तकिया। एक क्यों? लेटने के समय समझा जायेगा। लीला की छवि पहले से ही दासी के मन में जगती है। युगल को इसी शय्या पर ले जायेंगी। युगल को मदन सुख देता है, तभी नाम है मदनसुखदा। फूलों का द्वार। फूल-फूल पर मंडरा रहे हैं भ्रमर। द्वार पर वे प्रहरी की तरह हैं। किसी भी विरोधी को नहीं आने देंगे। उनका गुंजन युद्ध-वाद्य की तरह है। राधाश्याम को सुरत-समर में उन्मत्त करता है। द्वार पर कुंकुमद्रव से कामलीलामय चित्र दासियों ने ही अंकित किये हैं। शय्यारचना हो गई है। श्याम और स्वामिनी को कुंज के भीतर ले जायेंगी। बाहर आकर सम्बोधन करती हैं-'शशिमुखि!' कलंकयुक्त चाँद को कहते हैं शशि। इस अकलंक वदन-चन्द्र की तुलना सकलंक चन्द्र के साथ क्यों? तुलसी जब शय्यारचना करने जा रही थीं, तब स्वामिनी ने श्याम की ओर ऐसा कटाक्षपात किया था कि श्याम ने उनकी नयन-सुषमा पर लुब्ध हो नेत्रों का चुम्बन कर लिया। श्याम के लाल होंठ पर काजल लग जाने से काले हो गये। देखकर स्वामिनी फिस् कर थोड़ा हँस पड़ीं, गण्डस्थलों पर हँसी बिखर गई। अब गण्ड-शोभा पर लुब्ध नागर ने गण्डस्थल का चुम्बन किया, तो वहाँ काजल लग गया। इसीलिये सम्बोधन किया-'शशिमुखि!' श्याम स्वामिनी को कुंज में ले जाने के लिये हाथ फैलाया, तो कुछ न मिला। स्फुरण में विराम आ गया। आर्ति के साथ प्रार्थना की-

''शशिमुखि! कबे आमि भ्रमर-गुंजित।
नानारूप मनोरम कुसुमे रचित॥
अति सुवासित नव-मालिका राशिते।
कुंकुम-रंजित काम-चित्रराजिते॥
द्वारदेश विभूषित परम सुन्दर।
मदनानन्दद नाम कुंजेर भितर॥
तव तरे नवमल्लि-प्रसून निचये।
रचिबो उत्तम शय्या सानन्द हृदये?'७१॥

श्रीपादपद्म संवाहन

परिमलकणा व्याख्या-स्वरूपादिष्ट श्रीपाद स्फुरण में श्रीयुगल-विलास के लिये मदन-सुखदाकुंज में मल्लिका पुष्पों की शैय्या रचनाकर उस पर श्रीयुगल को ले गये हैं। निर्वृन्त (डंठल-रहित) कुसुमों की शय्या, अतएव युगल के विलास-पराक्रम को सहने में सक्षम। किंकरियाँ नित्यसिद्ध हैं। इन लोगों की सेवा-परिपाटी के श्रवण-कीर्तन-चिन्तन से उस प्रकार की भावमय सेवा पाने के लिये लोभ उत्पन्न होता है। यह लोभ ही सहृदय साधक को मंजरीभाव-साधना का अधिकार दिलाता है। ''सेइ गोपीभावामृते जार लोभ हय। वेदधर्म लोक त्यजि सेइ कृष्णे भजय॥'' (चै० च०) अनुगम्य गोपियों के भाव के अनुगत भाव की साधना ही प्रमुख रूप से करनी होगी। ('अनुगम्य' गोपियाँ, अर्थात् वे गोपियाँ जिनका अनुगत होकर भक्तिसाधना करनी होगी। मंजरीभाव-साधक के लिये श्रीरूपमंजरी, रतिमंजरी आदि अनुगम्य गोपियाँ हैं।) साधक का गोपीभाव-भावित अत:करण प्रस्तुत करना ही गोपीभाव से रागानुगा-साधन है। जिन लोगों के लिये अपनी सिद्धदेह का चिन्तन अथवा स्मरणांग-साधन सुस्पष्ट या सुखकर नहीं होता, उल्टे कष्टप्रद लगता है-उन सभी नवीन साधकों को पहले अन्त:करण में गोपीभाव के संस्कार को दृढ़ बनाने का प्रयास करना होगा। इसका उपाय है-गोपीभाव की महिमा का श्रवण-कीर्तन; गोपीभाव के उद्देश्य से व्यक्त लालसामयी प्रार्थना-विज्ञप्तियों का श्रवणकीर्तन-स्मरण-मनन! ऐसी रचनायें हैं श्रील रूपगोस्वामिपाद की उत्कलिकावल्लरी और कार्पण्य-पंजिकास्तोत्र; श्रीपाद दासगोस्वामी की विलाप-कुसुमांजलि; श्रील ठाकुरमहाशय की प्रार्थना, प्रेमभक्तिचन्द्रिका इत्यादि। साधक को जिस सिद्धदेह का चिन्तन करना है, वह भाव के अनुरूप ही हो। भाव के प्रति लक्ष्य न रखने से गोपीभाव-भावित अन्त:करण का होना साधक के लिये सर्वथा दुष्कर है। श्रीपाद दासगोस्वामी ने व्रजवास और श्रीयुगल-परिचर्या का प्रधान साधन बताया है-प्रेमपूर्वक श्रीरूप-सनातन का नित्य स्मरण।

''यदिच्छेरावासं व्रजभुवि सरागं प्रतिजनुर्युवद्वन्द्वं तच्चेत् परिचरितुमारादभिलषे:।
स्वरूपं श्रीरूपं सगणमिह तस्याग्रजमपि स्फुटं प्रेम्णा नित्य स्मर नम तदा त्वं शृणु मन:॥''

(मन:शिक्षा-३)

''हे मन! यदि तुम प्रति जन्म में व्रजभूमि में वास और श्रीराधाकृष्ण की सेवा करने की अभिलाषा रखते हो, तो श्रीस्वरूप, गणसहित श्रीरूप और श्रील सनातन गोस्वामिपाद को भक्तिपूर्वक नित्य स्मरण करो, प्रणाम करो।'' इन लोगों को नित्य स्मरण करने से स्वरूपावेश प्रबल होगा और वह स्वरूपावेश बाह्य आवेश को निगल जायेगा। जो प्रेम करना नहीं जानते, उनसे भी व्रजविहारी श्रीकृष्ण प्रेम करा लेते हैं। रूपमाधुरी, लीलामाधुरी, वेणुमाधुरी, प्रेममाधुरी इत्यादि द्वारा वे वृक्ष-लता, पशु-पक्षी, जल-पत्थर आदि में भी प्रेम का संचार कर देते हैं। गोविन्द की निरूपम माधुरी स्थावर-जंगम को उन्मत्त कर डालती है।

कुंज में नव-किशलय की शय्या है। पुष्पों का एक तकिया। उस पर श्यामसुन्दर मस्तक रखे हैं। व्रजराज-नन्दन की बायीं भुजा को स्वामिनी ने अपना तकिया बना लिया है। विलास के अन्त में श्रीयुगल लेटे हुए हैं। श्रीरूपमंजरी शय्या पर बैठ श्यामसुन्दर के चरण दबा रही हैं। तुलसी अपनी गोद में स्वामिनी के चरण रखकर दबा रही हैं। रूपमंजरी ने प्रणयवश तुलसी को इस कार्य में नियुक्त किया है। मंजरियाँ साक्षात् प्रीतिरस की ही मूर्तियाँ हैं। एक जने के लेटने लायक शय्या है, दासी ने लीला का भाव जानकर बिछाई है। दोनों ही टेढ़े

होकर आमने-सामने लेटे हैं। कैसी-कैसी रसचर्चा, दर्श-पर्श, हँसी-ठठ्ठा चल रही है। बीच-बीच में एक-दूसरे को धक्का देकर बात कर रहे हैं। दासियाँ चरण-संवाहन कर रही हैं, यह भी ध्यान नहीं। भाव जानकर किंकरियाँ मृदुमन्द भाव से पैर दबा रही हैं। यहीं सखियों की अपेक्षा मंजरियों की विशिष्टता है! राधा-किंकरियों को प्राप्त है रहस्यमय नि:संकोच सेवा। युगल के मधुर रसविलास-माधुर्य का निविड़ आस्वादन कर रही हैं रूप और तुलसी। ''हेरि दुहुँ लावणि, दुहुँ सम्भाषण शुनि, सखी आँखि श्रवण जुड़ाय।'' सखियों के आगे संकोच रहता है। मंजरियाँ हैं। अभिन्नप्राण, इनके आगे कोई संकोच नहीं। श्रीमत् जीवगोस्वामिपाद ने प्रीतिसन्दर्भ के उपसंहार में लिखा है-

''आलीभि: परिपालित: प्रबलित: सानन्दमालोकित:
प्रत्याशं सुमन: फलोदयविधौ सामोदमास्वादित:।
वृन्दारण्यभुवि प्रकाशमधुर: सर्वातिशायिश्रिया
राधामाधवयो: प्रमोदयतु मामुल्लासकल्पद्रुम:॥''

''वृन्दावन में पुष्प-फल की आशा से सखियाँ श्रीश्रीराधामाधव के जिस प्रकाश मधुर उल्लास कल्पतरु को पालपोस रही हैं, बड़ा कर रही हैं और आनन्द से निरीक्षण कर रही हैं-वह अपने सर्वातिशायी सौन्दर्य द्वारा मुझे आनन्द प्रदान करे।'' इस उल्लास-कल्पद्रुम का सर्वातिशायी सौन्दर्य मंजरियाँ ही आस्वादन किया करती हैं। यही वस्तु आपामर जगज्जीवों को बाँटने के लिये ही श्रीगौरसुन्दर का कल्याणकारी अवतार हैं। तभी श्रीपाद ने इसके ठीक पीछे लिखा है-

''तादृशभावं भावं, प्रथयितुमिह योऽवतारमायात:।
आदुर्जनगणशरणं, स जयति चैतन्यविग्रह: कृष्ण:॥''

''वैसी भावमयी भक्ति का वितरण करने के लिये जो विश्व में अवतीर्ण हुए हैं, जो अति दुर्जन तक सभी के आश्रय हैं, उन्हीं श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु की जय हो।'' श्रीगौरसुन्दर के युग के लोग यदि उनके इस अवदान से वंचित होते हैं, तो इससे अधिक परिताप की बात और क्या हो सकती है? श्यामरस के आस्वादन से पुष्ट स्वामिनी रसालस की स्थिति में हैं (अलसा रही हैं)। धीरे-धीरे आनन्द आस्वादन के सागर में डूब जाते हैं युगल। सो गये। दासी अपलक नेत्रों से युगल-माधुरी आस्वादन कर रही हैं। चरण गोद में ही रखे हैं। शय्या से उतरने पर यदि नींद टूट गई? इसलिये तुलसी वहीं बैठी-बैठी अभीष्ट के चरण वक्ष से लगाये युगल-माधुरी के आस्वादन में मग्न हैं। सहसा स्फूर्ति में विराम आ गया। 'हा कनकगौरि! कहाँ हैं तुम्हारे वे चरणारविन्द? और कब उन्हें गोद में रखे परम आनन्द के साथ उसी प्रकार मृदुमन्द भाव से दबाऊँगी?'

''हे कनकगौरि! मोर निवेदन शुनो।
एइ कृपा अङ्गीकार करो तुमि पुन:॥
निज बाहुपरे राखि मस्तक तोमार।
शयन करिबे जबे व्रजेन्द्रकुमार॥
कृष्णपद-संवाहने श्रीरूपमंजरी।
सेइकाले हइबेन अधिक आगोरी॥

गोवर्द्धनाद्रिनिकटे मुकुटेन नर्म,-लीला विदग्ध-शिरसां मधुसूदनेन।
दानच्छलेन भवतीमवरुध्यमानां, द्रक्ष्यामि किं भ्रुकुटिदर्पित-नेत्रयुग्माम्?७३॥

अन्वय-गोवर्द्धनाद्रिनिकटे नर्मलीलाविदग्ध-शिरसां मुकुटेन (नर्मलीलायां कौतुकक्रीड़ायां ये विदग्धा अतिनिपुणास्तेषां शिरसां मस्तकानां शिरोभूषणरूपेण) मधुसूदनेन दानच्छलेन अवरुध्यमानां भवतीं (निरुद्धमानां त्वां) किं भ्रुकुटि-दर्पित-नेत्रयुग्मां (भ्रुकुट्यादर्पितं दर्पयुक्तं कृतं नेत्रयुग्मं यया तां) द्रक्ष्यामि?७३॥

अनुवाद-हे राधे! कौतुकक्रीड़ा में अति सुनिपुण जनों के मुकुटमणि श्रीकृष्ण गोवर्धन-पर्वत के निकट (दानघाटी में) दान के बहाने तुम्हें रोकेंगे, तो तुम्हारे नेत्र भ्रुकुटि (त्योरी चढ़ने) से दर्पयुक्त हो जायेंगे-तब क्या मैं तुम्हें देख पाऊँगा?७३॥

दानलीला में दर्पित-नेत्रा

परिमलकणा व्याख्या-इस बार दानलीला की स्फूर्ति हुई है। प्रवाह की तरह लीला की मधुर स्फुरणधारा चल रही है। लीलाओं के भीतर लीलामाधुर्य का आस्वादन और साथ में युगल के सेवारस का आस्वादन प्राप्त हो रहा है। 'गोवर्धन के निकट परिहास-विशारद अर्थात् अपूर्व परिहास चातुर्य सम्पन्न मधुसूदन द्वारा तुम्हारा मार्ग अवरुद्ध किये जाने पर तुम दर्प के साथ भौंहें सिकोड़ लोगी, वह दृश्य मैं कब देखूँगा?' दानलीला में एक-दूसरे की बातों के माध्यम से आस्वादन! श्रीपाद ने अपनी दानकेलिचिन्तामणि में वर्णन किया है-वसुदेवजी की इच्छा से श्रीकृष्ण-बलदेव के मंगल के लिये गोवर्धन-तट पर गोविन्दकुण्ड पर श्रीभागुरी आदि ऋषि यज्ञ में नियुक्त हैं। यज्ञ में घृत देने वाली गोपियों की अभीष्ट-प्राप्ति सुनिश्चित है। व्रज में इस बात का सर्वत्र प्रचार हो गया है। सूक्ष्मधी नामक सारिका के मुख से यह संवाद पाकर स्वामिनीजी ललिता, विशाखा, चित्रा, चम्पकलता आदि सखियों और रूप-तुलसी आदि किंकरियों के साथ उत्तम-उत्तम वस्त्रालंकारों से सुसज्जित होकर छोटे-छोटे स्वर्ण घटों में ताजा घी लेकर सिर पर लाल रेशम के मुड़ासे पर रखकर जा रही हैं। उनकी अङ्गच्छटा से पथ आलोकित है! इसी बहाने श्याम-दर्शन को निकली हैं-'दानछले भेटिबो कानाइ।' चलते-चलते नेत्र चलाकर इधर-उधर देख रही हैं-'कहाँ हैं प्राणनाथ!' उधर-

''ज्ञात्वा तासां गमनमचिरं कीरवर्यस्व वक्त्रात्
स्मित्वा नर्म-प्रिय-सखगणैरावृतः सावधानः!
शैलेन्द्रस्योपरि परिलसन्नुद्भट-श्यामवेद्यां घट्टीपट्टं
विदधदतुलं वल्लभाधीश सूनुः॥''

(श्रीदानकेलि-चिन्तामणि)

'सखियों के साथ श्रीराधा अविलम्ब आ रही हैं'-शुक से यह संवाद प्राप्तकर गोपेन्द्रनन्दन थोड़े हँसे, फिर सुबल-मधुमंगल आदि प्रियनर्मसखाओं से घिरे सावधानी से गिरिराज के ऊपर प्रचण्ड श्यामवेदी पर खड़े

आमि तव श्रीचरणकमल-युगले।
मृदुमन्द संवाहन करिबो कुतूहले॥''७२॥

हो निरूपम दानघाटी की रचना की। सखियों सहित श्रीराधा उत्कण्ठा-आकुलित चित्त से मानसगंगा के निकट आ पहुँची हैं। मानसगंगा में खिले कमलों पर भ्रमरों की मधुर झंकार सुनकर श्रीराधा को श्याम-उद्दीपन हो गया। इसी समय दानघाटी से श्यामसुन्दर की अति मधुर कमनीय वंशी-ध्वनि सभी को सुनाई दी। श्रीमती भाव-विवशा हो बोलीं-

''तपस्याम: क्षामोदरि वरयितुं वेणुषु जनु-
वरेण्य मन्येथा: सखि! तदखिलानां सुजनुषाम्।
तप:स्तोमेनोच्चैर्यदियमुररीकृत्य मुरली
मुरारातेर्बिम्बाधरमधुरिमाण रसयति॥'' (दानकेलिकौमुदी)

'हे सखियो! आओ, हम लोग वेणुकुल में जन्मग्रहण करने के लिये तपस्या करें। वेणुजन्म को सामान्य मत समझो। विश्व में वेणुजन्म ही सभी जन्मों से अधिक श्रेष्ठ है, कारण-उसने मुकुन्द की विम्बाधर-माधुरी के रसास्वादन का सौभाग्य प्राप्त किया है।' इस प्रकार प्रेमभार के कारण अलस हुए चित्त को लेकर कृष्णकथा कहते-कहते मंथर गति से चल रही हैं। देह-लतिका में शत-शत भाव-कुसुम विकसित हैं! वृन्दा राधारानी को पर्वत के ऊपर श्यामरूप दिखाती हैं। दर्शन से विस्मित श्रीमती वृन्दा से कहती हैं-

''प्रपन्न पन्थानं हरिरसकृदस्मन्नयनयोरपूर्वोऽयं
पूर्वं क्वचिदपि न दृष्टो मधुरिमा।
प्रतीकेऽप्येकस्य स्फुरति मुहुरङ्गस्य सखि या
श्रियस्तस्या: पातुं लवमपि समर्था न दृगियम्॥'' (दानकेलिकौमुदी)

''सखि! श्रीकृष्ण बहुत बार मेरे नयनगोचर हुए हैं, पर ऐसा अपूर्व माधुर्य तो कभी नहीं देखा। उनके एक अङ्ग में जिस लावण्य की स्फूर्ति हो रही है, उसकी लवमात्र शोभा भी मेरे नेत्र पान करने में समर्थ नहीं।'' सखियाँ युगलमाधुरी-रस में मग्न हैं। परस्पर कहती हैं-

''देखो सखि! अपरूप रंग।
निरुपम प्रेम-विलास रसायन पिबइते पुलकित अङ्ग॥
दूर सईं दरशन अनिमिख लोचन बहतहिं आनन्द-नीर।
आनन्द-सायरे डुबलो दुहुँजन बहुक्षणे भै गेलो थिर॥'' (पदकल्पतरु)

श्रीपाद दासगोस्वामी ने दानकेलि-चिन्तामणि में श्रीकृष्ण द्वारा राधा-दर्शन का जो अपूर्व वर्णन किया है, वह विश्व में सत्य ही अति अतुलनीय है।

''फुल्लचम्पक-वल्लिकावलिरियं किं नो न सा जङ्गमा,
किं विद्युल्लतिकाततिर्न हि घने सा खे क्षणद्योतिनी।
किं ज्योतिर्लहरीसरिन्नहि न सा मूर्तिं वहेत्तद्ध्रुवं,
ज्ञातं ज्ञातमसौ सखीकुलवृता राधा स्फुटं प्राञ्चेति॥''

अर्थात् ''ये क्या विकसित चम्पकलता हैं? नहीं, वह तो गतिशील नहीं। तो क्या ये विद्युतलताश्रेणी हैं? नहीं, वह तो चपला है, क्षणभर में ही मेघ में लीन हो जाती है। तो क्या दीप्ति-तरंग की तटिनी (नदी)? वह

भी नहीं, कारण–उसकी मूर्ति नहीं। हाँ, अब समझा, ये सखियों से घिरी श्रीराधा हैं। इसी ओर आ रही हैं।'' और भी कहा है–

''गौरी श्रीवृषभानुवंशविलसत्–कीर्तिध्वजा कीर्तिदा–
गर्भान्तः खनि–रत्न–कान्तिलहरी श्रीदामपुण्यानुजा।
प्राणप्रेष्ठसखी–निकाय कुमुदोल्लासोल्लसच्चन्द्रिका
मत्प्राणोरुशिखण्डिवासवड़भी सेयं स्वयं राधिका॥'' (वही)

''गौरांगी, वृषभानुकुल की सुन्दर कीर्तिपताका, कीर्तिदा की गर्भरूपी खान की रत्नकान्ति–लहरी, श्रीदाम की मनोहर कनिष्ठ भगिनी, प्राणप्रेष्ठ सखीसमूहरूपी कुमुदिनियों को उल्लसित करने के लिये प्रदीप्त चन्द्रिकास्वरूप, और मेरे प्राणरूपी महामयूर की वासस्थली–ये वही राधिका हैं॥''

ये दोनों श्लोक उपमा–अलंकार, भाव–गाम्भीर्य और पदलालित्य के कारण रसिक भक्तों के लिये अत्यन्त आस्वाद्य हैं। ऐसा कमनीय शब्द–विन्यास, स्वतः प्रणोदित भावों की प्रेरणा श्रीपाद दासगोस्वामी की ही असाधारण सम्पत्ति है। वैष्णव साहित्य में अत्यन्त विरल इस रचना–वैशिष्ट्य ने उनके काव्यग्रन्थों को एक स्वतन्त्र अपूर्वता दे रखी है!

पारस्परिक दर्शन। भावमयी की हृदय–सरिता में भावों की प्रबल तरंगें उठ रही हैं। धीरे–धीरे चल रही हैं। 'ललिते! धीरे चलो, पैर में बड़ी लग रही है'–स्वामिनी कहती हैं। ललिता उत्तर देती हैं–'पैरों में व्यथा नहीं, मन में काला कंकड़ लग गया है। पैर में लगने से चला जाता है, मन में लगने से और नहीं चला जाता।' इस प्रकार सखियों के साथ विविध हास्य–परिहास रंग करती चल रही हैं। नागर का अपूर्व दानी–वेश है। सुबल, मधुमंगल आदि साथ हैं। सखियों को लिये स्वामिनी रास्ते पर चली जा रही हैं। 'घाटी छोड़कर चली जा रही हो! ओ ग्वालिन! दान नहीं दिया?'–सुबल कहते हैं। उधर ध्यान ही नहीं दिया। गर्विनियाँ रास्ते पर हाथ हिलाये चली जा रही हैं। स्वामिनी का प्रत्येक पदविन्यास श्यामनागर के मन को खींच रहा है। भूषणों का शब्द कानों में अमृत उड़ेल रहा है! मुग्ध नागर दौड़कर आते हैं। मोहनीय दानी। मुख पर हँसी, हाथ में वंशी, नेत्रों में कटाक्ष! युगल–माधुर्य के प्लावन (बाड़) में सखी–मंजरियों के मनोमीन बड़े सुख से तैर रहे हैं! रास्ता रोककर कहते हैं–'मेरा दान देकर जाओ।' स्वामिनी के नेत्रों की क्या भंगिमा है! श्रीपाद लीलाशुक ने कहा है–

''यानि तच्चरितामृतानि रसनालेह्यानि धन्यात्मनां
ये वा शैशवचापलव्यतिकरा राधावरोधोन्मुखाः।
या वा भावितवेणुगीतगतयो लीला मुखाम्भोरुहे
धारावाहिकया वहन्त हृदये तान्येव तान्येव मे॥''

(श्रीकृष्णकर्णामृतम्–१०६)

''धन्यात्मा साधुओं द्वारा आस्वादित तुम्हारा अमृत–चरित्र, राधरानी की अवरोध के कारण प्रकट हुई–कैशोर–चपलतापूर्ण चेष्टाविशेष और तुम्हारे मुखपद्म पर भावयुक्त वेणुगीत आदि मेरे हृदय में धारावाहिकरूप से स्फूर्त हो।'' धन्यात्माओं के लिये चरम आस्वाद्य है यही अवरोधलीला। स्वरूप जाग्रत कर समझना होगा।

अवरोध-काल में श्रीराधा की ''किलकिंचित'' (मिलन के समय शृंगाररसमय उत्तेजना, रोष, रोदनहास्य आदि भावों को व्यक्त करती) दृष्टि के निकट श्रीमत् रूपगोस्वामिपाद ने विश्व की मंगल-कामना की है। उस दृष्टि-माधुरी की एक कणिका साधकों के चित्त-मन को स्पर्श कर ले, तो फिर वे अपने चित्त को उस माधुरी के कवल से निकाल नहीं सकते।

पहले सखियों के साथ वार्ता चलती है। स्वामिनी मौन, गम्भीर। बीच-बीच में स्वामिनी को छूने को होते हैं। कहते हैं-'यौवन दान दे जाओ।' सुनकर स्वामिनी की दर्पित भ्रुकुटी की कैसी शोभा! मानो कोटि मन्मथों का धनुष हो! श्यामनागर विमोहित हैं। किंकरी तुलसी नयनों की सुषमा देखकर रस के सागर में डूब रही हैं। सखियाँ हँसते-हँसते कहती हैं-'यौवन का भी भाड़ा है क्या?' 'हाँ, मेरे घाट पर वही देना पड़ता है'-श्याम उत्तर देते हैं। इसी प्रकार शत-शत रसवार्तायें। ⁂ स्वामिनी अवज्ञा से भरी चली जा रही हैं। 'मेरी अवज्ञा कर चली जाओगी? देखो, मुझे ज्यादा तंग मत करना।'

''कृष्णकुण्डलिनश्चण्डि कृतं घट्टनया नया।
फुत्कुतिक्रिययाप्यस्य भवितासि विमोहिता॥'' (दानकेलिकौमुदी)

'हे चण्डि! काले साँप को छेड़ने की आवश्यकता नहीं। इसकी फुफकार मात्र से ही तुम विमोहित हो जाओगी।' -श्याम कहते हैं। अर्थात् 'कुण्डलधारी श्रीकृष्ण के चुम्बनमात्र से ही तुम विमोहित हो जाओगी।' स्वामिनी दर्पसहित भौंहें सिकोड़ कर कहती हैं-

''धर्षणे नकुलस्त्रीणां भुजङ्गेशः क्षमः कथम्?
यदेता दशनैरेष दशन्नाप्नोति मङ्गलम्॥'' (वही)

'नकुल (नेवला)-स्त्रियों को रगड़ने में महासर्प कैसे सक्षम होगा! उन लोगों को काटेगा, तो वे भी काटेंगी। अतएव इसमें सर्प का मंगल नहीं।' ''धर्षणेन कुलस्त्रीणां''-'कुलस्त्रियों के धर्षण में तुम समर्थ क्यों नहीं होंगे? परस्पर का मिलन ही आज मंगलमय सुखमय है।' पतले वस्त्र से गुलाब के फूलों को ढकने की तरह! भीतर (मन में) आकांक्षा, पिपासा। बाहरी अवज्ञा, अनादर, गम्भीरता से ढकी। कैसी अपूर्व रसमय नर्मलीला-वैदग्धी! जैसे श्याम, वैसी ही स्वामिनी। सुचतुर सखियाँ युगल-लीला को पुष्ट करने वाली। मार्ग रोककर दानी खड़े हो गये। ललिता कहती हैं-'मैं भैरवी हूँ, मुझे छुओ, देखती हूँ!' श्याम में शक्ति नहीं कि उसे छू लें। स्वामिनी की ओर इंगित कर कहते हैं-'यदि इस समय पैसे न हों, तो इसे मेरे पास बंधक रख जाओ।' सखियाँ कहती हैं-'सो नहीं कर सकतीं।' श्याम-'तो कैसे जाओगी जाओ, देखता हूँ!' यह कहकर जबरदस्ती मक्खन लेकर खाने लगते हैं। सखियाँ-'अब यह घृत यज्ञ के काम नहीं आयेगा। तुम अनाचारी हो, छू लिया। तुम-जैसे आदमी को छूकर स्नान करना पड़ता है।' सखियाँ हँसते-हँसते चली गईं। किंकरी ने उत्कण्ठित राधाश्याम का मिलन कराया कुंज में। स्फुरण के विराम में की प्रार्थना-

''गोवर्धनगिरि-तटे हे कृष्णमोहिनि! नर्मलीला विदग्धेर महाशिरोमणि॥
व्रजेन्द्रनन्दन जवे दानलीला-छले। तब पथरोध करि दाँड़ाबेन बले॥

⁂ देखिये दानकेलिकौमुदी और दानकेलि-चिन्तामणि।

तव तनुवरगन्धासङ्गि-वातेन चन्द्रा,-वलिकर कृतमल्ली केलितल्पाच्छलेन।
मधुरमुखि मुकुन्दं कुण्डतीरे मिलन्तं, मधुपमिव कदाहं वीक्ष्य दर्पं करिष्ये ॥७४॥

अन्वय-मधुरमुखि! (मधुरं सुगन्धं मुखं यस्याः हे तथाविधे!) तव तनुवरगन्धासङ्गिवातेन (तन्वाः शरीरस्य या वरगन्धस्तेन आसङ्गो मिलनं यस्यास्तीति तेन वातेन) चन्द्रावलिकरकृत-मल्ली-केलितल्पात् छलेन मधुपमिव कुण्डतीरे मिलन्तं मुकुन्दं वीक्ष्य कदा अहं दर्पं करिष्ये?७४॥

अनुवाद-हे मधुरमुखि! जैसे भ्रमर उत्कृष्ट मधु के लोभ से एक पुष्प को त्याग दूसरे पुष्प पर चला जाता है, वैसे ही श्रीकृष्ण तुम्हारी अङ्ग-गंध वहन करने वाले वायु का आघ्राण पाकर (सूँघकर) चन्द्रावली की अपने हाथों रची मल्लिका कुसुम-शय्या त्यागकर श्रीराधाकुण्डतीर पर तुम्हारे साथ मिलित होंगे-यह देखकर मैं तुम्हारी महिमा गाती कब दर्प करूँगा?७४॥

राधादासी का दर्प

परिमलकणा व्याख्या-पिछले श्लोक में श्रीपाद को दानलीला का स्फुरण हुआ था। लीला के भीतर अधीश्वरी के दर्पित भ्रूकुटियुक्त नयनों की शोभा-माधुरी का आस्वादन किया था। स्फूर्ति के विराम में विलाप कर रहे हैं। 'वे नेत्र और कब देख पाऊँगा?' स्फूर्ति की देवी हैं कि बीच-बीच में दर्शन देकर तभी की तभी छिप जाती हैं। तद्गतप्राण किंकरी के साथ स्वामिनी की आँख-मिचौनी! जैसे समुद्र की एक-एक तरंग के आघात से मानवदेह किनारे से आ लगती है, किसी प्रतिकूल लहर के प्रभाव से पुनः बहने लगती है-उसी प्रकार श्रीपाद का चित्तमन भाव-सागर की एक तरंग पर मिलन-तट चुम्बन कर रहा है, तो दूसरी तरंग उसे अथाह विरह में डुबो रही है। इसी से विलाप का उद्भव है। राधारानी का विरह भगवान् के विरह की तरह नहीं। 'विरह-दावानल में देह-वल्लरी दग्ध हो रही है'-'क्षणभर दर्शनमात्र देकर बचाओ।' इस ज्वाला में विपुल आनन्द है। आनन्दरस-मिश्रित ज्वाला। विरह को 'रस' कहा गया है। 'रसस्यानन्दधर्मत्वात्' (अलंकारकौस्तुभ)-'रस का आनन्दधर्म है।' अतएव विरह के भीतर भी प्रचुर आनन्द है। 'एइ प्रेम जार मने, तार विक्रम सेइ जाने, जेनो विषामृते एकत्र मिलन'' (चै० च०)।

विरह-विधुर श्रीपाद का चित्त लीलाराज्य में पुनः चला गया है। स्फुरण में स्वरूपावेश में स्वामिनी को कुण्डतट पर अभिसार करा रहे हैं। प्रेममयी प्रेमावेश में तुलसी के कन्धे पर हाथ रखे अभिसार कर रही हैं। कैसी अपूर्व शोभा!

''चलइते चरणेर, संगे चलु मधुकर, मकरन्द पान कि लोभे।
सौरभे उनमत, धरणी चुम्बये कत, जाँहा पदचिह्न शोभे॥
कनकलता जिनि, जिनि-सौदामिनी, विधिर अवधि रूप साजे।
किंकिणी-रणरणि, बंकराज-ध्वनि, चलइते सुमधुर बाजे॥
हंसराज जिनि, गमन सुलावणि, अवलम्बन सखी-काँधे।
अनन्तदासे भणे, चललि निकुंजवने, पुराइते श्याम-मन-साधे॥''

भ्रूकुटि करिया तुमि दर्पित नयाने। कामशर पूरे चाबे ताँर मुखपाने॥
ए दासीर प्रति तव हेनो दया हबे। सेइ नर्मलीला आमि निरखिबो कबे॥''७३॥

इस प्रकार प्रेममयी को लेकर तुलसी कुण्डतीर पर संकेतकुंज जा पहुँची हैं। अभी नागर नहीं आये। श्रीमती वासकसज्जिका दशा में नागर की प्रतीक्षा कर रही हैं।

''स्ववासकवशात् कान्ते समेष्यति निजं वपुः।
सज्जीकरोति गेहञ्च या सा वासकसज्जिका॥
चेष्टा चास्याः स्मरक्रीड़ा-संकल्पो वर्त्मवीक्षणम्।
सखीविनोदवार्ता च मुहुर्दूतीक्षणादयः॥''

(उ० नी० नायिकाभेद-७६/७७)

''कान्त के संकेत पर जो कान्ता कुंजभवन में उनके आगमन की प्रतीक्षा करती है और अपनी देह तथा कुंजगृह को सुसज्जित करती है, उसे 'वासकसज्जिका' कहा जाता है। स्मरक्रीड़ा का संकल्प, कान्त-पथ का निरीक्षण, सखी के साथ विनोदवार्ता और बार-बार दूती की ओर देखना-इस नायिका की चेष्टायें हैं।''

नागर के आने में विलम्ब हो रहा है। तुलसी बार-बार रास्ते की ओर देखती हैं। वृन्दावनीय रससाधकों को भी स्वामिनी के साथ हर समय रहकर ये सब सेवायें करनी होंगी। स्वामिनी के सुख-दुःख की तरंगों में साधक को भी तैरना होगा। परिपूर्ण स्वरूपावेश के बिना इसके मर्म की उपलब्धि नहीं होगी। वृन्दावन में वास करके भी मुझ-जैसे जीव को कोई अनुभव नहीं। निरन्तर देह-दैहिकादि को लेकर ही व्यस्त। मैं राधा-किंकरी हूँ, यह बात स्वप्न में भी मन में नहीं उठती। शरणागति को छोड़ और रास्ता नहीं। गौड़ीय वैष्णव को अनन्यभाव से गोपी-चरणों का ही आश्रय लेना होगा। ''व्रजपुर वनितार, चरण आश्रय सार, करो मन एकान्त करिया'' (ठाकुर महाशय)। श्रीपाद प्रबोधानन्द सरस्वती ने कहा है-''कदा स्यां श्रीराधे चकित इह वृन्दावनभुवि?'' हा राधे! वृन्दावन में चकितभाव से कब वास करूँगा?' लगता है तुम आईं-अब मिलीं-अब मिलीं, इस प्रकार चंचल नेत्रों से चारों ओर (कब) देखूँगा।'

श्रीकृष्ण के आने में विलम्ब हो रहा है। स्वामिनी उत्कण्ठा से अधीर हैं।

''अनागसि प्रियतमे चिरयत्युत्सुका तु या।
विरहोत्कण्ठिता भाववेदिभिः सा समीरिता॥
अस्यास्तु चेष्टा हृत्तापो वेपथुर्हेतुतर्कणम्।
अरतिर्वाष्पमोक्षश्च स्वावस्थाकथनादयः॥'' (वही-७९/८०)

''निरपराध प्रियतम के बहुत देर तक न आने पर नायिका विरहवश अत्यन्त उत्सुकचित्त हो जाती है, रसिकजन उसी को 'उत्कण्ठिता' कहते हैं। हृदय का ताप, कम्पन, कारण को लेकर वितर्क, अस्वास्थ्य, आँसू बहाना, अपनी अवस्था बताना-इस नायिका की चेष्टायें हैं।'' पदकर्ता ने उत्कण्ठिता का विरह-विलाप इस प्रकार वर्णन किया है-

''बन्धुर लागिया, शेज बिछायलुँ, गाँथिलुँ फूलेर माला।
ताम्बूल साजालुँ, दीप उजारलुँ, मन्दिर होइलो आला॥
सइ, पाछे ए-सब हइबे आन।
से हेनो नागर, गुणेर सागर, काहे ना मिलल कान॥

शाशुड़ि-ननदे, वंचना करिया, आइलुँ गहन बने।
बड़ो साध मने, ए रूप-यौवने, मिलबो बन्धुर सने॥
पथ-पाने चाहि, कतो ना रहिबो, कतो प्रबोधिबो मने।
रस-शिरोमणि, आसिबे एखनि-दीन चण्डिदास भणे॥''

श्यामसुन्दर श्रीराधा के कुंज में ही आ रहे थे। मार्ग में चन्द्रावली, पद्मा, शैव्या आदि उन्हें देखकर चन्द्रावली के कुंज में ले गईं। वहाँ चन्द्रावली की स्वहस्त-रचित मल्लिका-कुसुमों की शय्या पर बैठे हैं। श्रीमती की उत्कण्ठा-दशा देख वृन्दावन के पवन ने सोचा-'एकबार मैं चेष्टा कर देखता हूँ।' पवन ने श्रीमती की अङ्ग-गन्ध का भार वहन कर सहसा चन्द्रा के कुंज में प्रवेश किया। मधुसूदन की नासिका इस प्रेममय गन्ध से अत्यन्त परिचित है। श्यामसुन्दर का चित्त अधीर हो उठा। सहसा चन्द्रावली की शय्या से उठ खड़े हुए। चन्द्रा से बोले-'प्रिये! मुझसे बड़ी भूल हुई। माँ ने एक काम करने को कहा था, उसे किये बिना ही चला आया।' चन्द्रावली सरल हैं। व्यग्रता देखकर बोलीं-'जाओ, शीघ्र काम करके आओ।' नागर तत्क्षणात् राधा-अङ्ग-गन्ध का अनुसरण करते भृंग की तरह श्रीमती के कुंज-द्वार पर जा पहुँचे। श्रीपाद ने कहा है-'मधुपमिव।' जैसे भ्रमर किसी कुसुम का मधुपान करते-करते प्रचुर मकरन्दरसभरी सद्य प्रस्फुटित स्वर्णकमलिनी की गन्ध पाते ही उस कुसुम को त्याग कमलिनी के पास दौड़ा जाता है, वैसे ही श्रीकृष्णभृंग भी चन्द्रा के कुंज में महामादनाख्यमकरन्दरस का आघ्राण पाते ही राधा-कमलिनी के निकट दौड़े गये। यह श्रीराधा के असामान्य प्रेम का ही गौरव है। श्रीविश्वनाथ चक्रवर्तिपाद ने राधारानी से कहलवाया है-

''तत्रापि मय्यतितरामनुरज्यतीति लोकप्रतीतिरपि न ह्यनृता कदापि।
यत्प्रेम मेरुमिव मे मनुते परासां नो सर्षपैस्त्रिचतुरैरपि तुल्यमेषः॥''

(प्रेमसम्पुट-६२)

''यद्यपि सभी व्रजरमणियों का प्रेम निरुपाधि है, तथापि श्रीकृष्ण सबसे अधिक मुझमें ही अनुरक्त हैं-ऐसी सभी की धारणा है। वह कभी मिथ्या नहीं, कारण-वे मेरे प्रेम को सुमेरु पर्वत की तरह अपरिमित समझते हैं। किन्तु अन्य व्रजांगनाओं के प्रेम को वे तीन-चार सर्षपों (सरसों के दानों) के बराबर भी नहीं मानते।'' वस्तुतः उत्कण्ठा, मान, कलहान्तरिता आदि श्रीराधा की जो विविध रसमय अवस्थायें हैं, श्रीकृष्ण को उनका आस्वादन कराने के लिये रस ने स्वयं ही चन्द्रावली आदि को समानता का अभिमान दिया है। अन्यथा राधाप्रेम की तुलना नहीं।

तुलसी कुंज के द्वार पर खड़ी हैं। नागर हाथ जोड़ तुलसी से कहती हैं-'तुलसि! देखो मैं आ गया। मिलन करा दो।' तुलसी धमक देती हैं-'स्वामिनी तुम्हारे लिये रो-रोकर अस्थिर हैं। तुम अब तक कहाँ थे? सच-सच बताओ, नहीं तो मिलन नहीं होगा।' नागर ने सरलभाव से विलम्ब का कारण बताया। वे चन्द्रा के कुंज गये थे जानकर तुलसी क्षुब्ध हैं। 'ओः! इसीलिये इतनी देर। जाओ, जहाँ से आ रहे हो, वहीं चले जाओ। मिलन नहीं करा सकती। तुम्हारी सारी कीर्ति अभी स्वामिनी को बताती हूँ।' अधीर नागर हाथ जोड़कर तुलसी से शत-शत अनुरोध कर रहे हैं। नागर के गिड़गिड़ाने पर नागर और नागरीमणि की उत्कण्ठा जानकर तुलसी ने मिलन करा दिया। स्वामिनी का प्रेमसौरभ आज नागर को भृंग की तरह चन्द्रावली के कुंज से खींच लाया है, यह देखकर तुलसी का हृदय गर्व से भर उठा है। 'मेरी स्वामिनी का संग छोड़ श्रीकृष्ण अन्यत्र क्षणभर भी नहीं रह

समन्तादुन्मत्त - भ्रमरकुलझंकारनिकर-
र्लसत्-पद्मस्तोमैरपि विहगरावैरपि परम्।
सखीवृन्दैः स्वीयैः सरसि मधुरे प्राणपतिना
कदा द्रक्ष्यामस्ते शशिमुखि नवं केलिनिवहम्?७५॥

अन्वय-शशिमुखि! समन्तात् (चतुर्दिक्षु) उन्मत्तभ्रमरकुलझंकारनिकरैः लसत्पद्मस्तोमैः विहगरावैः मधुरे सरसि (मनोहरे राधाकुण्डे) स्वीयैः सखीवृन्दैः प्राणपतिना (श्रीनन्दनन्दनेन सह) ते परं नवं केलिनिवहं (तव श्रेष्ठं नवं केलिसमूहं) कदा द्रक्ष्यामः? (द्रक्ष्याम इति बहुवचनं स्वसङ्गीनामभिप्रायेण)॥७५॥

सकते। अतएव श्रीकृष्ण हम लोगो के ही हैं'-इस दर्प से किंकरी तुलसी का हृदय भरा है। विपक्ष को कृष्ण-संग का अभाव और स्वपक्ष को कृष्ण-संग की प्राप्ति होने पर (उस) विहार के उत्कर्षसूचक गर्व को 'दर्प' कहा जाता है। ''गर्वमाचक्षते दर्पं विहारोत्कर्ष-सूचकम्'' (उ० नी० हरिवल्लभा प्र०-२६)। श्रीरूप गोस्वामिपाद ने दर्प का उदाहरण दिया है-

''विद्मः पुण्यवतीशिखामणिमिह त्वामेव हर्म्ये यया
नीयन्ते शरदिन्दुधामधवलाः स्वाप्नोत्सवेन क्षपाः।
कोऽयं नः फलति स्म कर्मविटपी वृन्दाटवीकन्दरे
श्यामः कोऽपि करी करोति हृदयोन्मादेन निद्राक्षयम्॥'' (वही-२७)

''एकबार व्रजयुवतियों की सभा में नान्दीमुखी का पुराणपाठ हो रहा था। श्रवण करते-करते तन्द्रावेश में ललिता को सिर झटकते देख पद्मा ने हास्य किया, तो ललिता बोलीं-'सखि! तुम लोग पुण्यवतियों की शिरोमणि हो, कारण-अट्टालिका के ऊपर शारदीय ज्योत्स्ना-धवल रात्रियाँ सुखनिद्रा में बिताने का अवकाश पाती हो। किन्तु हम लोगों के पूर्व जन्म की जाने कौन-सी कर्म-विटपी फल रही है, सो पता नहीं। यदि वृन्दावन की कन्दरा में भी सोती हैं, तो भी एक श्यामकरीन्द्र (हाथी) उन्मत्त-चित्त से आकर हम लोगों की निद्रा भंग कर देता है।'' श्रीराधारानी के अद्भुत प्रेमाकर्षण से स्वपक्ष का कृष्ण-संग और विपक्ष का पराभव देख किंकरी तुलसी का हृदय दर्प से भर उठा है। सहसा स्फूर्ति-भंग। हाहाकार के साथ प्रार्थना-

''हे मधुरमुखि! राधे! भ्रमर जेमन।
मधुलोभे पुष्पान्तरे करये गमन॥
तव अङ्ग-गन्धवाही पवनेर घ्राणे।
सेइरूप कृष्ण-अलि आकुलित-प्राणे॥
चन्द्रावलीकरकृत मल्ली-पुष्पमय।
केलितल्प परिहरि तब संगाशय॥
राधाकुण्डतीरे आसि मिलित हइबे।
ताहा देखि दर्प आमि करिबो बा कबे?''७४॥

अनुवाद-हे चन्द्रमुखि! जो ऐसे पद्मसमूह से सुशोभित है जिसके चारों ओर उन्मत्त भृंगकुल गुंजन कर रहा है, और पक्षियों के कलकूजन से मुखरित है-उसी मनोहर राधाकुण्ड में सखियों को लेकर प्राणपति श्रीकृष्ण के साथ तुम्हारी उत्कृष्ट नव-नव जलक्रीड़ायें हम लोग कब देख पायेंगे?७५॥

श्रीराधाकुण्ड में जलक्रीड़ा

परिमलकणा व्याख्या-इस श्लोक में श्रीपाद की राधाकुण्ड में जलक्रीड़ा देखने की आकांक्षा व्यक्त हुई है। 'हे शशिमुखि! श्रीराधाकुण्ड में तुम्हारे प्राणनाथ के साथ तुम्हारी मधुर जलकेलि कब देखूँगा? मधुर सरोवर में कमल विकसित हैं। उन्मत्त भ्रमरकुल की सरस झंकार है। विविध पक्षियों के कलकूजन से मुखरित है कुण्ड-वक्ष! उसी कुण्ड में तुम लोगों की मधुर जलकेलि दर्शन करूँगा।' श्रीरघुनाथ हैं नित्यसिद्ध परिकर। स्वरूप में रतिमंजरी या तुलसीमंजरी। 'मैं राधादासी हूँ'-यह भाव सोचकर नहीं लाया जाता, पर हम लोगों को 'राधादासी' भाव सोचकर लाना पड़ता है। किन्तु ये लोग कुंज की ही किंकरियाँ हैं। श्रीमन्महाप्रभु के साथ आये हैं, विश्व के कल्याण के लिये। सभी को किंकरी बना कुंज में ले जाने के लिये। श्रीगौरहरि चोर हैं। श्रीरूप गोस्वामिपाद ने कहा है-'जैसे चोर चोरी करता है अपने (अङ्ग) को ढककर, वैसे ही राधा का भाव चुराया है राधा की ही कांति से अपने को ढककर। कहीं पकड़ा न जाऊँ, इसलिये स्वयं को ढककर आये हैं। किन्तु रस-भण्डार चुराया है न! इसलिये अपने कार्यकलाप से पकड़ में आ ही गये।'

''अपारं कस्यापि प्रणयिजनवृन्दस्य कुतुकी,
रसस्तोमं हृत्वा मधुरमुपभोक्तुं कमपि यः।
रुचिं स्वमावव्रे द्युतिमिह तदीयां प्रकटयन्,
स देवश्चैतन्याकृतिरतितरां नः कृपयतु॥''

बाल्यकाल में माखन-चोरी, तत्पश्चात् वस्त्रचोरी, वंशीरव से गोपियों की मन-चोरी, श्रीराधा की हृदय-चोरी, अन्त में उनके भाव की चोरी-कान्ति की चोरी तक! उसी चोर की करुणा चाहते हैं, कारण-उन्होंने श्रीसीतानाथ को वर देते समय कहा था-

''वृन्दारण्यान्तरस्थः सरसविलसितेनात्मनात्मानमुच्चै-
रानन्दस्यन्दवन्दीकृत-मनसमुरीकृत्य नित्यप्रमोदः।
वृन्दारण्यैकनिष्ठान स्वरुचिसमतनून् कारयिष्यामि युष्मा-
नित्येवास्तेऽवशिष्टं किमपि मम महत्कर्म तच्चातनिष्ये॥''

(श्रीचैतन्यचन्द्रोदय-१०/७२)

''दास्ये केचन केचन प्रणयिनः सख्ये त एवोभये
राधामाधवनिष्ठया कतिपये श्रीद्वारकाधीशितुः।
सख्यादावुभयत्र केचन परे य वावतारान्तरे
मय्याबद्धहृदोऽखिलान् वितनवै वृन्दावनासङ्गिनः॥'' (वही-१०/७३)

''हे आचार्य! मैं श्रीवृन्दावन में सरस विलास के प्रचुर आनन्दरस में नित्य ही स्वयं को निमग्न कर तुम लोगों को भी वृन्दावननिष्ठ आत्मसम शरीर देकर वहाँ (हम) सभी उच्छलित प्रेम-सागर में डूबेगें-यह महत्कार्य बाकी है, इसे शीघ्र पूरा करूँगा। फिर भक्तों में किसी की निष्ठा दास्य में है, किसी की सख्य में। फिर कोई राधामाधवनिष्ठ है, कोई द्वारकाधीशनिष्ठ, कोई-कोई राम-नृसिंह आदि अवतारों में निष्ठा रखते हैं। मैं सभी को सौहार्द्य-शृंखला में बाँधकर वृन्दावनसक्ति भाव दूँगा।'' 'वृन्दावनासक्ति भाव' से श्रीश्रीराधामाधव की सरस परिचर्या से जुड़े मंजरीभाव की ओर इंगित किया है। श्रीमन्महाप्रभु की बात सुनकर श्रीसीतानाथ भी बोले-

''निजेच्छया ज्ञापय यद्यदेव, स्थलान्तरं नो वपुरन्तरं वा।
तवैतदाश्चर्य-चरित्रमेव, जातिस्मरा एव चिरं स्मराम:॥'' (वही-१०/७४)

''हे प्रभो! मेरी यही प्रार्थना है-तुम अपनी इच्छा से अन्य स्थान, अन्य देह दोगे; (जहाँ भेजो) वहीं हम लोग जातिस्मर होकर (अपने पूर्व जन्म की बात याद रखकर) चिरकाल तुम्हारी इस आश्चर्यजनक लीला का स्मरण कर सकें।''

इससे यह समझ में आया कि एक साथ श्रीश्रीगौरगोविन्दलीला ही गौड़ीय वैष्णवों का उपास्य है। श्रीमन्महाप्रभु के पैर का अँगूठा चूस कर महाकवि कर्णपूर ने वर्णन किया है। श्रील ठाकुर महाशय ने भी कहा है-''हेथा गौरचन्द्र पाबो, सेथा राधाकृष्ण।'' गौरलीला के परिकर श्रीरघुनाथ कुण्डतीर पर नित्य ही रोदन कर रहे हैं-भाग्यवान् जन वह क्रन्दन सुन पाते हैं। फिर वे ही तुलसी मंजरी रूप में नित्य ही युगल के सेवा-रस में निमग्न हैं।

स्वरूपाविष्ट श्रीपाद को कुण्डतीर पर श्रीकुण्ड में सखियों सहित श्रीयुगल के जलविहार का स्फुरण हुआ है। नान्दीमुखी, कुन्दलता, धनिष्ठा उपस्थित हैं। 'क्या खेल होगा?' 'जलयुद्ध'। वेश-परिवर्तन कर लिया है। सखियों सहित श्रीमती को श्वेत सूक्ष्म साड़ियाँ पहनाई गई हैं। श्यामसुन्दर को भी छोटे-कसे श्वेत पतले वस्त्र पहनाये गये हैं। कुन्दलता कहती हैं-'पण (दाँव, शर्त) रखकर खेल होगा, और पण होगा अधरामृत! जो हारेगा, वह विजेता को अधरामृत देगा। सखियाँ साक्षी हैं।' राधामाधव आमने-सामने खड़े होकर जल-वर्षण कर रहे हैं। श्वेत-पतले वस्त्र दोनों के अङ्गों के साथ मिल गये हैं। दोनों ही एक-दूसरे के उच्छलित माधुर्य का आस्वादन कर रहे हैं। रूपमंजरी, तुलसी-मंजरी आदि किंकरियाँ तीर पर खड़ी-खड़ी सखियों के साथ युगल की जलकेलि का माधुर्य आस्वादन कर रही हैं। पहलवान् के साथ सुकुमारी स्वामिनी कैसे खेल पायेंगी? वे श्याम की ओर पीठकर खड़ी हो गई हैं। सभी चुप हैं। कोई भी श्याम की जयकार नहीं कर रही। राधारानी की जीत होती, तो अब तक 'राधे जय' 'राधे जय' ध्वनि से श्रीकुण्ड मुखरित हो उठता। श्याम कहते हैं-'पण देना होगा; मैं छोड़ूँगा नहीं। तुम लोगों की जीत होती, तो तुम लोग क्या मुझे छोड़ देतीं?' सखियाँ हैं कि 'हाँ' भी नहीं कह रहीं, 'ना' भी नहीं करतीं। श्यामसुन्दर ने श्रीमती के निकट आकर उनका कण्ठ कसकर पकड़ लिया। कहते हैं-'पण दो।' स्वामिनी की कैसी अपूर्व शोभा! जलयुद्ध के कारण नेत्र थोड़े रक्ताभ हो रहे हैं, आधे खुले हैं, अद्भुत है भ्रूभंगिमा! 'हेला' नामक भाव प्रकट हो रहा है। हेला अर्थात् अनादर-शृंगारजनित भाव से युक्त। विजयी वीर, वह तो छोड़ेगा नहीं। स्वामिनी के चेहरे पर हँसी भी है, रोना भी है। रोदन के भीतर हास्य की

माधुरी! नेत्रों को पूरी तरह बन्द नहीं किया। ऐसे सुन्दर हैं श्याम-थोड़ा देखे बिना क्या रहा जाता है? श्याम 'पण दो, पण दो' कह रहे हैं। स्वामिनी शीघ्र ही पण देना नहीं चाहतीं। वाम्य, संकोच, अवज्ञा, उपेक्षा। फिर चारों ओर सखियाँ। अप्राकृत नवीनमदन 'दो, दो' कर रहे हैं। स्वामिनी के मुखमण्डल पर शत-शत भाव खेल रहे हैं। ऊपर उपेक्षा, भीतर अपेक्षा। मुँह से कहती हैं-'छूओ मत।' पर मन में है-'छूऐंगे नहीं?' वह कैसी अपूर्व माधुरी है! स्वामिनी मुँह फेरती हैं। श्याम के आगे उनके गण्डस्थल उज्ज्वल हो रहे हैं, जिनकी शोभा देख श्याम उन्मत्त हैं। श्याम के मुख का प्रतिबिम्ब उन उज्ज्वल गण्डों पर पड़ रहा है। 'प्रतिबिम्ब को स्थान है, बिम्ब को क्यों नहीं होगा?' यह कहकर चुम्बन। 'ओः, क्या किया तुमने' कहकर स्वामिनी ने मधुर दृष्टि निक्षेप किया। दृष्टि की सुषमा पर श्यामनागर मुग्ध हैं। 'क्या पुरस्कार दूँ' कहकर नेत्रों को चुम्बन करते ही आँखों का काजल श्याम के रक्तिम अधरों पर लग गया! 'अधरों की बड़ी शोभा हो रही है' कहकर स्वामिनी ने मुँह फेर लिया। दायें गण्ड पर अपूर्व हँसी छिटकी देख उसे पुनः चुम्बन किया, तो इस बार अधरों का काजल स्वामिनी के स्वर्णोज्ज्वल गण्ड पर जा लगा। यह देखकर सभी सखियों के साथ मिलकर नागरमणि के अङ्ग पर जल सेचने लगीं। इस पर श्रीकृष्ण अपना वदनचन्द्र झुकाकर 'और नहीं, और नहीं, मैंने हार मानी' कहने लगे। श्यामसुन्दर के इन सुधामय वचनों को सुनकर राधारानी ने जलसेचन छोड़ वह कैसा मोहन आश्चर्यजनक हास्य किया था!

सखियाँ सद्य-प्रस्फुटित अम्लान पद्मपुष्प चयन कर राधारानी को देने लगीं और श्रीराधा हाथ ऊँचे कर कक्षदेश (आँखें) दिखाती प्रियतम के वक्षस्थल को लक्ष्य कर कमल फेंकने लगीं। शोभा देख श्याम विमोहित! सरला श्रीराधा महाविकारग्रस्त होकर जो कमल निक्षेप कर रही हैं, श्यामसुन्दर उसी को हाथ में लेकर श्रीमती पर फेंक रहे हैं। इस प्रकार दोनों के हाथों का संग पाकर कमल गमना-गमन-रंग में अपूर्व शोभा पाने लगे। तब उन्मत्त भृंग उन कमलों के परिमल पर लुब्ध हो युगलकिशोर के प्रसिद्ध कटाक्ष-शरों की तरह गुंजन करते हुए इधर-उधर उड़ने लगे। पक्षी भी मधुर स्वरों में कूजन करने लगे। प्राणपति के साथ स्वामिनी की ऐसी अभिनव जलक्रीड़ायें देख तुलसी विमोहित हैं! स्फूर्ति में विराम आने से हाहाकार और प्रार्थना।

''शशिमुखि! हेनो भाग्य हबे कि आमार।
कबे तुया कुण्ड राधे, हेरिबो गो मनोसाधे,
अनुपम शोभार आधार॥
सरसीर चारि धारे, भ्रमर झंकार करे,
फुटियाछे कमल - निकर।
रसेर सलिल-माझे, नानाविध पक्षिराजे,
कलरव करे निरन्तर॥
सखीगण सह रंगे, प्राणपति कृष्ण-संगे,
नव नव क्रीड़ा तार नीरे।
हेनो भाग्य मोर हबे, दर्शन करिबो कबे,
दाँड़ाइया सरसीर तीरे॥''७५॥

सरोवर - लसत्तटे मधुपगुञ्जिकुञ्जान्तरे
स्फुटत् कुसुमसंकुले विविध-पुष्पसङ्घैर्मुदा।
अरिष्टजयिना कदा तव वरोरु भूषाविधि-
र्विधास्यत इह प्रियं मम सुखाब्धिमातन्वता ?७६ ॥

अन्वय-वरोरु (वरौ श्रीकृष्ण-मनोहरण-सामर्थ्यात् श्रेष्ठौ ऊरु यस्या: हे तथाविधे!) इह सरोवरलसत्तटे (इह सरोवरस्य राधाकुण्डस्य लसत्तटे प्रकाशमान तीरे) स्फुटत् कुसुमसंकुले (फुटन्ति प्रकाशमाणानि कुसुमै: संकुले व्याप्ते) मधुपगुञ्जिकुञ्जान्तरे (मधुपस्य गुञ्जोऽस्यास्तीति एवम्भूतं कुञ्जं तस्यान्तरे मध्ये) अरिष्टजयिना (श्रीकृष्णेन) कदा मम प्रियं सुखाब्धिम् आतन्वता (सुखसमुद्रं विस्तारयता सता) विविधपुष्पसंघै: मुदा तव भूषाविधि: विधास्यते (करिष्यते) ?७६ ॥

अनुवाद-हे वरोरु (सुन्दर जंघाओं वाली) श्रीराधिके! इस सुशोभित श्रीराधाकुण्ड-तट पर विकसित पुष्पों से भरे भ्रमर-झंकार युक्त कुंज में अरिष्टजयी श्रीकृष्ण मेरा सुखसिन्धु विस्तार करते हुए नाना प्रकार के कुसुमों से अपने हाथों तुम्हें कब सजायेंगे ?७६ ॥

सुख-सागर का उच्छ्वास

परिमलकणा व्याख्या-पिछले श्लोक में श्रीपाद ने युगल की जलविहार-लीला का रसास्वादन किया। जलविहार के पश्चात् सखियोंसहित श्रीराधामाधव तीर पर आते हैं, तो सेवा-परायण मंजरियाँ उबटन और सुगन्धि तेल की मालिश आदि सेवायें कर उन्हें पुन: स्नान कराती हैं। तत्पश्चात् किंकरियाँ सखियों सहित युगल के केशपाश और श्रीअङ्ग सूक्ष्म वस्त्र से पोंछकर वस्त्र उत्तरीय आदि पहनाती हैं। अब इस श्लोक में श्रीराधाकुण्ड-तटस्थित कुंज में श्यामसुन्दर अपने हाथों से राधारानी का शृंगार करेंगे। राधाकुण्ड का तटप्रदेश अतुलनीय शोभासम्पन्न है। मनोहर वृक्षलताओं से घिरा एक मधुर कुंज है, जो विविध विकसित कुसुमों से परिव्याप्त है। फूल-फूल पर सरस गुंजनशील भृंगों का रसविलास! उसी कुंज में अरिष्टासुर को जीतने वाले श्रीकृष्ण स्वामिनी की वेश-रचना करेंगे। 'हे वरोरु! अरिष्टजयी मेरे सुख-सागर का विस्तार करते-करते तुम्हें फूलों के साज से सजायेंगे।' राधाकिंकरियाँ सभी सुखों को पसन्द नहीं करती। गोपियों के सुख के स्वरूप का वर्णन करते हुए श्रील कविराज गोस्वामिपाद ने लिखा है-

''गोपीगण करे जबे कृष्ण-दरशन।
सुखवांछा नाहि सुख हय कोटिगुण॥
गोपिकादर्शने कृष्णेर जे आनन्द हय।
ताहा हैते कोटिगुण गोपी आस्वादय॥
ताँ-साभार नाहि निज सुख-अनुरोध।
तथापि बाढ़ये सुख पड़िल विरोध॥
ए विरोधेर एइ एक देखि समाधान।
गोपिकार सुख कृष्णसुखे पर्यवसान॥
× × × ×

आमार दर्शने कृष्ण पाइलो एतो सुख।
एइ सुखे गोपीर प्रफुल्ल अङ्ग मुख॥'' (चै० च० आदि०-४)

कृष्ण के सुख में राधारानी सुखी हैं। युगल के सुख में सखियाँ सुखी। किन्तु किंकरियाँ राधारानी के उत्कर्ष में सुखी होती हैं। जब रसमय श्याम रसपरिपाटी के साथ स्वामिनी की शृंगार आदि सेवायें करते हैं, तो इन लोगों का सुख-सिन्धु उच्छ्वासित हो उठता है! वेशरचना वाले कुंज में श्याम-स्वामिनी ने प्रवेश किया। साथ है किंकरियाँ। स्वामिनी श्याम के मुख की ओर देख कहती हैं-'आज वेशरचना कौन करेगा?' श्याम-'आज मैं ही करूँगा, तुम आदेश करो।' राधारानी हैं विधानकर्त्री। प्रणयरसभरी कैसी-कैसी प्रार्थना चल रही है। स्वामिनी ने भ्रू भंगिमा द्वारा अनुमति दी-'तो तुम्हीं करो।' अङ्गीकार के माध्यम से स्वयं को लुटा देती हैं। यह उनके प्रियतम की एक निरुपम सेवा है! भाव और रस के विचार में-भाव आराधक है और रस आराध्य। श्रीकृष्ण अखण्ड-रस के राजा और श्रीराधा अखण्डभाव की रानी। आराध्य-आराधक विचार से इन्होंने 'राधिका' नाम से पुराण आदि में ख्याति प्राप्त की है। ऐसी आराधना और कोई नहीं जानता। श्याम कुण्डतट पर मधुप-गुंजन भरे कुंज में अपने हाथों स्वामिनी का शृंगार करेंगे। स्वामिनी को थोड़ा ऊपर रत्नवेदी पर बिठाकर स्वयं उनके पादपीठ के निकट बैठे है, ऐसा न करने से शृंगार नहीं होता। फूलों का शृंगार होगा। किंकरियाँ विविध प्रकार के पुष्प चयन कर ला रही हैं। उनके भूषण तैयार होंगे। हाथ का माप ले रहे हैं। रसमय स्पर्श दे-देकर रस के साथ एक शृंगार कर रहे हैं। स्वामिनी नीचे पादपीठ पर पैर झुलाती बैठी हैं। अरिष्टजयी पुष्प-अलंकार तैयार कर-कर अपने हाथों पहना रहे हैं। राधारानी के शृंगार में अरिष्टासुर की स्मृति क्यों? अरिष्टासुरवध को उपलक्ष्य बनाकर ही प्रियाजी की निगूढ़ महिमा का विश्व में प्रचार करने के लिये इन दोनों श्रीकुण्डों को प्रकट किया है। प्रियाजी के साथ स्वच्छन्द एवं ऐसे रहस्यमय विहार का ऐसा स्थान व्रजमण्डल में और कहीं नहीं। तभी अरिष्टासुर की स्मृति। राधारानी के शृंगार के समय अरिष्टजयी-जैसा इतना बड़ा वीर भी अपने को संभाल नहीं पा रहा। रसराज रसास्वादन-लोलुप हैं, महाभाव की सेवा कर रहे हैं! तुलसी खड़ी-खड़ी नागर की सेवा-परिपाटी देख रही हैं और रससागर में तैर रही है। स्वामिनी नयन-भंगिमा द्वारा तुलसी से कहती है-'तुलसि! तूने कुछ नहीं किया?' तुलसी संकेत द्वारा उत्तर देती हैं-'अच्छा शृंगार करने वाला मिल गया है, हम लोगों को क्या अब भी सेवा करनी होगी? अब तो तुम्हारी यही सेवा देख हम लोगों का सुख-सागर उच्छलित हो!' श्याम स्वामिनी के पादपीठ पर ही पैर रखकर खड़े हैं। स्वामिनी की दोनों जंघाओं से श्याम का अङ्ग लग रहा है। पाँच-सात पतली मालायें गूँथी हैं, गर्दन के पीछे गाँठे लगायेंगे। गाँठे फिसल गई। यह देखकर पुनः गाँठ बाँधने को होते हैं, तो उनका मुख स्वामिनी के बायें कन्धे पर पहुँच जाता है! कमल चाँद के निकट! कमल और चाँद तो एक-दूसरे को देख नहीं पाते। आज एक-दूसरे को निकट पाकर आनन्द की सीमा नहीं।'' कुवलय चाँद मिलल एकठाम'' (महाजन) देखकर तुलसी के सुख-सागर में तरंगे उठ रही हैं!

'वरोरु!' सम्बोधन कर रही हैं तुलसी। श्यामसुन्दर स्वामिनी की दोनों जंघाओं के बीच सामने खड़े होकर स्वामिनी की वक्षमाला विन्यास कर रहे हैं। स्वामिनी उस अवस्था में श्याम को अपनी जंघाओं से थोड़ा दबा देती हैं। जंघा-स्पर्श पाकर एक फूलमाला टूट ही गई। वरोरु (श्रीराधा) के उरुद्वय के बीच खड़े होकर गूँथ रहे हैं। फिर पहना रहे हैं। तुलसी सेवा देखकर सीखे लेती हैं। विरह-दशा में स्वामिनी को इन सब रसों का

स्फीत-स्वान्तं कयाचित् सरभसमचिरेणार्प्यमाणैर्दरोद्य-
न्नाना-पुष्पोरुगुंजाफल-निकरलसत्केकिपिञ्छप्रपंचैः।
सोत्कम्पं रच्यमानः कृतरुचिहरिणोंत्फुल्लमङ्गं वहन्त्याः
स्वामिन्याः केशपाशः किमु मर्म नयनानन्दमुच्चैर्विधाता ?७७॥

अन्वय-कयाचित् (सख्या) स्फीतस्वान्तं सरभसम् अभिरेण अर्प्यमाणैः (सानन्दान्तःकरणं यथास्वात्तथा सरभसं शीघ्रं दीयमाणैः) दरोद्यन्नानापुष्पोरुगुंजाफलनिकरलसत्-केलिपिञ्छप्रपंचैः (दर ईषदुद्यन्ति नानापुष्पाणि च ऊरुणि महान्ति गुंजाफलानि तेषा निकरश्च लसत् केकिनां मयूराणां पिञ्छाश्च तेषां प्रपञ्चैः समूहैः। हरिणा कृतरुचि सोत्कम्पं रच्यमानः (श्रीकृष्णेन कृतेन वेष्टनेन रुचि मनोहरं यथास्यात्तथा तत्स्पर्शेन जातविकारत्वात्

आस्वादन प्रदान कर सुख-सागर में डुबोकर सेवा करनी होगी। तुलसी सम्बोधन करती है-'वरोरु!' और चेहरे पर है मृदुमन्द हँसी। स्वामिनी की नेत्र-भंगिमा में तिरस्कार और प्रशंसा दोनों की ही अभिव्यक्ति है। तिरस्कार के साथ अनुमोदन भी है। ललिता-विशाखा आदि यहाँ नहीं हैं। तुलसी-रूप आदि दासियाँ हैं। शृंगार के साथ शृंगार-रस के स्वच्छन्द आस्वादन में कोई बाधा नहीं। वरोरु के ऊरुद्वय के स्पर्श-आस्वादन से नागर विह्वल हैं। और नागर के उस सुख का आस्वादन चल रहा है तुलसी के हृदय में। धन्य राधादास्य! आध्यात्म-साधनराज्य में तटस्था जीवशक्ति का इससे अधिक और क्या प्राप्य (लहना) है? महाप्रभु का महादान। श्रीमन्महाप्रभु की अजस्र करुणा के पात्र हैं रघुनाथ। रघुनाथ की आदर्श प्रेमनिष्ठा, वैराग्य-निष्ठा, भजन-निरन्तरता (निर्बाधता) इत्यादि ने प्रभु का हृदय विगलित कर दिया था। वैराग्य-समन्वित व्रजभक्ति के मूर्तिमान् आदर्श के रूप में प्रभु ने रघुनाथ को पाया था, तभी तो इन्होंने तुष्ट होकर शिला-माला देने के बहाने रघुनाथ को आत्मदान कर दिया था, कारण-वैराग्य और अनुभव मिश्रित भक्तियोग के वितरण के लिये ही तो प्रभु का कल्याणमय अवतार हुआ।

''वैराग्यविद्या निजभक्तियोग-शिक्षार्थमेकः पुरुषः पुराणः।
श्रीकृष्णचैतन्यशरीरधारी कृपाम्बुधिर्यस्तमहं प्रपद्ये॥''

(चैतन्यचन्द्रोदयनाटक-६/७४)

नागर की वेश-रचना की परिपाटी देखकर तुलसी के सुख की सीमा नहीं। सहसा स्फुरण में विराम आ गया। विलाप के साथ प्रार्थना करते हैं।

''तव सरोवर-तीरे, अलि-गुंजि कुंजान्तरे,
फुटियाछे कुसुम-निकर।
अरिष्ट-विजयी कृष्ण, तोमा साजाइते तृष्ण,
विरचिबे भूषण सुन्दर॥
से भूषण दिया तोमा, साजाइबे मनोरमा,
हेरिबो गो कुंजेर दुयारे।
हे वरोरु! करि दया, कबे दिबे पदछाया,
भासाबे गो प्रेमेर पाथारे॥''६६॥

सोत्कम्पं यथास्यात्तथा रुच्यमानः) उत्फुल्लम् अङ्गं वहन्त्याः स्वामिन्याः (सरोमांचम अङ्गं वहन्त्याः श्रीराधायाः) केशपाशः किमु मम नयनानन्दम् उच्चैः विधाता विधास्यति) ?७७॥

अनुवाद-कोई सखी प्रफुल्ल मन से सहर्ष शीघ्र लाकर देगी थोड़े-से खिले पुष्प, पुष्ट गुंजाफल और सुन्दर मोरपुच्छ। उनसे श्रीकृष्ण मनोहर भाव से वेष्टित करेंगे स्वामिनी का केशपाश। तुम्हारा वह सुन्दर केशपाश क्या मेरे नेत्रों को अत्यन्त आनन्द प्रदान करेगा? तुम्हें स्पर्श कर श्रीकृष्ण के हाथ काँपने लगेंगे और श्रीकृष्ण के स्पर्श से तुम भी पुलकित होगी॥७७॥

वेश-रचना

परिमलकणा व्याख्या-श्रीपाद ने अपनी स्फूर्ति में कुण्डतीर पर नागर द्वारा स्वामिनी की वेश-रचना का माधुर्य आस्वादन किया है। अनुभूति के पश्चात् स्फूर्ति में विराम आया, तो प्रार्थना। इसके बाद स्वामिनी के केश-संस्कार का स्फुरण। 'तुम्हारा केशपाश मेरे नेत्रों को प्रचुर मात्रा में आनन्द कब करेगा? हरि द्वारा सजाया-सँवारा केशपाश। नाना पुष्पों, गुंजाओं (घुंघची), मयूरपुच्छों आदि से केशरचना करेंगे। तुम्हारा अङ्ग पुलकित होगा। केशपाश सुसज्जित हो मेरे नेत्रों को आनन्दित करेगा।' मयूरपुच्छों से केशरचना की बात प्रायः सुनने में नहीं आती। पहले विलास हो गया है। श्रीमत् प्रबोधानन्द सरस्वतिपाद ने मदनकेलि-शय्योत्थान की बात कही है। राधारानी श्यामसुन्दर को पीताम्बर खींचने से रोक रही हैं। राधारानी का पीताम्बर और श्यामसुन्दर का नीला वस्त्र। वेश परिवर्तन हो गया है। स्वामिनी का चूड़ा और श्यामसुन्दर की वेणी एवं सिर पर सीमन्तमणि। विलास में ही तन्मयता होने से भेदज्ञान नहीं रहा-यही इस सबका कारण है। रसशास्त्र में इस अवस्था को 'प्रेमविलासविवर्त' कहा गया है। इसका अर्थ हुआ-प्रेमविलास की परिपक्वता या चरम उत्कर्ष की अवस्था। इसमें दो लक्षण प्रकट होते हैं-एक वैपरीत्य (विपरीतता), दूसरा भ्रान्ति। विलासमात्रैक तन्मयता की ही यह सुनिश्चित परिणति है। श्रीमत् जीवगोस्वामिपाद ने लिखा है-''राधाऽजानादसङ्गे दनुजविजयिनः सङ्गमारादसङ्गं संगे चैवं समन्ताद् गृहसमयसुखस्वप्नशीतादिकानि। एतस्या वृत्तिरेषाजनि सपदि यदान्यद्विचित्रं तदासीत् कान्ताकान्त-स्वभावोऽप्यहह यदनयोर्वैपरीत्याय जज्ञे'' (गोपालचम्पूः पू०-३३/१३)। ''श्रीराधा श्रीकृष्ण के साथ संयोग में भी असंयोग (मिलन में भी विरह), असंयोग में भी संयोग समझने लगीं। इसी प्रकार गृह, समय, सुख, स्वप्न, शीत आदि सभी विषयों में वैपरीत्य अनुभव करने लगीं। अर्थात् घर को वन और वन को घर, क्षणभर समय को कल्प-बराबर एवं कल्प को क्षण निद्रा को जागरण तथा जागरण को निद्रा, शीत को उष्ण और उष्ण को शीत, सुख को दुःख एवं दुःख को सुख अनुभव करने लगीं। श्रीराधा की ऐसी अवस्था थी, तब एक और महा आश्चर्य की बात हुई-श्रीराधा एवं श्रीकृष्ण के कान्ताकान्त स्वभावों का भी वैपरीत्य घटित हुआ। अर्थात् कान्त के आचरण और वेशभूषादि कान्ता में तथा कान्ता के आचरण-वेशभूषा आदि कान्त में दिखाई दिये।'' कान्ताभाव-समष्टि रूपी मादन में ही अनन्त भाववैचित्री का समावेश है। मादन है सर्वभावोद्गम-उल्लासी। श्रीराधा में ही इसकी नित्य स्थिति है।

''सर्वभावोद्गमोल्लासी मादनोऽयं परात्परः।
राजते ह्लादिनीसारो राधायामेव यः सदा॥''

(उ० नी० स्थायि०-२१९)

जिस लीला में वेश-परिवर्तन होता है, उसके मूल में हैं श्रीहरि। मादनाख्य-महाभाववती श्रीराधा का मन हरण करते हैं। श्यामसुन्दर के मनोहर व्यवहार के कारण स्वामिनी के मन में कोई संकोच नहीं रहता। मदीयता (कृष्ण मेरे हैं, यह भाव) इतनी उच्छलित है कि उस भाव का समाधान श्यामसुन्दर भी नहीं कर पाते। स्वामिनी के चरणों में सम्पूर्ण रूप से बिक गये हैं। नागरराज स्वामिनी के चरणों में पड़कर 'एक परिरम्भन-उत्सव दान करो' कहकर कितनी-कितनी प्रार्थना करते हैं। ⁂ मानो कितना अभाव है-कितनी कातरता है! चरणतल में पड़े हैं श्रीराधा के प्राणबन्धु। स्वामिनी ने हाथ बढ़ाकर उठाकर वक्ष से लगा लिया। 'तुम्हें अदेय मेरे पास क्या है?' इस प्रकार स्वामिनी के मनोहरण कार्य में सुदक्ष हैं-तभी हरि हैं। पारस्परिक भाव न हो तो सौन्दर्य नहीं। श्रीपाद प्रबोधानन्द सरस्वती ने लिखा है-

''परस्परं प्रेमरसे निमग्न-मशेषसम्मोहनरूपकेलि।
वृन्दावनान्तर्नवकुंजगेहे तन्नीलपीतं मिथुनं चकास्ति॥''

(राधारससुधानिधि-१९७)

''श्रीवृन्दावन के नवनिकुंज गृह में प्रेमरस में निमग्न एवं अशेष सम्मोहनरूपी क्रीड़ायुक्त नील और पीत मिथुन शोभा पा रहे है।'' लीला से स्वामिनी की तृप्ति नहीं हुई। सोच रही हैं-'श्याम ठीक से हँस नहीं पा रहे। हँसी का पूरा विकास नहीं।' बार-बार चुम्बन कर हँसी फुटा रही हैं। स्वामिनीजी का आस्वादन कर श्यामसुन्दर का मुख सुधामय है। जिस मुख पर वेणुगायन का ऐसा माधुर्य है, जिस मुख पर नर्मपरिहास का ऐसा प्रकाश है। पर स्वामिनी हैं कि आकांक्षा पूरी ही नहीं होती। हरि ने सब संकोच हर लिया है। महाजन कहते हैं-'प्रेम की ही एक उच्चतर अवस्था है प्रणय।' प्रणय उदय होने पर परस्पर की भेदबुद्धि नहीं रहती। 'विश्रम्भ' प्रणय की प्राणवस्तु है। 'विश्रम्भ' शब्द पारिभाषिक है। श्रीजीवपाद कहते हैं-''विश्रम्भः प्रियजनेन सह स्वस्याभेदमननम्''- प्रियजन के साथ स्वयं के अभेद का मनन ही विश्रम्भ है। यह अभेद-मनन कैसा है, यह बात श्रील विश्वनाथ चक्रवर्तिपाद ने खोलकर बताई है-'विश्रम्भो विश्वासः सम्भ्रमराहित्यम्, तच्च स्वप्राण-मनोबुद्धिदेह-परिच्छदादिभिः कान्ताप्राणमनोबुद्ध्यादैरैक्यभावनजन्यम्।''विश्रम्भ' शब्द में विश्वास या सम्भ्रम-राहित्य (रहितता) निहित है। इसमें अपने प्राण, मन, बुद्धि, देह, परिच्छद आदि कान्त के प्राण, मन, बुद्धि आदि के साथ एक लगने लगते हैं। अपना हाथ अपने अङ्ग पर बिना किसी संकोच के फिराया जाता है, उसी प्रकार प्रणयिनी को श्याम का प्रत्येक अङ्ग अपना लगता है। इस सबके मूल में वे हरि ही हैं।

स्वामिनी का मेघ-जैसा कृष्णवर्ण, घनकुंचित (खूब घुँघराला), विपुल केशपाश है। हरि पीछे बैठ धीरे-धीरे संस्कार कर रहे हैं। एक-एक केश कोटि प्राणों के समान है। यही कारण है कि सेवा में प्राण उड़ेल दिये हैं। प्रिय वस्तु की सेवा पाकर आनन्द की सीमा नहीं। आनन्द पुलक से भरकर काँपते हाथों से केश-संस्कार कर रहे हैं। प्रियतम का स्पर्श पा स्वामिनी का अङ्ग भी पुलकित है। व्यथा हो रही है सोचकर श्याम पीछे से स्वामिनी के कन्धे पर मुख ले जाकर देख रहे हैं। स्वामिनी प्रफुल्लता के साथ हँस कर कहती हैं-'क्यों

⁂ श्रीराधारससुधानिधि-श्लोक सं० १० देखिये।

माधवं मदनकेलि-विभ्रमे, मत्तया सरसिजेन भवत्या।
ताड़ितं सूमुखि वीक्ष्य किन्त्वियं, गूढ़हास्यवदना भविष्यति?७८॥

अन्वय-सुमुखि! (कृष्णपराभवजेन हासेन शोभनं मनोहरं मुखं यस्याः हे तथाविधे!) मदनकेलिविभ्रमे (श्रीकृष्णस्य कन्दर्पलीला विभ्रमे) मत्तया भवत्या (साहं कृत्या त्वया) सरसिजेन ताड़ितं माधवं वीक्ष्य (लीलापद्मेन प्रहारितं श्रीकृष्णं दृष्ट्वा) तु इयं (इयमहं दासी तुकारस्य समुच्चयार्थत्वेन मत् सजातीया अन्यापि) किं गूढ़हास्यवदना भविष्यति?७८॥

अनुवाद-हे सुमुखि! कामक्रीड़ा के समय श्रीकृष्ण की कन्दर्पलीला भ्रान्ति (भूल) पर अहंकृता होकर तुम जब उन पर लीला कमल से प्रहार करोगी, तब क्या यह किंकरी या मेरी संगिनी अन्य किंकरी रहस्यमय हँसी हँसेगी?७८॥

गूढ़हास्य-वदना

परिमलकणा व्याख्या-लीलारससिन्धु में निमग्न श्रीपाद के आगे एक के बाद एक लीला स्फूर्ति हो उन्हें अनन्त आनन्द दे रही है। फिर जब स्फूर्ति में विराम आता है, तो वही उत्कण्ठा, हाहाकर, विलाप और

व्याकुल हो रहे हो, नहीं लगी।' सुनकर नागरराज का चेहरा खिल उठता है।

केश-संस्कार हो गया। कोई सखी विविध प्रकार के अर्धविकसित कुसुम, पुष्ट गुंजाफल और मयूरपुच्छ लाई हैं। श्याम स्वामिनी का चूड़ा-बन्धन कर उसमें नाना पुष्पों की माला, गुंजा-माला और मोरपंख लगा रहे हैं। महारास-वर्णन में श्रीपाद शुकदेवजी ने भी कहा है-''तानि चूड़यता कान्ताम्'' (भा० १०/३०/३३) नागर की केश-रचना की परिपाटी देखकर तुलसी आनन्द में आत्महारा है। मानो साक्षात् आनन्द नेत्रों में मूर्तिमान् है। आनन्द-भोग मन में न होकर मानो नेत्रों में ही हो रहा है, ऐसा अनुभव कर रही हैं। इस रस में स्मरणनिष्ठ साधक को भी डूबना होगा। राधारानी की सेवा-लालसा साधारण हृदय में नहीं जगती। जो विश्व की उपेक्षा कर सके हैं, जिन्हें कोई अपेक्षा नहीं, उन्हीं के हृदय में जगती है। गीता में अर्जुन से कहा है-''भक्तिमान् मे प्रियो नरः'' मुझे भक्तिमान् व्यक्ति ही प्रिय है। किन्तु राधादास्य पाना और भी कठिन है। बिना तन्मयता के बात नहीं बनती। कैसे राधारानी का प्रिय हुआ जाय, यह आचार्यपादगण ने दिखाया है। ''तवैवास्मि तवैवास्मि न जीवामि त्वया बिना''-इस तन्मयता की यत्-किंचित् अनुभूति चाहिये। आचार्यपादगण की महावाणी दुर्बल साधक के चित्त को बल प्रदान कर उसे क्रमशः लक्ष्यपथ पर अग्रसर करेगी। स्वामिनी की केशरचना के आनन्द में तुलसी विभोर हैं। सहसा स्फूर्ति का अवसान और प्रार्थना।

''अर्ध-विकसित नाना कुसुमनिकर। नवगुंजामाला शिखिपुच्छ मनोहर॥
कोनो सखी ताहा लये प्रफुल्ल अन्तरे। प्रेमानन्दे पुलक विवश-कलेवरे॥
कृष्णकरे अविलम्ब करिबे अर्पण। सादरे लइया ताहा व्रजेन्द्रनन्दन॥
श्रीराधार केशपाश करिबे भूषित। कान्तास्पर्शसुखे कर हइबे कम्पित॥
ताहाते उत्फुल्लचित्त हवे श्रीराधार। स्वामिनीर से केशरचना चमत्कार॥
कतो दिने आमि हाय हेरिबो नयाने। कबे बा हइबे नेत्र आनन्द मगने॥''७७॥

प्रार्थना। ''इयमवस्था खलु भक्तजनस्य पुरुषार्थदात्री'' (श्रीपाद बलदेव विद्याभूषण)-यह अवस्था ही भक्तों का परम पुरुषार्थ है। आनन्दमय, प्रेममय, सौन्दर्य-माधुर्यमय भगवान् की उपासना का भाव हृदय में प्रतिष्ठित होने पर जीव अटूट आनन्द का आस्वादन पाकर सदा-सदा के लिये धन्य हो जाता है, विश्व में इस महासत्य का प्रचार किया है-भगवत्प्रेमी महानुभावों ने। भगवान् की कृपा से साधक जब क्रमशः साधनराज्य के उन्नतस्तर पर चढ़ता रहता है, तो उसकी आत्मसुख-वासना एक के बाद एक क्रमशः नष्ट होती जाती है। सुख-दुःख, अच्छा-बुरा, स्वर्ग-नरक इन्द्रजाल की तरह असार लगते हैं। मुक्ति-वांछा कपटता में आ जाती है। धीरे-धीरे साधक के हृदय-राज्य में भक्तिदेवी सुप्रतिष्ठित हो जाती हैं। तब रागमयी सेवा की लालसा से साधक का चित्त भक्तिरस से भर उठता है। धीरे-धीरे साधक का पुरुष-अभिमान लुप्त हो जाता है और श्रीश्रीराधामाधव की सेवा के योग्य मंजरी-अभिमान और हावभाव आदि उसके चित्त पर अधिकार कर बैठते हैं। उसी भाव में आविष्ट होकर वह व्रजरस की भजननिष्ठा प्राप्त करता है। तब उसके सामने से यह व्यावहारिक जगत् लुप्त हो जाता है। इसके स्थान पर एक महारस के महामाधुर्यमय चिरसुन्दर चिर-मधुर राज्य की दृश्यावली फूट उठती है! वह विरह-मिलन के बीच कोटि प्राणों के समान अटूट सौन्दर्य-माधुर्यमय श्रीश्रीराधामाधव के रूप-गुण-लीलासिन्धु में डूबता-उतराता धन्य होता है। यहीं मिलती है साधक को साधना की चरम तृप्ति। आनन्दलीला-रसघन-विग्रह प्रेममय भगवान् श्रीगौरसुन्दर ने ही इस मधुमयी उपासना का विश्व में प्रचार किया है और उनके प्रिय पार्षद श्रीश्रीरूप-रघुनाथ आदि गोस्वामिपादगण ने स्वयं आचरण कर इस रसमयी उपासना का पथ विश्ववासियों को दिखाया है। इन लोगों की उपासना की और भाव-परिपाटी की बात के श्रवण-कीर्तन से भी साधक का परम कल्याण होता है।

श्यामसुन्दर ने स्वामिनी का केश-संस्कार पूरा कर लिया है। उस लीला को देखते-देखते ही श्रीपाद के स्फुरण में विराम आ गया था। स्वामिनी के पीछे रहकर केशरचनाकारी श्यामसुन्दर और स्वामिनी की एक अभिनव लीला की पुनः स्फूर्ति हुई। श्याम की केशरचना की कैसी अपूर्व परिपाटी है! साक्षात् श्रृंगाररस ने मूर्तिमान् होकर महाभाव की सेवा में अपने को नियुक्त किया है। श्याम की केशरचना में निपुणता देखकर स्वामिनी परम सन्तुष्ट हैं। 'कैसी सुन्दर केशरचना की है।' सोच रही हैं, क्या उपहार दूँ। 'तुम्हारे इस केशविन्यास के योग्य पुरस्कार क्या है?' कहकर एक मधुर चुम्बन उपहार में दिया। उपहार पाकर नागर को तो विभ्रम हो गया। नागर अप्रकृतिस्थ (गड़बड़ाये, असंतुलित) हो उठते हैं। सब गड़बड़ा दिया। लीला की प्रवृत्ति इस प्रकार जग रही है कि स्वामिनी लीलाकमल से उनकी ताड़ना कर रही हैं। जैसे पढ़ाई के कार्य में गलती करने पर अध्यापिका छात्र को ताड़ना करती है-वैसे ही। (स्वामिनी) अध्यापिका ही तो है! वे कितनी-कितनी प्रकार की शिक्षा प्रदान करती हैं, कौन बता सकता है? कृष्ण-दर्शन की लालसा लिये उत्कण्ठित चित्त से श्रीमती श्रीराधाकुण्ड जा रही हैं-कुंजेरा नामक स्थान में प्रियसखी वृन्दा से भेंट होती है।

''कस्माद् वृन्दे? प्रियसखि! हरेः पादमूलात् कुतोऽसौ?
कुण्डारण्ये, किमिह कुरुते? नृत्यशिक्षां, गुरुः कः?

सुललितनिजवाह्वाश्लिष्ट-गोष्ठेन्द्रसूनोः, सुबलिततरवाह्वाश्लेषदीव्यन्नतांसा।
मधुर-मदनगानं तन्वती तेन सार्द्धं, सुभगमुखि मुदं मे हा कदा दास्यसि त्वम्?७९॥

अन्वय-सुभगमुखि! (शोभनं वदनं यस्याः हे तथाविधे!) सुललितनिजवाह्वाश्लिष्ट-गोष्ठेन्द्रसूनोः (सुललितो यो निजस्य बाहुस्तेनाश्लिष्टश्चासौ श्रीनन्दनन्दनस्य) सुबलिततरवाह्वा-श्लेष दीव्यन्नतांसा (सुबलिततरेन

तं त्वन्मूर्तिः प्रतितरुलतं दिग्विदिक्षु स्फुरन्ती।
शैलूषीव भ्रमति परितो नर्तयन्ती स्वपश्चात्॥'' (गो० ली०-८/७७)

श्रीमती बोलीं-'वृन्दे! तुम कहाँ से आ रही हो?' वृन्दा-'श्रीकृष्ण के पादमूल से।' श्रीराधा-'वे कहाँ हैं?' वृन्दा-'तुम्हारे कुण्डतीरवर्ती कानन में।' श्रीराधा-'वहाँ वे क्या कर रहे हैं?' वृन्दा-'नृत्य सीख रहे हैं।' राधा-'गुरु कौन हैं?' वृन्दा-'तुम्हारी मूर्ति प्रत्येक तरुलता दिग्विदिक् में स्फूर्तिशील होकर अपने पीछे-पीछे उन्हें नचा रही है।' उनकी स्वतन्त्र अनुभूति-''राधिकार प्रेम गुरु, आमि शिष्ट नट। सदा आमा नाना नृत्ये नाचाय उद्भट॥'' (चै० च०)

खेल में गलती होने पर स्वामिनी लीलाकमल से ताड़ना करती हैं। इस रसमय ताड़न का क्या मूल्य है, रसराज सोचकर निश्चित नहीं कर पाते। इस रसताड़ना में वे आनन्द से आत्महारा हो जाते हैं। मानमयी प्रिया की भर्त्सना-वाणी उन्हें कितनी आनन्द देती है! ''प्रिया यदि मान करि करिये भर्त्सन। वेदस्तुति हैते हरे सेइ मोर मन॥'' (चै० च०) अतएव इस रसमयी लीला की रस-ताड़ना के आनन्द को कौन मापेगा? कविराज की सार्थक मधुमयी लेखनी-''कृष्णके कराय श्यामरस-मधुपान। निरन्तर पूर्ण करे कृष्णेर सर्वकाम॥'' (चै० च०) कोटि मन्मथों को मोहने वाले साक्षात् शृंगार श्रीगोविन्द को श्यामरसमधु अर्थात् शृंगाररस-माधुरी आस्वादन कराने की कितनी-कितनी परिपाटियाँ हैं, यह श्रीकृष्ण-आराधिका राधा की तरह और किसी को पता नहीं। यहाँ तक कि श्यामसुन्दर की भावना से परे कोई अनिर्वचनीय रस प्रदानकर अखण्ड रसवल्लभा वार्षभानवी (राधा) उनकी सेवा करती हैं। स्वामिनी के लीलाकमल की ताड़ना देख तुलसी मुँह पर वस्त्र रख गूढ़ हँसी हँस रही हैं। उनकी संगिनी मंजिरयाँ भी इसी तरह हँस रही हैं। अर्थात् नागर का कहाँ भ्रम है (कहाँ क्या गड़बड़ की), स्वामिनी को अतृप्ति क्यों है-गूढ़ हास्य द्वारा उसी ओर संकेत कर नागर का ध्यान आकर्षित करने की प्रचेष्टा कर रही हैं। 'मेरी हँसी देखते ही नागर अपनी चपलता और कहाँ उन्होंने गलती की यह समझ जायेंगे।' तभी हँसी है गूढ़, अर्थात् तात्पर्यपूर्ण। सेवारस की मूर्ति है किंकरी। सेवा को छोड़ इन लोगों की और कोई चेष्टा ही प्रकाश में नहीं आती। रसमय-रसमयी की सेवा करने के लिये साधक को भी इन लोगों के आनुगत्य में ये सब योग्यतायें प्राप्त करनी होंगी। ''जे स्थाने जे लीला करे युगलकिशोर। सखीर संगिनी हइया ताहे हउँ भोर॥'' (प्रार्थना)। श्रीपाद की स्फूर्ति के बाद स्फूर्ति चल रही है।

''कन्दर्प-केलि-विभ्रमे प्रमत्ता हइया।
ताड़ना करिबे कृष्णे लीलापद्म दिया॥
से रहस्यलीला हेरि अन्य सखीसने।
गूढ़हास्यमुखी हबो कबे सुवदने?'' ७८॥

आजानुलम्बमानेन बाहुना य आश्लेष आलिंगनं तेन दीव्यन् नतोऽंस स्कन्धो यस्याः सा) त्वं तेन सार्द्धं मधुरमदनगानं तन्वती (श्रीकृष्णेन सह मधुर मदनगानं विस्तारयन्ती सती) हा कदा मे (मह्यं) मुदं (हर्षं) दास्यसि ?७९ ॥

अनुवाद–हे सुभगमुखि ! श्रीराधिके ! तुम्हारी सुललित बाहु द्वारा आलिंगित श्रीनन्दनन्दन की आजानुलम्बित बाहु के आलिंगन से शोभित नतस्कन्ध तुम उनके साथ मधुर मदनगीत गाते–गाते हाय ! मुझे कब आनन्द प्रदान करोगी ?७९ ॥

मधुर मदनगान

परिमलकणा व्याख्या–स्फुरण में श्रीपाद युगल–माधुरी का आस्वादन कर रहे हैं। यह आस्वादन परम्परा चल रही है। जो आस्वादन कर रहे हैं, उसे वर्णन करने योग्य भाषा नहीं। जितना–कुछ सम्भव है, उतना ही व्यक्त हो रहा है। ग्रन्थ लिखकर समझाने का विषय नहीं है भगवत्–माधुरी। शास्त्रकार कहते हैं–'मूकास्वादनवत्।' मूक व्यक्ति मधुररस का आस्वादन करता है, उससे आनन्द भी पाता है, पर भाषा में व्यक्त नहीं कर सकता। भगवत् रसास्वादन के विषय में भी वही बात। महाजनों ने स्वयं आस्वादन कर जितना भी व्यक्त किया है, उसे समझने के लिये भी प्रत्यक्ष साधन की आवश्यकता है। जो अनुभव का विषय है अथवा आस्वादन का विषय है, वह अनुभव या वह आस्वादन केवल ग्रन्थ पढ़कर सम्भव नहीं इसीलिये श्रीमत् रूपगोस्वामिपाद ने रसास्वादन की साधना का उल्लेख करते हुए कहा है–

''भक्तिनिर्धूतदोषाणां प्रसन्नोज्ज्वलचेतसाम्।
श्रीभागवतरक्तानां रसिकासङ्ग – रङ्गिणाम्॥
जीवनीभूत – गोविन्दपादभक्तिसुखश्रियाम्।
प्रेमान्तरङ्गभूतानि कृत्यान्येवानुतिष्ठताम्॥'' (भ० र० सि०–२/१/६–७)

साधनभक्ति के प्रभाव से समस्त दोष समूल नष्ट हो जाने से जिन लोगों के चित्त प्रसन्न (शुद्धसत्त्व आविर्भाव के योग्य) और उज्ज्वल (फलस्वरूप सर्वज्ञान सम्पन्न) हो गये हैं, जो लोग श्रीभागवत में अनुरक्त हैं, रसिकजनों के नित्य संग में ही जिन लोगों का रंग (उल्लास–अतिशयता) चलता है, जो लोग श्रीगोविन्द के पादपद्मों की भक्ति–सुखसम्पदा को ही जीवनाधार समझते हैं, और प्रेम की अन्तरंग साधना श्रवण–कीर्तनादि में मग्न हैं–ऐसे लोगों के चित्त में भगवत् रसास्वादन सम्भव होता है।

विरह–वेदना के आघात से श्रीपाद का हृदय जर्जरित है। श्रीमन्महाप्रभु का विरह, श्रीरूपसनातन का विरह, भीतर स्वामिनीजी का अभाव। विरह–दावानल में दग्ध देह–आकुलप्राणों से प्रार्थना कर रहे हैं–'कब आनन्द दोगी ?' राधाकिंकरियों का आनन्द क्या है ? अपने सुख में इन लोगों को आनन्द नहीं आता, युगल के सुख में ही इनका आनन्द है। विरह–वेदना की अतिशयता में प्रार्थना–तरंगों पर तैरते श्रीपाद के आगे लीला–छवि पुनः फूट उठी है। श्रीकुण्ड–तीर पर स्वामिनी के साथ मधुर गीत गाते–गाते विभोर नागर उसी ओर आ रहे हैं। स्वामिनी अपनी सुललित बाहु द्वारा गोष्ठ–युवराज को आलिंगन किये हैं। महाभाव की बाहु, तभी अति सुललित। वैसा प्रेम न हो, तो केवल रूप के लालित्य से उन्हें वशीभूत या मोहित नहीं किया जाता। ललितमाधवनाटक में लिखा है–रुक्मिणीहरण से पूर्व गरुड़जी रुक्मिणीदेवी के रूप–माधुर्य पर मुग्ध होकर बोले–

''सौन्दर्याम्बुनिधेर्विधाय मथनं दम्भेन दुग्धाम्बुधे-
र्गीर्वाणैरुदहारि चारुचरिता या सारसम्पन्मयी।
सा लक्ष्मीरपि चक्षुषां चिरचमत्कारक्रियाचातुरीं
धत्ते हन्त तथा न कान्तिभिरियं राज्ञः कुमारी यथा॥''

''देवता क्षीरसागर-मन्थन के छल से सौन्दर्यसिन्धु का मन्थन कर शोभन-चरित लक्ष्मीदेवी को लाये हैं। अहा! ये राजकुमारी अपने सौन्दर्य से चक्षुओं को जैसा चमत्कृत कर रही हैं, नेत्रों का वैसी प्रीति-विधान तो वे लक्ष्मी भी नहीं कर पाईं।'' गरुड़जी की बात सुनकर श्रीकृष्ण ने कहा-''सखे! भवतु, किमेतेन, यदेष रूपमात्रेण न हार्यो हरिः।''-'सखे, तुम जिस रूप-सौन्दर्य की बात कर रहे हो, उसकी आवश्यकता क्या? कारण-रूपमात्र देखकर कृष्ण कभी मुग्ध नहीं होते।' अर्थात् जो रूप-लावण्य प्रेम से उदित नहीं, वह श्रीकृष्ण की मुग्धता का हेतु कभी नहीं हो सकता। अतएव 'यह बताओ, उनका प्रेम कितना है'-यह व्यंजना है। स्वामिनीजी के महाभाव की बाहु तभी इतनी सुललित है। स्वामिनी की दायीं बाहु श्याम की पीठ पर होती श्याम की दायीं बाहु के नीचे कुक्षि (काँख) तक गई है। श्याम की दीर्घ बायीं बाहु स्वामिनी की बायीं ग्रीवा पर होती बायीं ओर वक्ष तक गयी है। स्वामिनी की परम लालित्ययुक्त बाहु का स्पर्श श्यामसुन्दर में शत-शत आकांक्षायें जगा रहा है। श्यामसुन्दर की बाहु सुबलित है। अनन्त शक्तिशाली बाहु। स्वामिनीजी की सेवा में नियुक्त होने से शक्ति का सौन्दर्य फूट उठा है! दोनों आलिंगित अवस्था में मदनगीत गाते-गाते चले जा रहे हैं। गाने में दोनों ही मत्त। गति-भंगिमा ध्यान के योग्य। श्रीकुण्डतीर का सौन्दर्य आस्वादन कर रहे हैं। वृक्षवल्लरियों पर राशि-राशि कुसुम विकसित हैं। मकरन्द-लोभी भृंगों की झंकार से झंकृत है तटप्रदेश। हरिण, शशक (खरगोश) आदि स्वच्छन्द विहार कर रहे हैं। कोकिल, शुक, सारस आदि के अव्यक्त मधुरनाद से दिगन्त मुखरित हैं। श्रीकुण्ड में विकसित हैं श्वेत कमल और तटप्रदेश के चम्पक आदि पुष्पों के सौरभ से सुरभित है वनभूमि! ऐसी निरुपम शोभा से भरे परिवेश में श्रीयुगल श्रीकुण्ड के वन को नील-पीत आलोक से उद्भासित कर मदनगान करते करते जा रहे हैं। ''मदयतीति मदनः।'' अर्थात् जो गायन मत्त कर डाले, वही मदनगान ताल देने के समय स्वामिनी दायें करकमल से श्याम की दायीं कुक्षि (काँख) दबा देती हैं। दोनों अंगों के बीच जो थोड़ी रिक्तता थी, वह भर गई। स्वामिनी का कैसा आस्वादन! गा रही हैं-'ए बुक चिरिया जेखाने पराण, सेखाने तोमारे थोबो''-इस हृदय को चीर कर जहाँ प्राण हैं, वहाँ तुम्हें रखूँगी! श्याम भी स्वामिनी के वक्षस्थल पर भार डाल रहे हैं। वे बाहु का बल अनुभव कर रही हैं। रसमय श्याम, रसमयी स्वामिनी। कैसा मधुर है कण्ठस्वर! कभी स्वामिनी श्याम के वक्ष पर सिर रखकर गाती हैं-

'श्याम बँधु! आमार पराण तुमि।
कोन् शुभदिने, देखा तोमासने, पासरिते नारि आमि।
जखन देखिये, ओ चाँदवदने, धैरज धरिते नारि।
अभागीर प्राण, करे आन्‌चान्, दण्डे दशबार मरि॥
मोरे करो दया, देहो पदछाया, शुनहो पराण-कानु।
कुल-शील सब, भासाइनु जले, ना जीयब तुया बिनु॥'' (पदकल्पतरु)

गाते समय स्वामिनी के मुख की कैसी शोभा! कैसी अपूर्व भंगिमा! तभी सम्बोधन है 'सुभगमुखि'। श्याम भी अनुरूप भाव से अनुराग का गीत गाते हैं-

''सुन्दरि! आमारे कहिछो कि?
तोमार पीरिति भाबिते भाबिते विभोर हइयाछि॥
थिर नहे मन-सदा उचाटन-सोयाथ नाहिक पाइ।
गगने भुवने दशदिग् गणे तोमारे देखि सदाइ॥
तोमार लागिया बेड़ाइ भ्रमिया गिरि नदी वने-वने।
खाइते शुइते आन नाहि चिते सदाइ जागये मने॥
शुनो विनोदिनी प्रेमेर काहिनी पराण रैयाछे बान्धा।
एकइ पराण देह भिन भिन ज्ञान कहे-गेलो धान्दा॥'' (वही)

श्याम के गायन पर मुग्ध होकर स्वामिनी श्याम की पीठ से हाथ उठाकर श्याम का कण्ठ पकड़ मुँह थोड़ा नीचा कर चुम्बनरूपी पुरस्कार देती हैं। मदनगान का यथायोग्य पुरस्कार। श्याम के आनन्द की सीमा नहीं! सखियों में से कोई भी साथ नहीं है। स्वच्छन्द विहार है। गजराज-करिणी (हाथी-हथिनी)। क्या माधुर्य है!

''दोंहे कहि दोंह अनुराग। दुहुँ प्रेम दुहुँ हृदे जाग॥
दोंहे दोंहा करु परिहार। दुहुँ आलिंगइ कतो बार॥
दुहुँ बिम्बाधरे दुहुँ दंश। दुहुँ गुण दुहुँ परशंस॥
दुहुँ हेरि दोहाँर बयान। दुहुँ जन सजल नयान॥
दुहुँ कह मधुरिम भाष। निरखये यदुनाथ दास॥'' (वही)

वन-विहार करते-करते ही स्वामिनी कुसुमचयन कर श्याम को सजा रही हैं। श्याम भी फूल तोड़कर उन्हें सजा रहे हैं। गीत गाते-गाते कुण्डतट की ओर बढ़े आ रहे हैं। तुलसी के आनन्द की सीमा नहीं। सहसा स्फुरण में विराम आ गया। चक्षु मानो धुंधुरित हो गये! रोते-राते विलाप कर रहे हैं-'अकेला पड़ा हुआ हूँ। इस रास्ते से इसी प्रकार एकबार और चली जाओ। एकबार आँखों से देख जीवन धन्य करूँ। तुम दोनों लीला-आनन्द में भोर हुए रहो-मैं देखकर सुखी होऊँ। कुण्डतीर पर छोड़ रखा है, एकबार आँखों से देखने की बड़ी साध है। हा स्वामिनि! तुम छोड़ दोगी तो कहाँ जाऊँगा? तुम्हारी सेवा ही मेरे जीवन का व्रत है। तुम्हारे चरणों की नखज्योति हृदय में निरन्तर विराजेगी-यही चिरकामना है। नाचते-गाते आ रहे थे। श्रीकुण्ड का वन आलोकित हो रहा था। तुम दोनों को इस प्रकार आते देखकर क्या और कुछ अच्छा लगेगा?' रघुनाथ का जितना विरह, उतना स्फुरण। जितनी क्षुधा, उतना आस्वादन। आचार्यपादगण हैं आदर्श। साधक रोते-रोते विवश हो उठेगा, तभी अनुभव प्राप्त होगा। देहावेश सुदृढ़ बन्धन है। अनुभव इस बन्धन से मुक्त करेगा। किंकरी-अभिमान से युगल-माधुर्य का आस्वादन प्राप्त होगा, तभी सार्थकता होगी। स्फुरण के विराम में रघुनाथ कुण्डतीर पर लोटपोट करते विलाप कर रहे हैं-

''तव बाहु मृणालिनी अति सुललित। व्रजेन्द्रनन्दन ताहे हये आलिंगित।
निज सुबलित बाहु करिले अर्पण। आनन्द हइबे तव स्कन्ध सुशोभन॥
मधुर मदनगान कृष्णेर सहिते। गाहिया सुमुखि! कबे सुख दिबे चिते?''७९॥

जित्वा पाशकखेलायामाच्छिद्य मुरलीं हरेः।
क्षिप्तां मयि त्वया देवि गोपयिष्यामि तां कदा?८०॥

अन्वय–देवि! पाशकखेलायां जित्वा हरेः आच्छिद्य (हरेः सकाशात् आच्छिद्य बलादगृहीत्वा) त्वया मयि क्षिप्तां तां मुरलीं (अहं) कदा गोपयिष्यामि?८०॥

अनुवाद–हे देवि! तुम पाशक्रीड़ा (पाँसा) में श्रीकृष्ण को पराजित कर उनकी वंशी छीनकर मेरी ओर फेंकोगी, मैं उसे कब छिपाऊँगा?८०॥

मुरली संगोपन

परिमलकणा व्याख्या–श्रीपाद ने स्फूर्ति में श्रीश्रीराधामाधव के वन–विहार और मदनगान का माधुर्य आस्वादन किया है। स्फूर्ति के विराम में तीव्र विरह–ज्वाला भोग रहे हैं। श्रीराधारानी में ही अटूट आवेश है। राधारानी की विरहवेदना की शान्ति उनके अतिरिक्त और कोई नहीं कर सकता। ह्लादिनीशक्ति की सारमूर्ति ही श्रीराधा हैं। ''ह्लादिनी कराय कृष्णे आनन्दास्वादन। ह्लादिनी–द्वाराय करे भक्तेर पोषण॥'' (चै० च०)। इसी ह्लादिनीशक्ति की सारवृत्ति भक्तकोटि और भगवत् कोटि (भक्त–भगवान् दोनों) में अनुप्रविष्ट है। भगवत् कोटि में विद्यमान ह्लादिनी भगवान् को विचित्र लीलारस आस्वादन करा रसिकशेखर रूप में प्रतीति कराती है। भक्तकोटि में विद्यमान होकर श्रीकृष्णसेवा का विधान कर आनन्द में मग्न किये रखती है। यह सेवोन्मुखी भक्तगत आनन्द ही भक्ति है। भक्त का भक्तिजनित आनन्द और भगवान् का लीलाजनित आनन्द–ये दोनों ही एक ही ह्लादिनी शक्ति की सारवृत्ति के दो कोटियों में दो व्यापार हैं। भगवान् के भीतर ह्लादिनी रसरूपिणी है, और भक्त में भक्तिरूपिणी है। इसी ह्लादिनीशक्ति की सारघन मूर्ति ही श्रीराधा हैं। अतएव जैसे श्रीकृष्ण का दुःख (श्रीराधा के अभाव से उत्पन्न दुःख) अन्य कोई गोपी या कान्ता दूर नहीं कर सकती, वैसे ही भक्त का दुःख (श्रीराधा के अभाव से उत्पन्न विरह–दुःख) उनके बिना और कोई दूर नहीं कर सकता। ऐसी राधारानी के किंकरीत्व का परिचय बताया है करुणामय गुरुदेव ने, किन्तु मुझ जैसे जीव को उसकी कोई अनुभूति नहीं। ऐसे राधा–चरणों को छोड़कर भी विश्व में लाभ–पूजा–प्रतिष्ठा, अर्थ–सम्पदा आदि बहुत–कुछ अच्छा लगा। मुझ–जैसे दुर्दैव–ग्रस्त जीव के अनन्त जन्मों के अपराधों का ही यह परिणाम है। साधु–गुरु की करुणा पाकर भी उससे वंचित। ''साधु मुखे कथामृत, शुनिया विमलचित, नाहि भेलो अपराध कारण'' (ठाकुर महाशय)।

विरह–विधुर श्रीपाद रो रहे हैं। स्वामिनी मानो करुणस्वर में पुकार रही हैं–'तुलसि! आ।' श्रीपाद उठ बैठे। सामने लीला की छवि फूट उठी है! कुण्डतीर पर सुदेवी के कुंज में पाशक्रीड़ा आरम्भ हो गई है। सीधुपान, जलकेलि, हिन्दोलिका आदि खेलों में सुकुमार स्वामिनी बलवान् नागर से प्राय ही नहीं जीत पातीं। तभी पाशक्रीड़ा (पाँसा) में नागर को हराने की युक्ति तय की है सखियों के साथ। राधा–श्याम आमने–सामने बैठे हैं। सभी सखियाँ विद्यमान हैं। प्रियनर्मसखियाँ भी बैठी हैं। राधाश्याम की विजीगीषा (जीतने की इच्छा) से भरी क्रीड़ा में पण (दाँव, शर्त) रहता है। पण है–वेणु और वीणा। दोनों वस्तुएँ सामने रखी गईं। नान्दीमुखी और वृन्दा साक्षी हैं। द्यूतप्रवर्तिका हैं कुन्दलता। राधा की ओर ललिता और कृष्ण की ओर मधुमंगल उपदेष्टा रहे। अन्य कोई किसी को चाल नहीं बता सकता। कच्ची गोटी को पक्का करना, पक्की मोटी को कच्ची करना,

अच्छी चाल देकर दूसरे की गोटी को मारना-यह सब कोई किसी को नहीं बता सकता। पाँसा फेंककर पहले हाथ खोलना चाहिये, तब खेल आरम्भ होता है। सत्रह दान या और भी कुछेक दान रख जायें, तब हाथ खुलता है। स्वामिनी कहती हैं-'सुन्दर! पहले तुम ही दान फेंको।' श्यामसुन्दर ने दान फेंका, हाथ नहीं खुला। स्वामिनी दोनों हाथों से पाँसा रगड़ रही हैं। मुख पर मृदुमन्द हँसी है! मानों श्याम के मन को ही रगड़ रही हैं। पहली बार में ही सत्रह दान! हाथ खुल गया। आँखों ही आँखों सखियों से बात। 'तुम खेल में जीतोगी, सो तो समझ ही सकती हैं। वह तो गँवार है, गायों के पीछे लाठी लिये 'हो हो' कर घूमता फिरता है। वह पाँसा खेलना क्या जाने?' दूसरी बार में श्याम का हाथ खुला। तुलसी स्वामिनी के पास ही बैठी हैं। मुख देखने में आये इस प्रकार बैठी हैं। श्यामसुन्दर की रूपमाधुरी देखकर स्वामिनी को विभ्रम होता है। राधामाधुरी देख भोर हो उठते हैं श्यामसुन्दर। ऐसा क्या और मिलेगा? उन्हें प्रेम करने वाले व्यक्ति खूब ही कम हैं। उनसे प्राप्त कर लेने वाले लोग ही अधिक हैं। देना कोई नहीं जानता। लेने के सभी अभ्यस्त हैं। भजन कर आनन्द पाता हूँ तभी भजन करता हूँ। या अपने सुख-दु:ख की बात भूलकर सेवा कर उन्हें सुखी करने के लिये भजन करता हूँ? नाम कर आनन्द पाता हूँ तभी नाम करता हूँ। यह नाम सुनकर उन्हें असीम आनन्द होता है, नाम करते समय यह स्मृति रहती है क्या? शुद्धभक्त के रूप में अपना परिचय देने में संकोच नहीं होता, किन्तु इष्ट के सुख के प्रति लक्ष्य नहीं। अपने सुख-दु:ख को लेकर ही व्यस्त। श्रीमद्भागवत में आता है-बलि महाराज ने भगवान् को सर्वस्व दानकर द्वारपाल बना कर रखा। इस विषय में गोपियाँ सर्वोच्च कक्षा में हैं-

''आत्म सुख-दु:ख गोपीर नाहिक विचार।
कृष्ण-सुख-हेतु चेष्टा मनोव्यवहार॥
कृष्ण-लागि आर सब करि परित्याग।
कृष्णसुख हेतु करे शुद्ध अनुराग॥'' (चै० च०)

सर्वोपरि हैं राधारानी। ''कृष्णेन्द्रियाह्लादिगुणैरुदारा, श्रीराधिका राजति राधिकेव''-श्रीकृष्ण की इन्द्रियों को आनन्ददायी सौन्दर्य-माधुर्य आदि गुणों से भूषिता श्रीराधा के तुल्य श्रीराधा ही हैं। इनका दृष्टान्त और कहीं नहीं। श्रीराधा का निरुपम निष्काम प्रेम उनकी श्रीचरणाश्रिता किंकरियों में भी संचारित हुआ है। जो युगल-सुख को छोड़ विश्व में और कुछ नहीं जानतीं। स्वसंकल्प-प्रकाशस्तोत्र (११) में श्रीपाद ने श्रीरूपमंजरी से प्रार्थना की है-

''सदक्षक्रीड़ानां विधिमिह तथा शिक्षयतु सा
सुदेवी मे दिव्यं सदसि सुदृशां गोकुलभुवाम्।
तयोर्द्वन्द्वे खेलामथ विदधतो: स्फूर्ज्जति यथा
करोमि श्रीनाथां सखि विजयिनीं नेत्रकथनै:॥''

''हे सखि रूपमंजरि! यदि वे सुदेवी व्रज में सुनयनी गोकुलसुन्दरियों की सभा में मुझे उत्कृष्ट पाशाक्रीड़ा के नियम सिखायें, तो मैं श्रीराधागोविन्द की जिगीषा (जीतने की इच्छा) पूर्ण पाशाक्रीड़ा में नेत्र-भंगिमा द्वारा श्रीराधिका को ही जिताऊँगी।''

अपि सुमुखि कदाहं मालतीकेलितल्पे, मधुर-मधुर-गोष्ठीं विभ्रतीं वल्लभेन।
मनसिजसुखदेऽस्मिन्मन्दिरे स्मेरगण्डां, सपुलकतनुरेषा त्वां कदा वीजयामि?८१॥

अन्वय-सुमुखि! (कृष्णेन सह सुस्मित-जल्पने शोभनं मुखं यस्याः हे तथाविधे!) अस्मिन् मनसिजसुख-देमन्दिरे मालतीकेलितल्पे वल्लभेन कदाहं मधुर-मधुर-गोष्ठीं विभ्रतीं (श्रीकृष्णेन सह कदा कस्मिन्नपि दिनेऽहम् अनुनयेन मधुरादपि मधुरा या गोष्ठी उक्तिप्रत्युक्तिरूपा वाग्भङ्गी तां विभ्रतीं पुष्णन्तीं) स्मेरगण्डां त्वां (पुलकितकपोलां त्वां) सपुलकतनुः एषा (अहं) कदा वीजयामि?८१॥

अनुवाद-हे सुमुखि! किसी दिन इस मदनसुखदाकुंज में मालतीपुष्पों से रची केलिशय्या पर श्रीकृष्ण के अनुनय पर कथोपकथन करने वाली और हास्यमुखी तुम्हें मैं पुलकित देह से वीजन कब करूँगा?८१॥

श्याम का वदनचन्द्र देखकर स्वामिनी को विभ्रम हो गया है। चाल में थोड़ा गोलमाल कर बैठी हैं। हारने की तैयारी। ऐसे समय तुलसी ने इशारे से चाल बता दी। स्वामिनी की जीत हुई। श्याम की तो हार कर भी जीत। जैसे ही हारे, वंशी उठा ली। स्वामिनी कहती हैं-'वंशी दो।' श्याम की वंशी देने की इच्छा नहीं। रसिकशेखर हैं, सो थोड़ा रंग दिखाने की इच्छा है। वे वंशी देंगे नहीं, स्वामिनी लेंगी। खींचतान हो रही है। 'हारे हो, वंशी क्यों नहीं दोगे? तुम्हारी वंशी बड़ी दुष्ट है, सर्वनाश करती है, जमुना में डुबो दूँगी'-स्वामिनी कहती हैं। श्याम ने वंशी सिर के पीछे कर ली है। स्वामिनी ने श्याम के वक्ष पर गिरकर वंशी छीन ली। वंशी लेने के छल से वाम्य के माध्यम से अपूर्व रस का आस्वादन दे दिया। 'तुम्हारी वांछित वस्तु उपहार में देकर फिर (वंशी) ले रही हूँ। तुम्हें सुख-सिन्धु में डुबोकर छीन ली।'-यही है स्वामिनी के मन का भाव। श्यामनागर की तो हालत ही जाने कैसी हो गई! हाथ शिथिल हो गये हैं, तभी (वंशी) ले ली। स्वामिनी ने गुप्तरूप से वंशी तुलसी को दे दी, तुलसी ने उसे छिपा दिया। मोहित कर वंशी लेना। मदिरा-पान करा वंशी लेना। वक्षस्थल पर किसी महौषध का प्रलेप अर्पित किया है। जयश्री स्वामिनी। सखी-मंजरियाँ हँसते-हँसते एक-दूसरे के ऊपर गिर रही हैं। नागर को मानो बाह्यज्ञान लौटा, देखते हैं वंशी नहीं। 'मेरी वंशी कहाँ है?' - नागर कहते हैं। श्रीराधा-'किसे पता। तुम हारे हो, दी नहीं। तुम्हारी वंशी कहाँ है, हम लोग नहीं जानतीं।' श्याम-'निश्चय ही तुमने ली है।' स्वामिनी परिहास के साथ कहती हैं-'क्यों, घर में क्या जलाने की लकड़ी का अभाव है? और हो भी, तो तुम्हारी वंशी से जरा-सा दूध भी गर्म नहीं होगा। हम लोग उसे किसलिये लेंगी?' यह कहकर इशारे से ललिता को दिखा देती हैं। (इशारा कर कहती हैं कि ललिता ने ली है)। ललिता के निकट खोज आरम्भ हुई। ललिता ने विशाखा को दिखा दिया। इस प्रकार अष्ट सखियों के बीच खोजखबर चलती रही। अन्त में रूपमंजरी आदि के निकट। सुदेवी के कुंजरूपी अमृतसागर में मानो एक नीलमराल (हंस) स्वर्ण पद्मिनियों का आस्वादन कर रहा है! आनन्द की सीमा नहीं। सहसा स्फूर्ति में विराम और प्रार्थना।

''कृष्णे पराजित करि पाशक खेलाय।
बले हरि निबे ताँर मुरली त्वराय॥
आमाके इंगित करि करिबे क्षेपण।
कबे ताहा लये देवि! करिबो गोपन?'' ८०॥

मधुरादपि मधुर इष्टगोष्टी

परिमलकणा व्याख्या–लीलारस के आस्वादन के साथ–साथ सेवा। जैसे लीलाशुक का वर्णन। कर्णामृत के प्रत्येक श्लोक में लीला–माधुरी फूट उठी है! आस्वादन की कुशलता का संकेत भी है। मर्मी हुए बिना समझ में नहीं आने का। श्रील कविराज गोस्वामिपाद की सारंगरंगदा टीका ही इसका दृष्टान्त है। श्रीविलापकुसुमांजलि पाठ करते–करते स्वरूप का आवेश स्वत: आयेगा। साक्षात् स्वामिनी के निकट हूँ, ऐसा लगेगा। महाशक्तिशाली वाणी जो है! वाणी ही राधारानी को दिखा देगी (प्रकट कर देगी)। यहाँ केवल माधुर्य का ही वर्णन है। ऐश्वर्य की गन्धमात्र नहीं। ''माधुर्यमसमोर्द्धतया सर्वमनोहरं स्वाभाविक रूपगुणलीलादि सौष्ठवम्''–असमोर्ध्व सर्वमनोहर स्वाभाविक रूप–गुण–लीलादि के सौष्ठव या सुचारुता को ही माधुर्य कहते हैं। यहाँ भी रूप–गुण–लीला आदि की सर्वमनोहरता या सुचारुता ही वर्णित है। गौड़ीय वैष्णवों की माधुर्य की ही उपासना है। माधुर्य तत्त्व अति दुरूह और दुर्बोध्य है। माधुर्यनिष्ठ भक्त के संग और कृपा के बिना उपलब्धि नहीं होती। माधुर्य के अनुभव से स्वरूप और ऐश्वर्य के प्रति स्वाभाविकरूप से ही अनादर या अरुचि हो जाती है। स्तवमाला, स्तवावली में युगलमाधुर्य का ही वर्णन हैं। श्रीराधारानी के अष्टोत्तरशतनाम एवं प्रेमाम्भोज–मरन्दाख्य–स्तवराज आदि का पाठ करने से राधारानी क्या वस्तु हैं, इसका किंचित् अनुभव होगा।

श्रीपाद श्रीयुगलकिशोर के माधुर्य के स्रोत में मानो तैरते जा रहे हैं! विरह–मिलन के माध्यम से आस्वादन कर रहे हैं युगल की अपूर्व रूप–गुण–लीलादि की माधुर्यधारा! स्फुरण प्राप्त हो गया है। कहते हैं–'मदनसुखदाकुंज में मालती पुष्पों की शय्या मैंने ही रची है। अपने प्राणवल्लभ के साथ मधुर–मधुर गोष्ठी कर रही हो। देखती हूँ, तुम्हारे गण्ड विकसित हैं। मैं पुलकित देह से तुम्हारा ही भजन करूँगी। ''सपुलकरतनुरेषा त्वां कदा वीजयामि''–मैं पुलकभरी देह से तुम्हें ही वीजन करूँगी। क्या श्यामसुन्दर को नहीं? इस प्रकार वीजन करूँगी कि हवा स्वामिनी की प्रसादी हो जाय। उनकी अङ्गगंधयुक्त प्रसादी हवा पाकर श्याम कृतार्थ होंगे।' ''यस्या: कदापि वसनाञ्चल–खेलनोत्थ, धन्यातिधन्य पवनेन कृतार्थमानी'' (राधारससुधानिधि–२)–जिनके अंचल की थोड़ी–सी हवा पाकर ही श्याम अपने को धन्य समझते हैं। सेवा की कैसी अपूर्व परिपाटी है। कुंज की मंजरियाँ हैं ये लोग। युगलसेवा की गुरु। इन्हीं से कुंज सेवा की परिपाटी सीखनी होगी। श्रीरूप ने कहा है–'गन्धोन्मादितमाधवा', राधारानी का एक अन्यतम गुण। जिनकी अङ्ग–गंध के माधुर्य से माधव पागल हो जाते हैं। 'जो मेरी स्वामिनी के वल्लभ हैं, उनकी क्या उपेक्षा कर सकूँगी? दोनों ही सुख–सागर में तैरेंगे।' नर्मगोष्ठी की कर्ता हैं स्वामिनी, और श्यामसुन्दर सहचर। बातें सुन–सुनकर श्याम मुग्ध हो रहे हैं। आशा पूरी होने में नहीं आ रही। ''कहिलो काहिनी पुछये कतबेरि'' (कविरंजन)–कही बात को ही बार–बार पूछ रहे हैं। 'वचन अमियारस अनुखन पियलुँ, श्रुतिपथे परश ना भेलि'–वही अवस्था। श्याम कितने अनुनय से बार–बार प्रश्न कर रहे हैं। प्राणवल्लभ के रूप में वरण कर मधुर–मधुर गोष्ठी हो रही है। स्वामिनी–'तुम्हें अदेय मेरे पास कुछ नहीं है', मधुर हँसी हँसकर कहती हैं। मुख–शोभा दर्शनीय है। तभी 'सुमुखि' सम्बोधन। 'मेरी सुमुखी नहीं, तुम्हारे मुख के सौन्दर्य के जो आस्वादक हैं, उन्हीं की सुमुखी।' 'गोष्ठी' का अर्थ कथोपकथन। गोष्ठी मानो मूर्तिमती है। भाषा तैर नहीं रही, श्याम के भीतर प्रवेश कर रही है। जैसे सुन रही हूँ, वैसे ही देख भी रही हूँ। भाव के विग्रह

में भाव की अभिव्यक्ति! तभी कही बात मूर्तिमान्। स्वामिनी-'श्याम! तुम कितने सुन्दर हो!' मुँह की बात सर्वांग में प्रकट हो रही है! 'वास्तव में ही वल्लभ हो तुम, मैं तुम्हें छोड़ रह नहीं सकती प्रियतम'-स्वामिनी कहती हैं। टूटे-टूटे स्वर में बात निकल रही है।

''प्राणनाथ, केमन करिबो आमि।
तोमा बिने मन, करे उचाटन, के जाने के मन तुमि॥
ना देखि नयन, झुरे अनुखन, देखिते तोमाय देखि।
सोउँरणे मन, मुरछित हेनो, मुदिया रहिये आँखि॥
श्रवणे शुनिया, तोमार चरित, आन ना भाबिये मने।
निमिषेर आध, पासरिते नारि, घुमाले देखि स्वपने॥
जागिले चेतन, हाराइया आमि, तोमा-नाम करि कान्दि।
परबोध देइ, ए राय वसन्त, तिलेक थिर नाहि बान्धि॥''

स्वयं को श्याम के अङ्ग पर डालकर अथवा श्याम को अपनी गोद में खींचकर बात कर रही हैं। उस समय के सौन्दर्य की प्रचुरता को देख 'सुमुखि' सम्बोधन। नागर के अङ्ग पर धक्का देकर बात कर रही हैं। कुछ बात धक्के में कही जा रही है, बाकी हँसी में व्यक्त हो रही है। श्याम-'तुमने जो किया है, कह दूँ ललिता से?' स्वामिनी धक्का देती हैं। श्याम-'अच्छा, नहीं, कहूँगा।' अङ्ग से सात्त्विक घर्म (पसीना) निकल रहा है! किंकरी तुलसी हवा कर रही हैं। हवा नहीं, हवा का विनोद। ''व्रततिचमरीचामरमरुद्विनोदेन'' (उत्कलिकावल्लरी)। लतामंजरी का तैयार किया हुआ है चँवर। हवा के कौतुक से सेवा। 'स्वामिनी के वक्ष से स्पर्श करा चँवर से हवा करूँगी। वक्ष को हवा नहीं चाहिये, विनोद चाहिये। चँवर से तुम्हारे वक्ष का स्पर्श श्याम को दूँगी। श्याम के वक्ष का स्पर्श तुम्हें।' हवा करने की परिपाटी से श्याम उन्मादित हैं! सेवा सार्थक हुई जानकर तुलसी की देह पुलकित है! साधक को भी इसी प्रकार अनुप्राणित होना होगा। सेवा की सार्थकता ही सुख, सेवा का अभाव ही दु:ख। सेवा स्वयं का पक्ष (साधक की अपनी खबर) भुला देती है। श्रीमन्महाप्रभु की गम्भीरालीला में उनके अङ्गसेवक श्रील गोविन्ददास ने प्रभु की अङ्ग-सेवा के लिये प्रभु के लंघन (लांघकर जाना)-रूपी महा अपराध को भी कुछ नहीं गिना। श्याम भ्रमर की तरह स्वामिनी के मुखकमल का मधु आस्वादन कर रहे हैं। बात ही बात में कितने युग बीत जाते हैं! स्फूर्ति के विराम में श्रीपाद प्रार्थना करते हैं-

''मदनसुखद एइ मन्दिर - भितरे।
मालती कुसुमकृत केलितल्पोपरे॥
हे सुमुखि! जबे तुमि श्रीकृष्णेर संगे।
मधुर मधुर गोष्ठी करिबे आनन्दे॥
से समय आमि कबे हये पुलकांगी।
व्यंजन करिबो तोमा हय अति रंगी॥'' ८१॥

आयातोद्यत्-कमलवदने हन्त लीलाभिसाराद्-
गत्याटोपैः श्रमविलुलितं देवि पादाब्जयुग्मम्।
स्नेहात् सम्वाहयितुमपि ह्रीपुंजमूर्त्तेऽप्यलज्जं
नामग्राहं निजजनमिमं हा कदा नोत्स्यसि त्वम्?८२॥

अन्वय-देवि उद्यत्-कमलवदने! (उद्यदुदगच्छत् कमलम् अध्वश्रान्तिजं स्वेदजलं यत्र एवम्भूतं वदनं यस्याः हे तथाविधे! (लीलाभिसारात् आयाता (सती) गत्याटोपैः (गमनाड़म्बरैः) श्रमविलुलितं पादाब्जयुग्मं (गमनश्रमात् व्यथितं पादपद्मद्वयं) ह्रीपुंजमूर्ते! (लज्जासमूह एव मूर्तिर्यस्याः हे तथाविधे!) अपि अलज्जं (लज्जां रहितं यथास्यात्तथा) नामग्राहं (नामगृहीत्वा) इमं निजजनं (निजजने कस्यापि सम्भ्रमो नास्तीति भावः) स्नेहात् हा हन्त कदा त्वं सम्वाहयितुं नोत्स्यसि (प्रेरसि) ?८२॥

अनुवाद-हे देवि! हे उद्यत्कमलवदने! लीला-अभिसार हेतु गमन-आटोपवश (वेग सहित जाने के कारण) तुम्हारे चरणकमल श्रम-व्यथित हो जायेंगे, तो हे मूर्तिमती-लज्जास्वरूपे! तुम लज्जारहित होकर नाम लेकर अपनी निजजन मुझे (इस किंकरी को) स्नेहपूर्वक हाय! अपने पादपद्म-संवाहन में कब नियुक्त करोगी?८२॥

लीलाभिसार सेवा

परिमलकणा व्याख्या-बार-बार सेवारस की ही स्फूर्ति। कितनी मधुर, कितनी रहस्यमय, कितनी विचित्र हैं ये सब सेवायें। जो सेवारस की मूर्तियाँ हैं, उनके निकट यदि सेवायें इस प्रकार न आयें, तो वे क्या लेकर रहेंगी? राधाकिंकरी-भाव की साधना-बड़ी ही उच्चस्तर की वस्तु है। सेवा में तन्मय हुए बिना प्राप्त नहीं होगी। मुझ-जैसे जीव की सेवा की कोई अभिलाषा नहीं। स्वयं धन्य होने के लिये साधन-भजन, सेवा क्या है सो नहीं समझता। पहले तो सेवा की अभिलाषा जगनी चाहिये। ''नरोत्तमदास मागे सेवा-अभिलाष।'' भगवान् भी चाहते हैं कि भक्त के हृदय में पहले सेवा की अभिलाषा जगे, तत्पश्चात् उसे सेवा देकर धन्य करेंगे। यही भगवान् की करुणा की विशिष्टता है। श्रीमत् जीवगोस्वामिपाद ने लिखा है-''पूर्णेऽपि स्वस्मिन् निजसेवाद्यभिलाषं सम्पाद्य सेवकादिषु सेवा-दिसौभाग्यसम्पादिका भगवतश्चित्तार्द्रतामयी तदुपकारेच्छा'' (प्रीतिसन्दर्भ-८४ अनु०)।

पिछले श्लोक में श्रीपाद ने श्यामसुन्दर के साथ स्वामिनी की मधुर-मधुर गोष्ठी के रस-माधुर्य आस्वादन के साथ-साथ रसमय वीजन-सेवा का सौभाग्य प्राप्त किया था। इस श्लोक में श्रीमती वीजनपरायण तुलसी को स्वयं नाम से पुकारकर एक अपूर्व सेवा दे रही हैं। आज स्वामिनी अभिसार को आई हैं। प्रेमपागलिनी जो हैं, श्याममिलन की विपुल उत्कण्ठा से भरी तीव्र वेग से अपथ-विपथ पर चलकर संकेतकुंज में श्याम से आ मिली हैं। अभिसार के समय मुख पसीने की बूँदों से सुशोभित हो गया-उसी बात की स्मृति में सम्बोधन किया है'उद्यत् कमलवदने'! श्रम के कारण सुकोमल श्रीचरणकमलों की विवशता। ''गत्याटोपैः''-तीव्र गति से आई हैं, इसलिये यह श्रमवैवश्य। महाजन ने लीलाभिसार के गमन-आटोप (तीव्रता) का वर्णन करते हुए लिखा है-

''नव अनुरागिनि राधा। कछु नाहि मानये बाधा॥
एकलि कयलि पयान। पन्थ विपथ नाहि मान॥
तेजल मणिमय हार। उच कुच मानये भार॥
कर संगे कंकण मुदरि। पंथहि तेजलि सगरि॥
मणिमय मंजीर पाय। दूरहि तेजि चलि जाय॥
यामिनी घन आँधियार। मनमथ हिये उजियार॥
विघिनि विथारल बाट। प्रेमक आयुधे काट॥
विद्यापति मति जान। ऐछे ना हेरिये आन॥''

अति अनुरागमय-अति वेगमय-अदम्य शक्तिमय है यह अभिसार। कोई भी बाधा इस अभिसार का गतिरोध नहीं कर सकती। जो कुसुमादपि कोमल हैं, उनके अभिसार में इतना वेग-यह धारणा के भी परे है। इस शक्ति के मूल में है-रूपानुराग का प्रबल आकर्षण। ''सखि! श्यामरूप जागये मरमे, किबा निशि किबा दिशि शयने स्वपने।'' श्रीराधा के हृदय में श्यामरूप का यह अफुरन्त (अटूट) जागरण ही इस वेगमय अभिसार का निदान है। प्रेम-पागलिनी के अभिसार का वेग देखकर सखी-मंजरियाँ भी डरती हैं। कहती हैं-''राधे! पथि मुंच सम्भ्रममभिसारे। चारय चरणाम्बुरुहं धीरं सुकुमारे॥'' (महाजन)

आज उसी प्रकार विपुल वेग से लीलाभिसार को आई हैं। श्रम-विलुलित (डगमगाती, अस्थिर) देह। श्रीचरणपद्म श्रम से विवश। 'हे देवि! लीलामयि! तुम मुझे नाम लेकर बुलाकर अपने चरण-संवाहन में नियुक्त करोगी। तुम ''ह्रीपुंजमूर्ति''-लज्जा की ही मूर्ति हो।'' ह्री पट्टवस्त्र-गुप्तांगी''-''निजलज्जा श्याम पट्टशाटी परिधान।'' परम लज्जावती। नीली साड़ी की तरह लज्जा से सारी देह मानो ढकी है। नाम से पुकारकर कभी किसी को सेवा के लिये नहीं कहतीं। किन्तु मेरे प्रति तुम्हारा इतना स्नेह है कि तुम मेरा नाम लेकर बुलाओगी। मैं तुम्हारी निजजन जो हूँ। तुमने मुझे उसी भाव से अङ्गीकार किया है।' किंकरी ने भी उसी भाव से श्रीचरणों में आत्मसमर्पण किया है।

''क्षणं चरणविच्छेदाच्छ्रीश्वर्य्याः प्राणहारिणीम्।
पदारविन्दसंलग्नतयैवाहर्निशं स्थिताम्॥
× × ×
राधा-पदाब्जसेवान्यस्पृहा-कालत्रयोज्झिताम्।
राधा-प्रीतिसुखाम्भोधावपारे बूड़िताँ सदा॥
राधापदाम्बुजादन्यत् स्वप्नान्तेऽपि न जानतीम्।
राधा-सम्बन्धसन्धावत् प्रेमसिन्धौघमालिनीम्॥''

(वृन्दावनमहिमामृतम्-शतक ८)

''किंकरी क्षणभर के लिये चरण-सेवा त्यागती हैं, तो ईश्वरी का मानो प्राणहरण हो जाता है। इसलिये वह अहर्निश पादपद्मों के निकट ही रहती हैं। किंकरी श्रीराधापादपद्म-सेवा के अतिरिक्त अन्य स्पृहा त्रिकाल में कभी नहीं करतीं। अपार राधाप्रीति के सुख-समुद्र में नित्य निमग्न रहती हैं। श्रीराधाचरण-कमलों को छोड़ स्वप्न में भी और कुछ नहीं जानतीं। श्रीराधा-सम्बन्ध से उच्छसित प्रेमसिन्धु की तरंगों से सुशोभित रहती हैं।''

स्वामिनी भी दासी पर जितना विश्वास करती हैं, उतना ही स्नेह करती हैं। वे समझ गई हैं-'मैं इससे अपनी मनोमत सेवा करा सकूँगी। जिसतिस से सेवा नहीं कराई जाती।' 'रास में नाचकर सुन्दर के चरणों में व्यथा हो गई है-चरण दाब दे'-स्वामिनी इस प्रकार का आदेश स्नेह-पात्र किंकरी को देती हैं।

'अब भी तुम आदेश करोगी-तुलसि! पैर दबा दे। तेजी से चलकर आई हूँ। थकान से निढाल हो गये है।' स्वामिनी किंकरी के प्रति कितना वात्सल्य दिखाती हैं। 'हा स्वामिनि! इस करुणा का एक बिन्दु अनुभव क्या स्मरण में, स्वप्न में भी कभी नहीं होगा?' साधक का हृदय चीरता क्रन्दन निकलेगा। इस कृपाबिन्दु का अनुभव पाने के लिये प्राण रोयेंगे। यह सौभाग्य प्राप्त करने के लिये अनन्यभाव से उन चरणों की ही शरण लेनी होगी। श्रीपाद दासगोस्वामी आदर्श हैं।

''भजामि राधामरविन्दनेत्रां, स्मरामि राधां मधुरस्मितास्याम्।
वदामि राधां करुणाभरार्द्रां, ततो ममान्यास्ति गतिर्न कापि॥

(विशाखानन्दद स्तोत्रम्)

तुलसी के प्राणों के सर्वस्व श्रीचरणयुगल स्वामिनी स्वयं तुलसी की गोद में रख देती हैं। चरणों का वैवश्य (थकान, निढालपन) नष्ट करने की इच्छा है। खेलने योग्य अवस्था चरणों की नहीं। तुलसी पादपीठ पर बैठकर स्वामिनी के चरण गोद में रख सेवा कर रही हैं। चिरकामना की सम्पदा-स्वामिनी के चरण-वक्ष से लगाकर तुलसी को क्या आनन्द! कितने प्रिय हैं ये चरण, दासी के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं समझता। नयननीर में तैरती तुलसी चरणों में प्रेमअर्घ्य दे रही हैं! दृष्टि से बचकर चरण-चुम्बन कर रही हैं। स्वामिनी को पा लेने से सभी पाना हो जायेगा।

तुलसी के संवाहन के फलस्वरूप चरणों का वैवश्य दूर हो गया है। स्वामिनी के श्रीमुख पर अपूर्व शोभा छिटकी! हृदय में लीला की लालसा थी, पर चरणों में खेलने की योग्यता न थी। अब वह सामर्थ्य आ गई है। चरण उठाकर शय्या पर बैठ गईं। श्याम की गोद में चरण रखकर अङ्ग से अङ्ग सटाकर बात करते-करते विलास के लिये उत्सुक हुईं। अब और कुंज के भीतर नहीं टिकना। किंकरी निःशब्द कुंज के बाहर आकर कुंज के सहारे बैठ गई हैं। कान और सारा मन कुंज के भीतर है। शब्दयोगी। 'टूँ' कर नूपुर की थोड़ी-सी आवाज आई। 'मंजु सिंचन (झंकार) सुनाई पड़ रहा है। संभवतः उस ध्वनि से बुला रही हैं।' युगल के आवेश में आवेश मिलाकर दासी ने कुंज में प्रवेश किया। युगल देख रहे हैं-उन दोनों के खेल के ही आवेश की मूर्ति है। श्याम के कुण्डल में स्वामिनी के केश फँस गये हैं। गाँठ खोलकर तुलसी पुनः बाहर चली आईं। खेल निर्बाध हो उठा! सहसा स्फुरण में विराम आ गया। व्याकुल प्राणों से प्रार्थना करने लगे।

''लीला-अभिसार हेतु सवेगे गमन।
ताहाते व्यथिते हबे तव श्रीचरण॥
हे देवि! राधिके! तव श्रीमुखकमल।
श्रमहेतु स्वेदजले करे ढलढल॥
लज्जामूर्ति हैया तुमि अलज्जेर प्राय।
स्नेहवशे नाम धरि डाकिबे आमाय॥

हा नप्त्रि राधे तव सूर्यभक्तेः, कालः समुत्पन्न इतः कुतोऽसि?
इतीव रोषान्मुखरा लपन्ती, सुधेव किं मां सुखयिष्यतीह?८३॥

अन्वय-हा! नप्त्रि राधे! तव सूर्यभक्तेः कालः समुत्पन्नः (सुरभजनस्य समय उत्पन्नः) इतः कुतः असि (इतः स्थानात् कुतोऽसि कुत्र तिष्ठसि) इतीव रोषात् लपन्ती (कथयन्ती) मुखरा इह किं मां सुधा इव सुखयिष्यति (अमृतमिव इह विषये मां कि सुखयिष्यति) ?८३॥

अनुवाद-''हा नप्त्रि (नातिनी) राधिके! तुम्हारी सूर्यपूजा का समय हो गया, तुम कहाँ जा बैठी हो?'' मुखरा के ये रोषवाक्य क्या मुझे अमृत की तरह सुख पहुँचायेंगे?८३॥

मुखरा के रोषवाक्य

परिमलकणा व्याख्या-साक्षात्कार न हो तब भी स्फुरण, स्वप्न या स्मरण में देखने से भी शान्ति-थोड़ी शान्ति मिलती है। साक्षात् प्राप्ति के अभाव में व्याकुलता बड़ी लोभनीय है। व्याकुलता को सजीव रखने के लिये ही इष्टदेव प्रेमी के आगे आकर सहसा दर्शन नहीं देते। किसी वस्तु की प्राप्ति के लिये सुतीव्र आकांक्षा को ही व्याकुलता कहा जाता है। साधनभक्ति व्याकुलता को प्राप्त करके ही प्रेम में परिणत होती है। हम यदि किसी वस्तु को पाने के लिये यथार्थतः व्याकुल हो जायें तो उसे अवश्य प्राप्त करेंगे-जिस तरह यह बात सही है, उसी तरह यह भी सत्य है कि तीव्र व्याकुलता से पूर्व उस वस्तु के मिलने पर भी उसका आस्वादन नहीं कर सकेंगे। पिपासित व्यक्ति को ही सुशीतल जल उपादेय और शान्तिप्रद होता है, पिपासाहीन को नहीं। साधक-हृदय में व्याकुलता की एकान्त आवश्यकता है, कारण-व्याकुलता ही भक्ति का प्राण है। कलियुगपावनावतार श्रीमन्महाप्रभु की गम्भीरालीला में जो विपुल आर्ति या व्याकुलता प्रदर्शित हुई है, वह साधकों की आँखों के आगे आज भी सुमेरु की तरह आदर्शरूप में विराजती है और वह अनन्त काल तक साधकों को अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति के लिये महाव्याकुलता से अनुप्राणित करती रहेगी। श्रीमन्महाप्रभु की कृपा से उनकी आर्ति या व्याकुलता ही श्रीपाद रघुनाथ दासगोस्वामी में यत्किंचित् संक्रमित हुई है। अभीष्टदेवी आड़ में रहकर उनकी उत्कण्ठामय अवस्था का आस्वादन कर रही हैं। बीच-बीच में स्फूर्ति में दर्शन देती हैं। स्फुरण कुछ नहीं है कहकर उड़ाया नहीं जाता। अनुरागी लीलाशुक का स्फुरण कितना सुस्पष्ट है। बाद में दर्शन देकर कहा-''मैं तुम्हारे साथ-साथ ही हूँ और तुम्हारी व्याकुलता की पुकार सब सुनी है।'' साधक जितनी भी स्फूर्ति पाये, उसे पकड़कर क्रमशः अग्रसर हो। विशेष अनुभव भी होगा। आचार्यपादगण का चरित्र साधक के लिये आदर्श लक्ष्य है।

पिछले श्लोक में श्रीपाद ने राधारानी की चरणसेवा का स्फुरण प्राप्त किया था। इस श्लोक में मुखरा की स्फूर्ति। मुखराजी आकर कहती हैं-'राधे नातिनि! सूर्यपूजा करने कब जायेगी?' राधारानी पर क्रोध कर रही हैं-'कहाँ जाकर बैठी है? सूर्यपूजा करने नहीं जायेगी?-अपने इन वाक्यों से सुधा की तरह वे क्या मुझे सुखी करेंगी?' सूर्यपूजा को जाती हैं, तो कुण्डतीर पर श्रीकृष्ण से मिलन और नाना प्रकार की रहस्यमय लीलाओं की

श्रम-विलुलित तव पाद - संवाहने।
नियोजिबे कबे हाय निजजन ज्ञाने?''८२॥

माधुरी के साथ विचित्र सेवा-माधुरी का आस्वादन होता है। तभी मुखरा की बातों का सुधावत् आस्वादन है। शतनामस्तोत्र में श्रीपाद कहते हैं-''मुखरादृक्-सुधानप्त्री'', अर्थात् ''जो मुखरा के नेत्रों में अमृत की नातिनी हैं।'' मुखरा का स्वभाव-ऊपर से विरुद्ध, किन्तु भीतर है कृष्ण के साथ राधा के मिलन की कामना।

प्रातः श्रीराधा शय्या से उठती हैं, उस समय भी मुखरा आती है। 'हे राधे! अरि नातिनि! तुम कहाँ हो?' कहते-कहते श्रीमती के शयनकक्ष के द्वार पर आ खड़ी होती हैं। 'अरि बेटि! सुबह हो रही है। सभी जग गये। आज रविवार है, भूल गईं क्या? शीघ्र उठो, स्नान आदि कर अपनी अभीष्ट-सिद्धि के लिये सूर्यपूजा करो।' बोलते-बोलते शयनकक्ष में चली आती हैं। मुखरा की बातों से जगकर विशाखा अलसभाव से श्रीमती से कहती हैं-'हे सखि राधे! शीघ्र उठो।' तरंगोंभरे सरोवर में आन्दोलित हुई राजहंसिनी की तरह श्रीमती मुखरा और विशाखा की बातों से जगकर भी सुरतश्रम के कारण अलसाये अङ्ग से पुनः सो जाती हैं। तब समय को जानने वाली तुलसीमंजरी श्रीचरण दबाकर उन्हें चेत कराती हैं, तो वे बहुमूल्य शय्या से उठती हैं। मुखरा श्रीराधा के अङ्ग पर सहसा पीतवस्त्र देख संदिग्ध चित्त से कहती हैं-'हाय यह कैसा प्रमाद! अरि विशाखे! कल शाम को श्रीकृष्ण के अङ्ग पर जो पीतवस्त्र देखा था, वही तो तुम्हारी सखी के अङ्ग पर देख रही हूँ। आह! अकलंक-कुलोत्पन्नाओं (भले घर के लड़कियों) का यह कैसा व्यवहार!!' मुखरा की बात पर चौंककर विशाखा चपल दृष्टि से श्रीमती के अङ्ग पर पीला उत्तरीय देखकर, शंकित होकर भी प्रत्युत्पन्नमतित्ववश (हाजिर जबाबी से) छूटते ही कहती हैं-'हे मुग्धे! हे स्वभावान्धे! झरोखे से प्रभातकालीन तपन (सूर्य) की अरुणिम किरणें कक्ष में प्रवेश कर रही है, उस किरण-जाल के स्पर्श से स्वर्णवर्णा सखी का नीलाम्बर पीतवस्त्र की तरह दीख रहा है! कभी-कभी हम लोगों को भी ऐसी भ्रान्ति हो जाती है, तुम्हें तो हो ही सकती है। मेरी सतीशिरोमणि सखी पर अकारण कलंक मत लगाओ।' मुखरा विशाखा की बात पर ध्यान देती हैं, इसी बीच पलभर में कोई किंकरी श्रीमती का पीताम्बर हटाकर उनके अङ्ग पर नीला उत्तरीय डाल देती हैं। उसे देखकर मुखरा लज्जित हो चली जाती हैं। जाते-जाते सावधान कर जाती हैं-दैवयोग से यदि यह चीज जटिला आदि के दृष्टिगोचर हो जाय, तो क्या होगा? विदग्धमाधव नाटक में पूर्वराग की अवस्था में श्रीराधा की विरहव्यथा से जुड़ी विपुल विह्वलता का वर्णन मुखरा ने किया है। व्रज में सभी तो स्वामिनी को इतना प्रेम करते हैं। प्रेम की ही घनीभूत मूर्ति तो हैं स्वामिनीजी। नन्दीश्वर में माँ व्रजेश्वरी, रोहिणी माँ, धनिष्ठा कितना स्नेह करती हैं। स्वामिनी के गुणमाधुर्य से भरपूर हैं! श्रीमत् रूपगोस्वामिपाद ने उज्ज्वलनीलमणि में श्रीराधा के पाँच गुणों की बात कही है और दृष्टान्त के साथ प्रत्येक गुण से उपासकों का परिचय कराया है। मंजरीभाव-साधकों के लिये वे विशेषरूप से आलोच्य-आस्वाद्य हैं। मुखराजी सूर्यपूजा की बात कर श्रीराधाकुण्ड पर मिलन के लिये सत्वरता ले आती हैं। यही कारण है कि उनके वाक्य तुलसी के चित्त में अमृत की तरह ही सुख पहुँचाते हैं। 'सूर्यपूजा के बहाने शीघ्र राधाकुण्ड जाओ, वह आकर कुंज में बैठा रहेगा, यह क्या अच्छा लगेगा?' यही है मुखराजी के हृदय की बात। तुलसी उनके कथारस में भोर हैं। इसी समय स्फुरण रुक जाता है। हाहाकार के साथ प्रार्थना आरम्भ होती है-

''हे नातिनि! राधिके गो! तुमि आछो कोथा।
सूर्यपूजा-काल तव बये जाय हेथा॥

देवि भाषितपीयूषं स्मितकर्पूरवासितम्।
श्रोत्राभ्यां नयनाभ्यां ते किं नु सेविष्यते मया?८४॥

अन्वय–देवि! ते (तव) स्मितकर्पूरवासितं (स्मितकर्पूरेण वासितं सुगन्धितं) भाषित–पीयूषं (वाक्यामृतं) मया किं नु श्रोत्राभ्यां नयनाभ्यां सेविष्यते?८४॥

अनुवाद–हे देवि! श्रीराधिके! क्या मैं तुम्हारे ईषत् हास्यरूपी कर्पूर–वासित वाक्यामृत का नेत्रों और कानों से सेवन करूँगा?८४॥

स्मित–कर्पूर–वासित वाक्यामृत

परिमलकणा व्याख्या–श्रीपाद क्या विरह में, क्या मिलन में, राधामाधव की अटूट माधुरीधारा का आस्वादन किये जा रहे हैं। एक अखण्ड आनन्द ही एकबार सुख, एकबार वेदना के आकार में आस्वादित हो रहा है। इस आनन्द का उत्स कहाँ है? त्रिगुणात्मिका प्रकृति के उस पार अप्राकृत चिन्मय धाम में प्रेमलीला का प्रवाह निरन्तर बह रहा है–महाभाग्यवान् साधक अपने अन्तर के अन्तरतम प्रदेश में उसी प्रेमलीला का अनुभव–आनन्द प्राप्त करते हैं। सामान्य साधक के भीतर भी यह आनन्द चपला (विद्युत) की तरह कभी–कभी स्फुरित होकर विलीन हो जाता है। जितनी भी उपासना है, वह इस आनन्द–अनुभूति को स्थायी करने के लिये है। साधन–भजन परिपक्व होने पर हृदयरूपी विहंग भगवान् का चिन्तन करता स्वत: आनन्दलोक में उड़ जाता है। साधक की आँखों के आगे फैला होता है–सौन्दर्य–माधुर्य का अटूट उत्स! प्रेमी के हृदय–सागर में जो असीम प्रेमतरंग उद्वेलित हो उठती है, उसका किंचिन्मात्र ही महाप्रेमी भाषा में व्यक्त कर सकते हैं। यह गहन चिरस्थायी आनन्द–अनुभव ही जीव का स्वरूप में अवस्थान करना है–यही है चैतन्यशक्ति की विजय–यही है राज्यप्राप्ति। महाभाव से अनुप्राणित होकर श्रीपाद दासगोस्वामी विरह–मिलन के बीच जो असीम आनन्द आस्वादन कर रहे हैं, उसका थोड़ा–बहुत जो भी अंश भाषा में व्यक्त कर रहे हैं, वह महाभावोच्छ्वास की क्षीण रेखा मात्र ही है–विरह–मिलन–सागर के किनारे महाभाव के उच्छ्वास की रेखा! साधक इसी सूत्र को पकड़कर उनके द्वारा आस्वादित आनन्द का परिमाण अनुभव करेंगे।

मुखराजी की बातों में श्रीपाद ने अमृत का आस्वादन किया था। अब स्फूर्ति में पुन: उसी लीला का अनुभव हो रहा है। 'हे देवि! श्रीराधिके! तुम मुखराजी की बातें सुनकर हँसते हुए जो उत्तर दोगी, मैं वही सुनना चाहता हूँ, देखना भी चाहता हूँ। तुम्हारी बात अमृत है, उसमें मिली है कर्पूरचूर्णरूपी हँसी। थोड़ा–सा हँसकर बात कहोगी, मैं उसे कानों से सुनूँगा, आँखों से देखूँगा। जो कपूर मिला शर्बत पीता है, उसकी नासिका और रसना दोनों ही तृप्त होती हैं। आँखें और कान दोनों ही बात का अर्थ समझेंगे। हृदय का जो भाव बातों में प्रकट होता है, वही हँसी में व्यक्त होता है।' भाव की ही मूर्ति हैं श्रीराधा। ''प्रेमेर स्वरूप देह प्रेम–विभावित। कृष्णेर

क्रोध करि मुखरा डाकिबे आसि तोमा।
सुधाप्राय सेइ वाणी सुख दिबे आमा॥
सूर्यपूजाछले तोमा मिलाबो गोविन्दे।
एइ अभिलाषे मोर बाड़िबे आनन्दे॥'' ८३॥

प्रेयसी-श्रेष्ठा जगते विदित॥'' (चै० च०)। भावज्ञाता, भाव-निपुणा न होने से समझा नहीं जाता। भीतर-बाहर दोनों ही प्रेम विभावित हैं। इसलिये प्रत्येक चेष्टा, प्रत्येक वाणी प्रेमरस-सिंचित होकर ही व्यक्त होती है। महा-सौभाग्य का शुभदिन न आये, तो किंकरीभाव से इस महाअमृत के आस्वादन का लोभ या आस्वादन शक्ति प्राप्त नहीं होती। आचार्यपादगण की महावाणी के श्रवण-कीर्तन से ही इस वस्तु के आस्वादन का लोभ उत्पन्न होता है। श्रीरघुनाथ के हृदय का रस प्रार्थना के माध्यम से अभिव्यक्त है, इसलिये ''इहा जेइ एकबार पिये कर्णद्वारे। तार कर्ण लोभे इहा छाड़िते ना पारे॥ रसतत्त्व-ज्ञान हय इहार श्रवणे। प्रेमभक्ति पाय राधाकृष्णेर चरणे॥'' (चै० च०)।

श्रीपाद कहते हैं-'शत सुधास्वाद को लजाने वाली है तुम्हारी श्रीमुख की यह वाणी। इसी परम महावस्तु को कानों से पीऊँगा, आँखों से देखूँगा।' वाणी तो अमूर्त है, देखने की वस्तु नहीं, फिर कैसे देखेंगे? रहस्य है। किंकरी ने कुंज में स्वामिनी को प्रियतम के साथ ला मिलाया है। वाम्य-भाववती (श्रीराधा) कहती हैं-'छुओ नहीं।' मुख पर मृदुमन्द हँसी है। उसे देखकर दासी समझ गई-मुँह से 'छुओ नहीं' कह रही हैं, पर वस्तुत: 'छुओ' कहा जा रहा है। अब और 'ना' के भीतर 'ना' नहीं; 'हाँ' 'ना' को निगल गई है। इसलिये 'छुओ ना' शब्द कानों से सुने जा रहे हैं और 'छुओ' शब्द आँखों से देखा जा रहा है। इस प्रकार वाणी का श्रवण-दर्शन दोनों ही होता हैं। दासी श्यामसुन्दर की आँखों से इशारा कर श्रीमती को आलिंगन कराती है।

वृद्ध मुखराजी कहती हैं-'नातिनी! इतनी देर हो गई, सूर्यपूजा को नहीं जायेगी?' स्वामिनी वृद्धा नानी से परिहास करते हुए मृदुहास्य के साथ उत्तर देती हैं-'सोच रही थी, आज और किसी के हाथ पूजा सामग्री भेज दूँगी।' मुखराजी भी परिहास करती हैं-'सूर्यपूजा तो सखियों द्वारा हो सकती है, पर मित्र पूजा क्या सखियों द्वारा होती है? वह तो अपने हाथों करने का ही विधान है।' इस रसमय वार्ता पर तुलसी लुब्ध हैं। ईषत् हास्यरूपी कर्पूर-वासित वचनामृत आस्वादन कर धन्य हैं। साक्षात् महाभावमयी, महालक्ष्मियों की भी अंशिनी, कृष्णप्रिया-शिरोमणि वृषभानु-नन्दिनी के प्रत्येक माधुर्य का आस्वादन कर रही हैं, उन्हें कितना अपना समझकर! माधुर्यज्ञान में ही प्रेम की पूर्णता है। परब्रह्म की पूर्णतम अनुभूति एकमात्र माधुर्य मण्डित व्रजप्रेम में ही सम्भव है। इस व्रजप्रेम की भी सर्वोच्च कक्षा (स्तर) में है श्रीराधाकिंकरी-भाव। तभी इसी में परब्रह्म-अनुभूति की चरमता है। स्वयं भगवान् श्रीव्रजेन्द्रनन्दन ही श्रीकृष्णचैतन्य रूप में विश्व में आविर्भूत होकर इस परमभाव को स्वच्छन्द स्वतन्त्र रूप से कलिहत जीवों में लुटा गये हैं। उनके कण्ठ का स्नेहामिश्रित मधुर स्वर नदीया के पथ-पथ पर, वृन्दावन के वन-वन में, पुरीधाम की 'गम्भीरा' में आज भी ध्वनित हो रहा है-निरन्तर। थोड़ा-सा मनोनियोग करने से ही भक्तसाधक उसे सुन पाते हैं। ''हा हा काँहा वृन्दावन, काँहा गोपेन्द्रनन्दन, कहाँ सेइ वंशीवदन। काँहा से त्रिभंगठाम, काँहा सेइ वेणुगान, काँहा सेइ यमुनापुलिन॥''-यही बात कहने के लिये वे उन्मत्त हो उठते हैं, इसी रस के आस्वादन में वे कूर्माकृति हो जाते हैं, इसी भाव के विभ्रम (भूल, हड़बड़ी) से उनकी अस्थि-सन्धियां खुल जाती हैं। उन्हीं का मधुर उपदेश है : स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ही आराध्यतत्त्व हैं, श्रीधाम वृन्दावन उनका नित्य लीला-निकेतन है, व्रजगोपियों की आनुगत्यमयी उपासना ही रमणीय है; श्रीमद्भागवत ही इन सब बातों का निर्मल प्रमाण है; प्रेम ही जीव का परम पुरुषार्थ है।

कुसुमचयनखेलां कुर्वती त्वं परीता, रसकुटिलसखीभिः प्राणनाथेन सार्द्धम्।
कटपकलहकेल्या क्वापि रोषेण भिन्ना, मम मुदमतिवेलं धास्यसे सुव्रते किम्?८५॥

अन्वय-सुव्रते! क्वापि (कस्मिन्नपि दिने) रसकुटिलसखीभिः परीता (रसेन कुटिलाः कपटिन्यो याः सख्यस्ताभिः परीता वेष्टिता सती) कुसुमचयनखेलां कुर्वती प्राणनाथेन सार्द्धं (श्रीकृष्णेन सह) कपटकलहकेल्या (मृषाकलहस्तेन या केलिः क्रीड़ा तया) रोषेण भिन्ना (कोपेन त्यक्तस्वभावा सती) किम् अतिवेलं मम मुदं धास्यसे (त्वं किं ममातिशायितां मुदं पुष्टां करिष्यसे)?८५॥

अनुवाद-हे सुव्रते! क्या किसी दिन रसकुटिला सखियों से घिरी पुष्पचयन करते-करते प्राणनाथ श्रीकृष्ण के साथ मिथ्या कलहक्रीड़ा कर क्रोध में व्यक्तभाव होकर मुझे अत्यधिक आनन्द प्रदान करोगी?८५॥

कुसुमचयन-लीला

परिमलकणा व्याख्या-श्रीपाद ने श्रीराधा की वचनामृतरस-माधुरी कानों और नेत्रों से आस्वादन करने के लिये स्वामिनी के चरणों में प्रार्थना की है। स्वप्रकाश राधामाधुरी स्वरूपाविष्ट श्रीपाद के चित्त में कितने-कितने रूपों में आस्वादित हो रही है, कोई ठीक नहीं। वस्तुतः इस माधुर्य का वर्णन करने की सामर्थ्य किसी में नहीं। चारों वेद अविराम वर्णन करके भी इसका पार नहीं पाते। यहाँ सरस्वती का कण्ठ नीरव है। ज्ञानमय महादेव का ध्यानमय हृदय यहाँ आकर तन्मय है। सहस्र-वदन अनन्तदेव यहाँ आत्महारा हैं। भक्तश्रेष्ठ उद्धवजी इस माधुर्य का महत्व समझकर श्रीराधा आदि व्रजसुन्दरियों की एकमात्र चरणरज पाने की आशा से व्रज में तृण-गुल्म रूप में जन्म लेने के लिये प्रार्थना करते हैं-यह श्रीमद्भागवत में वर्णित है। यहाँ तक कि स्वयं भगवान् व्रजेन्द्रनन्दन भी इस प्रेममाधुर्य के ऋणी हैं। ''आनेर का कथा आपने व्रजेन्द्रनन्दन। अवतरि करेन एइ प्रेम-आस्वादन॥'' (चै० च०)। श्रीगौरांग-आविर्भाव का मूलमन्त्र यहीं छिपा है। ''श्रीराधायाः प्रणय-महिमा कीदृशः''- श्रीराधा की प्रेममाधुरी का महत्व अनुभव करने के लिये ही श्रीगौरांगदेव का आविर्भाव है। स्वयं

''आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं
रम्या क्वाचिदुपासना व्रजबधूवर्गेण या कल्पिता।
शास्त्रं भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्
श्रीचैतन्यमहाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नः परः॥''

आचार्यपादगण की ग्रन्थावली में इसी संक्षिप्त सूत्र का विस्तृत विवरण मिलता है। रमणीय उपासना ही श्रीपाद दासगोस्वामी के आचार-प्रचार (उपदेश) में व्यक्त होती है। स्वामिनी के वचनामृतरस में श्रीपाद का चित्त तन्मय है! सहसा स्फुरण में विराम आता है, आर्ति के साथ प्रार्थना करने लगते हैं-

''हे देवि! वचन तव अमृत-मधुर।
ताहाते सुगन्धि आरो स्मितकर्पूर॥
श्रवणे नयने कबे सेवन करिबो?
दिवानिशि अमृतेर सायरे भासिबो॥'' ८४॥

आस्वादन कर अपने युग के मनुष्यों को आस्वादन की योग्यता दी है। ''आनुषंगे प्रेममय कैलो त्रिभुवन'' (वही)।

श्रीपाद इस श्लोक में स्फुरण में स्वामिनी की कुसुमचयन-लीला आस्वादन कर रहे हैं। 'तुम कुसुम-चयन कर रही हो, साथ में रसकुटिला सखियाँ हैं।' अर्थात् वामा हैं-श्रीकृष्ण के साथ सरल व्यवहार कोई नहीं करती। वाम्यभाव के माध्यम से युगल के शृंगाररस-माधुर्य को मूर्तिमान कर डालती हैं। इसीलिये 'रसकुटिल'। फूल तोड़ने को लेकर श्याम के साथ कलह। 'जानता हूँ, तुम सुव्रता हो। श्याम को सुखी करना ही तुम्हारा व्रत है। कपट कलह द्वारा मुझे सुखी कब करोगी?''सुव्रते' सम्बोधन में एक परमतत्त्व का भी संकेत है। जिनका व्रत है श्रीकृष्ण को सुखी करना ही, वे ही सुव्रता हैं। इससे अधिक उत्तम व्रत विश्व में और नहीं। क्या करने से श्रीकृष्ण सुखी होते हैं, इस चिन्ता में तन्मय होने का नाम ही 'प्रेम' है। इस प्रेम की सबसे ऊँची कक्षा में व्रजसुन्दरियाँ हैं। वे सब महाभाववती हैं। महाभाव ही प्रेम का सारात्सार पदार्थ है। ''प्रेमेर परमसार महाभाव जानि'' (चै० च०)। जिन लोगों में महाभाव रहता है, उनके मन इन्द्रिय आदि सभी महाभावमय हो जाते हैं, ''वरामृतस्वरूपश्रीः स्वं-स्वरूपं मनो नयेत्'' (उ० नी०)-श्रेष्ठ अमृत ही जिसकी स्वरूपभूत सम्पदा है, वही महाभाव मन को स्वरूपत्व दिलाता है। ''.....मनः स्वं स्वरूपं नयेत् महाभावात्मकमेव मनः स्यात्, महाभावात् पार्थक्येन मनसो न स्थितिरित्यर्थः। तेन इन्द्रियाणां मनोवृत्तिरूपत्वाद्व्रजसुन्दरीणां मन आदिसर्वेन्द्रियाणां महाभावरूपत्वात् तत्तद्व्यापारैः सर्वैरेव श्रीकृष्णस्यातिवश्यत्वं युक्तिसिद्धमेव भवेदिति'' (आनन्दचन्द्रिका टीका)-अर्थात् ''महाभाव मन को स्व-स्वरूपत्व प्राप्त कराता है। इसका तात्पर्य यही है कि महाभाववतियों का मन महाभावात्मक हो जाता है। मन का महाभाव से पृथक् अस्तित्व ही नहीं रहता। इन्द्रियाँ भी मनोवृत्तिरूप हैं, इसलिये व्रजसुन्दरियों की मन आदि सभी इन्द्रियाँ महाभावरूपा हैं। अतएव उन लोगों की प्रत्येक इन्द्रिय की चेष्टा से श्रीकृष्ण की अतिवश्यता युक्तिसिद्ध हो रही है।'' सभी व्रजसुन्दरियाँ महाभाववती हैं, किन्तु श्रीराधा साक्षात् महाभावस्वरूपिणी हैं। उनका सर्वांग-नखाग्र से शिखाग्र तक महाभाव के उपादान से गठित है। उनकी देह-इन्द्रिय आदि की प्रत्येक चेष्टा से श्रीकृष्ण का सर्वाधिक आनन्द और वश्यता सुनिश्चित है। इसलिये श्रीराधा-जैसी इतनी बड़ी 'सुव्रता' विश्व में और कोई नहीं।

श्रीरूपगोस्वामिपाद ने स्वयमुत्प्रेक्षित लीला में श्रीश्रीराधामाधव के कुसुमचयन को लेकर कलह का वर्णन किया है, जिसका माधुर्य रसराज्य में सत्य ही अतुलनीय है! प्रातःकाल श्रीराधा का मन खराब है। गृहकार्य अच्छा नहीं लगता। मन उचाट है। कमलनयन श्याम को देखने के लिये अत्यन्त व्याकुल हैं। वास्तुपूजा के लिये जल लाने के बहाने घर से निकल पड़ीं। पीछे-पीछे रूपमंजरी गुप्तरूप से चल रही हैं। स्वामिनी चलते-चलते बहुत दूर निकल गई। श्रीयमुना-तीरवर्ती वन में प्रवेश किया। श्यामसुन्दर की अङ्ग-गन्ध आ रही है। लगता है श्याम इसी वन में हैं। भृंगी की तरह गन्ध से आकृष्ट होकर आगे बढ़ रही हैं। देखती हैं, वनरक्षकवेश में श्याम उपस्थित हैं। मानो उन्हें देखा नहीं, इस भाव से कुसुम-चयन करती हैं। श्याम कहते हैं-'कौन है यह रमणी? मेरे वन के फूल तोड़ती है? तुम इतनी सुन्दर हो, कुसुमचयन कर वन की शोभा क्यों नष्ट करती हो?'

''भालविद्योतित-स्फीतगोरोचनं पार्श्वतः प्रेक्ष्य तं विभ्रमल्लोचनम्।
सा पटेनावृता कैतवाद्भामिनी वक्रितभ्रूरभूत्दूरभूगामिनी॥''

सुन्दर गोरोचन से विभूषित ललाट, चपल नयन श्रीकृष्ण को देखकर श्रीमती ने भौंहें सिकोड़ीं। 'भामिनी', अर्थात् तेजस्विनी। श्यामसुन्दर देख रहे हैं प्रभाववती रमणी स्वामिनी को। स्वामिनी ने नीलवस्त्र खींचकर अङ्ग से लपेट लिया। कैसी अपूर्व भंगिमा! श्याम से दूर यमुनातट पर एक विशाल मल्लिकालता की ओट में जाकर छिप-सी गईं। श्याम मन्त्रमुग्ध की तरह वहीं जाकर कहते हैं-'रोज-रोज इस वन के फूल कौन तोड़ता है, आज छिपकर चोर पकड़ा है। नित्य ही फूल चोरी करती हो, कौन हो तुम? निष्ठुरता के साथ कोमल अंकुरों को तोड़ वन को नष्ट क्यों किये देती हो?' उत्तर में स्वामिनी कहती हैं-

''सदात्र चिनुमः प्रसूनमजने वयं हि निरताः सुराभिभजने।
न कोऽपि कुरुते निषेधरचनं किमद्य तनुषे प्रगल्भवचनम्॥''

किन्हीं भक्तकवि ने इस श्लोक का अति सुन्दर पद्यानुवाद किया है-

''शुनि विनोदिनी मुचकि हासये हासि-रोषे माखामाखि।
बोले शुनो काला एतो बड़ो ज्वाला एकि तव रीति देखि॥
आमरा सुव्रता देव-पूजारता नियत-पूजाय मन।
निति आसि आसि तुलि फूलराशि नाहि शुनि कुवचन॥
आज केनो तुमि बोलो हेनो वाणी ए तोमार योग्य नय।
कहे रसराज धूर्तेर ए काज ताते तव किबा भय॥''

श्रीमती की बातें सुनकर श्याम कहते हैं-

''परिज्ञातमद्य प्रसूनालिमेतां लुनीषे त्वमेवं प्रवालैः समेताम्।
धृतासौ मया कांचनश्रेणिगौरि! प्रविष्टासि गेहं कथं पुष्पचौरि?''

''ओगो एकि गा तोमार काज?
कुलेर बालिका, कानने आसिते, नाहि बासो भयलाज॥
प्रतिदिन आसि, भांगिया पोयाल, पालाओ कुसुम तुलि।
कांचनगौरि, ओगो फूलचौरि, आर कि जाइबे चलि॥
पड़ियाछो धरा, आर कोथा जाबे, नाहि पाबे पलाइते।
रससुधाकर, आड़ाले थाकिया, नेहारे दुँहार रीते॥''

स्वामिनी कहती हैं-'जानती हूँ, धूर्त हो तुम। हमलोग सूर्य-उपासिका हैं, इस वन में नित्य ही पुष्प-चयन करती हैं। यहाँ पुरुषों का आनाजना नहीं। पुरुषों के लिये अगम्य है यह वन। आज तक किसी ने निषेध नहीं किया। कौन हो तुम? व्यवहार (बात करने का तरीका) नहीं सीखा? यह वन किसका है?' सुकोमल स्वामिनी गुस्से में त्यक्तस्वभाव अर्थात् कठोर होकर बात कर रही हैं। श्याम कहते हैं-'यह कन्दर्पराजा का वन है। मुझ पर वनरक्षा का भार है। बड़ा ही नृशंस राजा है। उसका धन चुराकर बहुत ही अन्याय किया है।' स्वामिनी-'यहाँ कोई कन्दर्प नहीं। तुम्हीं वह धूर्त हो। व्रज में तुम्हें कौन नहीं पहचानता?'

इस प्रकार मधुर कलह चलता रहा। 'कलह कर के भी तुम 'सुव्रता' हो। श्रीकृष्ण के सुख-विधानरूपी व्रत से विच्युत नहीं होतीं।' कलह के माधुर्य से श्याम अपार आनन्द अनुभव करते हैं। ''सेइ भावयुक्त देखि

नानाविधैः पृथुल-काकुभरैरसह्यैः, संप्रार्थितः प्रियतया तव माधवेन।
त्वन्मानभङ्गविधये सदये जनोऽयं, व्यग्रः पतिष्यति कदा ललिता-पदान्ते?८६॥

अन्वय-सदये! नानाविधैः असह्यैः पृथुलकाकुभरैः (प्रियोक्तिसमूहैः) तव प्रियतया माधवेन (श्रीकृष्णेन) तन्मानभङ्गविधये संप्रार्थितः अयं जनः कदा व्यग्रः (सन्) ललिता-पदान्ते पतिष्यति?८६॥

अनुवाद-हे सदये श्रीराधिक! मैं तुम्हारी अति प्रिय हूँ, इसलिये श्रीकृष्ण तुम्हारा मान-भंजन कराने के लिये नाना प्रकार के असह्य विनयवाक्यों से मेरे आगे भरपूर प्रार्थना करेंगे, तब मैं तुम्हारे मान-भंग के लिये अति व्यग्र होकर ललिता के पदप्रान्त में कब पड़ूँगी?८६॥

श्रीराधा का मान-भंजन

परिमलकणा व्याख्या-श्रीपाद की आस्वादन-परम्परा समान भाव से चल रही है-श्रीराधा के अपूर्व रूप-गुण और लीलारस की आस्वादन परम्परा! मान भी एक प्रकार का रस है। स्फूर्ति में इस श्लोक में श्रीराधा के मानरस का आस्वादन किया है। स्वामिनी ने संकेतकुंज में अभिसारिका के रूप में उत्कण्ठा में सारी रात बिताई है। नागर नहीं आये। अब प्रातःकाल कुंजद्वार पर आकर उपस्थित हैं। ललिता ने (स्वामिनी को) मान करना सिखाया है। श्रीमती मानिनी हैं। रोष से लाल हुई आँखें लिये श्याम से कहती हैं-

''रजनिजनितगुरुजागररागकषायितमलसनिमेषम्।
वहति नयनमनुरागमिव स्फुटमुदितरसाभिनिवेशम्॥
हरि हरि! याहि माधव याहि केशव मा वद कैतववादम्।
तामनुसर सरसीरुहलोचन या तव हरति विषादम्॥'' (गीतगोविन्दम्)

''हे माधव! गत रात्रि के गुरु (अत्यधिक)-जागरण से भारी तुम्हारी लाल-लाल आँखें स्पष्ट बता रही हैं अन्य रमणी के प्रति तुम्हारा अनुराग! हरि हरि! जाओ हे केशव, जाओ! मेरे सामने से हट जाओ। मिथ्या और कपट चाटुवाक्य मत बोलो। जो रमणी तुम्हारा विषाद दूर कर सकती है, हे कमललोचन! तुम उसी का अनुसरण करो।''

राधास्य नयन। संगम हैते सुख पाय कोटिगुण॥'' (चै० च०)। अन्त में प्राणनाथ के साथ कुंज में प्रवेश और विचित्र लीलामाधुरी का आस्वादन। स्फुरण के विराम में श्रीपाद की हाहाकार सहित प्रार्थना-

हा देवि! राधिके कबे हेनो दिन हबे।
अतिशय सुचतुरा, रसकुटिला भरा, सखीगणे सुवेष्टित रबे॥
कुसुमित वृन्दावने, प्राणनाथ कृष्णसने, कुसुम-चयन खेला-छले।
कपट-कलह करि, निजभाव परिहरि, रोषभरे जाबे दूरे चले॥
सेइ भावलीला मरि! जीवन सफल करि, हेरिबो कबे गो ए नयने?
आनन्द-सागर-नीरे, डुबाइबे कबे मोरे, राखिबे गो आपन चरणे?'' ८५॥

कभी कहती हैं–

''छुओ ना छुओ ना बँधु ओइखाने थाको।
मुकुर लइया चाँदमुखखानि देखो॥
नयानेर काजर, बयाने लेगेछे, कालोर उपरे कालो।
प्रभाते उठिया, ओमुख देखिलाम, दिन जाबे आज भालो॥
अधरेर ताम्बूल, बयाने लेगेछे, घुमे ढुलुढुलु आँखि।
आमा–पाने चाओ, फिरिया दाँड़ाओ, नयन भरिया देखि॥
चाँचर केशेर, चिकन चूड़ा, से केनो बुकेर माझे।
सिन्दूरेर दाग, आछे सर्वगाय, मोरा होले मरि लाजे॥
नील–कमल, झामरु हयेछे, मलिन हयेछे देह।
कोन् रसवती, पाइया सुधानिधि, निङाड़ि लयेछ सेह॥
कुटिल नयने, कहिछे सुन्दरी, अधिक करिया तोड़ा।
कहे चण्डिदास, आपन स्वभाव, छाड़िते ना पारे चोरा॥''

श्रीराधा के मानरस का आस्वादन प्रचुर और प्रभूत है। तटिनी (नदी) अदम्य वेग से बहती है; उस प्रवाह के आगे यदि प्रबल बाधा आ खड़ी होती है, तो जल–राशि स्फीत हो उठती और सीधे रास्ते न चल पाने के कारण वह शत–शत कुटिल गतियों में चलने लगती हैं। उसी प्रकार श्रीराधा की स्वभावकुटिल गति प्रेम और मान की बाधा पाकर और भी कुटिल हो जाती है, फिर वही प्रेमतरंगिणी शत–शत उत्सवों (धाराओं) में प्रवाहित होने लगती है। प्रेम की गति को सरस सवेग एवं अभिनव रखने के लिये ही मान का उदय होता है। यह पुरातन को अभिनव करता है और नित्य आस्वाद्य वस्तु को अभिनव माधुर्य से सुमधुर और प्रलोभनीय बना देता है। प्रेम के राज्य में मान एक अपूर्व संजीवनी सुधा है–एक अद्‌भुत इन्द्रजाल है। इसके उदय से जीर्ण हृदय–वल्लरी (बेल) मुकुलित हो उठती है (कलियों से भर जाती है), शीर्ण मलिन वदन मुकुरायमान (प्रफुल्लित) हो जाता है, प्रेम प्रति क्षण नवीन होने लगता है। नायिका के प्रेममाधुर्य पर लुब्ध नायक गले में वस्त्र डाले (विनय प्रकट करते हुए) मानिनी के चरणों में गिरकर मान भंग की भिक्षा चाहते हैं। आज भी मानिनी के चरणों में बैठकर नागर प्रार्थना कर रहे हैं–

''रूपे गुणे यौवने भुवने अनुपाम।
स्वपने जपन मोर तोहारि ओ नाम॥
शुनो विनोदिनी धनि रसमयी राधा।
कबहुँ करह जानि इह रस–बाधा॥
अंगुल–आग परश जब पाइ।
सुखेर सायरे रहि ओर ना जाइ॥
लोचन इंगित करु मोहे दान।'' इत्यादि

श्रीमती की थोड़ी–सी कृपादृष्टि पाने की आशा में कातर नागर ने चरण पकड़कर कितना ही अनुनय–विनय किया। मान भंग नहीं हुआ। श्रीमती के निकट छाया की तरह स्थित तुलसी को वे आँखों के

प्रीत्या मंगलगीत-नृत्यविलसद्वीणादि-वाद्योत्सवैः
शुद्धानां पयसां घटैर्बहुविधैः संवासितानां भृशम्।
वृन्दारण्यमहाधिपत्यविधये यः पौर्णमास्या स्वयं
धीरे संविहितः स किं तव महासेको मया द्रक्ष्यते?८७॥

अन्वय-धीरे! (हे धैर्यवती!) स्वयं पौर्णमास्या वृन्दारण्यमहाधिपत्यविधये (वृन्दावन महाराज्ञीत्व करणाय) मंगलगीतनृत्यविलसद्वीणादि-वाद्योत्सवैः (मंगलगीत-नृत्याभ्यां सह विलसन्ति यानि वीणादिवाद्यानि तै र्ये उत्सवास्तैः सह) भृशं संवासितानां शुद्धानां पयसां बहुविधैर्घटैः (अतिशय कर्पूरादिभिर्भावितानां निर्मलानां पयसां नानाप्रकारै र्घटैः) प्रीत्या यः तव महासेकः संविहितः (स तव महासेकः) किं मया द्रक्ष्यते?८७॥

इशारे से कुंज के बाहर बुलाकर ले जाते हैं और उनसे भी श्रीमती का मान शान्त करने के लिये बड़ा अनुनय-विनय करते हैं। नागर जानते हैं, तुलसी श्रीराधा की अतिशय प्रियता की पात्र हैं। तुलसी के अनुरोध की उपेक्षा श्रीमती नहीं कर पायेंगी। धन्य राधादास्य। वेदों के लिये अन्वेषणीय परमपुरुष को राधा-किंकरी हाथ जोड़े देख पाती हैं। नागर का इतना अनुनय-विनय तुलसी और सहन नहीं कर पातीं। नागर को आश्वासन देती हैं-'तुम थोड़े खड़े रहो, मैं देखकर आती हूँ।' तुलसी आकर देखती हैं-स्वामिनी कलहान्तरिता अवस्था को प्राप्त हैं; प्राणनाथ के लिये व्याकुल हैं। तुलसी कहती हैं-'स्वामिनि! तुम्हारे प्यार का धन (श्रीकृष्ण) मेरे आगे कितना गिड़गिड़ा रहा है, तुमने उसके प्रति मान क्यों किया?' स्वामिनी कहती हैं-'ललिता के कहने पर किया है।' ''ललिता-भीतिमानिनी।'' इच्छा होने पर भी ललिता के डर से श्याम से नहीं मिल पा रहीं। तब स्थिति को देख तुलसी समझ गई कि ललिता की इच्छा के बिना मिलन नहीं होने का। पर दोनों ही एक-दूसरे के लिये कातर हैं। तुलसी दौड़ी गईं उस कुंज में, जहाँ ललिता हैं। ललिता पूछती हैं-'तुलसि! किसलिये आई?' तुलसी सहसा ललिताजी के पदप्रान्त में गिरकर कहती हैं-'मान करने का आदेश देकर यहाँ आकर बैठ गई हो? ललिता-'क्यों, क्या हुआ?' तुलसी-'उन दोनों के बिना मिलन का कोई उपाय नहीं। तीव्र उत्कण्ठा के रहते भी स्वामिनी तुम्हारे गौरव की रक्षा के लिये मिल नहीं पा रहीं।' ललिताजी मान-भंग का आदेश देती हैं। तुलसी दौड़ी आती हैं स्वामिनी के निकट। कहती हैं-'ललिताजी ने मानभंग की आज्ञा दे दी है।' स्वामिनी उत्फुल्ल हैं। तुलसी प्रिय-प्रिया का मिलन सम्पादित करती हैं। सहसा स्फुरण में विराम आ गया। स्वामिनी के चरणों में उसी सेवा के सौभाग्य के लिये प्रार्थना की।

''तोमार दुर्जय मान, भंजन करिते कान, कातर विनय सहकारे।
साधिबे तोमारे कतो, धिक् प्राणे मानि शत, करिबेन प्रार्थना आमारे॥
तुलसी मंजरी तोरे, कहि गो शपथ करे, आजि अपराध नाहि मोर।
तथापि आमार प्रति, तोमार स्वामिनी अति, मानभरे हइला कठोर॥
हाय! हाय! मोर प्रति, के एमन स्नेहवती, मिलाइया दिबे तार संग।
एइ कथा शुनि काने, व्यग्र कबे हबो प्राणे, करिते तोमार मानभंग॥
ललितार पदे पड़ि, कहिबो विनय करि, जानाइबो कृष्णेर वेदन।
सदया हइया जबे, मोर मुखपाने चाबे, हरसित हबे मोर मन॥''८६॥

अनुवाद-हे धैर्यवती! स्वयं पौर्णमासी देवी तुम्हें श्रीवृन्दावन-महारानी के रूप में अभिषिक्त करने के लिये मंगलगीत, नृत्य, वीणा आदि वाद्योत्सव के साथ अति सुगन्धित विशुद्ध जल से भरे नाना प्रकार के घटों से तुम्हारा जो महाभिषेक करेंगी, उसे क्या मैं देख पाऊँगा?८७॥

श्रीराधा का राज्याभिषेक

परिमलकणा व्याख्या-श्रीपाद ने पिछले श्लोक में स्वामिनी के मान-भंग के पश्चात् श्यामसुन्दर के साथ मिलन करा सेवारस का आस्वादन किया था। इस श्लोक में वे श्रीवृन्दावन की महाराज्ञी के रूप में स्वामिनी के दर्शन की वासना व्यक्त कर रहे हैं। 'गीत, नृत्य, वाद्य आदि के महा-मांगलिक उत्सव के बीच महासाम्राज्ञीरूप में अभिषेक। अतएव गुप्त रूप से नहीं। श्रीयमुना मूर्तिमती, एकानंसा आदि बहुत-सी देवियाँ उपस्थित हैं, महाराज श्रीनन्द, श्रीवृषभानु, यशोदा, कीर्तिदा आदि सभी गोपगोपियों की उपस्थिति में महासमारोह के साथ श्रीपौर्णमासी देवी तुम्हारा अभिषेक करेंगी। श्यामसुन्दर का अभिषेक क्यों नहीं किया? 'हे धीरे!' तुम धैर्य-गाम्भीर्यवती जो हो! श्याम बड़े ही चंचल हैं, अतएव वृन्दावन-साम्राज्ञीरूप में तुम्हारा ही अभिषेक करेंगी।'

पद्मपुराण पातालखण्ड में कार्तिक-माहात्म्य में आया है : श्रीकृष्ण ने श्रीराधा के अतुलनीय गुणमाधुर्य से सन्तुष्ट होकर उन्हें ही श्रीवृन्दावन का आधिपत्य दिया है-''वृन्दावनाधिपत्यञ्च दत्तं तस्यै प्रसीदता।'' फिर मत्स्यपुराण के ''राधा वृन्दावने वने'' इस वाक्य से भी श्रीराधा के अभिषेक की सूचना मिलती है। श्रीराधा के अभिषेक का वर्णन करने में श्रील गोस्वामिपादगण का प्रचुरतर आवेश देखने में आता है। श्रीमत् रूपगोस्वामिपाद ने दानकेलिकौमुदी में, स्तवमाला में राधाष्टक में 'अतुलमहसि वृन्दारण्यराज्येऽभिषिक्ताम्'' इत्यादि पद्यों में और 'प्रेमेन्दुसुधासत्र' नामक वृन्दावनेश्वरी के अष्टोत्तर-शतनामस्तोत्र में ''राधाकृष्ण वनाधीशा'', ''वृन्दावनेश्वरी'' इत्यादि वाक्यों में स्पष्टत: इसकी सूचना दी है। श्रीमत् दासगोस्वामिपाद ने अपने मुक्ताचरित में, व्रजविलासस्तव के श्लोक ६१ में और विलाप-कुसुमांजलि के इस श्लोक में राधाभिषेक वर्णन किया है। लगता है इन संक्षिप्त वर्णनों से आचार्यपादगण का मन नहीं भरा। तभी श्रीमत् रूपगोस्वामिपाद की आज्ञा से श्रीमत् जीव गोस्वामिपाद ने विस्तृत राधाभिषेक-वर्णन से युक्त ''श्रीश्रीमाधवमहोत्सव'' नामक एक विशाल काव्य-ग्रन्थ रचा। उसमें वर्णित है : श्रीकृष्ण वृन्दावनेश्वरी के रूप में श्रीराधा का अभिषेक देखने की वासना से वृन्दादेवी को आदेश देते हैं कि समस्त व्रजवासियों के समक्ष यह महाभिषेक-कार्य सम्पन्न हो। श्रीकृष्णादेश से वृन्दादेवी ने अदृश्य रहकर पौर्णमासीदेवी को लक्ष्य कर श्रीनन्द आदि व्रजवासियों को सुना-सुनाकर आकाशवाणी के द्वारा इस आनन्द-संवाद की घोषणा की-

''श्रीराधामतुलगुणाम्बुधीन्दुलक्ष्मीं श्रीवृन्दावनभुवि विश्ववन्दितायाम्।
योगीन्द्रे! द्रुतमभिषिञ्च कांचनालि श्रीराजन्मणियुजि सिंहपीठपृष्ठे॥
राधायामयमभिषेक-कान्तिपूर: श्रीद: स्याद् वनमनु गोकुलभुवञ्च।
अंशूनामुदय इवामृतांशुमूर्तौ यद्योग्ये खलु विभवोऽखिलं धिनोति॥''

(माधवमहोत्सव-४/१०-११)

''हे योगीन्द्रानि पौर्णमासि! विश्ववन्दित वृन्दावनभूमि में स्वर्ण-समूह के महासौन्दर्य से मण्डित मणिखचित सिंहासन पर अतुलगुण-समुद्र से उत्पन्न इन चन्द्रलक्ष्मी श्रीराधा को शीघ्र ही अभिषिक्त करो। चन्द्रमा की

ज्योत्स्नाराशि की तरह श्रीराधा की यह अभिषेक-कान्तिधारा वृन्दावन में, गोकुल में एवं समग्र पृथ्वी पर अतुलनीय शोभा-समृद्धि लायेगी, कारण-योग्य पात्र को विभव प्राप्त होने पर विश्व को प्रेम-उपहार मिलता है।'' सभी के समक्ष परम लज्जावती श्रीराधा से भी यह राज्याभिषेक स्वीकार करने के लिये अनुरोध किया गया-

''हे राधे! त्वमिह च मास्म धाष्ट्र्य-बुद्ध्या संकोचीर्यादिदमशेषदु:खहन्तृ।
शालीना अपि कुलकन्यका: सभायां दृश्यते पतिवरणाय वीतलज्जा:॥'' (वही-१७)

''हे राधे! तुम भी इसमें धृष्टता-बुद्धि से (यह समझकर कि धृष्टता होगी) संकोच मत करना, कारण-इससे सभी दु:खों का नाश होगा। देखने में भी तो आता है, सलज्ज कुलकन्यायें भी सभा में विगतलज्जा होकर पतिवरण करती हैं।'' श्रीराधा ने सखियों के साथ आकाशवाणीरूपी मधु का कर्णचषकों (प्यालों) से रह-रहकर पान किया; सभी एक-दूसरे को आलिंगन करने लगीं। व्रजमण्डल में सभी लोगों का महाहर्षयुक्त कलकलनाद और विविध वाद्यों की महाध्वनि सुनाई दी थी। व्रज में यह आनन्द-संवाद कुन्दलता द्वारा विशेषरूप से प्रचारित किया गया। श्रीकृष्ण के आनन्द की सीमा नहीं। महा समारोह। विविध मांगलिक गान, नृत्य, वाद्य आदि के साथ अधिवासकृत्य सुसम्पन्न हुआ। अभिषेक के दिन जब श्रीराधा अभिषेक-चत्वर (चबूतरा, मंच) पर आई, तो उनकी अपूर्व सुषमा पर स्थावर-जंगम सब विमोहित हो गये! श्रीराधा अभिषेक की रत्नवेदी पर विराजमान हुईं। यमुना मूर्तिमती हैं। एकानंसा, रुद्राणी, इन्द्राणी आदि देवियाँ मानवी-रूप में उपस्थित हैं। महा महा अभिषेक का आयोजन सुसज्जित है!

''तँहि पुन: भगवति पौर्णमासीदेवी व्रजवनदेवकी साथ।
राइक शुभ अभिषेक करण लागि आओल उलसित गात॥
कत शत घट भरि वारि-सुवासित तँहि करल उपनीत।
दधि घृत गोरस कुंकुम चन्दन कुसुमहार सुललित॥
वास भूषण उपहार रसायन आनल कतो परकार।
रतन-वेदीरउपरे बैठल शशिमुखी सखीगण देइ जयकार॥
'श्रीवृन्दावन-भूमीश्वरि' करि भगवती करु अभिषेक।
चौदिके जय जय मंगल-कलरव आनन्दे मोहन देख॥'' (पदकल्पतरु)

शत-शत मांगलिक अनुष्ठान-नृत्य, गीत, वीणादि वाद्योत्सव के उस महासमारोह में अभिषेक कार्य सम्पन्न हुआ, तो सखियों ने श्रीमती को राज-राजेश्वरी के उपयुक्त वेशभूषा से सुसज्जित किया। विचित्र मणिरत्नों के महासिंहासन पर श्रीराधा अधिरूढ़ हुईं तो उनकी रूप-लावण्य-प्रभा से समस्त वृन्दावन चमक उठा! एकानंसा ने श्यामसुन्दर के ललाट से राजटीका स्पर्श करा 'जय वृन्दावनेश्वरि' कहकर श्रीराधा के ललाट से लगा दिया। महावाद्यध्वनि के साथ चारों ओर महाजय-जयध्वनि हुई! देवगण प्रचुर पुष्पवृष्टि करने लगे। सखियाँ परमानन्द से शंखध्वनि हर्षध्वनि करने लगीं। ब्रह्माण्ड का समस्त स्थावर-जंगम परमानन्दरस में मग्न! पौर्णमासीदेवी ने यथायोग्य सम्मान कर गुरुजनों को विदा किया।

इसके बाद एक अभिनव रसमयी लीला का सूत्रपात हुआ। सखियाँ राजराजेश्वरी श्रीराधा के पात्रमित्रों के पद बाँटने में लग गईं। वृन्दावनेश्वरी का सरस दास्य पाने की आशा में श्यामसुन्दर भी लुब्ध हैं। मन्त्री ललिता को आवेदन किया।

''तबे अतिशय आनन्दिता। श्रीकृष्णेरे कहेन ललिता॥
वनमालि! शुनो मोर वाणी। कि सेवा लइबे बलो तुमि॥
सखी सब सेवा बाँटि निलो। जार जे वासना मने छिलो॥
हेनो सेवा आर नाहि देखि। जाहाते तोमार नाम लेखि॥
शुनिया कहेन वनोयारि। मोर सेवा आछे बड़ो भारि॥
आमि राज्येर कोतोवाल हइबो। राज-जय घुषिया बेड़ाबो॥'' (वही)

तब मन्त्री ललिता की आज्ञा से कोतवाल-पदलिप्सु श्याम ने राजराजेश्वरी को एक आवेदन-पत्र लिखा-

''जय जय श्रीशत, श्रीयुत पदनख, महामहिमार्णवचरणेषु।
चतुरिणी शिरोमणि, विश्वविमोहिनी, यूथपतिगण सेवितेषु॥
श्रीवृन्दाटवी, राजराजेश्वरी, प्रबल - प्रतापशालिनीषु।
कोटि मदनमद, पराभव-कारिणी, निजजनगण-जीवितेषु॥
× × × ×
तेइ एइ राजकर, कोतोवालपद देइ, करबहि मोहे चिरदास।
एहि विनति मोर, मानवि ना टारबि, करजोड़े मागों तुया पाश॥
हाम तुया नाम यशः, कुंज कुंज प्रति, घोषत प्रति दिनयाम।
तुया पुर भितर, चोर यदि आओब, विफल होओब तछु काम॥
एहि विधि सेवा, नित प्रति लहरि, पालबि निज ठाकुराल।
जय जय राधा, वृन्दाविपिनाधीश, गाओब हाम चिरकाल॥'' (वही)

राजराजेश्वरी की कृपा और सखियों की सहायता से श्याम ने कोतवाल-पद ग्रहण किया। कोतवाल-जैसी ही वेशभूषा। राजराजेश्वरी के आज्ञावाहक मोहन कोतवाल वृन्दावन के स्थावर-जंगम के आगे श्रीराधा के वृन्दावन-आधिपत्य की घोषणा करने लगे। 'हे वृन्दावन के पशु-पक्षियों! भ्रमर-कोकिलो! वृक्षलताओं! आकाश-वायु! तुम सब सुनो-आज से वृन्दावन की राजराजेश्वरी वृषभानुनन्दिनी श्रीश्रीराधारानी हैं!' मोहन कोतवाल के मुँह से ऐसी मधुर घोषणा सुनकर और उस समय उनकी भाव-गद्‌गद मूर्ति देखकर वृन्दावन के जीव-जन्तुओं-स्वाभाविकरूप से राधागतप्राण जीव-जन्तुओं के आनन्दकोलाहल से समस्त वायुमण्डल मुखरित हो उठा। सारे वृन्दावन में राजराजेश्वरी के आधिपत्य की घोषणा कर मोहन कोतवाल ने राजारानी के चरण-सान्निध्य में वृन्दावन के स्थावर-जंगम की आनन्दवार्ता घोषित की।

तत्पश्चात् कौतुकी कोतवाल ने सभी की आँखों से बचकर अपनी वंशी गुप्तरूप से ललिता के वस्त्रांचल में छिपाकर राज-राजेश्वरी के चरणों में वंशी चोरी की नालिश की। विशाखा बोली-'अच्छा ही हुआ, कुलनाशी वंशी खो गई। अब कुलस्त्रियाँ सुख से सोयेंगी।' धीर राजरानी गम्भीर होकर बोलीं-'नहीं विशाखे! यह कहना ठीक नहीं। राजा के रहते चोरी पर विचार न हो, तो राजा की ख्याति नष्ट हो जायेगी।' मन्त्री ललिता ने तिरस्कार के साथ कोतवाल को पद त्यागने का निर्देश देकर कहा-'जो निकम्मा सेवक अपनी ही चीज की

रक्षा नहीं कर सकता, वह भला प्रजा के धन की रक्षा क्या करेगा? इसलिये उसके पद छोड़ने में ही राज्य की भलाई है।' कोतवाल ने महारानी के चरणों में निवेदन किया-'मुझे सन्देह है कि इन राजकर्मचारियों में से ही किसी ने मेरी वंशी चुराई है। इसलिये निहायत ही छोटा सेवक यह कोतवाल इसमें क्या कर सकता है?' यह सुनकर मन्त्री ने क्रोधित हो आज्ञा दी-'सब अपना-अपना आँचल झाड़कर कोतवाल को दिखा दें। यदि किसी के पास वंशी न निकली, तो इस झूठे सन्देह के लिये, उच्च पदाधिकारियों को अभियुक्त बनाने के अपराध के लिये इसे भयंकर दण्ड भुगतना पड़ेगा।'

मन्त्री के आदेश का यथारीति पालन किया गया। अन्त में स्वयं मन्त्री के ही वस्त्रांचल से वंशी आ गिरी! सभी खामोश। कोतवाल राजरानी से बोले-'महारानि! पहले ऐसी चोर मन्त्री का पद छोड़ना उचित, नहीं राज्य की अपार क्षति होगी।' उस वक्त मन्त्री ललिता का गुस्सा कोई देखे! क्रुद्ध होकर बोलीं-'तुम्हीं ने गुप्तरूप से यह वंशी मेरे आँचल में छिपाकर यह कपट अभियोग चलाया है। मैं महारानी के श्रीचरण स्पर्श कर कहती हूँ-यह तुम्हारा ही काम है। तुम उनके चरण छूकर कहो न, यह तुम्हारा काम नहीं!' चरण-स्पर्श की बात आते ही कोतवाल के हृदय में आनन्दरस उच्छ्वसित हो उठा। ''हियार माझारे उठे रसेर हिलोलि। जबे परशिते चाहि तोमार पायेर अंगुली।'' (महाजन)। कोतवाल ने आँखों आँसू भरे पुलकित देह से काँपते हाथों से महारानी का पादपीठ स्पर्श किया! श्रीचरण स्पर्श कर आनन्दघन विग्रह को तो रसमोह! आनन्द-जड़ता से कण्ठरोध। तब ललिता बोलीं-'देखो महारानि! तुम्हारे चरण हैं धर्मस्वरूप, उन्हें स्पर्श कर इसके मुँह से मिथ्या बात क्यों निकलेगी?'

''नागरे कम्पित देखि रसवती राइ। हासि हासि बँधु-करे धरिलेन जाइ॥
गद्‌गदकण्ठे कहये धनी वाणी। मरम कहिये एबे शुनो नीलमणि॥
निज वांछा पुराइले मोरे राजा करि। मोर साध पुराइते हइबे मुरारि॥
ओ वेश फेलिया निज वेश परो तुमि। सिंहासने बैसहो किंकरी हइ आमि॥''

इसके पश्चात् वृन्दादेवी ने नागर की राजवेश रचना की। रसिकशेखर किशोरमणि को बायें कर उसी रत्नसिंहासन पर बैठे। सखियाँ जय-जयकार और हर्षध्वनि करने लगीं। आनन्द की तो सीमा न रही। किंकरियाँ चँवर-वीजन आदि सेवायें करने लगीं।

''आहा मरि! किबा दुटी रूप अनुपाम।
रूप अनुपाम गो दुटी रसमय धाम॥
आधो कनक काँति नव बिजुरी भाति
आधो रसे ढरढर नवघनश्याम॥
बयाने बयान, दोंहार नयाने नयान।
(जनु) चाँदे चांदे कमले कमले एकठाम॥

अति परम रसाल दुहुँ गले एक फूलमाल अङ्गे अङ्गे हेलाहेलि अपरूप ठाम।
किये कमले भ्रमर किये चाँदेते चकोर (नव) चातकिनी सुवदनी जलधर श्याम॥

भ्राता गोयुतमत्र मंजुवदने स्नेहेन दत्त्वालयं
श्रीदाम्ना कृपणां प्रतोष्य जटिलां रक्षाख्यराकाक्षणे।
नीतायाः सुखशोक-रोदनभरैस्ते संद्रवन्त्याः परं
वात्सल्याज्जनकौ विधास्यत इतः किं लालनां मेऽग्रतः?८८॥

अन्वय-मंजुवदने! (हे मनोज्ञवदने!) रक्षाख्यराकाक्षणे ('राखी'ति देशविशेषे व्यवह्रियमाणे पूर्णिमादिवसे) गोऽयुतं दत्त्वा कृपणां जटिलां प्रतोष्य भ्रात्रा श्रीदाम्ना स्नेहेन आलयं नीतायाः सुखशोक-रोदनभरैः परं संद्रवन्त्याः ते (तव) इतः अत्र मे (मम) अग्रतः किं जनकौ वात्सल्यात् लालनां विधास्यतः (मस्तक गात्रस्पर्शादिरूपां किं करिष्यतः) ?८८॥

अनुवाद-हे मनोज्ञवदने! राखीपूर्णिमा के दिन तुम्हारे भाई श्रीदाम अयुत (दस हजार) गायें दानकर कृपण जटिला को सन्तुष्ट कर तुम्हें स्नेहपूर्वक मायके लायेंगे, तुम सुख और शोक से भरकर द्रवित होकर रोती रहोगी। उस समय तुम्हारे माता-पिता मेरे आगे वात्सल्य से भरकर तुम्हें लाड़प्यार करेंगे-क्या मैं यह दृश्य देख पाऊँगा ?८८॥

माता-पिता का लालन

परिमलकणा व्याख्या-स्वरूपाविष्ट श्रीपाद की आँखों के आगे एक के बाद एक लीला की छवि फूट रही है। जो आस्वादन कर रहे हैं, उसी को व्यक्त कर रहे हैं-स्फुरण में विराम आता है, तो विलाप करने लगते हैं और उसी लीला को देखने की प्रार्थना करने लगते हैं-प्रार्थना में ही व्यक्त हो रहा है वह आस्वादन। उनका मन तो डूबा है युगल के सौन्दर्य-माधुर्य-सागर में, वहाँ भाषा की हर प्रकार की, सम्पदा थोड़ी पड़ जाती है। भाषा वहाँ नितान्त ही निरूपाय है। फिर भी भाव का प्रवाह भाषा के पथ पर स्वभावतः निकलना

नाचे मयूर मयूरी, गाय शुक आर शारी, फूले फूले भ्रमरा भ्रमरी धरु तान।
नवजलद-कोले, थिर बिजुरी खेले, कतो रस बरिखये दुहुँ रसधाम॥
जतो सखी मंजरी, दोंहार माधुरी हेरि, बोलत घेरि घेरि 'जय राधेश्याम'।
जतो सहचरीगण, करे पुष्प-बरिषण, 'राधा-राधारमण' बोलि गाये अविराम॥''

श्रीपाद ने स्फूर्ति में तुलसीमंजरीरूप में लीलारस आस्वादन किया है। स्फूर्ति के विराम में आर्ति के साथ उसी लीला को देखने की वासना व्यक्त कर रहे हैं स्वामिनी के चरणों में-

''हाय! मोर हेनो भाग्य हबे कतो दिने?
हे धैर्यशालिनि राधे! एइ मोर मनः साधे, तब अभिषेकोत्सव हेरिबो नयाने॥
बाजिबे मंगलवाद्य, वेणु वीणा मुरजाद्य, नृत्य गीत हबे मनोहर।
सुवासित शुद्ध वारि, घट सब पूर्ण करि, पौर्णमासी स्वयं तत्पर॥
अतिशय प्रीत हैया, तब अभिषेक क्रिया, करिबे यत्नेते सम्पादन।
वृन्दावन-महाराज्ञि! हेरिया कबे गो आमि, सफल मानिबो ए जीवन?''८७॥

चाहता है, किन्तु उस वेग को धारण करने की सामर्थ्य भाषा में नहीं है। भाषा वहाँ स्तम्भित है, भाव के भार से आत्महारा है! इस अवस्था में भाव जिसका अवलम्बन लेकर हृदय में स्फीत होता है, उस अवलम्ब्य-वस्तु का थोड़ा-सा कुछ लेकर ही भावुक के आगे उपस्थित होती है भाषा। लेकिन यह दीन भाषा ही भावग्राही श्रोता के हृत्कर्ण में सुविशाल जलप्रपात की तरह भाव का प्रवाह उड़ेल कर भावुक के भाव को प्रकट करने में सहायता करती हैं। वर्णन करने वाले के भाव की शक्ति भाषा में संचारित होती है। इसलिये उसका फल, प्रभाव प्रतिपत्ति अनन्त अटूट है। भावप्राप्ति या प्रेमप्राप्ति के मार्ग में महत् पुरुषों की भावमय वाणी के श्रवण-कीर्तन-जैसी साधना, इतनी बड़ी साधना और कुछ नहीं।

पिछले श्लोक में श्रीपाद ने राधारानी के राज्याभिषेक के माधुर्य का आस्वादन किया। इस श्लोक में स्वामिनी का पित्रालय-आगमन और वात्सल्यरस की घनीभूत मूर्ति (पिता श्रीवृषभानु और माता कीर्तिदा) का श्रीमती के प्रति वात्सल्य-इसका आस्वादन है। श्रीमती की चरणसेविका तुलसी, छाया की तरह स्वामिनी की चिरसगिनी है। दर्पण में पड़े प्रतिबिम्ब की तरह स्वामिनी के सुख-दु:ख की उपभोक्ता किंकरी। महाकवि कर्णपूर ने वर्णन किया है-

''पतत्यस्रे सास्रा भवति पुलके जातपुलका:
स्मिते भाति स्मेरा सुमलिमनि जाते सुमलिना:।
अनास्वाद्य स्वालीर्मुकुरमभिवीक्ष्य स्ववदनं
सुखं वा दुखं वा किमपि कथनीय मृगदृश:॥'' (अलंकारकौस्तुभ-३/५९)

श्रीकृष्ण बोले-''हे मृगनयनियों! तुम लोगों को जब तक अपनी सखियाँ नहीं मिलती; तभी तक दर्पण में अपने मुखमण्डल देखकर सुख या दु:ख जानकर उसका कीर्तन कर सकती हो। किन्तु सखीमण्डली के सम्मुख होने पर तुम लोगों को दर्पण की क्या आवश्यकता? वे लोग दर्पण का साध्म्र्य धारण करती हैं (दर्पण का काम करती हैं)-उन्हीं से तुम लोगों का सारा काम सम्पन्न हो जाता है। तुम लोगों का आँसू टपकता है, तो उनका वदन अश्रुओं से भर जाता है; तुम्हें रोमांच होता है, उनकी देहें भी रोमांचित हो जाती हैं। तुम हँसती हो, वे भी हास्यमुखी हो जाती हैं; तुम लोगों के मालिन्य से वे भी सुमलिना हो जाती हैं।'' राधाकिंकरियों में इसी भाव का सर्वाधिक विकास है।

श्रीपाद को स्फुरण प्राप्त हुआ है। राखीपूर्णिमा के उपलक्ष्य में श्रीदामचन्द्र राधारानी को पित्रालय लाने के लिये जावट गये हैं। जटिला उन्हें छोड़ने वाली नहीं। श्रीदाम भगिनी-वत्सल हैं। सोच रहे हैं-कृपण जटिला को कुछ देकर सन्तुष्ट कर बहन को मायके ले जाना होगा। बोले-'आप क्या चाहती हैं?'' जटिला ने गो-सम्पद् की माँग की। श्रीदाम अयुत (दस हजार) गायें दानकर जटिला को सन्तुष्ट कर बहन को बरसाना ला रहे हैं। लीलापुष्टि के निमित्त यह सब व्यवस्था है। पिता के घर अधिक पराधीनता नहीं है। स्वच्छन्द रूप से मिलन आदि हो सकते हैं। वृन्दावन में प्रत्यक्ष-परोक्ष दोनों ही प्रकार से सभी श्रीश्रीराधामाधव के शृंगार-रसास्वादन के सहायक हैं। ससुराल में रहने के समय एक प्रकार से और पिता के घर रहने के समय अन्य प्रकार से-शृंगार रसास्वादन की वैचित्री भिन्न-भिन्न हैं। किंकरियाँ सभी समय स्वामिनी के श्रीचरण-सान्निध्य में रहकर सभी रसों का आस्वादन प्राप्त कर धन्य होती हैं। तभी तो राधा-दास्य को सर्व-साधारण परम महासाध्यवस्तु कहा गया है।

लज्जयालिपुरतः परतो मां, गह्वरं गिरिपतेर्वत नीत्वा।
दिव्यगानमपि तत्-स्वरभेदं, शिक्षयिष्यसि कदा सदये त्वम्॥८९॥

वात्सल्यरस की मूर्त प्रतीक माँ स्वामिनी के रास्ते को निहार रही हैं। श्रीपाद ने शतनामस्तोत्र में कहा है-''मातृस्नेहपीयूषपुत्रिका''-मातृस्नेह की अमृतमयी मूर्ति स्वामिनी। कोटि गायों से अधिक सुवत्सला माता कीर्तिदा परम उत्कण्ठा से स्वामिनी के आने की प्रतीक्षा कर रही हैं। स्वामिनी आ रही हैं, तुलसी छाया की तरह उनके साथ हैं। माँ कीर्तिदा वक्ष से लगाकर नयन-नीर से स्नान करा रही हैं। स्वामिनी सुख और शोक से भरकर रो रही हैं। मायके आने का आनन्द और ससुराल में पराधीनता के बीच चिरकाल अवस्थान करने का दुःख-एक साथ आनन्द और शोक के अश्रुओं को लेकर विह्वल! लगता है स्वामिनी एकबारगी पिघल गई हैं-माँ के वक्षस्थल के साथ मिल गई है! माता-पिता के स्नेह से विगलित स्नेह की मूर्ति स्वामिनी! माता कीर्तिदा के आँसुओं से अभिषिक्त हो रही हैं। रुआँसे स्वर में कहती हैं-'मुझे तो भूल ही जाती हो माँ, खबर नहीं लेती। माँ का गला विपुल भाव से वाष्परुद्ध (रुँधा हुआ) है। सोच रही हैं-'हा विधाता! पराधीन नारी-जीवन की सृष्टि क्यों की?' रोते-रोते बोलीं-'तुझे क्या भुला सकती हूँ बेटी?' जो ''व्रजगो-गोप-गोपाली-जीवमात्रैक जीवनम्'' (शतनामस्तोत्रम्)-अर्थात् जो व्रज की गो, गोप, गोपी, यहाँ तक कि जीवमात्र की ही जीवनस्वरूपा हैं! वे वात्सल्यमूर्ति माँ की कितनी प्यारी (प्राणों की प्राण) हैं, कौन कहेगा? लाली को घर में पाकर माता-पिता मानो आनन्द-सागर में तैर रहे हैं। स्वामिनी के प्रति उनके स्नेहरसपूर्ण लाड़प्यार का आस्वादन श्रीपाद ने स्फुरण में किया है। स्फूर्ति के विराम में कुण्डतीर पर लोटपोट होकर रो रहे हैं। 'तुम्हारे ही कुण्ड-तट पर पड़ा हूँ। प्राणों में बड़ी आशा है, माँ-बाबा, तुम्हें स्नेह करेंगे-मैं वह आँखों से देखूँगा।' जिद-अनुरोध से भरी है प्रार्थना। राधादास्य का कैसा अपूर्व प्रभाव है! बाह्यावेश में भी राधादास्य के लिये ही प्रार्थना। स्वामिनी की कितनी अन्तरंग है किंकरी-यह बात तब तक समझ में नहीं आयेगी, जब तक वे (हमें) अङ्गीकार नहीं करतीं। क्या मिलन, क्या विरह, श्रीराधा-चरणों को छोड़ श्रीपाद का और कोई अवलम्बन नहीं। इसलिये प्राणों की अभीष्टपूर्ति के लिये वे उन्हीं चरणों में प्रार्थना कर रहे हैं-

''हे राधे! हे सुवदने! राखी-पूर्णिमार दिने, तव भ्राता श्रीदाम आसिया।
कृपणा से जटिलारे, गो-अयुत दान करे, समादरे ताँहारे तुषिया॥
आपन आलये जबे, तोमारे लइया जाबे, अतिशय स्नेहादर करि।
तथा बहुदिन परे, माता पिता दोंहे हेरे, अन्तरेते सुख उठे भरि॥
सदा परवश हये, थाकिया श्वशुरालये, मनोमध्ये दुःख अतिशय।
हर्ष-शोके सेइकाले, भासिबे नयनजले, द्रवीभूत हइबे हृदय॥
तबे अति स्नेहवशे, तव माता-पिता एसे, करिबेन सयत्ने लालन।
'रोदन संवरो' बोले-निजे भासि आँखिजले, मुछाइबे तोमार वदन॥
निकटे थाकिया हाय! से लालन समुदाय, नेहारिबो मने अभिलाष।
कबे से करुणा हबे, एइ सुख मोरे दिबे, बाढ़ाइबे अपार उल्लास?।''८८॥

अन्वय–सदये! वत कदा त्वं लज्जया आलिपुरतः परतः गिरिपतेः गह्वरं मां नीत्वा (लज्जया सख्यग्रात् दूरे गोवर्द्धनस्य गह्वरं मां नीत्वा) दिव्यगानम् अपि तत् स्वरभेदं शिक्षयिष्यसि?८९॥

अनुवाद–हे दयाशीले श्रीराधिके! हाय! तुम लज्जावश सखियों के सामने से दूर गोवर्धन गिरि–कन्दरा में मुझे ले जाकर दिव्य गायन और उसके स्वरभेद कब सिखाओगी?८९॥

दिव्य गायन शिक्षा

परिमलकणा व्याख्या–अभीष्ट के रूप–गुण–लीलारस में श्रीपाद का चित्त तन्मय हैं। किंकरी–भाव से श्रीराधामाधुरी का आस्वादन कर रहे हैं। स्वामिनी उनकी जिद–अनुरोध कितना मानती हैं, उनकी कितनी अन्तरंग दासी हैं–इसका पता चलता है इस श्लोक की प्रार्थना–भंगिमा से। 'मेरे न चाहने पर भी स्वामिनी निजजन मानकर अङ्गीकार करें, तो समझूँगी कि मेरे प्रति उनका स्नेह है। मेरे न चाहते हुए भी वे अत्यधिक स्नेहवश कृपाकर मुझे गोवर्धन की गिरिकन्दरा में ले जाकर दिव्य गायन और उसका स्वर–आलाप आदि सिखायेंगी।' 'लज्जयालिपुरतः परतो गिरिपतेः गह्वरं नीत्वा'' –लज्जा के कारण सखियों के सामने से दूर गोवर्धन कन्दरा में गायन सिखायेंगी। लज्जा क्यों? समप्राण सखियाँ हैं, परायी तो नहीं? उनके आगे गायन सिखाना नहीं होता। यह साधारण गायन नहीं–'दिव्यगानम्'। सखियाँ सुनेंगी तो परिहास करेंगी। गीत की विषयवस्तु इतनी रहस्यमय और अद्‌भुत है कि स्वामिनी अन्तरंग किंकरी के अतिरिक्त और किसी के आगे बता नहीं सकतीं। यह वह गीत है, जिससे कुंज में राधामाधुर्य देख मूर्छित हुए नागर की मूर्छा दूर होती है। व्रजसुन्दरियाँ अपने असाधारण सौन्दर्य–माधुर्य से श्रीकृष्ण को चमत्कृत करने में समर्थ हैं, इसीलिये उन लोगों की रति का नाम 'समर्थारति' है। प्रेमी के प्रेम का ही ऐसा कुछ अलौकिक गुण या शक्तिविशेष है, जो श्रीकृष्ण की चमत्कृति जगा देता है। ''भक्तेर प्रेम–चेष्टा देखि कृष्णेर चमत्कार'' (चै० च०)। व्रजसुन्दरियाँ प्रेम की सबसे ऊँची कक्षा में हैं, तभी उनकी समर्थारति में यह चमत्कृति (चमत्कार) सबसे अधिक है। सर्वोपरि मादनाख्य महाभाववती श्रीमती राधारानी! उनके प्रेममाधुर्य से श्रीकृष्ण में ऐसा अद्‌भुत चमत्कार जगता है कि उन्हें प्रगाढ़ मूर्छा आ जाती है। उसका समाधान करने में स्वामिनी भी हार मानती हैं। स्वामिनी द्वारा सिखाये दिव्य गायन से केवल किंकरियाँ ही उस मूर्छा को भंग करने में समर्थ हैं, और कोई नहीं। इन सब बातों में राधाकिंकरियों की विशिष्टता सखियों से अधिक है। राधादासी की यही अतिनिगूढ़ रहस्यमय सेवा है।

एकबार की बात। कुंज में दोनों का खेल चल रहा है। स्वामिनी के नेत्रों की चाहनी से ही (देखने की भंगिमा से ही) श्याम को आनन्दमूर्छा आ गई। अखण्ड आनन्दघनविग्रह विभोर हैं! स्वामिनी कितनी ही चेष्टा कर रही हैं, पर मूर्छा भंग नहीं हो रही। राधामाधुर्य के सागर के अतल तल में निमग्न है मोहन के चित्त की नौका। उस मग्न तरी (नाव) का उद्धार करे, ऐसा सुदक्ष कर्णधार कोई नहीं। स्वामिनी असमर्थ हैं। द्वार के बाहर पीठ लगाये बैठी तुलसी ने दिव्य गायन आरम्भ कर दिया है। राधामाधुरी के आस्वादन से मूर्छित नागर की मूर्छा धीरे–धीरे टूट रही है। क्रमशः नागर ने लीला की योग्यता प्राप्त की। यह गीत सखियों के आगे नहीं सिखाया जाता, तभी इसकी शिक्षा दी जाती है गिरिकन्दरा में। गीत की विषयवस्तु है–रसराज और मादन महाभाव की विलासवैचित्री! राधारानी स्वयं ही गीत का विषय हैं, तभी वे इसे गाकर श्याम की मूर्छा दूर नहीं कर सकतीं।

एक आश्रयतत्त्व, तृतीय आधार की आवश्यकता है। राधाकिंकरी ही इसका यथायोग्य आधार है। किंकरियों में भी परमस्निग्ध अन्तरंग दासी हैं तुलसी, तभी स्वामिनी उन्हें स्वयं गुप्तरूप से गिरिकन्दरा में बुलाकर यह रहस्यमय गीत और उसका स्वरालाप सिखा रही हैं। अपनी निगूढ़ आवश्यकता से वे किंकरी को सस्नेह बुलाकर निगूढ़ सेवा सिखा रही हैं। किंकरीभाव की यह रहस्यमय उपासना ही महाप्रभु का महादान है। भाव के बिना रस का आस्वादन नहीं और रस के बिना भाव की अभिव्यक्ति नहीं, फिर रस और भाव को छोड़ आनन्द नहीं–यह एक सुपरिचित सत्य है। इसका तात्पर्य जानने की चेष्टा करें, तो यह भी समझ सकेंगे कि विश्वकारण और सर्वकारण के मूल में महाभाव–परिरम्भित (आलिंगित, परिवेष्टित) महारस के जिस उत्स (स्रोत) से निरन्तर परमानन्दरसधारा निकल रही है, जिसकी आभासकणिका का अवलम्बन ग्रहण कर सारा विश्वब्रह्माण्ड संजीवित हो रहा है–वेद आदि शास्त्रों की वही मुख्यतम प्रतिपाद्य वस्तु सर्ववेदान्तसार श्रीमद्भागवत की रासलीला में स्पष्टरूप से वर्णित है–वही परतत्त्व का परिपूर्ण स्वरूप है। रासलीला में महाभाववती गोपियों के प्रेम में ही साध्यतत्त्व की चरम सीमा निहित है। मानव–मनीषा (ज्ञान, बुद्धि) के लिये सम्भव नहीं कि उसके परे, उसके बाद और अधिक अग्रसर हो सके। जानने के लिये भी और कुछ बचता नहीं। इसके परे भी, इसके पश्चात् भी यदि कोई और कुछ बता सकता है, तो वह कोई दूसरा नहीं–वे पूर्णतम परतत्त्व स्वयं भगवान् ही हैं, यह बात सुनिश्चित रूप से समझी जा सकती है। जिस वस्तु का संधान भागवत की रासलीला में भी नहीं मिलता, वही रहस्यमय मंजरीभाव की उपासना उन्हीं रसराज–महाभाव–मिलित वपु श्रीश्रीकृष्णचैतन्यदेव की ही करुणा का अवदान है। उन्हीं के श्रीचरणाश्रित आचार्यचरणों ने उसका प्रकाश और प्रचार किया।

इस गीत की अपूर्व परीक्षा भी होती है। गिरिकन्दरा है–अपरूप विलासभवन के तुल्य। स्वामिनी अपने हाथ में वीणा लेकर तुलसी को दिव्यगान सिखा रही हैं। एक तो गायन का अपरिसीम माधुर्य, ऊपर से स्वामिनी का अमृतस्रावी कण्ठस्वर–श्यामसुन्दर को खींच लाया है। झरोखों से स्वामिनी की रूप–माधुरी के साथ–साथ गान–माधुरी आस्वादन कर रहे हैं। तुलसी और स्वामिनी। स्वामिनी के सिर पर घूँघट नहीं है। लाड़ली दासी को बड़े ही मनोयोग से वीणावादन के साथ गाने की शिक्षा दे रही हैं। रत्नमुद्रिका (अङ्गूठी) से चमकती चम्पक–कलिका को लजाने वाली अँगुलियाँ वीणा के तार पर पड़ती हैं, तो कैसी अपूर्व झंकार! श्रीअङ्ग की माधुरी जैसे उच्छलित हो पड़ी है! कण्ठ के सुललित अमृतमय स्वर पर श्याममुग्ध हैं। वीणा की प्रत्येक झंकार से उनकी हृदय–तंत्री झंकृत हो रही है। आड़ में और खड़े नहीं रह सके। मंत्रमुग्ध की तरह धीरे–धीरे कन्दरा में जा पहुँचे! श्याम को देखते ही गायन बन्द। स्वामिनी ने वीणा रखकर जल्दी से घूँघट खींच लिया। स्वामिनी ने गम्भीर होकर प्रश्न किया–'तुम यहाँ?' तुलसि! कैसा गाना सीखा है, एक बार सुनाओ न!' स्वामिनी का इंगित पाकर तुलसी ने वीणा लेकर गाना आरम्भ किया। स्वामिनी के स्नेह की पात्र तुलसी, कैसी अपूर्व उसकी प्रतिभा! एकबार सीखकर ही इस तरह गाया–गीत का रस मानो मूर्त हो उठा! गायन सुनकर श्याम को लग रहा है–गीत ने मानो राधारानी के रूप में ही मूर्ति धारण की है। गीत सुन रहे हैं या स्वामिनी की माधुरी आस्वादन कर रहे हैं, समझ नहीं पा रहे। मुग्ध श्याम स्वामिनी के पास बैठकर गीत सुन रहे हैं। 'गायन की परीक्षा हो गई न?' दोनों ही बोल उठे–'वाः! खूब सीख गई।' तभी स्फुरण में विराम और हाहाकार के साथ प्रार्थना–

याचिता ललितया किल देव्या, लज्जया नतमुखीं गणतो माम्।
देवि दिव्यरसकाव्यकदम्बं, पाठयिष्यसि कदा प्रणयेन?९०॥

अन्वय-देवि! कदा (त्वं) देव्या ललितया गणतः किल याचिता (सती) लज्जया नतमुखीं मां दिव्यरसकाव्यकदम्बं (मधुररसघटितकाव्यसमूहं) प्रणयेन (प्रीत्या) पाठयिष्यसि?९०॥

अनुवाद-हे देवि राधिके! देवी ललिता किंकरियों में निश्चित रूप से मेरे लिये ही तुमसे प्रार्थना करेंगी, इस पर मैं लज्जा से मुँह नीचा कर लूँगी, तब तुम प्रेम से भरकर मुझे दिव्यरसकाव्य-समूह कब पढ़ाओगी?९०॥

दिव्यरसकाव्य-कदम्ब

परिमलकणा व्याख्या-पिछले श्लोक में स्वामिनी से गायन की शिक्षा के लिये जिद-अनुरोध था, इस श्लोक में रसकाव्य पढ़ने के लिये है। स्वामिनी किंकरी को अपने मन के माफिक गढ़ लेती हैं। दासी द्वारा प्रियतम की सेवा करा सुखी होती हैं और दासी को धन्य करती हैं सेवा-सौभाग्य देकर। ''श्रीश्वरीशिक्षिताशेष कलाकौशलशालिनीम्'' (वृन्दावनमहिमामृतम्)। ईश्वरी द्वारा शिक्षा-प्राप्त अनन्त कलाओं में निपुण किंकरी! सखियों के भी प्रेम का आस्वादन करती हैं। सखियों में प्रधान ललिता श्रीमती से प्रार्थना कर रही हैं-'सखि! तुम तुलसी को दिव्यरसकाव्य पढ़ाओ। अपने मन माफिक उसे तैयार कर लो।' श्रीमती तुलसी को रसकाव्य पढ़ायेंगी। सेवा-अवकाश में रसकाव्य-सुनिपुण दासी काव्य का आनन्द लेने वाले युगल को दिव्यरसकाव्य का माधुर्य आस्वादन करायेंगी। यह काव्य-शिक्षा न जाने कितनी-कितनी तरह से सेवा में लगेगी! श्रीयुगल वनविहार को जा रहे हैं। किंकरी जैसे मार्ग को पुष्प बिछाकर कोमल बना रही हैं, वैसे ही स्वरचित काव्य में स्वामिनी का गुणगान कर श्याम को अपार आनन्द-सागर में डुबो रही हैं।

''गायानि ते गुणगणां स्तव वर्त्मगम्यं पुष्पास्तरै र्मृदुलयानि सुगन्धयानि।
सालीततिः प्रतिपदं सुमनोहि वृष्टिं स्वामिन्यहं प्रतिदिशं तनवानि बाढ़म्॥''
(संकल्पकल्पद्रुम-१४)

''हे स्वामिनि! तुम दोनों के विपिन-विहार के समय मैं अपने स्वरचित काव्य में तुम्हारे गुणसमूह का गायन करूँगी। तुम्हारे गमन-पथ पर पुष्प बिछाकर उसे कोमल और सुगन्धित करूँगी तथा सखियों के साथ हर कदम पर हर दिशा में पुष्पवृष्टि करूँगी।'' फिर-

---

''दिव्य-गीति-कला शिखि, तब अभिलाष।
लज्जावती तुमि अति सखीगण पाश॥
हे सदये! निजे तुमि करुणा करिया।
गोवर्द्धन-गिरि-कन्दरेते लैया गिया॥
आग्रह करिया कबे मोरे शिखाइबे।
एमन सौभाग्य हाय! कतो दिने हबे?।''८९॥

प्रेष्ठस्वपाणिकृतकौसुम-हार-कांची-केयूर-कुण्डल-किरीट-विराजिताङ्गीम्।
तां भूषयानि पुनरात्मकवित्वपुष्पैरास्वादयानि रसिकालिततीरिमानि॥''

(वही-१५)

''हे वृन्दावनेश्वरि! तुम्हारे प्रियतम अपने हाथों से कुसुमों के हार, कांची (करधनी), केयूर (बाजूबन्द), कुण्डल-किरीट आदि अलंकार बनाकर तुम्हें विभूषित करेंगे, तो मैं अपने स्वरचित कवित्व-कुसुमों से तुम्हें भूषित करूँगी और वही कविता-कुसुमरस रसिक सखियों को आस्वादन कराऊँगी।'' दासियाँ युगल के चित्त की गति जानती हैं और तदनुरूप रसकाव्य सुनाकर उनकी सेवा करती हैं। 'कितनी-कितनी किंकरियाँ हैं, किन्तु मेरे ही लिये प्रार्थना क्यों?' तुलसी सोच रही हैं। वे लज्जा से मुँह नीचा किये हैं। स्वामिनी उन्हें बुला-पुकार कर दिव्यरसकाव्य पढ़ा रही हैं। अपने प्रति स्वामिनी की करुणा का अनुभव जिन्हें जितना प्राप्त होगा, उन्हें उतना ही स्वरूप का जागरण होगा। बाहर के घात-प्रतिघातों से मुझ-जैसे जीव का स्वरूप सो गया; 'मैं राधा की किंकरी हूँ'-इस आवेश में दिन काट सकें, तो भी लाभ है।

कितने स्नेह से स्वामिनी बुला रही हैं-'तुलसि! तू पढ़ेगि? तू इस समय रोज नियम से मेरे पास पढ़ा कर।' स्वरचित नाटक-काव्य पढ़ा रही हैं। उन दोनों की अपनी ही लीला है, कारण-दिव्य रस अन्यत्र कहीं नहीं। सुदिव्य नायक-नायिका हैं श्रीश्रीराधामाधव। उन दोनों की लीला ही 'दिव्यरस' है। अप्राकृतरसशास्त्रकारों अथवा भक्तिरसशास्त्रकारों के मत में प्राकृत काव्य का प्रकाशित रस प्राकृत-मानवीय चित्तवृत्ति-विशेष है, इसलिये वह मायिक और गुणमय है। स्वरूपत: वह अल्प और क्षणकाल मात्र स्थायी है। श्रीमत् जीवगोस्वामिपाद ने स्पष्ट ही कहा है-''किंच लौकिकस्य रत्यादे: सुखरूपत्वं यथाकथञ्चिदेव,-वस्तुविचारे दु:खपर्यवसायित्वात्। ००० तस्माल्लौकिकस्यैव विभावादे: रसजनकत्वं न श्रद्धेयम्'' (प्रीतिसन्दर्भ-अनु० ११०)-अर्थात् 'लौकिक या प्राकृत रति आदि की सुखरूपता यत्सामान्य है, कारण-वस्तुविचार से लौकिक रति आदि दु:ख में ही पर्यवसित होते हैं (उनका अन्त दु:ख में ही होता है)। ऐसा इसलिये कि भगवान् के पादपद्मों के रसानन्द को छोड़ इस नश्वर जगत् में सभी कुछ दु:खस्वरूप है। अतएव लौकिक रति आदि का रसजनकत्व श्रद्धेय नहीं।'

स्वामिनी ने अन्य नायक-नायिका का नाम रखकर अपने दोनों की लीला का ही रसकाव्य स्वयं ही रचा है। अपनी अन्तरंगजन मानकर प्रेमकर तुलसी को पढ़ायेंगी। कुछ भी गुप्त नहीं रखेंगी। अभिन्नप्राण किंकरी से छिपाने को उनके पास कुछ नहीं। गोपनीय बातें इन किंकरियों को बताने में ही स्वामिनी को आनन्द आता है। नीलाचल में राधाभावाविष्ट श्रीमन्महाप्रभु जब रथ के आगे नृत्य करते थे, तो काव्यप्रकाश के प्राकृत नायक-नायिका-परक इस श्लोक को गाते-'य: कौमारहर: स एव हि वर:''। प्रभु ने इसके भीतर अप्राकृत या दिव्य भगवत् रस का क्या संधान पाया था-यह बात एकमात्र स्वरूप दामोदर को छोड़ और कोई नहीं जानता था। श्रीमत् रूपगोस्वामिपाद ने प्रभु के श्रीमुख से यह श्लोक सुनकर प्रभु के हृदय का भाव समझकर ''प्रिय: सोऽयं कृष्ण:'' श्लोक में उनके मन की बात व्यक्त कर डाली। प्रभु ने श्रीहरिदास की कुटीर में तालपत्र पर लिखे इस श्लोक को देखकर श्रीरूप से सानन्द प्रश्न किया था-

''मोर श्लोकेर अभिप्राय ना जाने कोनोजने। मोर मनेर कथा तुमि जानिले केमने?
एतो बोलि ताँरे बहु प्रसाद करिया। स्वरूपगोसाइँरे श्लोक देखाइलो लैया॥
स्वरूपे पुछेन प्रभु हइया विस्मिते। मोर मनेर कथा रूप जानिलो केमते?
स्वरूप कहेन-जाते जानिलो तोमार मन। ताते जानि-हय तोमार कृपार भाजन॥
प्रभु कहे-तारे आमि सन्तुष्ट हइया। आलिंगन कैलो सर्वशक्ति संचारिया॥
योग्य पात्र हय गूढ़रस-विवेचने। तुमिओ कहिओ तारे गूढ़रसाख्याने॥''

(चै० च०)

व्रज की रूप-तुलसी ही महाप्रभु-लीला में रूप-रघुनाथ हैं। अतएव गोपनीय वस्तु इन लोगों को बताने में ही आनन्द है। जैसी अध्यापिका, वैसी ही छात्रा। एक बात बताते ही सब सीख लेती हैं! इन लोगों को बताते हुए किसी बात की व्याख्या (करनी) कितनी सुन्दर! 'मैं तुम्हारी, दासी हूँ, तुम अपने हाथों मुझे गढ़ोगी।' श्रीमती की दी हुई विद्या से सुशिक्षित होकर ये किंकरियाँ सेवारस में निपुणता प्राप्त करेंगी। श्रीश्रीराधामाधव को मिलाकर (उनका मिलन करा) उनके सेवारस का आस्वादन ही इन लोगों का जीवातु है। उसी कार्य में लगेगा यह काव्य। श्रीराधा हैं विरहिणी। किंकरी श्रीकृष्ण को लाने के लिये जायेंगी। श्रीकृष्ण के आगे काव्यच्छन्द में विरहिणी की अवस्था का वर्णन कर उनसे जल्दी मचाई। 'माधव! तुम यहाँ हो? और वहाँ तुम्हारे विरह में प्रियाजी-

''निन्दति चन्दनमिन्दुकिरणमनुविन्दति खेदमधीरम्।
व्यालनिलय-मिलनेन गरलमिव कलयति मलयसमीरम्।
सा विरहे तव दीना।
माधव! मनसिज-विशिखमयादिव भावनया त्वयि लीना॥'' इत्यादि

(गीतगोविन्दम्)

फिर श्याम के लिये उत्कण्ठा बढ़ाकर स्वामिनी से अभिसार हेतु जल्दी मचायेंगी। तब भी इस काव्य की आवश्यकता होगी।

''रतिसुखसारे गतमभिसारे मदनमनोहरवेशम्।
न कुरु नितम्बिनि गमन विलम्बमनुसर तं हृदयेशम्।
धीरसमीरे यमुनातीरे वसति वने वनमाली।
पीनपयोधरपरिसरमर्दनचंचलकरयुगशाली ॥'' आदि (वही)

यह सब शिक्षा सखियाँ भी किंकरियों को देती हैं, पर स्वामिनी की शिक्षा सबसे ऊपर है। करुणामय श्रीगुरुदेव के समर्पण के माध्यम से स्वामिनी के अङ्गीकार का अनुभव (श्रीगुरुदेव कृपाकर शिष्य को राधारानी के श्रीचरणों में समर्पित करते हैं, तब राधारानी उसे अङ्गीकार करती हैं-यह अनुभव की वस्तु है)! 'मुझे रसकाव्य में पंडित कब बनाओगी?'

''ओगो देवि! तुमि, ललितादेवीर प्रार्थना-अनुसारे।
तव गणमाझे, लज्जानतमुखी, मादृश ए दासिकारे॥
दिव्यरसपूर, काव्यसुमधुर, पड़ाबे प्रणय-वशे।
कबे ए कृपाय, चिरतरे हाय! डुबिबो हरष-रसे?।''९०॥

निजकुण्डतटिकुंजे गुंजद्भ्रमर-संकुले।
देवि त्वं कच्छपी-शिक्षां कदा मां कारयिष्यसि?९१॥

अन्वय-देवि! गुंजद्भ्रमरसंकुले निजकुण्डतटिकुंजे त्वं कदा मां कच्छपीशिक्षां (वीणा-शिक्षां) कारयिष्यसि?९१॥

अनुवाद-हे देवि श्रीराधिके! गुंजन करते भृंगों से भरे अपने कुण्ड-तटवर्ती कुंज में तुम मुझे कच्छपी (वीणा) वादन की शिक्षा कब दोगी?९१॥

वीणा-वादन शिक्षा

परिमलकणा व्याख्या-इस श्लोक में स्वामिनी के निकट वीणा-वादन शिक्षा की स्फूर्ति हुई है। 'हे देवि! तुम मुझे अपने कुण्डतटवर्ती कुंज में वीणा बजाना कब सिखाओगी?' रसकाव्य की तरह वीणा-शिक्षा भी युगल की सेवा में काम आयेगी। सेवामय विग्रह है किंकरी। जहाँ-जहाँ सेवा का सम्पर्क है, उन-उन विषयों में निपुणता प्राप्त करेंगी। स्वामिनी की भी इच्छा है-किंकरी सेवा में निपुणता प्राप्त करें। ऐसी करुणामयी स्वामिनी के चरणों में श्रीगुरुदेव ने मुझे समर्पित किया है; बता दिया है कि स्वामिनी का दासीत्व, स्वामिनी की सेवा ही जीवन का अभीष्ट है। जो अपनी सेवा का काम स्वयं ही किंकरी को सिखा रही हैं, ऐसी स्वामिनी के श्रीचरण, अभीष्टचरण अवज्ञाकर खो रहा हूँ-यह जीवन की कितनी बड़ी व्यर्थता है। आज भी राधादासी के रूप में स्वयं को नहीं पहचान पाया। मिथ्या, क्षणभंगुर देह-दैहिकादि के आवेश में मत्त रहा। जो चिर अपने हैं, उन श्रीराधा-चरणों को हृदय में धारण नहीं कर सका। आचार्यों के आचरण और वाणी के श्रवण-कीर्तन से साधक अपनी दुर्गति की बात जानकर लज्जित होंगे। जो श्रीचैतन्यचरण-कमलों के मकरन्द-पान में मत्त होकर अप्सरा-जैसी भार्या, इन्द्र के-से ऐश्वर्य को मलवत् त्यागकर कंगालों के भी कंगाल बने थे, उन्हीं श्रीदास गोस्वामी ने अपने 'मुक्ताचरित' में लिखा है-''निजामुज्ज्वलितां भक्तिसुधामर्पयितुं क्षितौ। उदितं शचीगर्भवोम्नि पूर्णं विधुं भजे॥'' -जो अपनी उज्ज्वलभक्तिरससुधा का पृथ्वी पर वितरण करने के लिये श्रीशचीदेवी के गर्भाकाश में समुदित हुए हैं, मैं उन्हीं पूर्णचन्द्र श्रीगौरहरि का भजन करता हूँ। हम लोग कैसे युग के मनुष्य हैं? श्रीमन्महाप्रभु द्वारा प्रदर्शित भजनपथ रुचिर पथ है, अनुराग का पथ है-स्वाभाविक ममता और रसबोध का पथ है, प्रेम और परमानन्द का पथ है। भय, सम्भ्रम या बाध्यतामूलक भजन का पथ नहीं। रसानुबोध के बिना सांसारिक कार्यों में भी स्वाभाविक प्रवृत्ति, आसक्ति या अनुराग का उदय नहीं होता। श्रीमन्महाप्रभु द्वारा प्रकाशित या प्रचारित भजन में इसी स्वाभाविक रसानुभूति का संचार होता है। व्रजगोपिकायें श्रीकृष्ण-अनुराग के प्रबल प्लावन (बाढ़) में (किस तरह) डूबी हैं; उनकी कृष्ण-प्राप्ति के मार्ग में कैसे-कितने बाधा-विघ्न आये हैं, पर उन बाधा-विघ्नों ने भी उनके अनुराग की प्रबलता को और भी दुर्दमनीय, और भी वेगवती बनाकर उनमें स्वाभाविक कृष्ण-प्रीति का संचार किया है! उन्हीं व्रजगोपियों की शिरोमणि हैं श्रीराधा; श्रीराधा की पादपद्म-आश्रित हैं किंकरियाँ-इस किंकरी (मंजरी)-भाव की साधना ही लाये हैं महाप्रभु। उनकी दी हुई भजन-शैली में साध्यतत्त्व के सभी प्रकार के भावों और रसों का एकसाथ पूर्णतम समावेश है। यदि इस बात को अब भी नहीं समझ सकते, तो कब समझेंगे?

तुलसी श्रीकुण्डतट पर मधुप-गुंजन से युक्त कुंज में स्वामिनी से वीणा-वादन सीखेंगी। स्वामिनी का कुण्ड है, तभी उसके तट पर तुलसी को इतना उल्लास है। व्रज में तो अनेक लीला-स्थलियाँ हैं, पर रघुनाथ ने स्वामिनी के सरसी-तट को ही अपनी परमाश्रय भजनस्थली के रूप में चुन लिया है। वे उसी कुण्डतट पर भ्रमरों की झंकार से झंकृत मधुर कुंज में वीणा सीखकर युगल की सेवा करेंगे। ''आरब्धरास-रभसां हरिणास त्वां तत्-पठितैव विदूषी कलयानि वीणाम्।' - 'तुम जब श्रीहरि के साथ रासक्रीड़ा के लिये उत्सुक होगी, तो तुमसे सीखी वीणा बजाकर मैं, तुम दोनों की रासवासना को उद्दीप्त कर दूँगी।' स्वामिनी मदनसुखदा कुंज में एक वीणा लेकर बैठी हैं। कैसे वीणा पकड़ी जाती है, कैसे बायें हाथ की अंगुलियों से झंकार दी जाती है-सब बता रही हैं। स्वामिनी के चरणपार्श्व में बैठकर तुलसी वीणा बजाना सीख रही हैं। शुकपक्षी ने श्यामसुन्दर को खबर पहुँचा दी है-'मदनसुखदा कुंज में राधारानी तुलसी को वीणा सिखा रही हैं। श्यामसुन्दर आ पहुँचे हैं। भ्रमर-गुंजित कुंज में स्वामिनी आवेश के साथ वीणा सिखा रही हैं। नागर देख रहे हैं-किस तरह झंकार दे रही हैं! मुग्ध नागर कुंज-द्वार पर जा खड़े होते हैं। हठात् उन पर स्वामिनी की दृष्टि पड़ती है। साथ ही साथ वीणा रख देती हैं। श्याम कहते हैं-'वीणा सिखा रही हो, मैं क्या थोड़ा देख भी नहीं पाऊँगा?' तब स्वामिनी ने तुलसी को वीणा बजाने का आदेश दिया। 'स्वगणोपेन्द्रपादाब्ज-स्पर्शलम्भन-हर्षिणी' (शतनामस्तोत्रम्), अर्थात् 'जो अपनी सखियों के साथ श्रीकृष्ण के पादपद्म प्राप्त कर निरतिशय आनन्द लाभ करती हैं।' किंकरी के साथ श्रीकृष्ण को पाने में और भी आनन्द-संकोचविहीन आनन्द। दासी द्वारा श्याम की सेवा करा स्वामिनी को बड़ा सुख मिलता है। स्वामिनी का आदेश पाकर तुलसी ने वीणा बजाते हुए एक अपूर्व मदनगीत गाया। रस मानो मूर्तिमान् हो उठा! सुनकर दोनों में ही विलास-लालसा उद्दीप्त हुई। धन्य किंकरि! प्रेमीयुगल को रससागर में डुबो दिया। उनकी विलास-वासना के उद्रेक को देख किंकरी कुंज से बाहर चली आईं। मदनसुखदा कुंज में युगल का मधुर विलास। तुलसी लतारन्ध्रों पर आँखें रख युगल-विलास-माधुरी आस्वादन करने लगीं।

''तनु तनु मिलने उपजल प्रेम। मरकत जैछन बेढ़ल हेम॥
कनक-लताये जनु तरुण तमाल। नव-जलधरे जनु बिजुरि रसाल॥
कमले मधुप जेनो पाओल संग। दुहुँ तनु पुलकित प्रेमतरंग॥
दुहुँ अधरामृत दुहुँ करु पान। गोविन्ददास दुहुँक गुण गान॥'' (पदकल्पतरु)

श्याम-जलद की गोद में राधा-बिजुरी-लीलारस की वृष्टि हो रही है। तृषित चातकी की तरह भाग्यवती तुलसी उत्कण्ठा से भरकर प्राण भरकर युगल-विलास-माधुरी आस्वादन कर रही हैं। सहसा स्फूर्ति में विराम आ गया। कुण्डतट पर लोटपोट करते रो रहे हैं। अश्रु-धाराओं से कुण्डतट भीग रहा है। रुँधे गले से विलाप कर रहे हैं।

''तव कुण्डतट-कुंज परमसुन्दर।
पुष्प सब विकसित गुंजरे भ्रमर॥
कबे देवि! सेइ कुंजकुटिर माझारे।
कृपा करि वीणा शिक्षा कराबे आमारे?''९१॥

विहारैस्त्रुटितं हारं गुम्फितुं दयितं कदा।
सखीनां लज्जया देवि संज्ञया मां निदेक्ष्यसि?९२॥

अन्वय-देवि! विहारैः (श्रीकृष्णेन सह कन्दर्प-लीलाभिः) त्रुटितं दयितं हारं गुम्फितुं (छिन्नं तव प्रेमास्पदं हारं ग्रथितुं) सखीनां लज्जया कदा संज्ञया (संकेतेन) मां निदेक्ष्यसि (आज्ञापयिष्यसि) ?९२॥

अनुवाद-हे देवि! श्रीराधिके! श्रीकृष्ण के साथ विहार करने में तुम्हारा प्रिय हार छिन्न हो जायेगा, तब तुम सखियां के आगे लज्जा की बात सोचकर हार गूँथने के लिये मुझे इशारे से आदेश कब करोगी?९२॥

प्रिय हार-गुम्फन

परिमलकणा व्याख्या-श्रीपाद का स्वरूपावेश बड़ा निविड़ है। स्फुरण-धारा में भी विराम नहीं। रह-रहकर लीला की स्फूर्ति हो रही है। पिछले श्लोक में तुलसी ने वीणा-वादन कर अपूर्व सेवा की है। युगल को विलास का उद्दीपन करा झरोखों पर आँखे रख उस विलास-माधुरी के आस्वादन का सौभाग्य प्राप्त किया है। लीला के अन्त में सेवा का समय जानकर कुंज में प्रवेश किया। देखती हैं-लीलावसान में दोनों ही एक-दूसरे के अङ्ग का सहारा लिये बैठे हैं। शृंगाररसरूपी सुनिपुण शिल्पी ने अपने हाथों वेश-रचना की है। असंयत वस्त्र, स्खलित कंचुकी, सिन्दूरलिप्त ललाट, आधी खुली चोटी, छिन्न मणिहार। विलास के अन्त में जब रस स्वामिनी को सजाता हैं, तो श्रीमती की वह माधुरी मूर्तिमान् शृंगार श्रीश्यामसुन्दर को भी विमोहित कर देती है। ''लीलान्ते सुखे इँहार जे अङ्गमाधुरी। ताहा देखि सुखे आमि आपना पासरि॥'' (चै० च०)। आस्वादन अब भी भंग नहीं हुआ। स्वामिनी इंगित कर तुलसी से कहती हैं-'तुलसि! मुक्तामाला टूट गई है, जल्दी से गूँथकर पहना दे।' ''विहारैस्त्रुटितं''-मैंने नहीं तोड़ी, विहार में टूट गई। ललिता-विशाखा अभी आ निकलेंगी। परिहास कर मुझे और साबुत नहीं छोड़ेंगी। शीघ्र गूँथकर पहना।' ये सखियाँ परिहासरस द्वारा युगल के प्रेमसिन्धु को तरंगायित करती हैं। ''प्रेमलीलाविहाराणां सम्यग्विस्तारिका सखी'' (उ० नी०) -श्रीराधामाधव के प्रेम, लीला और विहार की पुष्टि एवं विस्तार करने वाली हैं ये सखियाँ! ''सखी बिना एइ लीलार पुष्टि नाहि हय। सखी लीला विस्तारिया सखी आस्वादय॥'' (चै० च०)। किन्तु निःसंकोच सेवा में मंजरियों का ही एकमात्र अधिकार है। महाभाव का स्वभाव है श्यामसुन्दर को सुखी करना, और मंजरियों का स्वभाव युगल की सेवा करना, उन्हें सुख पहुँचाना। सेवा-सुख के साथ-साथ रहस्यमय लीला के माध्यम से युगलमाधुरी का आस्वादन। सभी शास्त्रों का मत है कि श्रीकृष्ण निरतिशय सुन्दर हैं, किन्तु श्रीमद्भागवत के मत में वही सौन्दर्य श्रीराधा के संग में और भी रमणीय हो उठता है। शुकजी कहते हैं-'तत्रातिशुशुभे ताभिर्भगवान् देवकीसुतः''- श्रीरासमण्डल में व्रजसुन्दरियों के पार्श्व में (बगल में) श्रीकृष्ण ने अतिशय शोभा धारण की थी। सर्वोपरि राधारानी। ऐसी क्या और मिलेंगी? श्रीविशाखानन्दद-स्तोत्र में श्रीपाद ने लिखा हैं-

''गोविन्दानङ्ग-राजीवे भानुश्रीर्वार्षभानवी।
कृष्णहृत्कुमुदोल्लासे सुधाकरकरस्थितिः॥

कृष्णमानसहंसस्य मानसी सरसी वरा।
कृष्ण चातक-जीवातु-नवाम्भोद-पयः श्रुतिः॥
× × ×
कृष्णमंजुल-तापिञ्छे विलसत्-स्वर्णयूथिका।
गोविन्द-नव्यपाथोदे स्थिरविद्युल्लताद्भुता॥
ग्रीष्मे गोविन्द-सर्वाङ्गे चन्द्र-चन्दन-चन्द्रिका।
शीते श्यामशुभाङ्गेषु पीतपट्ट-लसत्पटी॥
मधौ कृष्णतरूल्लासे मधुश्रीर्मधुराकृतिः।
मंजु-मल्लाररागश्रीः प्रावृषि श्यामहर्षिणी॥
ऋतौ शरदि रासैक-रसिकेन्द्रमिह स्फुटम्।
वरीतुं हन्त रासश्रीर्विहरन्ती सखीश्रिता॥
हेमन्ते स्मरयुद्धार्थमटन्तं राजनन्दनम्।
पौरुषेण पराजेतुं जयश्रीर्मूर्तिधारिणी॥''

''प्रेम-सरोवर में श्रीकृष्ण हैं प्रफुल्ल कमल, श्रीराधा प्रभाती अरुणिमा। श्रीकृष्ण का हृदय कुमुद कुसुम, श्रीराधा सुधांशु (चन्द्र)-किरण। श्रीकृष्ण का मानस (हृदय) है राजहंस, श्रीराधा मानस सरसी। श्रीकृष्ण तृषित चातक, श्रीराधा नवघन-वारिधारा। श्रीकृष्णरूपी मंजुल तमाल पर श्रीराधा स्वर्णलतिका। गोविन्द-नवजलधर में श्रीराधा अद्भुत स्थिर सौदामिनी (विद्युत)। निदाघ (ग्रीष्म) के प्रखर ताप में श्रीराधा हैं श्याम-अङ्ग पर चन्दन, कपूर और चन्द्रिका; शीतऋतु में सुन्दर पीतवस्त्र। वसन्त में श्याम-अङ्गरूपी वृक्ष पर मधुश्री मधुराकृति। वर्षाऋतु में श्रीकृष्ण हैं जलधार, श्रीराधा मंजु मल्लार राग। शरद में श्रीकृष्ण रसिकेन्द्र-चूड़ामणि, श्रीराधा साक्षात् रासश्री। हेमन्त में श्रीराधा हैं-स्मरसमर (कन्दर्पयुद्ध) में विजय की अभिलाषा रखने वाले व्रजयुवराज के मानसतुरग (मनरूपी घोड़े) का अपहरण करने वाली जय श्रीमूर्तिधारिणी!''

इस विश्व में जो सुन्दर है, जो मधुर है, जो प्रेम से सम्बद्ध है, प्राणों से जुड़ा है, जो कामना की वस्तु है-श्रीपाद ने उसी का दृष्टान्त लेकर श्रीश्रीराधामाधव के पारस्परिक प्रीतिसौहार्द्य एवं सौन्दर्य-माधुर्य को समझाने की चेष्टा की है। सभी स्मृतियों में श्रेष्ठ है युगल-विलास-स्मृति। साधक को इसी रस में डूबना होगा। 'युगल-विलास स्मृतिसार।' लीला-विशेष में सखियों की उपस्थिति में युगल को संकोच होता है, इसलिये सखियाँ भी मंजरियों को ही निगूढ़ सेवा का आदेश देती हैं।

''ललिता कबे मोरे, बीजन देओब, बीजब मारुत-मन्दे।
श्रमजल सकल, मेटब दुहुँ कलेवर, हेरब परम आनन्दे॥'' (प्रार्थना)

स्वामिनी के स्नेह और लाड़प्यार से दासी का हृदय भरा है। स्नेह-पात्र किंकरी को आदेश दे रही हैं-शीघ्र मुक्तामाला गूँथकर पहनाने के लिये। तुलसी ने राधारानी के चरणों में बैठकर क्षिप्त हाथों से (जल्दी-जल्दी हाथ चला) मुक्तामाला गूँथकर पहना दी। स्वामिनी परम सन्तुष्ट हैं। 'इतनी फुरती से कैसे गूँथी?' स्वामिनी का सन्तोष देखकर तुलसी के आनन्द की सीमा नहीं।

स्वमुखान्मन्मुखे देवि कदा ताम्बूलचर्वितम्।
स्नेहात् सर्वदिशो वीक्ष्य समये त्वं प्रदास्यसि?९३॥

अन्वय-देवि! कदा त्वं सर्वदिशः वीक्ष्य (दिशोऽवलोक्य कदाचित् केनाप्यनभिज्ञ पश्येदिति कृत्वा दिश आशा दृष्ट्वा) स्नेहात स्वमुखात् मन्मुखे समये (योग्य काले) ताम्बूलचर्वितं प्रदास्यसि?९३॥

अनुवाद-हे देवि श्रीराधिके! तुम चारों ओर देखकर स्नेह से भरकर अपने मुख से (निकालकर) मेरे मुँह में चर्वित ताम्बूल कब दोगी?९३॥

चर्वित ताम्बूल प्रदान

परिमलकणा व्याख्या-क्या स्फूर्ति, क्या स्फूर्ति का विराम-दोनों ही स्थितियों में श्रीपाद के हृदय में श्रीराधा के सरस दास्य की प्राप्ति की अटूट वासना अबाध रूप से विद्यमान है। गौड़ीय वैष्णव-साधक को भी हृदय में राधादास्य की वासना जाग्रत रखकर ही भजन करना होगा। यह वासना ही प्रकृति की परिचायक है। हृदय में जैसी इच्छा की परिकल्पना होती है, कार्यक्षेत्र में उसी इच्छा की स्फूर्ति के अनुसार क्रिया का परिणाम होता है, आकृति-प्रकृति उसी के अनुरूप बदलती रहती है। साधक अपने अन्तःकरण में जैसी वासना का पोषण करता है, योगमाया भी उसके हृदय की छवि तदनुरूप प्रत्यंकित कर देती है। इसलिये साधक को हृदय में राधादास्य प्राप्त करने की वासना का सतत पोषण करके ही व्रजलीला का श्रवण-स्मरण आदि करना होता है।

''ये सर्व-नैरपेक्ष्येण राधादास्येच्छवः परम्।
संकीर्तयन्ति तन्नाम तादृशप्रियतामयाः॥'' (वृ० भा० २/१/२१)

''जो लोग सभी प्रकार के साध्य-साधनों की अपेक्षा से रहित हो केवल श्रीराधा के दास्य की कामना करते हैं, अर्थात् 'मैं श्रीराधिका की दासी हूँ'-यही अभिमान रखते हैं और उसकी प्राप्ति को ही अपनी सर्वसिद्धि समझते हैं, उन लोगों का वांछातीत फल स्वतः ही सिद्ध हो जाता है। उनके उस सर्व-असाधारण परम-महाफल की प्राप्ति के लिये उसी प्रकार का सर्व-असाधारण परम-महासाधन ही है-प्रेम भाव से रासरसिक का नाम-संकीर्तन।'' श्रीनामसंकीर्तनप्रधान भागवतधर्म की साधना बड़ी ही रसमय और परमानन्दमय है। संसार में

सेव्य सुखी हो, तभी तो समझें कि सेवा सार्थक हुई। मेरी सेवा उनके लिये सुखकर हुई है कि नहीं, यदि इस बात की सूचना वे स्वयं नहीं देते, तो मैं क्या भजन कर रहा हूँ? स्फुरण में, स्मरण में, स्वप्न में भी सही-थोड़ी-सी अनुभूति तो चाहिये ही! यही साधक-जीवन का भरोसा है। श्रीपाद का स्फुरण का आस्वादन अत्यन्त विचित्र है। साक्षात्कार-जैसा ही निविड़ अनुभव। स्फूर्ति के विराम में वैसा ही हाहाकार और प्रार्थना।

''कन्दर्प लीलाय तव छिन्न प्रियहार।
कबे मोरे आज्ञा हबे ताहा गाँथिबार॥
सखीगण आगे तुमि लज्जावती हबे।
(ताइ) इंगिते आमारे देवि! आदेश करिबे॥''९२॥

भी देखा जाता है, यदि कोई किसी गुणवान् व्यक्ति के रूप-गुण आदि की प्रशंसा या चर्चा करता है, तो वह गुणी व्यक्ति प्रसन्न या सन्तुष्ट होता है, किन्तु तुरन्त ही उत्तर नहीं देता। पर जब उसे नाम लेकर पुकारते हैं, तो वह दूर होते हुए भी और यह जाने बिना ही कि निन्दा हो रही है या प्रशंसा, तुरन्त उत्तर देता है। यह नामसंकीर्तन-प्रदीप्त स्वाभाविक मधुर रस का भजन ही श्रीमन्महाप्रभु के दिये साध्य-अवधि या साध्य-शिरोमणि राधादास्य की प्राप्ति का परम उपाय है। ''हर्षे प्रभु कहेन-शुनो स्वरूप रामराय। नामसंकीर्तन कलौ परम उपाय॥'' (चै० च०)।

'तुलसी ने मन-प्राण को सन्तुष्ट करने वाली सेवा की है। उसे पुरस्कार देना होगा। ललिता आदि आकर देख लेतीं, तो मैं लाज से मर जाती।' यह सोचकर स्वामिनी ने चारों ओर देखकर (तुलसी द्वारा) हार पहनाने के साथ ही गुप्तरूप से अपने मुख का चर्वित ताम्बूल तुलसी के मुँह में रख दिया। प्रियजन को प्रिय सेवा का यथायोग्य पुरस्कार ही दिया! प्रियतम श्यामसुन्दर ने विहार के समय जो चर्वित ताम्बूल स्वामिनी के मुख में रखा था, उसका क्या आस्वादन है-स्वामिनी ही भलीभाँति जानती हैं। ''कृष्ण जे खाय ताम्बूल, कहे तार नाहि मूल, ताहे आर दम्भ-परिपाटी। तार जेबा उद्‌गार, तारे कय अमृतसार, गोपीर मुख करे आलबाटी॥'' (चै० च०)। ताम्बूल में अधरामृत का आस्वादन। ''परम दुर्लभ एइ कृष्णाधरामृत। ताहा जेइ पाय, तार सफल जीवित॥'' (वही) इस अधरामृत की सर्वाधिक आस्वादन-अनुभूति कहाँ है? श्रीकृष्ण के शब्द, स्पर्श, रसादि का माधुर्य अनुभव करने के लिये प्रेम की आवश्यकता है। ''कृष्णमाधुर्यस्य प्रेमैकस्वाद्यत्वम्'' (श्रीजीवपाद)। श्रीकृष्ण का माधुर्य एकमात्र प्रेम द्वारा ही आस्वादित होता है। किन्तु सभी प्रेमी समानरूप से श्रीकृष्ण-माधुर्य आस्वादन करते हों, सो नहीं। ''आमार माधुर्य नित्य नव नव हय। स्व-स्व प्रेम अनुरूप भक्त आस्वादय॥'' (चै० च०)। इस छन्द की टीका में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्तिपाद ने लिखा है-''अयम्भावः नहि वस्तु-सद्‌भाव एव तद्‌ग्रहणे कारणं किन्तु तत्र इन्द्रियाणां शक्तिः। सा च कार्यैकसमधिगम्या यथाकार्य कल्प्यते। अतः यस्य यावदिन्द्रिशक्तिः स तावदेव वस्तु गृह्णाति न तु सर्वे समानमिन्द्रियशक्तेरसमत्वादिति यथा, तथैव प्रत्यक्षीभूतस्य मन्माधुर्यस्य सद्‌भावो न तदास्वादने कारणं किन्तु प्रेमैव, तत्तु मन्माधुर्याद्यनुभवकार्यैकगम्यं यथाकार्यं कल्प्यते। अतः यस्य यावान् प्रेमा स तावान् मन्माधुर्यमास्वादंयति न तु सर्वे समानम्। तथा सति मन्माधुर्यसमग्रास्वादन-कार्यसमधिगम्यसमग्रेण प्रेम्णा एका श्रीराधिका मन्माधुर्य समग्रमास्वादयति अन्ये तु न तद्वदास्वादयितुं शक्नुवन्ति तद्वत् प्रेमाभावात्।'' इस अंश का तात्पर्य यही है कि वस्तु का अस्तित्व ही वस्तुग्रहण का कारण नहीं, इन्द्रियशक्ति ही वस्तुग्रहण का कारण है। फिर इन्द्रियशक्ति है या नहीं, यह भी वस्तुग्रहण द्वारा ही समझा जाता है। उसी प्रकार भगवत् माधुर्य आँखों के आगे रहने से ही उसे सभी ग्रहण कर सकेंगे, यह नहीं कहा जा सकता। प्रेम ही भगवत् माधुर्य को ग्रहण करने का कारण है। भगवन्माधुर्य प्रेम बिना और किसी भी प्रकार आस्वादन नहीं किया जा सकता। फिर प्रेम के तारतम्य (अन्तर) के अनुसार माधुर्य के आस्वादन में भी तारतम्य रहता है। प्रेम है या नहीं, प्रेम का परिमाण क्या हैं- यह भी माधुर्य के आस्वादन द्वारा ही जाना जाता है। राधा का प्रेम अनन्त असीम है, इसलिये श्रीराधा ही श्रीकृष्ण के निःसीम माधुर्य का सम्पूर्ण आस्वादन करने में समर्थ हैं। और किसी का प्रेम असीम नही, इसलिये असीम कृष्ण-माधुर्य के समग्र आस्वादन में और कोई समर्थ नहीं होता। ''एइ प्रेमद्वारे नित्य राधिका एकलि। आमार माधुर्यामृत आस्वादे सकलि॥'' (चै० च०)। यही कारण है कि श्रीकृष्ण के अधरामृत से युक्त चर्वित ताम्बूल का अखण्ड (समग्र) आस्वादन राधारानी ही अनुभव करती हैं। श्रीमन्महाप्रभु

निविड़-मदनयुद्धे प्राणनाथेन सार्द्धं, दयितमधुरकांची या मदाद्विस्मृतासीत्।
शशिमुखि समये तां हन्त सम्भाल्य भंग्या, त्वरितमिह तदर्थं किं त्वयाहं प्रहेया?९४॥

अन्वय-शशिमुखि! प्राणनाथेन सार्द्धं निविड़मदनयुद्धे (श्रीकृष्णेन सह अत्यन्त कामरणे) या दयितमधुरकांची मदात् विस्मृता आसीत् समये (नृत्यकाले) तां भंग्या सम्भाल्य (चातुर्येण अन्विष्य) हन्त तदर्थं इह त्वरितं किं त्वया अहं प्रहेया (प्रेरयितव्या) ?९४॥

अनुवाद-हे शशिमुखि! श्रीकृष्ण के साथ निविड़ मदनसमर में स्मरमदवश तुम अपनी प्रिय सुन्दर कांची कुंज में भूल आओगी, नृत्य के समय खोजने पर वह न मिलेगी, तो हाय! तुम उसे लाने के लिये भंगिमा के साथ क्या मुझे उस कुंज में भेजोगी ?९४॥

प्रिय मधुर कांची

परिमलकणा व्याख्या-श्रीपाद स्वरूपावेश में मर्मसेवा कर रहे हैं और तदनुरूप स्वामिनी के स्नेह-करुणा का आस्वादन भी प्राप्त कर रह हैं। क्या स्फुरण, क्या स्फूर्ति का विराम, राधारानी सतत ही उनके स्मृतिपथ पर विराजमान हैं। श्रीमद्भागवत में श्रीकपिलदेव ने ''मद्गुणश्रुतिमात्रेण'' (३/२९/११-१२) श्लोकों में भगवान् में अविच्छिन्न (अटूट) मनोगति को ही निर्गुणा या स्वरूपसिद्धा भक्ति का लक्षण बताया है। श्रीपाद रामानुजाचार्य

ने यही राधाभाव हृदय में रखकर जब श्रीकृष्ण-अधरामृत का माधुर्य आस्वादन किया, तो अखड अद्वयज्ञान, तत्त्व उस माधुर्य-प्रवाह में किस प्रकार डूब गये-यह श्रीचैतन्यचरितामृत (अन्त्य०, परि० १६) से पता चलता है।

स्वामिनी ने सोचा - 'पुरस्कार देना है, तो यह परम आस्वाद्य वस्तु ही किंकरी को देनी है।' श्रीकृष्णअधरामृत-निषिक्त ताम्बूल परम आस्वाद्य होते हुए भी दासी को उसके प्रति सीधे-सीधे लोभ नहीं है। वह तो स्वामिनी के अधरामृत की ही चिर-भिखारिन हैं। जैसे श्रीमती श्रीकृष्णाधरामृत को छोड़ और कुछ भी ग्रहण नहीं करतीं, वैसे ही दासी भी स्वामिनी के अधरामृत के बिना कुछ नहीं खाती-पीती। अतएव युगल का अधरामृत ही दासी का चिरकाम्य है। कोटिदासी-सुवत्सला स्वामिनी किंकरी को उसका अभिलषित चरणामृत और अधरामृतरस देकर संजीवित रखती हैं। यहाँ तो और भी स्नेहभरा निगूढ़ प्रसाद है। चारों ओर देखकर तुलसी का गला अच्छी तरह पकड़कर 'स्वमुखान्मन्मुखे'-मुँह से मुँह लगाकर वह चर्वित ताम्बूल दिया। पुरस्कार पाकर दासी कृतार्थ! स्फूर्ति का आस्वादन। मुँह खोल दिया हैं, पर चर्वित ताम्बूल तो प्राप्त नहीं हुआ। स्फूर्ति में विराम आ गया। रोदन भरे कण्ठ से करने लगे प्रार्थना-

''अन्य कोनो जन पाछे करे दरशन।
एइ हेतु सर्वदिक् करि निरीक्षण॥
यथाकाले तुमि देवि! चर्वित ताम्बूले।
निज मुख हैते मोर मुखे दिबे तुले॥''९३

ने भी लिखा है- ''ध्रुवानुस्मृतिरेव भक्तिशब्देनाभिधीयते। उपासना पर्यायत्वाद्भक्तिशब्दस्य तैलधारावत् निरवच्छिन्न-स्मृतिप्रवाहरूप-ध्रुवानुस्मृतिध्यानः।''''भगवत्-ध्रुवानुस्मृति ही भक्ति शब्द से अभिहित है। उपासना के क्षेत्र में तैलधारावत् निरवच्छिन्न (निरन्तर) स्मृति के प्रवाह रूप में जो ध्रुवानुस्मृति है-वही ध्यान शब्द से कथित है।'' श्रीमत् जीवगोस्वामिपाद और श्रीपाद बलदेव विद्याभूषण आदि गौड़ीय वैष्णवाचार्यों के मत में भगवान् के प्रति आसक्ति या अनुराग ही भक्ति है। तैलधारावात् अटूट भगवत्-स्मृति-प्रवाहरूपी ध्यान वस्तु भगवान् के नित्यपरिकरों की भगवद् विषयक अनुकूलतापूर्ण अभिलाषाविशेष द्वारा अनुरंजित होकर भगवान् के प्रसाद (कृपा) विशेष से साधक की मन आदि इन्द्रियवृत्तियों में प्रकट होती है और जीव के हृदय में स्थित प्रीति-कणा के साथ तादात्म्य प्राप्त कर पार्षदवर्ग के भाव के अनुरूप प्रीतिरूपता पाती है, प्रीति की जाति और विभुता सम्पन्न होती है। साधनभक्ति की परिपक्वता पर भावभक्ति के स्तर पर चित्त की भाव-तन्मयता से 'ध्रुवानुस्मृति' आती है। नित्यपरिकरों की भावपरिपाटी के श्रवण-कीर्तन-स्मरणादि को द्वार बनाकर ही यह भगवत्-ध्रुवानुस्मृति या रति साधक के चित्त-मन में क्रमशः प्रवेश करती है। श्रीपाद की यह विलापकुसुमांजलि गौड़ीय वैष्णव-साधकों की विशेष आस्वाद्य है। इसका श्रवण-कीर्तन-चिन्तन श्रीराधारानी की ध्रुवानुस्मृति प्राप्त करने की अव्यभिचारी (एकनिष्ठ, स्थायी) साधना है।

स्वरूपाविष्ट श्रीपाद प्रार्थना कर रहे हैं-'हे शशिमुखि! प्राणनाथ के साथ निविड़ मदनयुद्ध का अवसान होने पर अपनी प्रिय कांची कुंज में छोड़ आईं, आकार ध्यान गया कि कटि में कांची नहीं। उसे लाने के लिये तुम क्या मुझे इंगित कर भेजोगी?' कटि-भूषण स्वामिनी को प्रिय क्यों है? वह श्यामसुन्दर को बड़ा सुख देता है। जो वस्तु श्यामसुन्दर को आनन्द देती है, वही राधारानी को प्रिय है। इसलिये नहीं कि वह स्वयं को प्रिय है।

''गोपिका जानेन कृष्णेर मनेर वांछित।
प्रेमसेवा-परिपाटी इष्ट - समीहित॥
सेइ गोपीगण मध्ये उत्तमा-राधिका।
रूपे गुणे सौभाग्ये प्रेमे सर्वाधिका॥'' (चै० च०)

नृत्य के समय श्याम का आनन्द बढ़ाने के लिये और युद्ध के समय मत्तता में वृद्धि करने के लिये वह होनी चाहिये। तभी मधुर कांची स्वामिनी को इतनी प्रिय है। विलास बहुत पहले ही हो गया। श्रीयुगल मणिमय वेदिका पर बैठे हैं। सखियाँ आ गई हैं। वे राधा-श्याम के आनन्द-वर्धन के लिये उनके आगे नृत्य कर रही हैं। विचित्र वाद्यों की ताल के साथ संगीत और निर्गीत मधुर नृत्य।

''मधुर मादल रसाल। मधु मधुर करताल।
मधुर नटन गतिभंग। मधुर मधुर रसरंग॥
मधुर मधुर रसगान। कवि विद्यापति भान॥

सखियाँ स्वामिनी से भी थोड़ा नृत्य करने के लिये आग्रह करती हैं। राधारानी नृत्य करेंगी। श्यामसुन्दर वंशी में फूँक मार रहे हैं।

केनापि दोष-लवमात्र-लवेन देवि, सन्ताड्यमान इह धीरमते त्वयोच्चैः।
रोषेण तल्ललितया किल नीयमानः, संद्रक्ष्यते किमु मनाक् सदयं जनोऽयम्?९५॥

अन्वय-धीरमते (हे धैर्यशालिनी!) देवि! (हे वृन्दावनेश्वरि!) केनापि दोषलवमात्र-लवेन (हेतुना) इह (वृन्दावने) त्वया उच्चैः रोषेण सन्ताड्यमानः अयं जनः तल्ललितया किल नीयमानः (भवत् समीपं प्राप्तितः सन्) उ (भो) किं मनाक् सदयं संद्रक्ष्यते?९५॥

अनुवाद-हे धैर्यशालिनि वृन्दावनेश्वरि! किसी अति अल्प दोष के कारण तुम अतिशय क्रोध से भरकर मुझे इस ब्रज में ताड़ित करोगी, तत्पश्चात् जब ललिता मुझे तुम्हारे पास लायेंगी, तो क्या तुम मेरे प्रति ईषत् कृपादृष्टि निक्षेप करोगी?९५॥

श्रीराधा की भत्स्ना

परिमलकणा व्याख्या-श्रीपाद ने पिछले श्लोक में स्फूर्ति में विलासकुंज से कांची लाकर यथासमय श्रीमती के कटिदेश में पहनाकर श्रीराधा का प्रसाद प्राप्त किया। इस श्लोक में किसी और भी अनिर्वचनीय प्रसाद को पाने की कामना कर रहे हैं। साधक स्मरण में भी श्रीराधा का यत्किंचित् कृपा-प्रसाद अनुभव करने

''रटति रबाब महति कपिनास। राधारमण करु मुरलिविलास॥
रहि रहि राग रचये रसवन्त। रतिरत रागिनी रमण बसन्त॥''

नृत्य करने को होती हैं, तो (स्वामिनी) देखती हैं कि कमर में करधनी नहीं। कांची का शब्द नहीं हो रहा, नाच नहीं जम रहा। तब याद आई कि कांची कुंज में छोड़ आईं। आँखों के इशारे से तुलसी को कांची लाने के लिये भेज रही हैं। तुलसी कुंज में जाकर देखती हैं-अनादर के कारण कांची अभिमान किये है, और नहीं बजती। जो राधारानी की हैं, उनकी ममता की निविड़ता ऐसी ही है। 'तुम मेरी हो। मेरे प्रति तुम्हारी उपेक्षा अनादर प्राणों को सहन नहीं।' तुलसी कांची का मान भंग कर रही हैं-'अरि! निविड़ मदनयुद्ध में मदन-मद में मत्त होकर तुझे भूल गई हैं स्वामिनी। तू उनकी इतनी प्रिय वस्तु है, तुझे क्या वे यों ही जानबूझकर छोड़ गई हैं! लाड़ से वक्ष से लगाकर चुम्बन किया। मान भंग हुआ। कांची मधुर रव से झंकृत हो उठी। गुप्त रूप से ले आईं। 'शशिमुखि' सम्बोधन कर रही हैं। आकर देखती हैं-किंकिणी के लिये स्वामिनी का मन खराब है, तभी 'शशिमुखी', कलंकी चाँद की तरह मुख थोड़ा म्लान है। किसी को पता तक नहीं चलेगा, स्वामिनी का नृत्य भी बन्द नहीं होगा, और (तुलसी) किंकिणी पहना देंगी। सभी की दृष्टि राधारानी पर टिकी है। सभी की दृष्टि से बचकर पहनानी होगी। ये लोग नित्यसिद्धा किंकरियाँ हैं। इन लोगों की सेवा-परिपाटी के चिन्तन से भी साधक का भाव सुष्ठु होगा। नाचते-नाचते श्रीमती की ओढ़नी खिसक जाती है। बस उसी को ठीक करते-करते दूसरों के अनजाने में किंकिणी पहना दी। नृत्यमाधुरी झंकृत हो उठी! स्वामिनी को कैसा आनन्द! सेवा सार्थक हुई जानकर तुलसी के भी आनन्द की सीमा नहीं। सहसा स्फुरण में विराम और प्रार्थना-

''अयि शशिमुखि! तुमि प्राणनाथ सने। प्रमत्ता हइबे जबे मनसिज-रणे॥
भुले जाबे निज प्रिय चारु-चन्द्रहारे। पुनराय मने होले आनिते ताहारे॥
इंगित-भंगीते त्वरा, कबे गो सेथाय। प्रेरण करिबे मोरे दासी बोधे हाय?''९४॥

की चेष्टा करें। स्मरण के समय स्मरणीय भगवान् के रूप-गुण आदि का अनुभव ही भजन-निपुणता या साक्षात् भजन-प्रवृत्ति है। स्मरण आदि भक्ति-याजन अवश्य ही भगवान् की कृपा पर निर्भर करता है, किन्तु साधक के भी मन:संयोग की एकान्त आवश्यकता है। साधक के भजन परिश्रम या भजन-अध्यवसाय के अनुरूप भगवान् की करुणा साधकभक्त में संचारित होती है। अवश्य ही भक्त-अनुरंजन के स्वभाव के पीछे भगवान् की कृपा की ही प्रबलता मुख्य बात है। किन्तु भजन-उत्कण्ठा के बिना उस करुणा को पकड़े रखने या अनुभव करने की योग्यता नहीं आती। दूसरे शब्दों में, बहुत साधन करके भी यदि उनकी कृपा का उद्रेक न हो, तो उन्हें प्राप्त नहीं किया जा सकता।

''नाहि साधनसम्पत्त्या हरि: तुष्यति कर्मवत्।
भक्तानां दैन्यमेवैकं हरितोषणसाधनम्॥''

('सुबोधिनी' टीका में शास्त्रवचन)

अर्थात् 'श्रीहरि केवल साधन-सम्पत्ति द्वारा किसी के प्रति सन्तुष्ट नहीं होते, भक्त का दैन्य ही हरितोषण का साधन है। भक्त का दैन्य ही प्रचुर भगवत्कृपा का उद्भावन (सृष्टि) कराता है।' राधारानी साक्षात् करुणा की ही मूर्ति हैं। उनकी किंकरी उनकी करुणा-धारा में नाना प्रकार से सिंचित होकर धन्य होती हैं। श्रीपाद की स्फुरणधारा उतर आई है।

तुलसी जब कुंज से गुप्तरूप से किंकिणी लेकर आई, तो ललिता की नजर पड़ गई। ललिता ने इशारे से पूछा-'कहाँ गई थी?''पीछे बताऊँगी'-तुलसी ने इशारे से उत्तर दिया। जब पहनाई, तो ललिता को दिखाते हुए पहनाई। और किसी को पता न चला। नृत्य हो गया है। सखियाँ परस्पर परिहासरस में मग्न है। ललिताजी के गूढ़ परिहास से स्वामिनी समझ गईं कि ललिता को कांची की बात का पता चल गया है। किसी कुंज में अकेली तुलसी को बुलाकर स्वामिनी ने खूब ताड़न-भर्त्सन किया। ''ताड़न-भर्त्सन हय कृपार लक्षण।'' जब तक किसी के प्रति एकान्त निजजन का ज्ञान न हो, ताड़न-भर्त्सन नहीं होता। श्रीअद्वैतप्रभु ने श्रीमन्महाप्रभु का दण्ड-प्रसाद पाने के लिये विवश होकर अन्त में ज्ञान को भक्ति से बड़ा बताकर व्याख्या की थी।

'' 'भक्ति' बुझाइते से प्रभुर अवतार।
'हेनो भक्ति ना मानिबो'-एइ मंत्र सार॥
भक्ति ना मानिले, क्रोधे आपना पासरि।
प्रभु मोर शास्ति करिबेक चुले धरि॥'' (श्रीचैतन्यभागवत)

जब श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीनिताइचाँद के साथ शान्तिपुर पहुँचकर श्रीअद्वैत आचार्य को दण्डप्रसाद दिया, तो सजा पाकर आचार्य परमानन्द में नृत्य करते हुए बोले-

''जेनो अपराध कैनु, तेनो शास्ति पाइनु।
भालोइ करिला प्रभु! अल्पे एड़ाइनु॥
एखने से ठाकुराल बुझिनु तोमार।
दोष - अनुरूप शास्ति करिला आमार॥

इहाते से प्रभु! भृत्ये चित्ते बल पाय।
बलिया आनन्दे नाचे शान्तिपुर-राय॥'' (वही)

तभी स्वरूपाविष्ट श्रीपाद कह रहे हैं-'हे स्वामिनि! तुम धीरमती हो, किसी से भी कुछ नहीं कहतीं। किन्तु मेरे प्रति क्रोध से भरकर खूब ताड़न-भर्त्सन करोगी।' तुलसी कहती हैं-'स्वामिनि! मेरा दोष क्या है?' स्वामिनी-'ललिता को क्यों दिखाई? ललिता ने मुझसे परिहास किया। जा, कुंज से निकल जा।' तुलसी सोच रही हैं-'मारो पकड़ो, कुछ भी करो, तुम्हारे चरण छोड़ कहाँ जाऊँगी? मेघ वज्राघात भी करें, चातकी फिर भी उन्हीं को चाहती है।' यही है प्रीति का स्वाभाविक धर्म।

''स्तोत्रं यत्र तटस्थतां प्रकटयच्चित्तस्य धत्ते व्यथां
निन्दापि प्रमदं प्रयच्छति परिहासश्रियं विभ्रती।
दोषेण क्षयितां गुणेन गुरुतां केनाप्यनातन्वती
प्रेम्णः स्वारसिकस्य कस्यचिदियं विक्रीड़ति प्रक्रिया॥'' (विदग्धमाधव-५/४)

''जिस (प्रेम) में प्रशंसा उदासीनता दिखाने के कारण चित्त को व्यथा पहुँचाती है, निन्दा भी परिहास-श्रीपोषण करते-करते आनन्द देती है, किसी दोष के कारण जिसका ह्रास नहीं होता और गुण से जिसकी वृद्धि नहीं होती, उसी अनिर्वचनीय सहज प्रेम की प्रक्रिया प्रकट हो रही है। ''तुलसी स्वामिनी की कितनी प्रिय हैं। इस जगत् में अमुक मुझे खूब प्रेम करता है, अमुक श्रद्धा करता है-यही सोचकर मुझ-जैसे जीव का चित्त भर उठता है। किन्तु इस प्रेम या श्रद्धा का मूल्य कितना? जिस दिन राधारानी के सखीमंजरी-समाज में स्वरूप का आदर होगा (साधक के सिद्धस्वरूप को स्वीकार किया जायेगा)-उसी दिन होगी सार्थकता।

स्वामिनी ने भर्त्सना कर दी। लाड़ली दासी कुंज के बाहर बैठी रो रही हैं। आँसुओं से वक्ष भीग रहा है। ललिता आ निकलती हैं। उन्हें देखकर आँचल में आरक्तिम मुख छिपाकर फूट-फूटकर रोने लगती हैं। ललिता पूछती हैं-'क्या हुआ?' कण्ठ में वाणी नहीं। प्रश्न से लाड़ली दासी के रोदन का वेग और भी बढ़ गया है। ये लोग बड़ी स्नेहवती हैं। जैसे राधारानी की, वैसे ही ललिता आदि सखियों की भी स्नेह-करुणा की पात्र। ललिता सब समझ गईं। कांची दिखाई थी, यह उसी दोष का दण्ड है। लाड़-प्यार में पली दासी को हाथ पकड़कर स्नेहपूर्वक राधारानी के पास ले गईं। स्वामिनी से उनका दोष क्षमा करा रही हैं-'मेरे अनुरोध पर दिखाई है, इसका क्या दोष? दोष मेरा है। मुझे भर्त्सना करो, जो करना है मेरे साथ करो। इसे कुछ मत कहो।' करुणामयी स्वामिनी ललिता की बात सुनकर स्नेहपूर्वक आँखों की कोरों से तुलसी की ओर देखती हैं। भर्त्सना भी निविड़ करुणा का ही आस्वादन है। धन्य राधादासीत्व। महाप्रभु का महादान। करुणामयी स्वामिनी स्नेह-सुधा-मिश्रित कटाक्ष निक्षेप कर रही हैं दासी के प्रति। कितनी करुणा-निर्झर बह रही है नयन-कोरों से! राधादासीत्व के अभिमान में अनिर्वचनीय रस की सिद्धि! श्रीपाद रघुनाथ व्रजरस के मंत्रद्रष्टा-ऋषि हैं। व्रजरस अप्राकृत और चिन्मय है। जिस हृदय में प्राकृत भाव की गन्ध भी विद्यमान है, उसमें इस रस का स्फुरण नहीं हो सकता। उन-जैसे रसिकभक्त के कृपाप्राप्त साधक के चित्त में-साधनभक्ति द्वारा परिमार्जित स्फटिकमणि की तरह स्वच्छ चित्त में-आचार्यपादों के हृदय के रागचन्द्रमा की रसकौमुदी स्वतः प्रकट होती है। यही भक्तिरसशास्त्र का

तवैवास्मि तवैवास्मि न जीवामि त्वया बिना।
इति विज्ञाय देवि त्वं नय मां चरणान्तिकम्॥९६॥

अन्वय-देवि! (अहं) तवैवास्मि तवैवास्मि त्वया बिना न जीवामि इति विज्ञाय त्वं मां (तव) चरणान्तिकं नय॥९६॥

अनुवाद-हे देवि श्रीराधिके! मैं तुम्हारी ही हूँ, मैं तुम्हारी ही हूँ, मैं तुम्हारे बिना जीवित नहीं रह सकती-यह जानकर तुम मुझे अपने श्रीचरण-प्रान्त में ले जाओ॥९६॥

पूर्णतम शरणागति

परिमलकणा व्याख्या-स्वरूपाविष्ट श्रीपाद स्फूर्तिप्राप्त लीलाओं में सिद्धस्वरूप से (तुलसीमंजरी रूप में) सेवाओं का सौभाग्य प्राप्त करते रहे हैं; फिर जब स्फुरण में विराम आया है, तो विलाप करते हुए स्वामिनी के चरणों में उन-उन सेवाओं को प्राप्त करने की कामना व्यक्त करते रहे हैं-विलापकुसुमांजलि की श्लोकावली में वही कामना-ज्ञापन है। इस श्लोक से आरम्भ कर अंतिम श्लोक तक (संख्या ९६-१०४)- नौ श्लोकों में श्रीपाद ने स्वरूपावेश में स्वामिनी के चरणों में, श्रीकुण्ड के प्रति, गोविन्दचरणों में और विशाखा सखी से अभीष्ट-सिद्धि के लिये प्रार्थना की है। इस श्लोक में विरही श्रीपाद स्वामिनी का साक्षात् श्रीचरणासान्निध्य पाने के लिये स्वामिनी के चरणों में ही पूर्णरूप से शरणागत हुए हैं। शरणागति ही भक्तिसाधना की जीवनीशक्ति है। साधनस्तर पर सबसे पहले श्रीभगवत् पादपद्मों में शरणागति की प्रधानता है। शरणागत होकर ही भगवत्पादपद्म-भजन करना होता है। शरणागति का भाव हृदय में जड़ न जमाये, तो भजन-साधन नहीं होता। जिसकी जिस मात्रा में शरणागति, उसकी उसी मात्रा में भजन में अग्रगति। इसीलिये शरणागति की भक्तिसाधन के नित्यकर्म के रूप में गणना हुई है। भजनसाधन परिपक्व होने पर साधक जितना ही सिद्धि की ओर अग्रसर होता है, उसके चित्त में शरणागति का भाव उतना ही उच्छलित होता है (उमड़ता है)। शरणागति साधन और

सिद्धान्त है। तुलसी पर स्वामिनी प्रसन्न हैं। तुलसी मन ही मन सोच रही हैं-'तुलसी तो तुम्हारी ही है। गुस्सा करो, चाहे जो करो, हर अवस्था, में तुलसी तुम्हारी ही है। परिपूर्ण शरणागति।' स्फूर्ति में विराम आ गया, प्रार्थना करने लगते हैं-

''हे धैर्यशालिनि! राधे! ए व्रजमण्डल माझे,
अति अल्प दोषेर कारण।
अतिशय रोषभरे, डाकिया आनिया मोरे,
करिबे गो ताड़न-भर्त्सन॥
जानिया तोमार गुण, ललिता आमारे पुनः,
लये जाबे तोमार सकाशे।
ना रहिबे रोष तबे, तव कृपादृष्टि हबे,
पुरिबे गो मम अभिलाषे॥''९५॥

साध्य दोनों ही है। साध्य प्रेमभक्ति भगवत्प्राप्ति होने पर एकमात्र शरणागति में ही पर्यवसित होती है। तब साधक का 'तदैकजीवन' हो जाता है। उसी की चरम अवस्था में स्थित हैं श्रीपाद और उसी अवस्था की यहाँ अभिव्यक्ति है।

'यह तुलसी तुम्हारी ही है, तुम्हारी ही। तुम्हें छोड़ बचूँगी नहीं।' आत्मसमर्पण की पराकाष्ठा। भगवान् के दासत्व में ऐसा प्रगाढ़ आकुलतामय ममत्वपूर्ण आत्मसमर्पण नहीं-जैसा राधाकिंकरी का है। 'यह तुलसी तुम्हारी ही है।' भजनरस-विभावित मधुर-मधुर महावाणी! इस वाणी के श्रवण-कीर्तन से माधुर्योपासकों का जीवन धन्य होगा। जैसे उषा के आलोक में विकसित शतदल अपने प्राण-मत्त करने वाले (मादक) सौरभ से मधुकर का चित्त आकर्षित करता है, वैसे ही भजन-रस-मकरन्द से भरी वाणी के सौरभ से साधक का चित्त-मन श्रीराधाचरणों में आकृष्ट होगा ही। तुलसी प्रीतिरस-सिक्त प्राण-कुसुम श्रीमती के चरणों में समर्पित कर रही हैं। ''पिरिति रसेते डालि, तनु मन दियाछि तुहारि पाय। तुमि मोर पति, तुमि मोर गति, प्राण आर नाहि चाय।'' नित्यसिद्धा किंकरी। साधकावेश में श्रीराधा-विरह में कितनी आर्ति भोग कर रही हैं। श्रीमती के विरह में अब क्षणभर भी नहीं बच पायेंगे। स्वयं भजन कर भजन-उत्कण्ठा आर्ति के प्रति विश्व-भर के साधकों की दृष्टि आकर्षित कर रहे हैं। अभाव-बोध जाग्रत कर भजन किस प्रकार करना होगा, स्वयं आचरण कर शिक्षा दे रहे हैं। इस रस का आस्वादन जीवन में (हम लोग) नहीं पाते। भजन से आनन्द मिलता है, सो भजन करते हैं। किन्तु राधारानी का अभाव तो स्वप्न में भी हृदय में नहीं जगता। श्रीरघुनाथ की उत्कण्ठा देखिये! 'मन-प्राण एककर कह रहा हूँ-मैं तुम्हारा ही हूँ। तुम्हारे चरण छूकर शपथ खाकर कहता हूँ-मैं तुम्हारा ही हूँ। तुम्हें छोड़ नहीं बचूँगा। तुम्हारी सेवा से विच्युत होकर तुम्हारे कुण्डतट पर पड़ा हूँ। बिना किसी कपट के कहता हूँ, और नहीं बचूँगा।'

स्वामिनी की विरह-यंत्रणा सहने की और शक्ति नहीं। विरह-विष-ज्वाला से श्रीपाद रघुनाथ के प्राण कण्ठ में आ गये हैं। विरहानल में देह, मन, प्राण जल रहे हैं। श्रील गोस्वामिपादगण विरह रस की ही मूर्तियाँ हैं। दास गोस्वामिपाद आदर्श हैं। ''दासगोस्वामीर कथा कहने ना जाय। निरन्तर दग्ध हिया विरह-व्यथाय॥' प्रगाढ़ विरह में अत्यन्त कातर हो श्रीराधा का रहोदास्य पाने के लिये रागयज्ञ के ये महाऋत्विक् व्याकुलचित्त हो अनाहार-अनिद्रा में श्रीराधाकुण्ड-तट पर दिनरात आँसू बहाते क्रन्दन कर रहे हैं। सब कुछ भूलकर केवल श्रीराधा-पादपद्मों की प्रेमसेवा का अधिकार चाहते हैं, और कुछ नहीं। कितनी आशा लेकर प्रियाजी के सर्वाधिक प्रिय स्थान उनके कुण्ड-तट का आश्रय लिया है। कितने दिन, कितने महीने, कितने वर्ष बीत गये; प्राणेश्वरी के दर्शन और अभीष्ट सेवा तो नहीं मिली। विरह-दु:ख-दावानल में दग्ध इन प्राणों को और रखने से क्या लाभ? न जीवामि त्वया बिना।'

श्रीगौरसुन्दर के एकान्त स्नेह-कृपा-अभिषिक्त हैं श्रीरघुनाथ। विप्रलम्भरसघन मूर्ति श्रीगौरसुन्दर की सुगम्भीर-लीला के दीर्घकालीन संगी और साक्षात् द्रष्टा हैं। भजननिष्ठ प्रेमीजन श्रीगौरसुन्दर की गम्भीरालीला का रसास्वादन कर समझ सकते हैं-भगवान् कैसे मधुरतम हैं, वे प्राणों के कितने प्रियतम हैं, और उनके प्रेम का आकर्षण कितना प्रबल है। उनका साक्षात्कार पाने के लिये प्रेमिकभक्ति की कितनी व्याकुलतामयी चेष्टा है। अन्त में मूर्छा के बहाने नीरव-स्पिन्द भाव से उस महाप्रेमरसमय का रसास्वादन भी कितना सुधामाधुरीपूर्ण है!!

स्वकुण्डं तव लोलाक्षि सप्रियायाः सदास्पदम्।
अत्रैव मम संवास इहैव मम संस्थितिः॥९७॥

अन्वय-लोलाक्षि! स्वकुण्डं (राधाकुण्डं) सप्रियायाः तव सदा आस्पदं (सकृष्णायास्तव प्रेमास्पदं) अत्रैव मम संवासः इहैव मम संस्थिति (महत्कार्यानुरोधेऽपि अन्यत्र कुत्राप्यगत्वा सम्यङ् निवसति ष्ठा-गतिनिवृत्ताविति धात्वर्थानुस्मरणात्) ॥९७॥

अनुवाद-हे चंचल नयने श्रीराधे! यह श्रीराधाकुण्ड तुम्हारा और तुम्हारे प्राणवल्लभ

आज भी नीरव निस्तब्ध गम्भीरा के स्मृतिचिन्ह देखकर भावुक भक्तहृदय स्वभावतः निदारुण विप्रलम्भ (विरह, वियोग) रस की विशाल तरंगों के आघात से अधीर हो उठता है! उस निभृत गम्भीरा की गहन निस्तब्धता भेदकर झींगुर के शब्द (आवाज) की तरह एक अविराम करुणस्वर आज भी कानों में प्रवेश करता है-

''काँहा करों काहाँ पाउँ व्रजेन्द्रनन्दन।
काहाँ मोर प्राणनाथ मुरलीवदन॥
काहारे कहिबो केबा जाने मोर दुःख।
व्रजेन्द्रनन्दन बिना फाटे मोर बूक॥''

इस सुविशाल विरह-सिन्धु में रघुनाथ ने नित्य अवगाहन किया है-बहुत समय नीलाचल में प्रभु की श्रीचरण-छाया में रहकर। तभी प्रभु की कृपा से वह विशाल विपुल आर्ति-उत्कण्ठा थोड़ी-सी श्रीरघुनाथ में भी संक्रमित हुई है।

रघुनाथ प्रगाढ़ आर्ति के साथ स्वामिनी के चरणों में निवेदन कर रहे है-'श्रीचरण-सान्निध्य से वंचित होकर और कितने दिन रहूँगी? इस जीवन में तो तुम्हें छोड़ और किसी के चरणों में आत्मसमर्पण किया नहीं। यह बात समझकर अपने उदार स्वभाव से करुणा कर दीन दासी को शीघ्र श्रीचरणप्रान्त में ले जाओ।' श्रीपाद के कातर क्रन्दन से श्रीकुण्ड की समस्त प्रकृति शोकाकुल है। श्रीकुण्डतीर-नीरस्थ समस्त प्राणी एक अखण्ड विषाद में मग्न हैं। विरह में मूर्छित-प्राय श्रीपाद की जिह्वा पर स्पन्दित हो रहा है-'नय मां चरणान्तिकम्'।

''जीवने मरणे निति, तुमि से आमार गति,
आमि जे तोमारि-आमि तोमारि।
तोमा बिना ए जीवन, बुझिलाम अकारण,
भार मात्र बहि सदा फिरि॥
इहा जानि देवि! मोरे, दासी अङ्गीकार करे,
निज पादपद्मे दाओ स्थान।
से स्निग्ध चरण-छाय, कबे गो जुड़ाबे हाय!
दासीर ए तापित पराण?''९६॥

श्रीकृष्ण का परम प्रिय प्रेमविलास-स्थल है। अतएव इसी कुण्डतीर पर ही मेरा वास और नित्य स्थिति हो॥९७॥

श्रीराधाकुण्ड पर संस्थिति

परिमलकणा व्याख्या-श्रीपाद ने पिछले श्लोक में राधारानी के श्रीचरण-सान्निध्य की कामना की है। अभीष्ट की साक्षात् श्रीचरण-सेवा पाने की लालसा के साथ-साथ प्रेम के स्वभाववश चित्त में विपुल दैन्य का उद्रेक हुआ है। दैन्य के उदय होने से अपनी अयोग्यता की स्फूर्ति के कारण रोदन कर रहे हैं। बड़े ही दुर्लभ हैं श्रीराधाचरण। ब्रह्मा, महेश्वर, उद्धव आदि के लिये भी सुदुर्लभ हैं जिन श्रीचरणों की रेणु-कणिका। ''ब्रह्मेश्वरादि-सुदुरुह-पदारविन्द, श्रीमत्पराग-परमाद्भुत-वैभवाया:'' (राधारससुधानिधि-३)। श्रीपाद सोच रहे हैं-हाय! मैं क्या इतने दुर्लभ श्रीराधाचरणों की प्राप्ति के योग्य हूँ? हे चंचलनयने! हे स्वामिनि! मैं तुम्हारी चरण-सेवा के सर्वथा अयोग्य हूँ, तभी कहता हूँ-यह श्रीकुण्ड तुम्हारा प्रियतम है, तुम्हारे प्राणनाथ का प्रियतम है, कारण-तुम दोनों के प्रेमविलास का ऐसा सुन्दर स्थान व्रज में और कहीं नहीं। हे ईश्वरि! (ऐसी कृपा करो कि! यहीं मेरा वास हो; तुम्हारा कुण्ड छोड़ मुझे कहीं न जाना पड़े।' श्रीराधाकुण्ड के आस्वादन से श्रीपाद का हृदय भरा है। जब-जब श्रीराधाकृष्ण की श्रीचरण-सेवा-प्राप्ति दुर्लभ लगी है, तभी श्रीकुण्डवास का संकल्प श्रीपाद के मन में जगा है। स्तवावली के अन्त में प्रार्थनाश्रय-चतुर्दशक (३) में श्रीरूपमंजरी के चरणों में अनुरूप प्रार्थना की है-

''उदञ्चत् - कारुण्यामृतवितरणैर्जीवित- जगद्-
युवद्वन्द्वं गन्धैर्गुणसुमनसां वासितजनम्।
कृपाञ्चेन्मय्येवं किरति न तदा त्वं कुरु तथा।
यथा मे श्रीकुण्डे सखि! सकलमङ्गं निवसति॥''

अर्थात् ''समुदित कारुण्यामृत का वितरण कर जिन युगलकिशोर ने विश्ववासियों को जीवित किया है और जिन्होंने अपने असीम गुणरूपी कुसुमों के सौरभ से सभी को सुरभित किया है, यदि वे श्रीश्रीराधामाधव मुझ पर कृपा न करें, तो हे सखि रूपमंजरि! तुम ऐसी व्यवस्था करना कि मेरी यह देह चिरदिन श्रीराधाकुण्ड का वास प्राप्त करे और वहीं मेरा देहपात हो।'' इस श्लोक में भी श्रीपाद का श्रीकुण्डवास और श्रीकुण्ड पर देहपात का सुदृढ़ संकल्प प्रकाशित हुआ है।

''अत्रैव मम संवास''-इस कुण्डतट पर ही मेरा सम्यक्रूप से वास हो। महत् कार्य को लेकर भी मुझे श्रीकुण्ड छोड़ अन्यत्र न जाना पड़े। तभी कहा है-'इहैव मम संस्थिति।' 'स्था'-धातु गति-निवृत्ति के अर्थ में प्रयुक्त होती है। साधनसिद्धि के मूल में ऐसी अचल-अटल प्रतिज्ञा महानुभावों में ही देखने को मिलती है। भगवान् बुद्धदेव ने सिद्धि से पूर्व जो दृढ़ संकल्प किया था, वह साधक समाज में सुविदित है। बोधि-वृक्ष के नीचे बैठकर उन्होंने प्रतिज्ञा की थी-

''इहासने शोष्यतु मे शरीरं त्वगस्थिमांसं विलयञ्च यातु।
अप्राप्य बोधिं बहुकल्पदुर्लभां नैवासनात् कायमतश्चलिष्यते॥''

अर्थात् ''इस बोधिवृक्ष के नीचे ध्यानासन पर उपविष्ट मेरा शरीर अनाहार-अनिद्रा से सूख जाय, मेरी देह की त्वचा, अस्थि, मांस आदि विलीन हों। फिर भी बहुकल्प साधनापेक्ष ज्ञान की प्राप्ति तक मेरी देह इस आसन से किंचित् मात्र भी विचलित न हो।'' श्रीमत् दासगोस्वामिपाद का ''अत्रैव मम संवास इहैव मम संस्थिति''- यह वाक्य भी उक्त संकल्प के दृढ़ता-अंश में समान है। इसी प्रार्थनाश्रयचतुर्दशक में ही (१३/१४) कहते हैं-

''गिरिवरतट-कुंजे मंजु-वृन्दावनेशा, -सरसी च रचयन् श्रीराधिका-कृष्ण-कीर्तिम्।
धृतरति रमणीयं संस्मरंस्तत्पदाब्जं, व्रजदधिफलमश्नन् सर्वकालं वसामि॥
वसतो गिरिवरकुंजे, लपतः श्रीराधिकेऽनु कृष्णेति।
धयतो व्रज-दधितक्रं, नाथ सदा मे दिनानि गच्छन्तु॥''

अर्थात्-''गोवर्धन-गिरि के कुंज के निकट जो मनोहर श्रीराधाकुण्ड है, वहीं श्रीराधाकृष्ण का गुणगान करते हुए, सानुराग उनके श्रीचरणकमलों का स्मरण करते हुए व्रज का दधि (दही) और फल खाकर चिरकाल वास करूँगा। हे नाथ! हे रूपगोस्वामिन्! गोवर्धन गिरिकुंज में वास, 'श्रीराधाकृष्ण' यह नाम उच्चारण और व्रज का दधि एवं तक्र (छाछ) पान करते हुए मेरे दिन बीतें।'' भावावेग की अतिशयता में श्रीपाद रघुनाथ ने बार-बार ऐसी प्रार्थना की है। दिनरात शयन में स्वप्न में उनकी वही एक अभीष्ट वस्तु-श्रीराधिका के रहोदास्य की प्राप्ति-वही नाना प्रकार से नानाप्रकार की शब्दावली में अभिव्यक्त हुई है। उनकी भाव-तटिनी (नदी) वर्षा के विपुल वेग से पुष्ट नदी की तरह उत्ताल तरंग-भंग के साथ श्रीराधा के सेवारस-सिन्धु की ओर व्याकुलभाव से निरन्तर दौड़ती रही है। उस गति का विराम नहीं, विश्राम नहीं!!

'हा स्वामिनि! तुम हो महाभावमयि, तुम्हारी चरण-सेवा पाने की लालसा मेरे-जैसे अयोग्य व्यक्ति के लिये बौना होकर चाँद पकड़ने की वासना की तरह है। पर उस लालसा का त्याग करते भी नहीं बनता। दुर्बार लोभ योग्य-अयोग्य के विचार को दबाकर प्रबल हो उठता है। तभी लोभवश निरुपाय होकर मैंने जैसे ही सोचा कि मुझ-जैसे अयोग्य-अधम को भी तुम्हारी चरण-सेवा दिला दे ऐसा दयालु कौन है, तो तुम्हारे प्रिय कुण्ड की बात ध्यान में आई। हे खंजनाक्षि! यही कृपा करो कि मैं सदा कुण्डतीर पर पड़ा रह सकूँ। यह कुण्ड तुम दोनों का अति प्रिय स्थान है, इसी कारण कुण्डाश्रयी मेरे प्रति भी, तुम दोनों की कृपा अवश्य ही होगी। तुम दोनों की प्रेममय कुण्डविलास की छवि किसी मुहूर्त मुझ-जैसे दुर्गत जीव की आँखों के आगे अवश्य ही फूट उठेगी!'

''चंचल नयनि राइ, एइ भिक्षा तोमा चाइ,
शुनो मोर मनेर वासना।
तव कुण्ड अति सान्द्र, प्रेम-विलासेर केन्द्र,
एइ स्थाने करिया करुणा॥
वास मोरे दिबे निति, नित्य मोर हबे स्थिति,
कुतूहले रहिबो पड़िया।
सखी प्रियतम सने, (तव) प्रेमलीला दरशने,
(कबे) आनन्दे भासिबे मोर हिया?''९७॥

हे श्रीसरोवर सदा त्वयि सा मदीशा, प्रेष्ठेन सार्द्धमिह खेलति कामरङ्गैः।
त्वञ्चेत् प्रियात् प्रियमतीव तयोरितीमां, हा दर्शयाद्य कृपया मम जीवितं ताम्॥९८॥

अन्वय–हे श्रीसरोवर (श्रीराधाकुण्ड!) सा मदीशा (श्रीराधा) प्रेष्ठेन सार्द्धं (श्रीकृष्णेन सह) त्वयि इह (तत्समीपस्थेऽत्र कुंजे) सदा कामरंगैः खेलति त्वञ्चेत् तयोः प्रियात् अतीव प्रियं (चेद यदि राधा–कृष्णयोरतीव प्रिय त्वं) इति (हेतोः) कृपया मम जीवित ताम् इमाम् अद्य दर्शय (मम जीवनरूपाम् इमां राधाम् अद्य दर्शय)॥९८॥

अनुवाद–हे श्रीराधाकुण्ड! मेरी ईश्वरी श्रीराधा अपने प्रियतम श्रीकृष्ण के साथ तुम्हारे समीप स्थित कुंज में विविध प्रकार की कामविलास–लीलायें किया करती हैं। तुम उन दोनों के प्रिय से भी अति प्रिय पात्र हो, इसलिये कृपाकर मेरी जीवनस्वरूपा श्रीराधा के मुझे आज दर्शन कराओ॥९८॥

श्रीकुण्ड से प्रार्थना

परिमलकणा व्याख्या–श्रीराधाकुण्ड की महिमा में श्रीपाद का चित्त तन्मय है। पिछले श्लोक में जब अपनी अयोग्यता का स्फुरण हुआ, तो उन्हें राधारानी के साक्षात् दर्शन या सेवाप्राप्ति अतिशय दुर्लभ लगी और उन्होंने दैन्य से भरकर श्रीमती के चरणों में प्रार्थना की कि वे निष्ठापूर्वक श्रीकुण्ड–वास कर सकें, ऐसी कृपा करें। इस श्लोक में कुण्ड–महिमा की स्फूर्ति होने पर वे अधीर प्राणों से प्रार्थना कर रहे हैं कि उनकी प्राणस्वरूपिणी राधारानी के दर्शन वे (श्रीकुण्ड) उसी दिन करायें। कारण यह है कि श्रीकुण्ड किसी भी साधन–भजन विहीन व्यक्ति को योग्यायोग्य पात्रापात्र विचार किये बिना श्रीयुगलचरणों में प्रेम दान कर धन्य करते हैं। यह श्रीपाद की प्रत्यक्ष अनुभूति है! श्रीकुण्डाष्टक (५) में उन्होंने लिखा है–

''अपिजन इह कश्चिद् यस्य सेवाप्रसादैः प्रणयसुरलता स्यात्तस्य गोष्ठेन्द्रसूनोः।
सपदि किल मदीशा–दास्य–पुष्पप्रशस्या–स्तदति–सुरभि राधाकुण्डमेवाश्रयो मे॥''

''जिन श्रीराधाकुण्ड के प्रसाद से, अर्थात् वास–स्नान–दर्शन–स्पर्श आदि सेवाओं की अचिन्त्य शक्ति के प्रभाव से, विवेक आदि से शून्य अति अयोग्य व्यक्ति के हृदय में भी मेरी ईश्वरी श्रीराधा के दास्यरूपी पुष्पदल से शोभित श्रीकृष्ण–प्रेमकल्पलता शीघ्र ही उत्पन्न होती है, वे ही अति रमणीय श्रीकुण्ड मेरा आश्रय हों।'' यह श्रीकुण्ड विलासीयुगल श्रीराधामाधव का प्रिय से भी प्रियतम है, कारण – इस कुण्ड के चारों ओर अवस्थित निर्जन, अति मनोरम कुंज में उन (युगल) का अति रहस्यमय विलास हुआ करता है। तभी श्रीपाद ने श्रीव्रजविलासस्तव (५३) में लिखा है–

''वृन्दाविपिनं सुरम्यमपि तच्छ्रीमान् स गोवर्द्धनः
सा रासस्थलिकाप्यलं रसमयी किं तावदन्यत् स्थलम्।
यस्याप्यंशलवेन नार्हति मनाक् साम्य मुकुन्दस्य तत्
प्राणेभ्योप्यधिकप्रियेव दयितं तत्कुण्डमेवाश्रये॥''

''अन्य स्थलों की तो बात ही क्या? व्रजमण्डल में ही जो श्रीश्रीराधामाधव के रहस्यमय विलास के स्थान हैं–जैसे परम सुरम्य श्रीवृन्दावन, अति शोभाशाली श्रीगोवर्द्धन, परम रसमयी श्रीरासस्थली–वे भी अंश

लवमात्र में भी जिनके समकक्ष नहीं हो सकते, और जो प्राणों से भी अधिक प्रियतमा श्रीराधा की तरह ही मुकुन्द को प्रिय हैं, मैं उस श्रीराधाकुण्ड का ही आश्रय लेता हूँ।'' यह श्रीकुण्डाश्रयी श्रीपाद की श्रीकुण्ड के प्रति ममता की अधिकता के वश कुछ अतिरंजित स्तुति हो, सो बात नहीं, श्रीपद्मपुराण में भी देखने में आता है-

''यथा राधा प्रिया विष्णोस्तस्याः कुण्ड प्रियं तथा।
सर्वगोपीषु सैवैका विष्णोरत्यन्तवल्लभा॥''

''श्रीराधा श्रीकृष्ण की जैसी प्रिय हैं, श्रीराधाकुण्ड भी उनको वैसे ही प्रिय हैं। श्रीराधा श्रीकृष्ण की प्रियतमा प्रेयसी हैं। रूप-गुण-सौभाग्य और प्रेम में सभी गोपिकाओं में श्रेष्ठ होने के कारण श्रीराधा श्रीकृष्ण की प्रियतमा हैं।'' श्रीराधाकुण्ड-श्यामकुण्ड जल से भरे सरोवरों की तरह दीखने पर भी वस्तुतः वे उज्ज्वलरसपूर्ण हैं।

''दोंहार उज्ज्वल मधुर जे रस वर्ण-विपर्यय करि।
रहस्य लागिया भक्ते सुख दिया आछे 'सर'-नाम धरि॥
से-कारण भक्त सर करि व्यक्त से-रसे करिया स्नान।
कृष्णेर कृपाय राधासम प्रेम लाभ करे भाग्यवान्॥
श्रीकृष्ण जखन राधादरशन लागि उत्कण्ठित हय।
सकल उपाय विफल हइया राधाकुण्डाश्रय लय॥
तत्काले राधार पाय दरशन एमति कुण्ड-प्रभाव।
राधार एमति श्यामकुण्डाश्रये कृष्ण-संग हय लाभ॥''

श्रीकुण्डद्वय अपनी अचिन्त्यशक्ति के प्रभाव से विरही राधा-श्याम को परस्पर का संग प्रदान कर सुखी करते हैं, इसीलिये श्रीकुण्ड श्रीयुगल के प्रिय से भी अधिक प्रियतम हैं। विरही श्रीपाद कुण्डतट पर लोटपोट करते रो रहे हैं-'हा श्रीसरोवर! 'तुम्हारी कितनी महिमा है! विरही युगल को परस्पर का मिलन दानकर सुखी करते हो, यह दीन भी तुम्हारे तट पर पड़ा रो रहा है-कृपाकर ईश्वरी के चरण एकबार आज ही दिखाओ।' यदि श्रीकुण्ड कहें-'श्रीपाद! धैर्य रखो, यथासमय दर्शन पाओगे, आज ही क्यों चाहते हो? तो उत्तर में कहते हैं-'मम जीवितम् त्वाम्'-'हे श्रीसरोवर! ईश्वरी मेरे प्राण हैं, उनके अभाव में और एक मुहूर्त भी यह देह जीवित नहीं रह सकती।'

''हे श्रीसरसि! मोर शुनो निवेदन।
तोमार करुणाराशि जाचि अनुक्षण॥
तव तीरे मदीश्वरी राधिकासुन्दरी।
प्रियतम माधवेरे नित्य संगे करि॥
मनोज-विलास - रंगे, करने विहार।
प्रिय हते प्रियतम तुमि जे दोंहार॥
अहो! आजि मोर प्रति कृपा सहकारे।
कराओ दर्शन प्राणरूपा श्रीराधारे॥''९८॥

क्षणमपि तव सङ्गं न त्यजेदेव देवि, त्वमसि समवयस्त्वान्नर्मभूमिर्यदस्याः।
इति सुमुखि विशाखे दर्शयित्वा मदीशां, मम विरहहतायाः प्राणरक्षां कुरुष्व॥९९॥

अन्वय-सुमुखि विशाखे! देवी (श्रीराधा) क्षणमपि तव संग न त्यजेत् एव यत् (यस्मात्) समवयस्त्वात् त्वं अस्याः नर्मभूमि असि (कौतुकस्थानं भवसि) इति (हेतोः) मदीशां दर्शयित्वा विरह-हतायाः मम प्राणरक्षां कुरुष्व॥९९॥

अनुवाद-हे सुमुखि विशाखे! तुम मेरी ईश्वरी श्रीराधा की समवयस्क हो, इसलिये कौतुक (प्रीति) की पात्र हो; वे क्षणभर भी तुम्हारा संग त्याग नहीं रहतीं। तभी प्रार्थना है-तुम मेरी ईश्वरी मुझे दिखाकर मुझ विरहातुर (किंकरी) की प्राणरक्षा करो॥९९॥

श्रीविशाखा से प्रार्थना

परिमलकणा व्याख्या-श्रीराधा-विरह में श्रीपाद के प्राण कण्ठ में आ गये हैं। श्रीकुण्ड-महिमा की स्मृति को लिये कुण्डतट पर पड़े विलाप कर रहे हैं। 'आज ही दर्शन चाहिये-इसी मुहूर्त। इस देह में प्राण अब और नहीं रहते।' विरह-अश्रुओं से वक्षस्थल भीग रहा है। इसी समय नूपुर-किंकिणी का शब्द कानों में पड़ा। जाने कौन बुला रहा है-'तुलसि! क्यों रो रही है?' आँखें खोल देखती हैं-सामने विशाखाजी खड़ी हैं! उनके चरणों में लोटपोट हो गयीं। (तुलसी) विशाखाजी की ही अनुगत हैं। रोते-रोते प्राणों की बात विशाखाजी के चरणों में निवेदन कर रही हैं-'हे सुमुखि विशाखे! मैं जानती हूँ, तुम मेरी स्वामिनी की समवयस्क हो और नितान्त प्रीति-पात्र हो। रूप, गुण, स्वभाव सभी स्वामिनी के समान हैं। तभी तुम स्वामिनी की नर्मभूमि हो। वे तुम्हारा संग क्षणभर को भी नहीं छोड़तीं।' श्रीविशाखानन्ददस्तोत्र के आरम्भ में ही लिखा है-

''भावनाम-गुणादीनामैक्यात् श्रीराधिकैव या।
कृष्णेन्दोः प्रेयसी सा मे श्रीविशाखा प्रसीदतु॥''

अर्थात् 'जो भाव, नाम, गुण आदि की एकता के कारण श्रीराधिका की ही तरह हैं, वे श्रीकृष्णचन्द्र की प्रेयसी श्रीविशाखा मुझ पर प्रसन्न हों।' राधारानी के साथ उनका अत्यन्त प्रेमभाव है। ललिताजी से थोड़ा डरती हैं। श्रीविशाखा राधारानी की नर्मभूमि हैं। इस विषय में विशाखानन्ददस्तोत्र में लिखा है-

''विशाखा नर्मसख्येन सुखिता तद्गतात्मिका।'' (१७)

× × ×

''विशाखा-गूढ़-नर्मोक्ति-जित-कृष्णार्पित-स्मिता।
नर्माध्याय-वराचार्या भारती - जयि-वाग्मिता॥
विशाखाग्रे रहःकेलि कथोद्घाटकमाधवम्।
ताड़यन्ती द्विरब्जेन सभ्रूभङ्गेन लीलया॥'' (१०५-६)

''विशाखा के नर्मसख्य से आनन्दित हो जो (श्रीराधा) तद्गतचित्त हो गई हैं। विशाखा की गूढ़ परिहासोक्ति द्वारा पराजित श्रीकृष्ण को देखकर जो मृदुमन्द हास्य कर रही हैं। परिहास-अध्ययन के क्षेत्र में जो

श्रेष्ठ अध्यापिका हैं। जिनकी वाग्मिता ने सरस्वती को भी पराजित किया है। विशाखा के आगे श्रीकृष्ण द्वारा रह:केलि (एकान्त, रहस्यमय क्रीड़ा-विलास) की बात बताने पर जो भ्रूभंगिमा के साथ लीलाकमल से श्रीकृष्ण को ताड़ रही हैं।'' विशाखा श्रीराधा की नर्मभूमि हैं-इस उदाहरण से यह बात समझ में आती है। स्वामिनी विशाखा का संग क्षणभर को भी नहीं छोड़तीं, कारण - विशाखा उनकी अभिन्नप्राण हैं। जहाँ वे स्वयं नहीं जा सकतीं, वहाँ विशाखा को भेजती हैं। होरी लीला में देखा गया है कि उन्होंने विशाखा को श्याम के दल में देकर ललिता को अपने साथ रखकर खेलना चाहा है। जानती हैं कि विशाखा उनका काम ही करेंगी। श्रीमत् रूपगोस्वामिपाद ने लिखा है-

''त्वमसि मदसवो बहिश्चरन्त, - स्त्वयि महती पटुता च वाग्मिता च।
लघुरपि लघिमा न मे यथा स्या,-न्मयि सखि रञ्जय माधवं तथाद्य॥''

(उ० नी० - दूतीभेद-८७)

''श्रीराधा ने विशाखा से कहा-सखि! तुम मेरी बहिश्चर प्राणस्वरूपा हो। तुम में महती पटुता और वाग्मिता दोनों ही हैं। इसलिये, मुझे किंचित् मात्र भी छोटा न होना पड़े-इस प्रकार आज तुम माधव को मुझ में अनुरक्त करो।'' इस श्लोक की श्रील विश्वनाथ चक्रवर्तिपाद की आनन्द चन्द्रिका टीका अपूर्व आस्वादन प्रदान करती है-

''श्रीराधा विशाखा से बोलीं-'प्रिय सखि! तुम मेरे बहिश्चर अर्थात् बाहर विचरने वाले प्राण हो, इसलिये मैं तुम पर अतिशय विश्वास करती हूँ। और तुम में चातुर्य तथा वाक्पटुता है। अतएव मेरा यह निवेदन है कि तुम कुसुम-चयन के बहाने वन-भ्रमण करते हुए श्रीकृष्ण के निकट जाओ, ऐसा दिखाना जैसे तुमने उन्हें नहीं देखा और उन्हें सुना-सुनाकर अपनी सखी से बातें करना। उन बातों में अन्यान्य बधूओं के प्रसंग में, देखना, मेरे रूप-गुण प्रेम आदि की अधिकता का वर्णन हो।' इसी से श्रीकृष्ण तुम्हारे पास आकर पूछेंगे-''अपूर्व माधुर्यवती के रूप में किसका कीर्तन कर रही हो, सखि?'' इस पर तुम आशंका और सम्भ्रम से अपनी जिह्वा काटकर कहोगी-'नहीं, मैंने किसी का वर्णन नहीं किया।' श्रीकृष्ण कहेंगे-'सखि! डर किसका? बताने से कोई दोष नहीं लगेगा। मुझे मत बताओ, पर मुझे उनका परिचय मिल गया।' तुम बोलोगी-'माधव! उनके परिचय से तुम्हें क्या लेना?' वे कहेंगे-'सखि! उनके साथ बड़ा रहस्य है।' तुम कहोगी-'माधव! जाओ, जाओ, उनके और तुम्हारे स्वभाव में बड़ा अन्तर है, इसलिये उनके साथ तुम्हारा कोई रहस्य नहीं हो सकता।' वे कहेंगे -'सखि! स्वभावों में क्या अन्तर देखा, बोलो।' तुम कहोगी-'माधव! तुम लम्पट हो, वे पतिव्रता। तुम चंचल, वे अति धीर। तुम धर्मकर्महीन, वे देवपूजा आदि में रत। तुम ठहरे अशुचि, और वे तीन समय स्नान करती हैं, धुले वस्त्रादि पहनती हैं।' यह सुनकर श्रीकृष्ण कहेंगे-'विशाखे! मैं भी ब्रह्मचारी हूँ; इस विषय में दुर्वासा ऋषि ही प्रमाण हैं। उन्होंने गोपालतापनी श्रुति में ब्रह्मचारी रूप में मेरा वर्णन किया है। फिर तुमने मुझे चंचल कहा, वह भी कैसे सम्भव? मैं सप्ताह भर गोवर्धन पर्वत धारण किये स्थिर रहा-यह तो तुम सभी जानती हो! और तुमने धर्मकर्महीन कैसे कहा? मैं पिता की आज्ञा से भागुरीमुनि गुरुदेव से विष्णुमन्त्र में दीक्षित हूँ। पौर्णमासी, गार्गी, नान्दी-ये जानती हैं। और मैं अशुचि (अपवित्र) भी नहीं, साक्षात् शुचि (शृंगार: शुचिरुज्ज्वल:) मूर्तिमान् होकर

हा नाथ गोकुलसुधाकर सुप्रसन्न, वक्त्रारविन्द मधुरस्मित हे कृपार्द्र।
यत्र त्वया विहरते प्रणयैः प्रियारा,-तत्रैव मामपि नय प्रियसेवनाय॥१००॥

अन्वय-हा नाथ! गोकुलसुधाकर! सुसन्नवक्त्रारविन्द! मधुरस्मित! हे कृपार्द्र! त्वया (सह) यत्र प्रिया (श्रीराधा) आरात् (निकट) प्रणयैः विहरते तत्रैव प्रिय-सेवनाय माम् अपि नय॥१००॥

अनुवाद-हा नाथ! हे गोकुलचन्द्र! हे सुप्रसन्नमुखारविन्द! हे मधुर हास्यानन! हे कृपार्द्र! तुम जिस स्थान पर अपनी प्रिया श्रीराधा के साथ अतिशय प्रणय से भरकर विहार कर रहे हो, वहाँ अपनी दोनों की प्रिय सेवा के लिये मुझे भी ले जाओ॥१००॥

अवतीर्ण हुआ हूँ। इस विषय में तुम्हारा अनुभव ही प्रमाण है।' तब तुम कहना-'माधव! फिर भी तुम पुरुष जाति हो; वे कुलजा हैं, शायद तुम्हें देखेंगी नहीं।' वे कहेंगे-'सखि! वे मुझे न देखें, मैं उन धर्मवती को दूर से देखकर धन्य हूँगा।' तुम कहना-'माधव! उन्हें दिखाने का उपाय क्या?' वे कहेंगे-'सखि! एक उपाय है। मैं आज गोवर्धन-कन्दरा में एक सूर्यमूर्ति स्थापित कर अपने हाथ से मन्दिर की लिपाई आदि कर दूर रहूँगा। तुम उन अद्‌भुत देवता के दर्शन और पूजा के लिये उन्हें ले आना। वे जब उस मन्दिर में पूजा करने बैठेंगी, तब मैं उनका पृष्ठदेश दर्शन कर कृतार्थ होऊँगा। और यदि तुम्हारी कृपा हो, सम्मति हो, तो अलक्षित भाव से धीरे-धीरे आकर बस एकबार उनका पादपीठ स्पर्श करूँगा।' तब तुम कहोगी-'माधव! बताओ, पुरस्कार क्या दोगे?' वे कहेंगे-'सखि! पुरस्कार की क्या बात करती हो? मैं स्वयं तक को तुम्हारे हाथों बेच दूँगा।' इस पर तुम कहना-'माधव! स्थिर हो, तुम्हारी वासना पूरी किये देती हूँ।' यह कहकर तुम मुझे वहाँ ले जाना।' श्रीमती अपना मनोरथ अभिन्नप्राण और नर्मभूमि विशाखा के आगे इस प्रकार व्यक्त करती हैं।''

उन्हीं विशाखा की कृपा की एकान्तभाव से कामना करते हैं श्रीपाद। श्रीपाद ने राधारानी की निरुपम गुण-माधुरी का वर्णन कर उस स्तोत्र का नाम रखा है-'विशाखानन्दद', अर्थात् जो विशाखा को आनन्द दान करेगा।' श्रीराधा की अपूर्व गुणावली सुनकर विशाखाजी प्रसन्न होकर श्रीपाद के प्रति कृपा-दृष्टिपात कर उन्हें श्रीमती की सेवा में नियुक्त कर देंगी-यह आशा हृदय में लेकर। स्वरूपाविष्ट श्रीपाद कहते हैं-'हे विशाखे! तुम मेरी ईश्वरी की प्रिय हो; मैं विरह में हतप्राण हूँ; एकबार स्वामिनी के दर्शन करा मुझे बचाओ। स्वामिनी के दर्शन के बिना अब और क्षणभर भी नहीं बच सकती।' 'मम विरहहतायाः प्राणरक्षां कुरुष्व।'

''हा विशाखे! तुमि नर्मभूमि राधिकार।
समवयः हेतु संग ना छाड़े तोमार॥
विरह-कातरा आमि मोरे दया करि।
दर्शन कराओ मम प्राणेर ईश्वरी॥
हे सुमुखि! तव कृपा समधिक जानि।
देखाइया स्वामिनीरे बाँचाओ पराणि॥''९९॥

श्रीकृष्ण से प्रार्थना

परिमलकणा व्याख्या-श्रीपाद ने अश्रुभरे नेत्रों और विरहातुर प्राणों से श्रीराधारानी के दर्शन के लिये विशाखाजी के चरणों में प्रार्थना की है। आँसू पौंछकर देखते हैं तो विशाखा जी अदृश्य। श्यामसुन्दर आकर उपस्थित हैं। उनके दर्शनकर उनके श्रीचरणों में निवेदन कर रहे हैं-'हा नाथ! हे गोकुल-सुधाकर! हे सुप्रसन्न मुखारविन्द! हे मधुरस्मित! हे कृपार्द्र! जहाँ स्वामिनी तुम्हारे साथ खेलती हैं, मुझे वहीं ले चलो और अपनी (दोनों की) प्रियसेवा प्रदान करो।' प्रत्येक सम्बोधन के साथ किंकरी की प्रियसेवा का सम्पर्क जड़ित है। 'हा नाथ!' तुम मेरी स्वामिनी के वल्लभ हो, तभी मेरे भी नाथ हो। दोनों एक-दूसरे के रूप-गुण और प्रेम से आकृष्ट हैं, पर दोनों ही एक-दूसरे के लिये दुर्लभ हैं। तभी तुम दोनों की प्रियसेवा में मेरी आवश्यकता है-तुम दोनों यह बात जानते हो। श्रीमत् रूप-गोस्वामिपाद ने श्रीकृष्ण के दशनामस्तोत्र 'लीलामृत' में पारस्परिक प्रियता की बात बताई है-

''राधिकाहृदयोन्मादि वंशीक्वानमधुरच्छटः।
राधापरिमलोद्गारगरिमाक्षिप्त मानसः॥
कम्रराधामनोमीनवड़िशीकृतविभ्रमः।
प्रेमगर्वान्धगान्धर्वाकिलकिञ्चितरञ्जितः॥
ललितावश्यधीराधामानाभासवशीकृतः।
राधावक्रोक्तिपीयूषमाधुर्यभरलम्पटः॥
मुखेन्दुचन्द्रिकोद्गीर्ण-राधिकाराग-सागरः।
वृषभानुसुताकण्ठहारिहारहरिन्मणिः॥
फुल्लराधाकमलिनीमुखाम्बुजमधुव्रतः।
राधिकाकुचस्तुरीपत्रस्फुरदुरस्थलः॥
इति गोकुलभूपाल-सूनुलीलामनोहरम्।
यः पठेन्नामदशकं सोऽस्य वल्लभतां व्रजेत्॥''

''जो वंशीध्वनिरूपी मकरन्द परम्परा से श्रीराधा का चित्त उन्मादित करते हैं। श्रीराधा के अङ्ग-सौरभ से जिनका मन आकृष्ट होता है। जिन्होंने श्रीराधा के चित्तरूपी मीन को बींघने के लिये अपने विलासरूपी काँटे का आश्रय लिया है। जो प्रेमगर्विता श्रीराधा के किलकिंचित (मिलन के समय रोदन, हास, रोष आदि) भाव में अनुरक्त हैं। जो ललितागत चित्त श्रीराधा के मान के आभास से भी कातर होते हैं; जो श्रीराधा के वक्रोक्तिरूपी अमृत का पान करने को अतिशय लुब्ध है। जिनके मुखचन्द्र की चन्द्रिका से श्रीराधिका का अनुराग-सागर उच्छलित होता है; जो वृषभानुसुता श्रीराधिका के कण्ठहार की मरकतमणि-स्वरूप हैं। जो राधा-कमलिनी के प्रफुल्ल मुखपद्म के भृंगस्वरूप हैं; आलिंगन के कारण जिनका वक्षस्थल श्रीराधा के स्तनयुगल के कस्तूरी चिन्हों से चिन्हित है। श्रीराधाकृष्ण की पारस्परिक वल्लभता या प्रियता बताने वाले श्रीनन्दनन्दन के इस लीलामनोहर दशनामस्तव का जो पाठ करते हैं, वे भी उनके अति प्रिय होते हैं।''

'हे गोकुल-सुधाकर'-स्वामिनी की इन्द्रियों पर सुधा-वर्षण करने वाले। प्रत्येक इन्द्रिय को मन को अपूर्व भोग (आनन्द-आस्वादन) प्रदान कर स्वामिनी को पागल बना देते हैं। उन्हीं प्रेमपागलिनी को सान्त्वना

देकर रास्ता दिखाते हुए संकेतकुंज में तुम्हारे पास लाना होगा-तब मेरी आवश्यकता पड़ेगी। श्रीगोविन्दलीलामृत (८/३) में श्रीराधा की पंचेन्द्रिय के आकर्षण का वर्णन है-

''सौन्दर्यामृतसिन्धुभङ्गललनाचित्ताद्रिसंप्लावकः,
कर्णानन्दीसनर्मरम्यवचनः कोटीन्दुशीताङ्गकः।
सौरभ्यामृतसंप्लवावृतजगत्पीयूषरम्याधरः,
श्रीगोपेन्द्रसुतः स कर्षति बलात् पञ्चेन्द्रियाण्यालि मे॥''

श्रीराधा ने विशाखाजी से कहा-'हे सखि! जो सौन्दर्यरूपी अमृतसमूह की तरंगों से ललनाओं के चित्तरूपी पर्वत को संप्लावित करते हैं, जिनके रम्य वचन परिहासमय और कर्णसुखद हैं, जिनका अङ्ग कोटि चन्द्रमाओं से भी अधिक सुशीतल है, जो अपने सौरभ्य-अमृत द्वारा विश्व को संप्लावित करते हैं और जिनके अधर अमृत से भी अधिक रमणीय हैं-वही गोपेन्द्रनन्दन मेरी पंचेन्द्रिय को बलपूर्वक आकर्षित कर रहे हैं।'

श्रीमती की उत्कण्ठा की स्मृति में कहते हैं-'हे सुप्रसन्नवक्त्रारविन्द!' स्वामिनी की उत्कण्ठा की चरमता है। श्याम के साथ एक आसन पर बैठी हैं। उत्कण्ठा की अतिशयता के कारण प्रेमवैचित्र्य का उदय हुआ। श्याम की गोद में बैठी-बैठी ही, हा नाथ! हा प्रियतम! तुम कहाँ हो?'-यह कहकर रोने लगीं। वह अवस्था देखकर श्याम को आनन्द-विस्मय हुआ। सुप्रसन्न मुखकमल। उत्कण्ठावती कब क्या कहती हैं, क्या करती हैं, इसका ठीक नहीं। सभी समय किंकरी की सेवा या सान्निध्य की आवश्यकता है। अतएव तुम अपने (दोनों) के लीलाराज्य में ले चलो।'

एक रहस्यमय कुंजलीला की स्मृति में ये दो सम्बोधन लिये हैं-'हे मधुरस्मृति' एवं 'हे कृपार्द्र'। कुंजविलास चल रहा है। स्वामिनी ने श्यामसुन्दर की लीला को ग्रस लिया है। 'तुम खेलना नहीं जानते' कहकर स्वामिनी हाथ पकड़कर श्याम को शृंगाररस के खेल सिखा रही हैं। स्वामिनी की चेष्टा से श्याम के चेहरे पर मृदुमधुर हँसी छिटकी है। अन्त में श्रान्त-क्लान्त-अवसांग होकर श्याम के वक्षस्थल पर लेट जाती हैं। श्याम कृपार्द्रचित्त हो स्वामिनी की सेवा कर रहे हैं। श्रीराधा का श्रम दूर करने के लिये वीजन (पंखा), अङ्गमर्दनादि कर रहे हैं। 'उसी लीलाराज्य में ले जाकर मेरी प्रिय सेवा दो।' किसकी प्रिय सेवा? 'स्वामिनी की प्रिय, या अपनी प्रिय, या मेरी प्रिय सेवा दान करो। स्वामिनी की जो सेवा तुम नहीं कर पाओगे, तुम्हारी जो सेवा स्वामिनी नहीं कर पायेंगी-वह सेवा मैं करूँगी।' कहते-कहते श्रीपाद व्याकुल हो उठते हैं।

''हा नाथ! हा गोविन्द! गोकुल-सुधाकर।
कृपा दृष्टिपात करो आमार उपर॥
हे मधुरस्मित! फुल्लकमलवदन।
सुप्रसन्न देखि तोमा लइनु शरण॥
प्रियतमा राधिकार सह जेइ स्थाने।
बिहर-प्रणयभरे सदा हृष्टमने॥
तथाकारे लहो मोरे करुणा करिया।
मोर वांछा सिद्धि करो प्रिय-सेवा दिया॥''१००॥

लक्ष्मीर्यदङ्घ्रि-कमलस्य नखाञ्चलस्य सौन्दर्य-बिन्दुमपि नार्हति लब्धुमीशे।
सा त्वं विधास्यसि न चेन्मम नेत्रदानं, किं जीवितेन मम दुःखदवाग्निदेन?१०१॥

अन्वय-ईशे! (हे प्राणेश्वरि!) यदङ्घ्रि-कमलस्य (चरणपद्मस्य) नखाञ्चलस्य सौन्दर्यबिन्दुमपि लक्ष्मीः लब्धुं न अर्हति, सा त्वं चेत् मम नेत्रदानं न विधास्यसि (तल्लीलादिदर्शन दानेन धन्यं न करिष्यति) (तदा) मम दुःखदवाग्निदेन जीवितेन किम्?१०१॥

अनुवाद-हे प्राणेश्वरि श्रीराधे! लक्ष्मीजी भी जिनके श्रीपादपद्मों के नखाग्र के सौन्दर्य का बिन्दुमात्र भी प्राप्त करने के योग्य नहीं, वही तुम यदि मुझे अपने रूप-लीलादि को देखने योग्य आँखें न दो, तो दावाग्नि की तरह दुःखप्रद मेरे इस जीवन की क्या आवश्यकता?१०१॥

नेत्रदान

परिमलकणा व्याख्या-श्रीपाद ने पिछले श्लोक में श्यामसुन्दर के चरणों में अपने प्राणों की प्रार्थना व्यक्त की। इस श्लोक से पुनः स्वामिनी के चरणों में प्रार्थना। 'हे प्राणेश्वरि! स्वामिनि! मैं क्या तुम्हें जानती नहीं? तुम मेरे साथ आँखमिचौनी क्यों खेलती हो? तुम्हारे चरणकमलों के नखाग्र के प्रान्तभाग में जो सौन्दर्य है, वह लक्ष्मी के पास भी नहीं।' ''जाँर सौन्दर्यादि गुण वांञ्छे लक्ष्मी-पार्वती।'' (चै०च०)। श्रीपाद प्रबोधानन्द सरस्वती ने कहा है-''लक्ष्मीकोटीविलक्ष-लसल्लीलाकिशोरी-शतैराराध्यं व्रजमण्डलेऽतिमधुरं राधाभिधानं परम्॥'' (राधारससुधानिधि-६८)। -''कोटि-कोटि लक्ष्मियों के लक्षणों से लक्षित (युक्त, चिन्हित) शत-शत लीलाकिशोरी व्रजसुन्दरियों द्वारा श्रीराधा व्रजमण्डल में सदा आराधित हैं।'' विश्व में जिनके असामान्य रूप, लावण्य, महिमा की कोई तुलना ही नहीं। ''तस्याद्या प्रकृति राधिका नित्य निर्गुणा यस्यांशे लक्ष्मी-दुर्गादिका शक्तयः।'' (गोपालतापनी श्रुति)-भगवान् की आद्याशक्ति श्रीराधा नित्यनिर्गुण हैं; लक्ष्मी-दुर्गा आदि सभी जिनके अंश हैं। जैसे श्रीकृष्ण तुरीय तत्त्व होते हुए भी सर्वकारण-कारण हैं, वैसे ही श्रीराधा तुरीयतत्त्व होते हुए भी सर्वकारण-कारणरूपा हैं। सर्वकारणस्वरूपा होने से गोपालतापनी श्रुति ने उनका आद्याशक्तिरूप में वर्णन किया है। और नित्यतुरीय स्वभाव में स्थित होने से नारदपंचरात्र, गौतमीयतंत्र आदि तंत्रशास्त्रों ने उनका वर्णन किया है पराशक्तिरूप में। श्रीराधा और श्रीलक्ष्मी दोनों ही ह्लादिनी शक्ति की मूर्ति हैं, किन्तु श्रीराधा ऐश्वर्यमय-स्वभावशून्य केवल माधुर्यमूर्ति हैं और उनका सौन्दर्य प्रेम के परमसार महाभाव से उत्थित है-इसलिये वे सौन्दर्य-माधुर्य में अतुलनीय हैं। प्रेम में जो कृष्णमयी हैं, रस में जो गौरांगी हैं, ऐश्वर्य में जो सर्वलक्ष्मीमयी हैं, माधुर्य में वे ही गोपिका-शिरोमणि श्रीराधा हैं। भागवत-परमहंस महामुनि श्रीशुकदेव ने उनका परम महत्त्व अनुभव कर श्रीमद्भागवत में प्रधान गोपिका के रूप में उनका वर्णन किया है। अधिक क्या, कन्दर्पकोटि-विमोहन श्रीकृष्ण भी उनके रूपमाधुर्य पर विमोहित होते हैं-''जगत्मोहन कृष्ण ताँहार मोहिनी'' (चै० च०)।

श्रीपाद कहते हैं-'ऐसी सर्वगुणसम्पन्न सौन्दर्य-माधुर्यवती जिसकी स्वामिनी हैं, उसे इतना दुःख क्यों? यदि तुम चक्षुदान नहीं करती हो, अर्थात् अपने रूप-लीलादि के दर्शन नहीं कराती हो, तो इस दुःसह विरहानल-सन्तप्त जीवन का क्या काम?' राधारानी के दर्शन के बिना श्रीपाद की अवस्था है-''चक्षु अन्ध अनाहार, आपनार देहभार, विरहे हइलो जरजर।'' राधारानी के चरणों के अतिरिक्त विश्व में और कुछ नहीं देखेंगे, यही संकल्प है।

आशाभरैरमृतसिन्धुमयैः कथञ्चित्, कालो मयातिगमितः किल साम्प्रतं हि।
त्वञ्चेत् कृपां मयि विधास्यसि नैव किं मे, प्राणैर्व्रजेन च वरोरु वकारिणापि?१०२॥

अन्वय–वरोरु! मया साम्प्रतं (अधुना) अमृतसिन्धुमयैः आशाभरैः (प्रत्याशातिशयैः) कथञ्चित् (कथमपि कष्टसृष्ट्या) किल (निश्चितं) कालोगमितः (यापितः) त्वं चेत् कृपां मयि नैव विधास्यसि किं मे प्राणैः व्रजेन च वकारिणा अपि (श्रीकृष्णेनापि) ?१०२॥

इसीलिये नेत्रदान की बात कही है। स्फूर्तिप्राप्त श्रीमती के रूप–गुण–लीला और करुणा की माधुरी ने श्रीपाद के चित्त–मन में विपुल उत्कण्ठा और अधीरता जगा दी है! श्रीपाद प्रबोधानन्द सरस्वती ने स्फूर्तिप्राप्त श्रीराधा–माधुर्य का आस्वादन कर कहा था–

''तत् सौन्दर्यं स च नव–नवो यौवनश्रीप्रवेशः
सा दृगभङ्गी स च रसघनाश्चर्यवक्षोजकुम्भः।
सोऽयं बिम्बाधरमधुरिमा तत् स्मितं सा च वाणी
सेयं लीलागतिरपि न विस्मर्यते राधिकायाः॥'' (राधारससुधानिधि–८५)

''मैं श्रीराधिका का वह सौन्दर्य, नव–नव यौवन–श्री का प्रवेश, वह नयनभंगिमा, रसघनाश्चर्य वक्षोजकुम्भ, वह बिम्बाधर–मधुरिमा, मृदुमन्द हास्य, मधुर वाणी, उनकी मधुर लीलागति भूल नहीं पा रहा।'' श्रीपाद रघुनाथ की भी वही अवस्था है। 'मैं ऐसी स्वामिनी के दर्शन से वंचित हूँ? अयोग्य समझकर यदि दर्शन नहीं देंगी, तो जीवित क्यों रखा है?' दुःसह वेदना से श्रीपाद रोते–रोते कुण्डतीर पर लोटपोट कर रहे हैं। राधारानी का विरह भगवान् के विरह की तरह नहीं। अति गम्भीर–दुर्विसह, दावानल की तरह ज्वालामयी! विरहातुर श्रीपाद दासगोस्वामि ही उसका दृष्टान्त हैं। 'किं जीवितेन मम दुःखदवाग्निदग्ध ज्वालामय जीवन का क्या काम? मैं स्वयं भी तो नहीं मर सकती। यह जीवन तुम्हारे चरणों में उत्सर्ग जो किया है। फिर, तुम्हारी सेवा के सौभाग्य से विहीन जीवन को रखने की भी इच्छा नहीं। कृपाकर कमलावांछित वही नखांचल–सौन्दर्य एकबार दिखाओ–

जाँर पदकमलेर, एकटि नखप्रान्तेर,
बिन्दुमात्र सुषमार कण।
इन्दिरा देवी स्वयं, करि कतो आकिंचन,
लाभे कभु ना हय सक्षम॥
एमन माधुरी तव, आमि आर किबा कबो,
मोरे दिव्यनेत्र करो दान।
नित्य नित्य नव नव, लीला–सुख महोत्सव,
हेरि जेनो भरिया नयान॥
यदि ना दाओ चक्षुदान, वृथा केनो राखि प्राण,
दावानल–सम ए जीवन।
चरण–दर्शन बिने, ज्वलितेछि निशिदिने,
कृपामयि! दाओ गो दर्शन॥''१०१॥

अनुवाद-हे वरोरु! मैं अमृत-सिन्धु पाने की प्रत्याशा में सम्प्रति (फिलहाल) अति कष्ट से समय बिता रहा हूँ। इस समय यदि तुम मुझ पर कृपा नहीं करतीं, तो मेरे प्राणों की, व्रजवास की, यहाँ तक कि श्रीकृष्ण की ही क्या आवश्यकता?१०२॥

आशाबन्ध (विश्वास, भरोसा)

परिमलकणा व्याख्या-श्रीपाद स्वामिनी के दर्शन से रहित दु:खद जीवन रखना नहीं चाहते। स्वामिनी मानो स्फुरण में कह रही हैं-'तुलसि! तू मेरी किंकरी के रूप में अपना परिचय दे रही है, तुझे क्या मार सकती हूँ? तू अवश्य ही मुझे देखेगी।' स्वामिनी की उसी स्फुरणगत आशा-वाणी ने हृदय को आशा के आलोक से प्रदीप्त कर दिया! स्फूर्ति के विराम में फिर असह्य दु:ख। वेदना असहनीय हो उठी है। 'यदि सेवाधिकार नहीं दिया, तो इस सन्तापमय जीवन की आवश्यकता क्या है?'' स्वामिनी मानो कह रही हैं-'तो अब तक कैसे बची हुई है?''हे वरोरु (सुन्दर जंघाओं वाली) स्वामिनि! तो सुनो, मैं क्या सुख से जी रही हूँ? किसी प्रकार अति कष्ट से समय काट रही हूँ। केवल आशा ही अवलम्बन है।' ''आशाबिन्दुक्षितमिदमुपैत्यन्तरे हन्त शैत्यम्'' (श्रीरूपपाद)-आशाबिन्दु विरहतप्त प्राणों में शीतलता का संचार किये रहता है। जातरति भक्त के नौ असाधारण लक्षणों में एक है-'आशाबन्ध'। ''आशाबन्धो भगवत: प्राप्ति-सम्भावना दृढ़ा''-भगवत्प्राप्ति की दृढ़ संभावना को ही आशाबन्ध कहते हैं। आशा के भीतर है अमृत का सिन्धु। अमृत मरने नहीं देता। लगता है कि प्राण रहे तो अवश्य पाऊँगा। ''उद्धवदास आश करे हेरइते, सखीसह युगलकिशोर।'' रति-स्तर से प्रेम-स्तर पर पहुँचने पर आशाबन्ध सान्द्र (प्रगाढ़) हो उठता है। सर्वोपरि है महाभाव। राधा-किंकरियों का आशाबन्ध अनिर्वचनीय है। स्मरण में, स्वप्न में, स्फुरण में जो आश्वास मिलता है, उससे वे आशा नहीं छोड़ पातीं। राधादास्य की साधना से अमृतमयी आशा साधक के हृदय में स्थायी रूप से आसन बिछाकर बैठ जाती है। श्रीपाद प्रबोधानन्द सरस्वती ने लिखा है-''तत्कैङ्कर्यमनुक्षणाद्भुतरसं प्राप्तुं धृताशे मयि श्रीराधे नवकुञ्जनागरि कृपादृष्टिं कदा दास्यसि?'' (राधारससुधानिधि-८६) - 'मैं अनुक्षण (सदा, निरन्तर) अद्भुतरसयुक्त तुम्हारा कैङ्कर्य (दास्य) प्राप्त करने की अभिलाषा करता हूँ। हे श्रीराधे! नवकुंजनागरि! हाय! तुम मेरी ओर कृपादृष्टि कब निक्षेप करोगी?' श्रीपाद कहते हैं-तुम्हारी करुणा अहैतुकी है, तभी तो बीच-बीच में अपनी अयोग्यता भूल जाती हूँ, लगता है अवश्य ही (दर्शन) पाऊँगी। लगता है और विलम्ब नहीं-बस अभी पाये-बस अभी। ''आपना अयोग्य देखि मने पाउँ क्षोभ। तथापि तोमार गुणे उपजाय लोभ'' (चै० च०)। जब स्वप्न में, स्फुरण में, स्मरण में पाती हूँ, तो लगता है कि साक्षात् भी पाऊँगी। जीवन भी प्राय शेष (पूरा) हुआ! इतने निष्पेषण (विरह-अदर्शन रूपी आघात, कुटाई-पिसाई) के बाद भी कोई बचता है? स्वामिनि! करुणामयि! बड़ी वेदना है। और नहीं सह पाती। अब यह अंतिम प्रार्थना सुनो-और बोलने की क्षमता भी नहीं-भाषा भी नहीं। इतने दु:ख के बाद भी यदि कृपा न करो, तो प्राणों की, व्रज की, कृष्ण की ही मुझे क्या आवश्यकता? तुम्हारी करुणा के बिना बचे रहने से क्या लाभ? इतना समय बीत गया-क्यों, कृपा तो नहीं हुई। यदि जीवन इसी तरह बीतता है, तो क्या हुआ (हाथ क्या पड़ा)? व्रज भी नहीं चाहती, कृष्ण भी नहीं चाहती। 'तुम्हारी कृपा नहीं होती, तो किसी की भी आवश्यकता नहीं। मेरा तो और कोई नहीं। स्वामिनि! कृपामयि! यदि दु:खिनी दासी पर कृपा नहीं करती, तो इसकी क्या गति होगी? तुम लीलामयी हो, निरन्तर मधुरादपिमधुर लीलारस में मत्त रहती हो, तुम्हारे आगे दु:ख की बात कहना ठीक

नहीं। आज निरुपाय होकर तुम्हारे चरणों में निवेदन कर रही हूँ–यदि तुम कृपा नहीं करतीं, तो मैं अन्य की कृपा पाने की इच्छुक नहीं। भगवान् के भक्त भगवान् के लिये धर्म, अर्थ, काम, त्रिलोकी की सम्पदा, यहाँ तक कि मुक्तिपद भी त्याग देते हैं। सिर्फ त्याग ही नहीं, इन सबको स्मरण करने की भी इच्छा नहीं करते। त्रैलोक्य की सम्पदा सामने आने पर भी उनकी मति लवनिमेषार्ध के लिये भी विचलित नहीं होती, भगवत् पदारविन्द में लगी रहती है। इन भक्तों ने भगवच्चरणों के अतिरिक्त अन्य सभी कुछ असार–बुद्धि से त्याग दिया है।

''त्रैलोक्यविभवहेतवेऽप्यकुण्ठस्मृतिरजितात्मसुरादिभिर्विमृग्यात।
न चलति भगवत्पदारविन्दाल्लवनिमेषार्द्धमपि स वैष्णवाग्र्यः॥''

(भा० ११/२/५१)

इतना ही नहीं, श्रीनन्दनन्दन के रूप–गुण–लीला आदि के माधुर्य से आकृष्ट चित्त भक्त तो भगवान् के नारायण आदि स्वरूपों की भी कामना नहीं करते। श्रीमत् रूपगोस्वामिपाद ने लिखा है–

''तत्राप्येकान्तिनां श्रेष्ठा गोविन्दहृतमानसाः।
येषां श्रीश–प्रसादोऽपि मनो हर्तुं न शक्नुयात्॥''

(भ० र० सि०–१/२/५८)

किन्तु जिन लोगों का मन राधादास्य में प्रलुब्ध है, वे तो श्रीराधा के बिना अकेले गोविन्द की भी कामना नहीं करते। तभी श्रीपाद ने कहा है–मुझे बकारि (वक–अरि कृष्ण) की आवश्यकता नहीं, यदि तुम्हारी कृपा नहीं मिलती (तो)!' श्रीपाद श्रीराधा के बिना श्रीगोविन्द को स्वयं तो नहीं ही चाहते; जो चाहते हैं–उनका संग भी त्याग देते हैं। स्वनियमदशक (६) में लिखा है–

''अनादृत्योद्गीतामपि मुनिगणैर्वैणिकमुखैः प्रवीणां गान्धर्वामपि च निगमैस्तत् प्रियतमाम्।
य एकं गोविन्दं भजति कपटी दाम्भिकतया तदभ्यर्णे शीर्णे क्षणमपि न यामि व्रतमिदम्॥''

अर्थात् ''नारद आदि मुनिजन वीणा लेकर और निगम आदि शास्त्र जिनकी महिमा का गान करते हैं, उन्हीं प्रवीण गान्धर्वा श्रीकृष्ण–प्रियतमा राधारानी का अनादर कर जो लोग अकेले गोविन्द का भजन करते हैं, वे कपटी और दम्भी हैं; उनके अपवित्र सान्निध्य में मैं क्षणभर को भी नहीं जाता–यही मेरा व्रत है।'' धन्य राधादास्य! धन्य है श्रीपाद रघुनाथ की असाधारण राधानिष्ठा! इन लोगों के श्रीचरणों के स्मरण और वाणी के श्रवण–कीर्तन से भी साधक का चित्त राधानिष्ठा के परिमल से सुवासित होगा।

श्रीपाद कहते हैं–'हा राधे! तुम तो अहैतुकी कृपा का सागर हो। मैं भी कृपा पाने के योग्य ही हूँ। जिसका कोई नहीं, वही तो कृपा पाने के योग्य है। मुझ–जैसी दुःखिनी विश्व में और कोई नहीं।' श्रीगौरहरि की पूर्ण कृपा होने से जो होता है, वही श्रीपाद दासगोस्वामी के माध्यम से प्रकट हो रहा है।

''आशामृत–सिन्धुभरे गेलो एतो काल।
सम्प्रति एखने यदि ना हबे दयाल॥
तुमि यदि कृपामयि कृपा ना करिबे।
प्राणे, व्रजे, कृष्णेर चरणे किबा हबे?''१०२॥

त्वञ्चेत् कृपामयि कृपां मयि दुःखितायां, नैवातनोरतितरां किमिह प्रलापैः?
त्वत्कुण्डमध्यमपि तद्वहुकालमेव, संसेव्यमानमपि किं नु करिष्यतीह?१०३॥

अन्वय-कृपामयि! त्वं चेत दुःखितायां मयि अतितरां कृपां (करुणां) नैव आतनोः (नैवाकरोस्तदा) इह प्रलापैः किं बहुकालं एव संसेव्यमानम् अपि तत् त्वत्कुण्ड-मध्यं अपि इह किं नु करिष्यति?१०३॥

अनुवाद-हे कृपामयि! यदि तुम मुझ दुःखिनी के प्रति अतिशय कृपा का विस्तार न करो, तो मेरे इस प्रलाप (अकारण वाक्य प्रयोग) की क्या आवश्कयता? तुम्हारे (श्रीराधा) कुण्ड की बहुत समय तक सेवा करने का ही क्या फल?१०३॥

श्रीकुण्ड-सेवन का फल

परिमलकणा व्याख्या-श्रीराधाविरह की मूर्ति हैं श्रीपाद रघुनाथ। कुण्डतीर पर पड़े अपनी स्वामिनी के विरह में रोदन कर रहे हैं। विरह की अतिशयता के कारण प्राणरक्षा का और उपाय नहीं। उनकी आर्तिमयी भक्ति वर्षा-जल के वेग से पुष्ट दुकूलप्लाविनी तटिनी की तरह (बाढ़ आई वेगवती नदी की तरह) श्रीराधाचरणरूपी सिन्धु की खोज में अहर्निश दौड़ रही है। अल्पवस्तु पाने की कामना है; उससे जुड़ा जो अभाव है, वह उस (अल्पवस्तु) को पाते ही पूरा हो जाता है। किन्तु भूमा वस्तु की प्राप्ति के लिये जो अभाव-बोध या आर्ति है, उसकी निवृत्ति तब तक नहीं होती, जब तक वही अखण्ड भूमा वस्तु प्राप्त नहीं हो जाती। अभीष्ट के लिये श्रीरघुनाथ की आर्ति, व्याकुलता, उत्कण्ठा हिमालय के शिखर की तरह उच्च आदर्श पर स्थित है। उस अति उच्च प्रदेश में पहुँचने का जीव का उपाय नहीं। इस निदारुण विरह की बात की कल्पना करना भी भजन-सम्पत्तिशून्य जीव के लिये सम्भव नहीं। श्रीपाद की हृदय-तटिनी में क्षण-क्षण में उद्वेलित होती है-लालसा की नव-नव तरंग! अब वे क्षणभर भी श्रीराधा का विरह-दुःख सहने में समर्थ नहीं। एकनिष्ठ किंकरी के विरह-दुःख में बीच-बीच में स्वामिनी अवश्य ही आहट कर रही हैं (अपनी उपस्थिति आदि का संकेत दे रही हैं), किन्तु वह क्षणिक है। क्षणप्रभा (बिजली) की तरह बस क्षणभर के लिये, विरह-अन्धकार को और अधिक बढ़ाने वाली। श्रीपाद रघुनाथ मानो प्रीतिवासित कानों से सुन रहे हैं-'तुलसि! मैं तो पास ही हूँ, इतना विलाप क्यों कर रही है?' अमृत को भी लजाने वाला यह कण्ठस्वर सुनकर श्रीपाद कितने आशान्वित होते हैं, पर मानो वायु-तरंगों के अभिघात (प्रहार, आघात) से वह कण्ठस्वर क्षणभर में ही सुदूर दिगन्त में विलीन हो जाता है। साक्षात् दर्शन की लालसा उत्तरोत्तर बढ़ती ही जा रही है। 'हा कृपामयि स्वामिनि! मैं इतनी दुःखी हूँ; यदि मुझ पर कृपा न करतीं, तो विलाप का क्या फल? यह क्या उन्माद के प्रलाप की तरह वृथा वाक्य-प्रयोग में ही परिणत होगा?'

जनोऽयं याचते दुःखी रुदन्नुच्चैरिदं मुहुः।
तत्पदाम्भोज-युग्मैक-गतिः कातरतां गतः॥
कृत्वा निजगणस्यान्तः कारुण्यान्निजसेवने।
नियोजयतु मां साक्षात् सेयं वृन्दावनेश्वरी॥''

(विशाखानन्दस्तोत्र-१२९/१३०)

''श्रीराधा के पादपद्म ही जिसकी एकमात्र गति हैं, वही मुझ-जैसा दु:खीजन उनके विरह में उच्चस्वर से रोते-रोते नितान्त कातर हो गया है। श्रीवृन्दावनेश्वरी कृपाकर उसे निजगणों में अन्तर्भुक्त कर अपनी साक्षात् श्रीचरणसेवा में नियुक्त करें।'' श्रीपाद विलाप के माध्यम से अपनी दुर्दशा स्वामिनी के चरणों में निवेदन कर रहे हैं। 'बहुत समय से तुम्हारे कुण्ड में पड़ी हूँ। कुण्ड की सेवा कर रही हूँ। तुम दर्शन न दो, तो इस सेवा का ही क्या फल रहा? श्रीकुण्ड तुम्हारा कितना प्रिय है! तुम्हारी कृपापात्र नहीं बन सकी, कुण्डसेवा से मेरा क्या हुआ?' जिन्होंने एक दिन कहा था-'तुम्हारे कुण्ड की माधुरी देखकर ही मुझमें तुम्हारे दास्य की लालसा जगी'' (विलाप-१५)! जिन्होंने श्रीकुण्डाष्टक में श्रीकुण्ड की इतनी महिमा, इतनी माधुरी का वर्णन किया है! विरह में अधीर होकर उन्होंने एक दिन कहा-''व्याघ्रतुण्डायते कुण्डं जीवातुरहितस्य मे''-'जीवातुरहित (प्राणहीन, आश्रयहीन) मुझे यह कुण्ड मानो व्याघ्रतुण्ड (बाघ के मुँह) की तरह ग्रास करने आ रहा है।' श्रीपाद की इस अलौकिक भावमय वाणी में कौन-सा रहस्य छिपा है, यह जीव-जगत् के लिये दुर्ज्ञेय है। श्रीपाद ने अतिशय दैन्य से भरकर कहा-'हा कृपामयि! तुम अपार करुणा-सागररुपिणी हो, मैं भी अति दु:खिनी हूँ। दु:खीजन ही तो कृपा का पात्र है। अपने गुण से कृपाकर दास्य प्रदान कर धन्य करो।' प्रेमाम्भोज-मरन्दाख्यस्तव के अन्त में लिखा है-

''त्वां नत्वा याचते धृत्वा तृणं दन्तैरयं जन:।
स्वदास्यामृतसेकेन जीवयामुं सुदुखितम्॥
न मुञ्चेच्छरणायातमपि दुष्टं दयामय:।
अतो गान्धर्विके हा हा मुञ्चैनं नैव तादृशम्॥''

''हा स्वामिनि! दाँतों में तृण रखकर यह दीनजन प्रार्थना करता है कि मुझ-जैसे दु:खी को अपना दास्यामृत देकर जीवित करो। दयालु व्यक्ति शरणागत दुष्टजन को भी नहीं त्यागता, अतएव तुम भी इस जन का परित्याग मत करो।' परम प्रेम की परिपक्व अवस्था में ही श्रीपाद के ऐसे दैन्य की उत्पत्ति है। श्रीमत् सनातन गोस्वामिपाद ने लिखा है-

''दैन्यन्तु परमं प्रेम्ण: परिपाकेण जन्यते।
तासां गोकुलनारीणामिव कृष्ण-वियोगत:॥
परिपाकेण दैन्यस्य प्रेमाजस्त्रं वितन्यते।
परस्परं तयोरित्थं कार्यकारणतेक्षते॥''

(वृ० भा०-२/५/२२४-२५)

''यथार्थ दैन्य प्रेम की परिपक्व दशा में ही प्रकट होता है। श्रीकृष्ण-विरह में व्रजसुन्दरियों का जो परमदैन्य प्रकट हुआ था, वह प्रेम की परिपक्व दशा में ही हुआ था। फिर दैन्य की परिपक्व अवस्था में भी प्रेम अजस्त्र भाव से विस्तार प्राप्त किया करता है। इसलिये दैन्य और प्रेम में परस्पर कार्य-कारणता सम्बन्ध देखा जाता है।'' श्रीमत् जीवगोस्वामिपाद ने कृष्ण-विरहिणी व्रजसुन्दरियों के विरह का दृष्टान्त देते हुए लिखा है-

''दावत्रस्ता मृग-दुहितरश्चन्द्रहीनाश्चकोर्य:
स्रस्ता वृक्षान्नवकलतिका नीररिक्ता: शफर्य:।

अयि प्रणयशालिनि प्रणय-पुष्टदास्याप्तये
प्रकाममतिरोदनैः प्रचुरदुःखदग्धात्मना।
विलापकुसुमाञ्जलिर्हृदि निधाय पादाम्बुजे
मया वत समर्पितस्तव तनोतु तुष्टिं मनाक्॥१०४॥

अन्वय-अयि प्रणयशालिनि! प्रकामं प्रणयपुष्टदास्याप्तये (यथेष्टं प्रणयेन पुष्टं परिपूर्णं यद्दास्यं तस्याप्तये प्राप्तये) अतिरोदनैः प्रचुरदुःखदग्धात्मना मया (तव) पादाम्बुजे हृदि निधाय वत (आक्रोशपूर्वकं संबोध्य) विपालकुसुमाञ्जलि समर्पितः, तव मनाक् (स्वल्पां) तुष्टिं तनोतु॥१०४॥

अनुवाद-हे प्रेममयि श्रीराधे! तुम्हारे प्रणयपुष्ट दास्यलाभ की आशा से प्रचुर दुःखानल में दग्धचित्त मैंने तुम्हारे श्रीपादपद्म हृदय में धारणकर अतिशय रोदन के साथ तुम्हें पुकारते-पुकारते यह ''विलापकुसुमाञ्जलि' तुम्हारे चरणों में समर्पित की। यह तुम्हें स्वल्पमात्र भी तुष्टि पहुँचाये।

विलापकुसुमाञ्जलि-समर्पण

परिमलकणा व्याख्या-श्रीपाद रघुनाथ अपनी अभीष्ट-सिद्धि के लिये दैन्य से भरकर कृपामयी स्वामिनी के चरणों में ही शरणागत हुए हैं। 'हा स्वामिनि! और क्या कहूँगा! बोलने को भाषा नहीं; सामर्थ्य भी नहीं।

ऊर्जप्रान्ताद्वहिरपगता हन्त नव्याब्जनाल्यो
यद्वद्दृष्ट्वा हरिविरहिता राधिकाद्याश्च तद्वत्॥''

(गो० च० पू० ३३/११०)

''जो अवस्था दावानल के भय से ग्रसित मृग-दुहिता की होती है, जो दशा चन्द्रविहीन होने पर चकोरियों की होती है, वृक्ष से स्खलित हुई नवलतिका की जो दुर्दशा होती है, जल के बिना मत्स्य की जो दुरवस्था होती हैं, छिन्नमूल नवीन कमल को जमीन पर फेंकने से उसकी जैसी अवस्था होती है, हाय! वही अवस्था श्रीकृष्ण-विरह में श्रीराधादि व्रजसुन्दरियों की भी हुई है।'' राधा-विरह में श्रीराधा-किंकरियों की दुर्दशा इससे किसी भी अंश में कम नहीं। ''त्वत् कुण्डमध्यमपि''- इस अंश की व्याख्या में कोई-कोई कहते हैं; एकबार प्राणनाथ के साथ मध्याह्न में श्रीकुण्ड में जब श्रीराधा जल-विहार कर रही थीं, तब उनकी मणिमय पादांगुरीयक (पैर की अँगूठी) कुण्ड में गिर गई थी; श्रीपाद ने सिद्धस्वरूप में बहुत देर तक कुण्ड में खोजने पर उसे प्राप्तकर स्फुरण में श्रीमती की श्रीचरणांगुली में पहनाया था। उसी लीला की स्मृति में कहते हैं-'इस प्रकार करुणाकर तुमने जब बहुत बार अपनी चरण-सेवा प्राप्ति का आश्वासन दिया है, तो साक्षात् सेवा देकर धन्य करो।'

''शुनो शुनो कृपामयि राइ!
ए दीन दुःखित जने, यदि कृपाकणा दाने, नाहि तुषो क्षण मुख चाइ॥
तब ए प्रलाप-गाथा, निश्चय हइबे वृथा, जेनो हाय! अरण्ये रोदन।
तव कुण्ड-मध्यभागे, अति प्रेम-अनुरागे, एतो काल करिनु सेवन॥
ताहे कि करिबे हाय! यदि तुम ठेलो पाय, सकलि हइबे अकारण।
मो-हेनो अधमजने, करो कृपा निजगुणे, अकपटे लइनु शरण॥''१०३॥

तुम कृपा करो या न करो, मुझे यह विश्वास है कि तुम प्रणयशालिनी हो–श्यामसुन्दर के प्रति, सखियों के प्रति, दासियों के प्रति! अर्थात् प्रेममयी तुमने प्रेमकर उन सभी को नितान्त अपना बना लिया है। अतएव मुझे ही तुम्हारी आवश्यकता है, सो नहीं; तुम्हें भी मेरी बहुत–कुछ आवश्यकता है।' प्रणयभरी दासी हृदय में बड़ी आशा लिये प्रणयशालिनी स्वामिनी से उनका प्रणयपुष्ट दास्य माँग रही हैं।

'हा स्वामिनि! यह ''विलापकुसुमाञ्जलि'' हृदय से लगाये व्याकुल हृदय से तुम्हारे चरणों में समर्पित की। यह दासी अयोग्य होते हुए भी आशा नहीं छोड़ पा रही। तुम्हारे चरणों में यही निवेदन है, (ऐसी कृपा करो) मैं तुम्हारी प्रणयपुष्ट दासी बन सकूँ। तुम्हारी करुणा की ओर देखकर दासी के हृदय के अनन्त दु:ख–दावानल से भरी यह विलापकुसुमाञ्जलि तुम्हारे चरणों में समर्पित कर दी। मन में बड़ी साध है, तुम्हारी प्रणयपुष्ट दासी–होकर तुम्हारे मन को समझकर तुम्हारी प्रेमसेवा करूँगी। साधारण दासी नहीं, प्रणयपुष्ट दासी। निभृत–निकुंज में रसपरिपाटीयुक्त सेवा की अधिकारिणी! तुम दोनों के विलास के पश्चात् प्रयोजन को समझकर नि:संकोच कुंज में प्रवेश कर तुम दोनों की सेवा करूँगी। तुम दोनों प्रणय से भरकर मुझे अपनी क्रीड़ा–आवेश की मूर्ति के रूप में ही देखोगे। हे प्रणयशालिनि! तुम अपार करुणार्द्र–हृदय हो, यही कृपा करो कि मेरी यह अभिलाषा सिद्ध हो।'

स्वामिनी मानो स्फूर्ति में बोल रही हैं–'तुलसि! तू जो चाहती है, वह अति सुदुर्लभ वस्तु है।' इसके उत्तर में कहती हैं–'हा स्वामिनि! यदि तुम्हारी यह प्रेमसेवा पाने की योग्यता मुझमें न हो, तो छोड़ो, मत दो। दु:ख के समुद्र में डाले रखो, या किसी भी अवस्था में रखो, रो–रोकर जो 'विलापकुसुमाञ्जलि' तुम्हारे चरणों में समर्पित की है, वह तुम्हारे किंचित् सुख या सन्तोष का कारण बनी, बस इतना समझने दो!'

इन विलापकुसुमों की माला गूँथकर तुलसीमंजरी ने स्वामिनी की प्रेमसेवा की है। दिन–रात स्वामिनी–विरहिणी दासी की जिस तीव्र विरहाकुल दशा का भावचित्र अंकित हुआ है, वह रागानुगीय साधकों के लिये मानस–नेत्रों से देखने योग्य है। इस विरह–विषाद के स्मरण से भी साधक भावाकुल हो उठेंगे। विरह–दु:ख का यह सागर इतना विशाल, इतना गम्भीर है कि सामान्य व्यक्ति के लिये नितान्त दुर्विगाह्य है। जो तुलसीमंजरी के चरणों में शरणागत होकर अपने मानसनेत्रों से इस विरहसागर के उच्छ्वास को यत्किंचित् देखेंगे, वे समझ सकेंगे कि यह जीवशक्ति के लिये सम्भव नहीं। उनके मानस–नेत्रों में नीलाचल गम्भीरा में विरहिणी श्रीराधा के भाव में आविष्ट श्रीगौरसुन्दर की स्मृति की छवि धीरे–धीरे फूट उठेगी। उनकी हृदय–वीणा पर बज उठेगा। मर्मविदारक विरहविलाप का वही करुण स्वर–

''काँहा करों काहाँ पाउँ व्रजेन्द्रनन्दन।
काँहा मोर प्राणनाथ मुरलीवदन॥
काँहारे कहिबो केबा जाने मोर दु:ख।
व्रजेन्द्रनन्दन बिना फाटे मोर बुक्॥'' (चै० च०)

इस स्तव की फलश्रुति नहीं। बोलते–बोलते श्रीपाद का कण्ठ रुद्ध हो जाता है। मूर्छित अवस्था! यह निदारुण विरहानल क्या क्रन्दन में ही पर्यवसित होगा? कुण्डसेवा के फलस्वरूप रघुनाथ ने श्रीकुण्डेश्वरी की

कृपा प्राप्त की। उनके भाग्याकाश की पूर्वदिशा में फूट उठा चिर आकांक्षित-चिर आशा का अरुण आलोक! प्रगाढ़ विरह की अमानिशा का अंधकार दूर हुआ! सहसा श्रीश्रीराधामाधव के श्रीअङ्गों का मधुर परिमल दसों दिशाओं में आमोदित हुआ। अपने प्राणनाथ को साथ लेकर स्वामिनी आई हैं। श्रीअङ्ग की मधुमय गंध से श्रीपाद में चेतना का संचार हुआ। आँखें खोलकर देखते हैं-मधुर गौर-नील आलोक से श्रीकुण्डतट उद्भासित है!! श्रीपाद की दिव्य भाग्यनिधि श्रीश्रीराधाश्याम सामने हैं!!! नेत्रों से कितनी करुणाराशि निर्झर की तरह झर रही है! मधुर कण्ठध्वनि। स्वामिनि कह रही हैं-'तुलसि! देख तो, मैं आ गई।' तुलसी के प्राणों का अभीष्ट पूरा हुआ। अपने प्राणनाथ के साथ स्वामिनी तुलसी के सामने हैं। हाथ से पकड़ वक्ष से लगा स्वामिनी ने स्नेहकिंकरी को अङ्गीकार किया। विलाप की परिसमाप्ति हुई। रघुनाथ ने स्वाभीष्ट प्राप्त किया। करुणामयी स्वामिनी के साथ विरहातुर दासी का मिलन हुआ! विशाल विरहानल में दगह्यमान (दग्ध, झुलसी) तनुलतिका नित्य-लीला में निकुंजभवन की नित्यमिलनोत्थ आनन्द-धारा में अभिषिक्त हुई!!

गौरलीला भी नित्य है। श्रीपाद नित्यसिद्ध परिकर हैं। तभी दासगोस्वामिरूप में भी वे अब भी कुण्डतट पर साधकावेश में स्वामिनी के लिये विलाप करते हुए विरहरस-माधुरी के आस्वादन में मग्न हैं! अब भी निविड़ (सघन) नैश (रात्रिकालीन) नीरवता में श्रीकुण्डतीर पर उस स्वामिनी-विरहलीन दीन दासी का क्रन्दन कुररी पक्षी के कातर विलाप को भी निन्दित करता मधुर-अस्फुट भाव से मर्मीजनों के हृदय में अनुभूत होता है-

''प्रणय-शालिनि अयि! हे राधे! हे कृपामयि!
दिवानिशि पुड़ि दुःखानले।
प्रीतिपुष्ट दास्य तव, प्रेमार्तिते नित्ये नव,
कबे मोर दिबे दासी बले॥
प्राणेर प्रलापगुलि, रचिया कुसुमांजलि,
तुया पदे करिनु अर्पण।
क्षणेकेर तरे तव, हय यदि तुष्टि लव,
सार्थक हइबे ए जीवन॥''१०४॥

जय श्रीगौर हरि! जय श्रीराधे!!

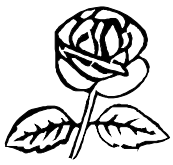

श्रीकृष्णचैतन्य शास्त्र मन्दिर, श्रीराधाकुण्ड द्वारा प्रकाशित अन्य हिन्दी ग्रन्थ

१. संसार कूप में जीव की गति - (मूलः श्रीमत् कुंजविहारीदास बाबाजी महाराज। अनुवाद : व्रजगोपाल दास अग्रवाल)

कुछेक चित्रों और श्रीमद्भागवत के पाँचवें स्कन्ध में दिये संसार-अरण्य के रूपक की सहायता से भक्ति-साधन सम्बन्धी अत्यन्त उपादेय सामग्री प्रस्तुत की गई है।

२. श्रीराधारससुधानिधि - (टीका : श्रीमत् अनन्तदास बाबाजी महाराज। अनुवाद : व्रजगोपाल दास अग्रवाल)

श्रीपाद प्रबोधानन्द सरस्वती द्वारा आस्वाद्य अतुलनीय श्रीराधा-माधुरी के वर्णन से युक्त स्तोत्रकाव्य।

३. श्रीप्रेमभक्ति चन्द्रिका - (टीका : श्रीमत् अनन्तदास बाबाजी महाराज। अनुवाद : व्रजगोपाल दास अग्रवाल)

४. माधुर्यकादम्बिनी एवं रागवर्त्मचन्द्रिका - (टीका : श्रीमत् अनन्तदास बाबाजी महाराज। अनुवाद : अकिंचन कृष्णदास बाबाजी)

श्रीरूपगोस्वामिपाद के आनुगत्य में श्रीविश्वनाथ चक्रवर्तिपाद ने अपने इस ग्रन्थद्वय में वैष्णव भजन-साधन का रहस्य उद्घाटित किया है। पहले ग्रन्थ में श्रद्धा से प्रेम तक भक्तिसाधना के विभिन्न स्तरों का और दूसरे में रागानुगा भजन मार्ग का विश्लेषण है।

५. साध्य साधन तत्त्व विज्ञान - (टीका : श्रीमद् अनन्तदास बाबाजी महाराज। अनुवाद : महिमा चन्द्र पाठक)

६. श्रीशिक्षाष्टकम् - (टीका : श्रीमद् अनन्तदास बाबाजी महाराज। अनुवाद : महिमा चन्द्र पाठक)

वेद-पुराण आदि में निरूपित साध्य-साधन तत्त्व का रहस्य ही उद्घाटित हुआ है महाप्रभु श्रीचैतन्य के शिक्षाष्टक है।

७. श्रीवृहद्भागवतामृतम् - (बंगला टीका : श्रीमत् अनन्तदास बाबाजी महाराज। अनुवाद : महिमाचन्द्र पाठक)

श्रीसनातनगोस्वामिपाद का सिद्धान्त-ग्रन्थ, जिसमें लीला, भाव, रस आदि समस्त वैष्णव तत्त्वों का वर्णन है और व्रजरस-माधुरी के सर्वश्रेष्ठत्व का पतिपादन है।

८. श्रीराधाकुण्ड महिमा व इतिहास - (मूल : श्रीमत् अनन्तदास बाबाजी महाराज। अनुवाद : गणेशदास चुघ एवं गिरिराज)

भक्तों को प्रेमदान करने वाले और युगल सरकर के अति प्रिय श्रीराधाकुण्ड की महिमा और उसके इतिहास का रोचक सरस वर्णन है।

९. श्रीविलापकुसुमाञ्जलि - (टीका : श्रीमत् अनन्तदास बाबाजी महाराज। अनुवाद : व्रजगोपाल दास अग्रवाल)

श्रीमन्महाप्रभु के परम कृपापात्र परिकर श्रीरघुनाथदास गोस्वामिपाद ने अपने सिद्धस्वरूप की स्फूर्ति में राधारानी के रूप-गुण-लीलादि की जिस निरुपम माधुरी का आस्वादन किया है, उसी को साधकों की शिक्षा हेतु इस कृति में लिपिबद्ध किया है।

प्राप्तिस्थान -

१. श्रीकेशवदास, व्रजानन्द घेरा, पो० राधाकुण्ड, जिला-मथुरा, उत्तर प्रदेश, पिन-२८१५०४

२. श्रीशंकर लाहा, १०/१वि, सन्तोष राय रोड, कोलकाता-७००००८

द्वितीय संस्करण का निवेदन

प्रथम संस्करण के समाप्त होने के बाद भक्तों के विशेष आग्रह पर द्वितीय संस्करण प्रकाशित किया गया है। इसमें जो भूल/त्रुटि हो गई हो, भक्तगण उसे शुद्ध कर आस्वादन करने की कृपा करें, ऐसा होने से ग्रन्थ के पुनः प्रकाशित करने का श्रम सार्थक होगा।

– सम्पादक